श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिपप्रणीतः

षट्खण्डागमः

श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्यविरचितः

चतुर्थो वेदनाखण्डः

द्वितीय वेदनानुयोगद्वारम्

(वेदनाखण्डनाम्नि चतुर्थखण्डे षोडशानुयोगद्वारान्तर्गतपंचानुयोगद्वारसमन्वितः)

अथ वेदनानिक्षेपानुयोगद्वारम्

(वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-प्रथमानुयोगद्वारम्)

दशमो ग्रन्थः

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका

(गणिनीज्ञानमतीविरचिता)

प्रथमो महाधिकारः

(अन्तर्गत-प्रथमोऽधिकारः)

मंगलाचरणम्

श्रीअजितनाथस्तोत्रम्

प्रीतिछन्दः—(५ अक्षरी) कर्मजित्योऽभूत्, सोऽजितः ख्यातः।
तीर्थकृन्नाथः, तं नुवे भक्त्या।।१।।

मंगलाचरण

श्री अजितनाथ स्तोत्र

श्लोकार्थ—जो कर्मों को जीत चुके हैं, वे 'अजित' इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। वे तीर्थंकर स्वामी-भगवान् हैं, उन अजितनाथ जिनवर को मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ।।१।।

यह पाँच अक्षरी "प्रीति" छंद में निबद्ध भगवान अजिनताथ की स्तुति का प्रथम श्लोक है।

सतीछन्दः—(५ अक्षरी) पुरी विनीता, भुवि प्रसिद्धा।
त्रिलोक-पूज्या, सुरेन्द्रवंद्या।।२।।

मन्दाछन्दः—(५ अक्षरी) माता विजया, धन्या भुवने।
देवैर्महितं, पुत्रं जनिता।।३।।

तनुमध्याछन्दः—(६ अक्षरी)
इक्ष्वाकुकुलस्य, सूर्यो गजचिन्हः।
स्वर्णाभतनुः सः, मां रक्षतु पापात्।।४।।

शशिवदनाछन्दः—(६ अक्षरी)
खयुगदिशैकः, करतनुतुंगः।
भुवि जितशत्रुः, तव जनकः स्यात्।।५।।

सावित्रीछन्दः—(६ अक्षरी)
द्वासप्तत्या लक्ष-पूर्वाण्यायुः प्राप्तः।
ज्ञानानंदापूर्णः, पायात् मे संसारात्।।६।।

अनुष्टुप्छन्दः—
ज्येष्ठेऽमावस्या शुभदा, दशमी माघ-शुक्लके।
तन्मासे नवमी पुण्यै-कादशी पौषशुक्लके।।७।।

इस धरती पर अयोध्या नगरी सर्वजन प्रसिद्ध-शाश्वत तीर्थ है, वह तीनों लोकों में पूज्य है और देव-इन्द्रों के द्वारा वंद्य है।।२।। इस श्लोक में पाँच अक्षरी "सती" छंद का प्रयोग किया गया है।

विजया देवी माता इस संसार में धन्य हैं, क्योंकि उन्होंने देवों द्वारा पूज्य पुत्र को जन्म दिया है।।३।। "मन्दा" नामक पाँच अक्षरी छंद से निर्मित यह श्लोक है।

जो इक्ष्वाकुवंश के भास्कर हैं, जिनका चिन्ह हाथी है और जिनके शरीर का वर्ण स्वर्ण के समान है ऐसे वे अजितनाथ भगवान पापों से मेरी रक्षा करें।।४।।

यह छह अक्षर वाला "तनुमध्या" छंद में निबद्ध श्लोक है।

हे अजितनाथ भगवान्! आपका शरीर अठारह सौ हाथ ऊँचा अर्थात् चार सौ पचास धनुष था। इस पृथ्वी पर शत्रुओं के विजेता "जितशत्रु" नाम के राजा आपके पिता हुए हैं।।५।।

यह छह अक्षरी "शशिवदना" छंद है।

भावार्थ—यहाँ "खयुगदिशैकः" का अर्थ इस प्रकार लेना है—खयुग=००, दिशा=८, एकः=१। अंकानां वामतो गतिः नियम के अनुसार १८०० हुआ है।

आपकी आयु बहत्तर लाख पूर्व वर्ष की थी, आप केवलज्ञान और अव्याबाध सुख—पूर्ण आनन्द से सहित हैं, ऐसे हे अजितनाथ भगवान्! आप संसार के दुःखों से मेरी रक्षा करें।।६।।

यह छह अक्षर वाला "सावित्री" छंद है।

ज्येष्ठ मास की अमावस्या शुभदायक तिथि है अर्थात् भगवान अजितनाथ ने जेठ वदी अमावस को गर्भ में आकर वह तिथि शुभ कर दी। माघ शुक्ला दशमी तिथि उनके जन्म से पवित्र हो गई। उसी माघ मास की

पंचमी चैत्रशुक्ला च, पंचकल्याणकैः क्रमात्।
तिथयोऽजितनाथस्य ,ता मे दद्युः परां गतिं।।८।।

मालिनीछन्दः —

नुद नुद भवदुःखं, रोगशोकादिजातं।
कुरु कुरु शिवसौख्यं, वीतबाधं विशालं।
तनु तनु मम पूर्ण-ज्ञानसाम्राज्यलक्ष्मीं।
भव भव सुखसिद्धयै, ज्ञानमत्यै जिनेश!।।९।।

* * *

सिद्धवन्दना

सिद्धाः कर्मसमुत्पन्न - वेदनावारिधिं स्वतः।
तीर्त्वा लोकाग्रभागं ये, प्राप्तास्तेभ्यो नमो नमः।।१।।

अथ द्वितीयतीर्थंकरश्रीअजितनाथ स्तवनं विधाय कृतिवेदनादिचतुर्विंशत्यनुयोगद्वारेषु वेदनानुयोगद्वारनाम द्वितीयानुयोगद्वारमस्मिन् दशमग्रन्थे कथ्यते।

सुदी नवमी तिथि पुण्यमयी है क्योंकि उस दिन भगवान ने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की थी। पौष शुक्ला एकादशी तिथि शुभ हुई, जिस दिन उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुआ था तथा चैत्र शुक्ला पंचमी तिथि शुभ है, क्योंकि उस दिन भगवान् ने मोक्ष पद को प्राप्त किया था।

अजितनाथ भगवान् के पंचकल्याणकों से पवित्र ये पाँचों तिथियाँ मुझे श्रेष्ठ मोक्षगति प्रदान करें।।७-८।।

आठ अक्षर वाले अनुष्टुप् छंद से निर्मित ये दोनों श्लोक हैं।

हे जिनेश्वर अजितनाथ! आप मेरे रोग, शोक आदि से उत्पन्न होने वाले संसार दुःखों को दूर कीजिए-दूर कीजिए। अव्याबाध और विशाल ऐसे मोक्षसुख को दीजिए-दीजिए। केवलज्ञानरूप सर्वश्रेष्ठ साम्राज्य को प्रदान कीजिए-कीजिए और ज्ञानमतीरूप परम सौख्य की सिद्धि के लिए होइए-होइए।।९।।

यह पन्द्रह अक्षरी "मालिनी" छंद में निबद्ध अंतिम श्लोक है।

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने "कल्याणकल्पतरु स्तोत्र" में एकाक्षरी छंद से लेकर ३२ अक्षरी छंद तक में चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों के स्तोत्र रचे हैं, उन्हें क्रमशः षट्खण्डागम में चौबीस अनुयोगद्वारों के प्रारंभिक मंगलाचरण में निबद्ध किया है। इसी शृँखला में यहाँ इस चतुर्थखण्ड की दसवीं पुस्तक "वेदनानुयोगद्वार" नामक द्वितीय अनुयोगद्वार के प्रारंभ में द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान का यह स्तोत्र है।

* * *

श्लोकार्थ — जिन्होंने सम्पूर्ण कर्मों से उत्पन्न वेदनारूपी समुद्र को स्वयं ही तिर करके — पार करके लोक के अग्रभाग को प्राप्त कर लिया है अर्थात् सिद्धशिला पर जाकर जो विराजमान हो गये हैं, ऐसे उन सिद्ध भगवन्तों को मेरा बारम्बार नमस्कार है।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान का स्तवन करके अब कृति वेदना आदि चौबीस अनुयोगद्वारों में वेदनानुयोगद्वार नाम के द्वितीय अनुयोगद्वार को इस दसवें ग्रंथ में कहा जा रहा है।

अथ तावत् षट्खण्डागमस्य विषयाः प्रदर्श्यन्ते—

षट्खण्डागमस्य सार्थकाः षट्खंडाः सन्ति—जीवस्थान-क्षुद्रकबंध-बंधस्वामित्वविचय-वेदनाखंड-वर्गणाखण्ड-महाबंधाश्चेति।

एषु षट्खण्डग्रन्थेषु सर्वं जैनवाङ्मयसारं समागतमस्ति। एभ्यो ग्रन्थेभ्य एव साराणि गृहीत्वा गोम्मटसार-जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड-लब्धिसार-क्षपणासार-त्रिलोकसार नामधेया ग्रन्थाः समर्पिताः भव्यपुंगवसाधुभ्यः साध्वीभ्यः, श्रावकेभ्यः श्राविकाभ्यश्च श्रीमत्सिद्धान्तचक्रवर्तिश्रीनेमिचंद्राचार्यदेवैः। पुनश्च—

जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स।।

एतेषां श्रीधरसेनाचार्यवर्याणां एषां शिष्ययोः श्रीमत्पुष्पदन्तभूतबलिमहामुनीन्द्रयोरुपकारो जगति अनन्तोऽस्ति। येषां आचार्याणां कृपाप्रसादेनैवास्माकं मोक्षमार्गो दृश्यते, एतेभ्योऽनन्तशो नमोऽस्तु।

संप्रति तावत्प्रथमखण्डे जीवस्थाने सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-अन्तरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगमा अष्टौ अधिकाराः नवचूलिकाश्च सन्ति वर्तमानकाले विभक्तेषु षट्ग्रन्थेषु।

द्वितीयखण्डे क्षुद्रकबंधनाम्नि सप्तमग्रन्थे एकादशानुयोगद्वाराणि कथितानि।

तृतीयखण्डे बंधस्वामित्वविचयनाम्नि अष्टमे ग्रन्थे बंधबंधकादीनां प्ररूपणास्ति।

चतुर्थखण्डे वेदनानाम्नि नवमग्रंथे कृति-अनुयोगद्वारं कथितमस्ति।

अब सर्वप्रथम षट्खण्डागम का विषय प्रदर्शित करते हैं—

षट्खण्डागम नाम को सार्थक करने वाले छह खण्ड हैं—१. जीवस्थान, २. क्षुद्रकबंध, ३. बंधस्वामित्वविचय, ४. वेदनाखण्ड, ५. वर्गणाखण्ड और ६. महाबंध।

इन छह खण्डों में विभक्त ग्रन्थों में सम्पूर्ण जैन वाङ्मय का सार समाविष्ट है। इन ग्रंथों से ही सार ग्रहण करके श्रीमान् नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्यदेव ने गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड-लब्धिसार-क्षपणासार-त्रिलोकसार नाम के ग्रंथ रचकर भव्यपुंगव साधु-मुनि, साध्वी-आर्यिकावर्ग, श्रावक और श्राविकाओं के लिए प्रदान किये हैं। पुनश्च—

गाथार्थ—जिन्होंने महाकर्मप्रकृतिप्राभृतरूपी पर्वत को उठाकर मस्तक पर धारण करके श्री पुष्पदन्तमुनिराज को समर्पित किया था, वे श्रीधरसेनाचार्यवर्य सदा जयशील होवें।।

उन आचार्यश्री धरसेन स्वामी का एवं उनके शिष्यद्वय श्रीपुष्पदन्त और भूतबली मुनिराजों का इस जगत पर अनन्त उपकार है। जिन आचार्यों की कृपा प्रसाद से ही हम सभी को मोक्षमार्ग दिख रहा है, उन सभी के लिए मेरा अनन्तबार नमस्कार होवे।

यहाँ उन छहों खण्डों में से जीवस्थान नामक प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम नाम के आठ अधिकार और नौ चूलिकाओं का वर्तमानकाल के विभक्त छह ग्रन्थों में वर्णन किया गया है।

क्षुद्रकबंध नामक द्वितीयखण्डरूप सप्तम ग्रंथ में ग्यारह अनुयोगद्वार कहे गये हैं।

बंधस्वामित्वविचय नामक तृतीय खण्डरूप आठवें ग्रंथ में बंध और बंधक आदिकों का वर्णन है।

वेदनानामक चतुर्थखण्डरूप नवमें ग्रंथ में कृति-अनुयोगद्वार कहा गया है।

अस्मिन् वेदनानामखण्डान्तर्गते दशमग्रन्थादारभ्य वेदनानुयोगद्वारमस्ति, द्वादशग्रन्थपर्यंतमिति।

अस्मिन् वेदनानामानुयोगद्वारे षोडशाधिकाराः कथ्यन्ते—

तत्र तावत् तेषां नामानि—वेदनानिक्षेप-वेदनानयविभाषणता-वेदनानामविधान-वेदनाद्रव्यविधान-वेदनाक्षेत्रविधान-वेदनाकालविधान-वेदनाभावविधान-वेदनाप्रत्ययविधान-वेदनास्वामित्वविधान-वेदनावेदनविधान-वेदनागतिविधान-वेदनाअनंतरविधान-वेदनासन्निकर्षविधान-वेदनापरिमाणविधान-वेदनाभागाभागविधान-वेदनाल्पबहुत्वानि चेति।

अस्मिन् दशमे ग्रन्थे आद्याः पञ्चाधिकाराः गृहीष्यन्ते।

एकादशे ग्रन्थे वेदनाकालविधान-वेदनाभावविधाननामानौ द्वौ अर्थाधिकारौ कथयिष्येते। पुनश्च द्वादशे ग्रंथे वेदनाप्रत्ययविधानादि-शेषनवार्थाधिकाराः वक्ष्यन्ते। इमे षोडशभेदा अपि अस्मिन्नेव ग्रन्थे प्रथमसूत्रे। अनुयोगद्वारनामभिरेव कथिताः सन्ति।

एतेषु अयं वेदनाखंडः पूर्यते।

ततश्चाग्रे-स्पर्श-कर्म-प्रकृत्यादि-द्वाविंशत्यनुयोगद्वाराणि चतुर्षु ग्रन्थेषु विभक्तानि दर्शयिष्यन्ति। अयं वर्गणाखंडनाम्ना गीयते।

वर्तमानषोडशग्रन्थेषु पंचखण्डा एव धवलाटीकासमन्विताः भवन्ति।

षष्ठखण्डे महाबंधनाम्नि ग्रन्थे महाधवलाटीकाः प्रसिद्धाः। तत्रापि षष्ठखण्डे सप्त ग्रन्थाः विद्वद्भिः विभाजिताः सन्ति।

इस वेदना नामक खण्ड के अन्तर्गत दशवें ग्रंथ से लेकर बारहवें ग्रंथ तक तीन ग्रंथों में वेदनानुयोगद्वार वर्णित है।

इस वेदनानामक अनुयोगद्वार में सोलह अधिकार कहते हैं—

इन सोलहों अनुयोगद्वारों के नाम इस प्रकार है—

१. वेदनानिक्षेप, २. वेदनानयविभाषणता, ३. वेदनानामविधान, ४. वेदनाद्रव्यविधान, ५. वेदनाक्षेत्रविधान, ६. वेदनाकालविधान, ७. वेदनाभावविधान, ८. वेदनाप्रत्ययविधान, ९. वेदनास्वामित्वविधान, १०. वेदनावेदनविधान, ११. वेदनागतिविधान, १२. वेदनाअनंतरविधान, १३. वेदनासन्निकर्षविधान, १४. वेदनापरिमाणविधान, १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्व।

इन सोलहों भेदों में से इस दशवें ग्रंथ में प्रारंभ के पाँच अधिकार ग्रहण करेंगे अर्थात् पाँच अधिकारों का वर्णन इस ग्रंथ में किया जायेगा।

ग्यारहवें ग्रंथ में वेदनाकालविधान और वेदनाभावविधान नाम के दो अर्थाधिकारों का कथन करेंगे। पुनः बारहवें ग्रंथ में वेदनाप्रत्ययविधान आदि शेष नौ अर्थाधिकार कहेंगे। ये सोलह भेद भी इसी ग्रंथ के प्रथम सूत्र में वर्णित हैं, जो अनुयोगद्वार के नाम से ही कहे गये हैं।

इन सोलहों अनुयोगद्वारों में यह वेदनाखण्ड पूर्ण हुआ है।

उसके आगे स्पर्श-कर्म-प्रकृति आदि बाईस अनुयोगद्वारों को चार ग्रंथों में विभक्त करके दिखाएंगे। यह वर्गणाखंड नाम से कहा गया है।

वर्तमान के सोलह ग्रंथों में धवलाटीका समन्वित पाँच खण्ड ही उपलब्ध होते हैं।

छठे खण्डरूप महाबंध नामक ग्रंथ पर महाधवला टीका प्रसिद्ध है। उसमें विद्वानों ने छठे खण्ड को सात ग्रंथों में विभाजित किया है।

एषामुत्पत्तिर्दर्श्यते—

अथाग्रायणीयनामद्वितीयपूर्वस्य पंचमवस्तुनः चयनलब्धेरन्तर्गत-विंशतिप्राभृतेषु 'कर्मप्रकृति' नाम चतुर्थं प्राभृतमस्ति। अस्मिन प्राभृते कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सासासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध-अल्पबहुत्वनामानि चतुर्विंशत्यनुयोगद्वाराणि सन्ति। एषु चतुर्विंशतिषु कृति-वेदनानामनी द्वयनुयोगद्वारे वेदनाखण्डे चतुर्थे स्तः। तत्र कृत्यनुयोगद्वारं नवमग्रन्थे वेदनाखण्डेऽस्ति। द्वितीयं वेदनानुयोगद्वारं दशम-एकादशम-द्वादशमग्रन्थेषु अस्ति।

शेषद्वाविंशत्यनुयोगद्वाराणि वर्गणाखण्डे गृहीतानि।

संप्रति दशमग्रंथस्य पातनिका कथ्यते—

अस्मिन् दशमे ग्रंथे त्रयोविंशत्यधिकत्रिशतसूत्रेषु त्रयो महाधिकाराः वक्ष्यन्ते। तत्र प्रथममहाधिकारे वेदनानिक्षेप-वेदनानयविभाषणता-वेदनानामविधानैः त्रिभिरधिकारैः एकादशसूत्राणि। द्वितीयमहाधिकारे त्रयोदशाधिकद्विशतसूत्रेषु द्वौ अधिकारौ विभक्तीकृतौ। प्रथमोऽधिकारः वेदनाद्रव्यविधाननाम्नास्ति। द्वितीयोऽधिकारः चूलिकानामधेयेन कथितः। तृतीये महाधिकारे वेदनाक्षेत्रविधाने नवनवतिसूत्राणि सन्ति। इति दशमग्रन्थस्य समुदायपातनिका कथितास्ति।

तत्र तावत् प्रथमे महाधिकारे त्रयोऽधिकाराः। तेषु प्रथमेऽधिकारे त्रीणि सूत्राणि। द्वितीयेऽधिकारे चत्वारि सूत्राणि। तृतीये वेदनानामविधाने चत्वारि सूत्राणि सन्तीति ज्ञातव्यम्।

इनकी उत्पत्ति बताते हैं—

अग्रायणीय नामक द्वितीय पूर्व के पंचमवस्तु की चयनलब्धि के अन्तर्गत बीस प्राभृतों में 'कर्मप्रकृति' नाम का चतुर्थ प्राभृत है। इस प्राभृत में कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध-अल्पबहुत्व नामके चौबीस अनुयोगद्वार हैं। इन चौबीसों अनुयोगद्वारों में से चतुर्थ वेदनाखण्ड में कृति और वेदना नाम के दो अनुयोगद्वार हैं। उनमें से वेदनाखण्ड नामक नवमें ग्रंथ में कृति अनुयोगद्वार का वर्णन है। दशवें-ग्यारहवें और बारहवें ग्रंथ में वेदना अनुयोगद्वार का वर्णन है।

शेष बाईस अनुयोगद्वार वर्गणाखण्ड में ग्रहण किये गये हैं।

अब दशवें ग्रंथ की पातनिका कही जा रही है—

इस दशवें ग्रंथ में तीन सौ तेईस सूत्रों में तीन महाधिकार कहेंगे। उनमें से प्रथम महाधिकार में वेदनानिक्षेप, वेदनानयविभाषणता और वेदनानामविधान नाम के तीन अधिकारों में ग्यारह सूत्र हैं। द्वितीय महाधिकार में दो सौ तेरह सूत्रों में दो अधिकार विभक्त किये हैं। उनमें वेदनाद्रव्यविधान नाम का प्रथम अधिकार है। द्वितीय अधिकार चूलिका नाम से कहा गया है। तृतीय महाधिकार में वेदनाक्षेत्र विधान में निन्यानवे सूत्र हैं। यह दशवें ग्रंथ के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

उनमें से प्रथम महाधिकार में तीन अधिकार हैं। उनमें भी प्रथम अधिकार में तीन सूत्र हैं। द्वितीय अधिकार में चार सूत्र हैं और वेदनानामविधान नाम के तृतीय अधिकार में चार सूत्र हैं, ऐसा जानना चाहिए।

संप्रति श्रीमद्भगवद्धरसेनाचार्येण संप्राप्तसिद्धान्तबोधेन श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण वेदनानुयोगद्वारस्य षोडशानुयोगद्वारप्रतिपादनपरं सूत्रमवतार्यते—

वेदणा त्ति। तत्थ इमाणि वेयणाए सोलस अणुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति—वेदणाणिक्खेवे वेदणाणयविभासणदाए वेदणाणामविहाणे वेदणादव्वविहाणे वेदणाखेत्तविहाणे वेदणाकालविहाणे वेदणाभावविहाणे वेदणापच्चयविहाणे वेदणासामित्तविहाणे वेदणा-वेदणविहाणे वेदणागइ-विहाणे वेदणाअणंतरविहाणे वेदणासण्णियासविहाणे वेदणापरिमाणविहाणे वेदणाभागाभागविहाणे वेदणाअप्पाबहुगे त्ति।।१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पूर्वोक्तार्थाधिकारस्य स्मरणं कारयितुं सूत्रे 'वेदना' इति प्ररूपितं। एतानि षोडशनामानि प्रथमाविभक्त्यन्तानि ज्ञातव्यानि भवन्ति।**

कश्चिदाह—कथं पुनः अत्रान्ते—प्रत्येकपदान्ते एकारप्रयोगः ?

श्रीवीरसेनाचार्यः प्राह—''एए छच्च समाणा'' इत्येतेन सूत्रेण कृतैकारत्वात्।

अधुना एतेषामधिकाराणां विषयदिशादर्शनार्थं समुदयार्थ उच्यते—

अब श्रीमान् भगवान् श्री धरसेनाचार्यवर्य से प्राप्त किये गये सिद्धान्त ज्ञान के द्वारा श्रीमान् भूतबली आचार्यदेव वेदनानुयोगद्वार के सोलह अनुयोगद्वारों का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र को अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

अब वेदना अधिकार के प्रकरण के अनुसार वेदना के ये सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—१. वेदनानिक्षेप २. वेदनानयविभाषणता ३. वेदनानामविधान ४. वेदनाद्रव्य-विधान ५. वेदनाक्षेत्रविधान ६. वेदनाकालविधान ७. वेदनाभावविधान ८. वेदनाप्रत्यय-विधान ९. वेदनास्वामित्वविधान १०. वेदनावेदनविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअनन्तरविधान १३. वेदना सन्निकर्षविधान १४. वेदनापरिमाणविधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्व।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पूर्व में कथित अधिकार का स्मरण कराने के लिए सूत्र में ''वेदना'' ऐसा प्ररूपित किया गया है। ये सोलहों नाम प्रथमा विभक्त्यन्त हैं अर्थात् इन सभी के अन्त में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

यहाँ इन सभी पदों के अन्त में एकार का प्रयोग क्यों किया गया है ?

इसके उत्तर में श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है कि—

''एए छच्च समाणा'' इस सूत्र से यहाँ एकार का आदेश किया है, इसलिए प्रत्येक पद के अन्त में एकार का प्रयोग उचित ही है।

अब इन अधिकारों के विषय के दिशा निर्देश हेतु समुदयार्थ कहते हैं—

१. वेदनाशब्दस्यानेकार्थेषु वर्तमानस्याप्रकृतार्थान् अपसार्य प्रकृतार्थज्ञापनार्थं वेदनानिक्षेपानुयोग-द्वारमागतं।

२. लोके सर्वो व्यवहारो नयमाश्रित्यावस्थित इति एषो नामादिनिक्षेपगतव्यवहारः किं किं नयमाश्रित्य स्थितः इत्याशंकितस्य जनस्य शंकानिराकरणार्थमव्युत्पन्नजनव्युत्पादनार्थं वेदना-नयविभाषणता आगता।

३. बंधोदयसत्त्वरूपेण जीवे स्थितपुद्गलस्कंधेषु कस्य कस्य नयस्य क्व क्व कीदृशः प्रयोगो भवतीति नयमाश्रित्य प्रयोगप्ररूपणार्थं वेदनानामविधानमागतम्।

४. वेदनाद्रव्यमेकविकल्पं न भवति, किन्तु अनेकविकल्पमिति ज्ञापनार्थं संख्यातासंख्यातपुद्गलप्रतिषेधं कृत्वा अभव्यसिद्धैरनंतगुणाः सिद्धेभ्योरनंतगुणहीनाः पुद्गलस्कंधा जीवसमवेता वेदना भवन्तीति ज्ञापनार्थं वा वेदनाद्रव्यविधानमागतं।

५. वेदनाद्रव्याणामवगाहना संख्यातक्षेत्रं नास्ति, किन्तु अंगुलस्यासंख्येयभागमादिं कृत्वा घनलोकपर्यंत-मिति ज्ञापनार्थं वेदनाक्षेत्रविधानमागतं।

६. वेदनाद्रव्यस्कंधो वेदनाभावमत्यक्त्वा जघन्योत्कृष्टेण चैतावत्कालं तिष्ठतीति ज्ञापनार्थं वेदनाकालविधानमागतम्।

७. वेदनाद्रव्यस्कंधे संख्यातासंख्यातानन्तगुणप्रतिषेधं कृत्वा अनंतानंतभावविकल्पप्रतिबोधनार्थं वेदनाभावविधानमागतम्।

---

१. वेदनाशब्द के अनेक अर्थों में से वर्तमान के अप्रकृतअर्थों को छोड़कर प्रकृत अर्थ का ज्ञान कराने के लिए वेदनानिक्षेपअनुयोगद्वार आया है।

२. लोक में सभी व्यवहारनय का आश्रय लेकर अवस्थित हैं अतः यह नाम आदि निक्षेप को प्राप्त व्यवहार किस-किस नय के आश्रय से स्थित है, ऐसी आशंका वालों की शंका का निराकरण करने हेतु अथवा अव्युत्पन्न जनों को व्युत्पन्न कराने के लिए वेदनानयविभाषणता आया है।

३. जो पुद्गलस्कंध बन्ध, उदय और सत्व रूप से जीव में स्थित हैं उनमें किस-किस नय का कहाँ-कहाँ कैसा प्रयोग होता है, इस प्रकार नय के आश्रय से प्रयोग की प्ररूपणा करने के लिए वेदनानामविधान अधिकार आया है।

४. वेदनाद्रव्य एक प्रकार का नहीं है, किन्तु अनेक प्रकार का है—ऐसा ज्ञान कराने के लिए अथवा संख्यात व असंख्यात पुद्गलों का प्रतिषेध करके अभव्यसिद्धिकों से अनन्तगुणे और सिद्धों से अनन्तगुणे हीन पुद्गलस्कंध जीव से समवेत होकर वेदनारूप होते हैं, ऐसा ज्ञान कराने के लिए वेदनाद्रव्यविधान अधिकार आया है।

५. वेदनाद्रव्यों की अवगाहना संख्यात-क्षेत्र नहीं है, किन्तु अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर घनलोक पर्यन्त है, ऐसा बतलाने के लिए वेदनाक्षेत्रविधान अधिकार आया है।

६. वेदनाद्रव्य स्कंध वेदना भाव को न छोड़कर जघन्य और उत्कृष्ट रूप से इतने काल तक रहता है, ऐसा ज्ञान कराने के लिए वेदनाकालविधान अधिकार आया है।

७. वेदनाद्रव्यस्कंध में संख्यातगुणे, असंख्यातगुणे और अनन्तगुणे भावविकल्प नहीं हैं, किन्तु अनन्तानन्त भावविकल्प हैं, ऐसा ज्ञान कराने के लिए वेदनाभावविधान अधिकार आया है।

८. वेदनाद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावा न निष्कारणाः, किन्तु सकारणा इति प्रज्ञापनार्थं वेदनाप्रत्ययविधान-मागतम्।

९. एकादिसंयोगेन अष्टभंगा जीवा नोजीवा वेदनायाः स्वामिनो भवन्ति, न भवन्ति वेति नयानाश्रित्य प्रज्ञापनार्थं वेदनास्वामित्वविधानं कथितम्।

१०. एकादिसंयोगगतेन बध्यमान-उदीर्ण-उपशांतप्रकृतिभेदेन नयानाश्रित्य वेदनाविकल्पप्रतिपादनार्थं वेदनावेदनाविधानमागतम्।

११. द्रव्यादिभेदाभिन्नवेदनाः किं स्थिताः किमस्थिताः किं स्थितास्थिता इति नयमासाद्य प्रज्ञापनार्थं वेदनागतिविधानं कथितम्।

१२. एकैकसमयप्रबद्धा नाम अनंतरबंधाः, नानासमयप्रबद्धा नाम परंपराबंधाः, तौ द्वावपि तदुभयबंधाः, एतेषां त्रयाणामपि नयसमूहमाश्रित्य प्रज्ञापनार्थं वेदनानन्तरविधानमागतम्।

१३. द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानामुत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्येषु एकं निरुद्धं कृत्वा शेषपदप्रज्ञापनार्थं वेदनासन्निकर्षविधानमधिकारकथितम्।

१४. प्रकृतिकालक्षेत्राणां भेदेन मूलोत्तरप्रकृतीनां प्रमाणप्ररूपणार्थं वेदनापरिमाणविधानाधिकारं कथितम्।

१५. प्रकृत्यर्थता-स्थित्यर्थता-क्षेत्रप्रत्याश्रयेषु उत्पन्नप्रकृतयः सर्वप्रकृतीनां कियन्त्यो भाग इति ज्ञापनार्थं वेदनाभागाभागविधानमागतम्।

१६. एतासां चैव त्रिविधाणां प्रकृतीनामन्योन्यमपेक्ष्य अल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं वेदनाल्पबहुत्वविधान-

---

८. वेदनाद्रव्य, वेदनाक्षेत्र, वेदनाकाल और वेदनाभाव निष्कारण नहीं हैं, किन्तु सकारण हैं, इस बात का ज्ञान कराने के लिए वेदनाप्रत्ययविधान अधिकार आया है।

९. एक आदि संयोग से आठ भंगरूप जीव व नोजीव वेदना के स्वामी होते हैं या नहीं होते हैं, इस प्रकार नयों के आश्रय से ज्ञान कराने के लिए वेदनास्वामित्वविधान अधिकार आया है।

१०. एक-आदि-संयोग-गत बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त रूप प्रकृतियों के भेद से जो वेदनाभेद प्राप्त होते हैं, उनका नयों के आश्रय से ज्ञान कराने के लिए वेदनावेदनाविधान अधिकार आया है।

११. द्रव्यादि के भेदों से भेद को प्राप्त हुई वेदनाएँ क्या स्थित हैं, क्या अस्थित हैं, या क्या स्थित-अस्थित हैं ? इस प्रकार नय के आश्रय से परिज्ञान कराने के लिए वेदनागतिविधान अधिकार आया है।

१२. एक-एक समयप्रबद्धों का नाम अनन्तरबन्ध है, नाना समयप्रबद्धों का नाम परम्पराबंध है और उन दोनों ही का नाम तदुभयबंध है। इन तीनों का नयसमूह के आश्रय से ज्ञान कराने के लिए वेदनानन्तरविधान अधिकार आया है।

१३. द्रव्यवेदना, क्षेत्रवेदना, कालवेदना और भाववेदना, इनके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य पदों में एक को विवक्षित करके शेष पदों का ज्ञान कराने के लिए वेदनासन्निकर्षविधान अधिकार आया है।

१४. प्रकृतियों के काल और क्षेत्र के भेद से मूल और उत्तर प्रकृतियों के प्रमाण का प्ररूपण करने के लिए वेदनापरिमाणविधान अधिकार आया है।

१५. प्रकृत्यर्थता, स्थित्यर्थता (समयप्रबद्धार्थता) और क्षेत्रप्रत्याश्रय में उत्पन्न हुई प्रकृतियाँ सब प्रकृतियों के कितने भाग प्रमाण हैं, यह बतलाने के लिए वेदनाभागाभागविधान अधिकार आया है।

१६. और इन्हीं तीन प्रकार की प्रकृतियों का एक-दूसरे की अपेक्षा अल्प-बहुत्व बतलाने के लिए

मागतम्। एवं षोडशानामनुयोगद्वाराणां समुदायार्थप्ररूपणा कृता भवति।

अत्र सूत्रे 'सोलस अणुयोगद्दाराणि' इत्येतद् देशामर्शकवचनं ज्ञातव्यम्। अन्येषामप्यनुयोगद्वाराणां मुक्तजीवसमवेतादीनामुपलंभात्।

तात्पर्यमत्र — कर्मवेदनाभिःपीडितमनःशान्त्यर्थं शुद्ध्यर्थं च रत्नत्रयमवलंबनीयं। तेनैव मुच्यंते जीवाः कर्मभ्यः संसारेभ्यश्चेति ज्ञात्वा स्वहितोपाये प्रमादो न कर्तव्यः।

एवं प्रथमस्थले वेदनायाः षोडशनामकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

संप्रति एतेष्वनुयोगद्वारेषु वेदनानिक्षेपनाम-प्रथमानुयोगद्वारप्ररूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

वेयणाणिक्खेवे त्ति। चउव्विहे वेयणाणिक्खेवे।।२।।

णामवेयणा ट्ठवणवेयणा दव्ववेयणा भाववेयणा चेदि।।३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **'वेयणणिक्खेवे' इति पूर्वकथितार्थाधिकारस्मरणकारणार्थं भणितं, अन्यथा सुखेनावगमाभावात्। अत्रापि पूर्वमिव ओकारस्य स्थाने 'ए ए छच्च समाणा' सूत्रेण एकारादेशो द्रष्टव्यः। अत- एव 'वेयणाणिक्खेवो चउव्विहो।' इति एतदपि देशामर्शकवचनं, पर्यायार्थिकनये अवलम्ब्यमाने क्षेत्रकालादिवेदनानां दर्शनात्।**

तत्राष्टविधबाह्यार्थालम्बनविरहितो वेदनाशब्दो नामवेदना कथ्यते।

वेदनाअल्पबहुत्वविधान अधिकार आया है। इस प्रकार इन सोलह अनुयोगद्वारों की समुदयार्थ — सामूहिक प्ररूपणा की गई है।

यहाँ सूत्र में सोलह अनुयोगद्वार यह देशामर्शक वचन जानना चाहिए, क्योंकि मुक्त जीव समवेत आदि अन्य अनुयोगद्वार भी पाये जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि कर्मों की वेदना से पीडित मन को शान्त करने के लिए एवं उसे शुद्ध करने के लिए रत्नत्रय का अवलंबन — सहारा लेना चाहिए। उसी के द्वारा जीव कर्मों से और संसार से छूटते हैं — मुक्ति पाते हैं ऐसा जानकर अपने हित का उपाय करने में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में वेदना के सोलह नामों का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब इन अनुयोगद्वारों में वेदनानिक्षेप नाम के प्रथम अनुयोगद्वार का प्ररूपण करनेहेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ —

अब क्रम से वेदना निक्षेप अधिकार प्रकरण प्राप्त है। उस वेदना का निक्षेप चार प्रकार का है।।२।।

नाम वेदना, स्थापना वेदना, द्रव्य वेदना और भाववेदना ये उनके नाम हैं।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — "वेदनानिक्षेप" यह पद पूर्व में कहे गये अधिकार का स्मरण कराने के लिए कहा गया है। अन्यथा इसका सुखपूर्वक ज्ञान नहीं हो सकता है। यहाँ पर भी पूर्व सूत्र के समान ही ओकार के स्थान पर "एए छच्च समाणा" सूत्र से एकार का आदेश जानना चाहिए। अतएव "वेदनानिक्षेप चार प्रकार का है" इस प्रकार कहा है, यह भी देशामर्शक वचन है, क्योंकि पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन लेने पर क्षेत्र-काल आदि वेदनाओं का भी अस्तित्व देखा जाता है।

उनमें से आठ प्रकार के बाह्य अवलम्बन से रहित 'वेदना' शब्द नामवेदना है।

अत्र कश्चिदाह—

आत्मन आत्मनि प्रवृत्तिः कथं भवति ?

आचार्यः प्राह—

नैतद् वक्तव्यं, प्रदीप-सूर्येन्दु-मणीनामात्मप्रकाशकानामुपलंभात्।

संकेतनिरपेक्षः शब्द आत्मानं कथं प्रकाशयति ?

नैतद् वक्तव्यं, तथैवोपलब्धिर्दृश्यते। न चोपलभ्यमानेऽनुपपन्नता, अव्यवस्थापत्तेः। न च शब्दः संकेतबलेनैव बाह्यार्थप्रकाशक इति नियमोऽस्ति, शब्देन विना शब्दार्थयोर्वाच्य-वाचकभावेन संकेतकरणानुपपत्तेः। न च शब्दे शब्दार्थयोः संकेतः क्रियते, अनवस्थाप्रसंगात्। शब्दे सत्यां शक्तौ परत उत्पत्तिविरोधात् च, अतएवात्रानेकान्तो योजयितव्यः।

'सा वेदना एषा' इति अभेदेन अध्यवसितार्थः स्थापना। सा द्विविधा सद्भावासद्भावस्थापनाभेदेन। तत्र प्रायेण अनुकुर्वद्द्रव्यभेदेन इच्छितद्रव्यस्थापना सद्भावस्थापनावेदना, अन्या असद्भावस्थापनावेदना।

द्रव्यवेदना द्विविधा—आगम-नोआगमद्रव्यवेदनाभेदेन। वेदनाप्राभृतज्ञायकोऽनुपयुक्त आगमद्रव्यवेदना। ज्ञायकशरीर-भावितद्व्यतिरिक्तभेदेन नोआगमद्रव्यवेदना त्रिविधा। तत्र ज्ञायकशरीरं भावि-वर्तमान-त्यक्तभेदेन त्रिविधं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

आत्मा की आत्मा में प्रवृति कैसे होती है ?

आचार्यदेव ने इसका समाधान करते हुए कहा है कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि प्रदीप-दीपक, सूर्य, चन्द्रमा, मणि आदि जैसे अपने आपको प्रकाशित करने वाले होते हैं उसी प्रकार यहाँ भी स्वयं की स्वयं में प्रवृत्ति मानने में कोई बाधा नहीं है।

शंका— संकेत की अपेक्षा से रहित शब्द अपने आपको कैसे प्रकाशित कर सकता है ?

समाधान— ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वैसी ही उपलब्धि देखी जाती है और वैसी उपलब्धि होने पर अनुपपत्ति मानना ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसा मानने पर अव्यवस्था की आपत्ति आती है। शब्द संकेत के बल पर ही बाह्य अर्थ का प्रकाशक हो, यह नियम भी नहीं है, क्योंकि शब्द के बिना शब्द और अर्थ का वाच्य-वाचकरूप से संकेत करना नहीं बन सकता है तथा शब्द में शब्द और अर्थ का संकेत किया जाता है, ऐसा मानने पर अनवस्था दोष का प्रसंग आता है और शब्द में स्वयं शक्ति के मानने पर दूसरे से उत्पत्ति मानने में विरोध आता है। इसलिए इस विषय में अनेकांत का ही प्रयोग करना चाहिए।

"वह वेदना यह है" ऐसा अभेदरूप से जो अन्य पदार्थ में वेदनारूप से अध्यवसाय होता है, वह स्थापना होता है। वह सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापना के भेद से दो प्रकार की है। उनमें से जो द्रव्य का भेद प्रायः वेदना के समान है, उसमें इच्छित द्रव्य अर्थात् वेदनाद्रव्य की स्थापना करना सद्भावस्थापनावेदना है और उससे भिन्न असद्भावस्थापनावेदना है।

द्रव्यवेदना दो प्रकार की है—आगम द्रव्यवेदना और नोआगम द्रव्यवेदना। जो वेदनाप्राभृत का जानकार है, किन्तु उपयोग रहित है वह आगम द्रव्यवेदना है। नोआगम द्रव्यवेदना ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार की है। उनमें से ज्ञायकशरीर यह भावी, वर्तमान और त्यक्त के भेद से तीन प्रकार का है।

वेदनानुयोगद्वाराज्ञायकस्य उपादानकारणत्वेन भविष्यरूपेण सहितो येन नोआगमभाविद्रव्यवेदना। तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यवेदना कर्मनोकर्मभेदेन द्विविधा। तत्र कर्मवेदना ज्ञानावरणादिभेदेन अष्टविधा। नोकर्मनोआगमद्रव्यवेदना सचित्त-अचित्त-मिश्रभेदेन त्रिविधा। तत्र सचित्तद्रव्यवेदना सिद्धजीवद्रव्यं। अचित्तद्रव्यवेदना पुद्गल-कालाकाश-धर्माधर्मद्रव्याणि। मिश्रद्रव्यवेदना संसारिजीवद्रव्यं, कर्म-नोकर्मजीव-समवायस्य जीवाजीवेभ्यः पृथग्भावदर्शनात्।

भाववेदना आगम-नोआगमभावभेदेन द्विविधा।

तत्र वेदनानुयोगद्वारज्ञायकः उपयुक्त आगमभाववेदना। अपरा द्विविधा जीवाजीवभाववेदनाभेदेन। तत्र जीवभाववेदना औदयिकादिभेदेन पंचविधा। अष्टकर्मजनिता औदयिका वेदना, तदुपशमजनिता औपशमिका, तत्क्षयजनिता क्षायिका। तेषां क्षयोपशमजनिता अवधिज्ञानादिस्वरूपा क्षयोपशमिका। जीवत्व-भव्यत्व-उपयोगादिस्वरूपा पारिणामिका।

सुवर्ण-पुत्र-ससुवर्णकन्यादिजनितवेदनाः एतास्वेव पंचसु प्रविशन्ति इति पृथग्नोक्ताः।

या सा अजीवभाववेदना सा द्विविधा — औदयिका पारिणामिका चेति। तत्र एकैका पंचवर्ण-पंचरस-द्विगंधाष्टस्पर्शादिभेदेनानेकविधा। एवमेतेषु अर्थेषु वेदनाशब्दो वर्तते।

अत्र केनार्थेण प्रकृतमिति चेत् ?

नात्र एतज्ज्ञायते। सोऽपि प्रकृतार्थो नयग्रहणे निलीनः, इति तावन्नयविभाषा क्रियते।

जो वेदनानुयोगद्वार का अजानकार है, किन्तु भविष्य में उसका उपादान कारण होगा, वह भावी नोआगमद्रव्यवेदना है। तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यवेदना कर्म और नोकर्म के भेद से दो प्रकार की है। उनमें से कर्मवेदना ज्ञानावरण आदि के भेद से आठ प्रकार की है तथा नोकर्म नोआगम द्रव्यवेदना सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार की है। उनमें से सचित्त द्रव्यवेदना सिद्ध जीव द्रव्य हैं। अचित्त-द्रव्यवेदना पुद्गल, काल, आकाश, धर्म और अधर्म द्रव्य हैं। मिश्र द्रव्यवेदना संसारी जीव-द्रव्य हैं, क्योंकि कर्म और नोकर्म का जीव के साथ हुआ संबंध जीव और अजीव से भिन्नरूप से देखा जाता है।

भाववेदना आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार की है। उनमें से जो वेदनानुयोगद्वार का जानकार होकर उसमें उपयोग युक्त है वह आगमभाववेदना है। नोआगमभाववेदना जीवभाववेदना और अजीवभाववेदना के भेद से दो प्रकार की है। उनमें से जीवभाववेदना औदयिक आदि के भेद से पाँच प्रकार की है। आठ प्रकार के कर्मों के उदय से उत्पन्न हुई वेदना औदयिक वेदना है। कर्मों के उपशम से उत्पन्न हुई वेदना औपशमिक वेदना है। उनके क्षय से उत्पन्न हुई वेदना क्षायिक वेदना है। उनके क्षयोपशम से उत्पन्न हुई अवधिज्ञानादि स्वरूप वेदना क्षायोपशमिक वेदना है और जीवत्व, भव्यत्व व उपयोग आदि स्वरूप पारिणामिक वेदना है।

सुवर्ण, पुत्र व सुवर्ण सहित कन्या आदि से उत्पन्न हुई वेदनाओं का इन पाँच में ही अन्तर्भाव हो जाता है, अतः उन्हें अलग से नहीं कहा है और जो पहले अजीवभाववेदना कही है वह दो प्रकार की है-औदयिक और पारिणामिक। उनमें प्रत्येक पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गंध और आठ स्पर्श आदि के भेद से अनेक प्रकार की है। इस प्रकार इन अर्थों में वेदना शब्द वर्तमान है।

प्रश्न — यहाँ कौन सा अर्थ प्रकृत है ?

उत्तर — यह नहीं जाना जाता है। वह भी प्रकृत अर्थ नयग्रहण में लीन है। अतएव पहले नयविभाषा कही जाती है।

अत्र तात्पर्यमेतज्ज्ञातव्यं—अस्या जीवभाववेदनाया यदौदयिकादिपंचभेदाः प्ररूपिताः सन्ति। निश्चयनयेन इमे जीवस्य न सन्ति, व्यवहारनयेन जीवस्य स्वतत्त्वमिति ज्ञात्वा क्षायिकभावप्राप्त्यर्थं पुरुषार्थो विधेयः, यावत् क्षायिकभावो न लभेत तावदौपशमिक-क्षायोपशमिकसम्यक्त्वादिबलेन स्वात्मविशुद्धिं कुर्वद्भिर्मुमुक्षुभिः परमानंदपरमसौख्याभिव्यक्तये भावना कर्तव्या।

एवं द्वितीयस्थले प्रथमभेदवेदनानिक्षेपनामभेदककथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

वेदनानिक्षेपस्योपसंहारः क्रियते—

अस्मिन् वेदनानिक्षेपनाम्नि अनुयोगद्वारे वेदना नामस्थापनाद्रव्यभाववेदनारूपेण चतुर्निक्षेपभेदेन कथितास्ति। बाह्यार्थमनवलम्ब्य स्वस्मिन् प्रवृत्तवेदनाशब्दनामवेदना प्रोक्ता। सा वेदना इयमिति अभेदपूर्वकं वेदनास्वरूपेण व्यवहृतपदार्थः स्थापनावेदना उक्ता। सा सद्भावस्थापनासद्भावस्थापनाभेदेन द्विप्रकारा वर्णिता। वेदनामनुसरत्पदार्थे वेदनाध्यारोपः सद्भावस्थापना तामनुसरणमन्तरेण पदार्थे वेदनारोपोऽ-सद्भावस्थापना कथ्यते।

द्रव्यवेदनाया आगम-नोआगमद्रव्यवेदनानामद्विभेदौ स्तः। अत्र नोआगमद्रव्यवेदना ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तभेदेन त्रिविधा। ज्ञायकशरीरस्यापि भावि-वर्तमान-त्यक्तभेदाः सन्ति। तद्व्यक्तिरिक्तनो-आगमद्रव्यवेदना कर्मनोकर्मरूपेण द्विविधा। तत्र कर्मवेदना ज्ञानावरणादिभेदेनाष्टविधा, नोकर्मवेदना सचित्ताचित्तमिश्ररूपेण त्रिविधा कथिता। एषु सिद्धजीवद्रव्यं सचित्तद्रव्यवेदना, पुद्गलधर्माधर्माकाशकाल-द्रव्याणि अचित्तद्रव्यवेदना संसारिजीवद्रव्यं च मिश्रद्रव्यवेदना कथ्यन्ते।

यहाँ यह तात्पर्य जानना चाहिए कि—

इस जीव भाववेदना के जो औदयिक आदि पाँच भेद प्ररूपित किये गये हैं। वे निश्चयनय से जीव के नहीं हैं और व्यवहार नय से जीव के स्वतत्त्व हैं, ऐसा जानकर क्षायिकभाव की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। जब तक क्षायिक भाव नहीं प्राप्त होता है तब तक आप सभी मुमुक्षुओं को औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व आदि के बल से अपने आत्मा की विशुद्धि करते हुए परमानन्दरूप परम—उत्कृष्टसुख को प्रगट करने की भावना करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में प्रथम भेद वेदनानिक्षेपनाम के भेदों का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदनानिक्षेप का उपसंहार किया जा रहा है—

इस वेदनानिक्षेप नाम के अनुयोगद्वार में वेदना नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव वेदना चार निक्षेपभेद के द्वारा कही गई है। बाह्य अर्थ का अवलम्बन न लेकर अपने में प्रवृत्त वेदना शब्द नामवेदना कही गई है। वह वेदना यह है ऐसा अभेदपूर्वक वेदनास्वरूप से व्यवहृत पदार्थ स्थापनावेदना कही है। वह सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापना के भेद से दो प्रकार की मानी है। वेदना का अनुसरण करने वाले पदार्थ में वेदना का अध्यारोप करना सद्भावस्थापना है एवं वेदना का अनुसरण करने से अतिरिक्त भिन्न पदार्थ में वेदना का अध्यारोपण असद्भावस्थापना कहलाती है।

द्रव्यवेदना के आगमद्रव्यवेदना और नोआगमद्रव्यवेदना नाम के दो भेद हैं। यहाँ नो आगमद्रव्यवेदना ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार की है। ज्ञायकशरीर के भी भावि, वर्तमान और त्यक्त ये तीन भेद हैं। तद्व्यतिरिक्तनोआगम द्रव्यवेदना कर्म और नोकर्मरूप दो प्रकार की है। उनमें कर्मवेदना ज्ञानावरणादि के भेद से आठ प्रकार की है। नोकर्मवेदना सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार की कही है। इनमें सिद्धजीवद्रव्य सचित्तद्रव्यवेदना हैं, पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश और कालद्रव्य अचित्तद्रव्यवेदना हैं तथा संसारीजीवद्रव्य मिश्रवेदना कहे जाते हैं।

भाववेदना आगम-नोआगमभेदेन द्विविधा विभक्ता। अनयोर्वेदनानुयोगज्ञायक उपयोगयुक्तजीव आगमभाववेदना अस्ति। नोआगमभाववेदना जीवभाववेदनाजीवभाववेदनाभेदेन द्विप्रकारा। तत्र जीवभाववेदना औदयिकादिभेदेन पंचविधा, अजीवभाववेदना औदयिकपारिणामिकभेदेन द्विप्रकारा निर्दिष्टा अस्ति।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डे दशमग्रंथे वेदनानामद्वितीयानुयोगद्वारे प्रथमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदनानिक्षेपानुयोगद्वाराख्यः प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

भाववेदना को आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकारों में विभाजित किया है। उन दोनों में से वेदनानुयोग का जानकार उपयोग से संयुक्त जीव आगमभाववेदना है। नोआगमभाववेदना के जीवभाववेदना और अजीवभाववेदना के भेद से दो प्रकार कहे हैं। उनमें जीवभाववेदना औदयिक आदि के भेद से पाँच प्रकार की है और अजीवभाववेदना औदयिक और पारिणामिक के भेद से दो प्रकार की बतलाई है।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में चतुर्थखण्ड के दशवें ग्रंथ में वेदना नाम के द्वितीय अनुयोगद्वार में प्रथम महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदनानिक्षेपानुयोगद्वार नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

卐卐卐

अथ वेदनानयविभाषणतानुयोगद्वारम्

(द्वितीयवेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-द्वितीयानुयोगद्वारम्)

द्वितीयोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

अकृता ये जिनागाराः, त्रैलोक्यसंपदालयाः।
स्वयंभुवां स्वयंसिद्धाः, कुर्वन्तु मम मंगलम्।।१।।

अथ षट्खण्डागमे चतुर्थखण्डे दशमग्रन्थे द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत- वेदनानय-विभाषणतानाम द्वितीयानुयोगद्वारे स्थलद्वयेन चतुःसूत्राणि। तत्र प्रथमस्थले प्रश्नोत्तररूपेण 'वेयणा' इत्यादिना सूत्रद्वयं कथ्यते। द्वितीयस्थले ऋजुसूत्रादिनयविषयकथनार्थं सूत्रद्वयं निगद्यते। इति समुदायपातनिका भवति।

अधुना नयविभाषणताधिकारे सूत्रमवतार्यते श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण—

वेयणा-णयविभासणदाए को णओ काओ वेयणाओ इच्छदि ?।।१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**''वेयणाणयविभासणदाए'' इति अधिकारस्मरणकरणार्थं एतद्वचनं। 'को णओ इच्छदि' इति नेदं पृच्छासूत्रं, किन्तु चालनासूत्रं। चालनासूत्रस्य कोऽर्थः ? इति ज्ञात्वा सा चालना कर्तव्या भवति।**

अथ वेदनानयविभाषणता अनुयोगद्वार

(द्वितीय-वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत-द्वितीय अनुयोगद्वार)

द्वितीय अधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—तीनों लोकों की सम्पत्ति के स्थानस्वरूप जो स्वयंभू भगवान के अकृत्रिम जिनमंदिर हैं और जो स्वयंसिद्ध—अनादिनिधन हैं, वे जिनमंदिर मेरा मंगल करें, अर्थात् मेरे लिए मंगलकारी होवें।।१।।

अब षट्खण्डागम के चतुर्थखण्ड में दशवें ग्रंथ के द्वितीय वेदनानुयोगद्वार में सोलह भेदों के अन्तर्गत वेदनानयविभाषणता नाम के द्वितीय अनुयोगद्वार में दो स्थलों के द्वारा चार सूत्र कहेंगे। उनमें से प्रथम स्थल में प्रश्नोत्तररूप से ''वेयणा'' इत्यादि दो सूत्र कहे जाते हैं। द्वितीय स्थल में ऋजुसूत्र आदि नयों का विषय बतलाने हेतु दो सूत्र कहते हैं यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब नयविभाषणता नामक अधिकार में श्रीमान् भूतबली आचार्यवर्य के द्वारा सूत्र अवतरित किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

वेदनानयविभाषणता अधिकार के अनुसार कौन सा नय किन वेदनाओं को स्वीकार करता है ?।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—''वेदनानयविभाषणता'' यह अधिकार का स्मरण कराने के लिए वचन का प्रयोग है। ''कौन नय स्वीकार करता है ?'' यह पृच्छा सूत्र नहीं है, किन्तु चालना सूत्र है।

सर्वां वेदनां के के नयाः स्वीकुर्वन्तीति प्रज्ञापयन्ति आचार्यदेवाः —

णेगम-ववहार-संगहा सव्वाओ।।२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **'इच्छंति त्ति' पूर्वसूत्रादनुवर्तयितव्यः, अन्यथा सूत्रार्थानुपपत्तेः।**

कश्चिदाह — नामनिक्षेपो द्रव्यार्थिकनये कुतः संभवति ?

आचार्यः प्राह — एकस्मिंश्चैव द्रव्ये वर्तमानानां तद्भवसामान्येऽतीतानागतवर्तमानपर्यायेषु संचरणं प्रतीत्य प्राप्तद्रव्यव्यपदेशेऽप्रधानीकृतपर्याये प्रवृत्तिदर्शनात्, जातिगुणकर्मसु वर्तमानानां सादृश्यसामान्ये वृत्तिविशेषानुपपत्तेः लब्धद्रव्यव्यपदेशे अप्रधानीकवृत्तिभावे प्रवृत्तिदर्शनात्, सादृश्यसामान्यात्मकनाम्ना विना शब्दव्यवहारानुपपत्तेश्च।

कश्चिदाह — द्रव्यार्थिकनये स्थापनानिक्षेपः कथं संभवति ?

आचार्यः प्राह — स्थापनायां प्रतिनिधीयमानस्य प्रतिनिधिना सह एकत्वाध्यवसायात्, सद्भावासद्भाव-स्थापनाभेदेन सर्वार्थेषु अन्वयदर्शनाच्च द्रव्यार्थिकनये स्थापनानिक्षेपः संभवति।

चालना सूत्र का क्या अर्थ है ? यह जानकर वह चालना करना चाहिए, ऐसा सूत्र का अभिप्राय है।

अर्थात् पिछले वेदनानिक्षेप अनुयोगद्वार में 'वेदना' शब्द के अनेक अर्थ निर्दिष्ट किये गये हैं। उनमें प्रकृत में कौन सा अर्थ ग्राह्य है, यह नय भेदों की अपेक्षा करता है। इसीलिए यहाँ यह वेदनानयविभाषणता अधिकार प्राप्त हुआ है।

सभी वेदनाओं को कौन-कौन नय स्वीकार करते हैं, यहाँ आचार्यदेव उसी को बताते हैं —

सूत्रार्थ —

नैगम, व्यवहार और संग्रह ये तीन नय उपर्युक्त सभी वेदनाओं को स्वीकार करते हैं।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इच्छन्ति — इच्छा करते हैं अर्थात् स्वीकार करते हैं, ऐसी अनुवृत्ति पूर्व के सूत्र से ग्रहण कर लेना चाहिए, अन्यथा सूत्र का पूरा अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाएगा।

यहाँ कोई शंका करता है कि — नामनिक्षेप द्रव्यार्थिक नय में कैसे संभव होता है ?

आचार्य समाधान देते हैं कि — एक ही द्रव्य में रहने वाले नामों की, जिसने अतीत, अनागत व वर्तमान पर्यायों में संचार करने की अपेक्षा 'द्रव्य' व्यपदेश को प्राप्त किया है और जो पर्याय की प्रधानता से रहित है, ऐसे तद्भवसामान्य में, प्रवृत्ति देखी जाती है। जाति, गुण व क्रिया में वर्तमान नामों की, जिसने व्यक्तिविशेषों में अनुवृत्ति होने से 'द्रव्य' व्यपदेश को प्राप्त किया है और जो व्यक्तिभाव की प्रधानता से रहित है ऐसे सादृश्य-सामान्य में, प्रवृत्ति देखी जाती है तथा सादृश्य सामान्यात्मक नाम के बिना शब्दव्यवहार भी घटित नहीं होता है। अतः नामनिक्षेप द्रव्यार्थिक नय में संभव है।

यहाँ कोई शंका करता है कि — द्रव्यार्थिक नय में स्थापनानिक्षेप कैसे संभव होता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि — स्थापना में प्रतिनिधीयमान की प्रतिनिधि के साथ एकता का निश्चय होता है और सद्भावस्थापना व असद्भावस्थापना के भेदरूप से सब पदार्थों में अन्वय देखा जाता है, इसलिए द्रव्यार्थिक नय में स्थापनानिक्षेप संभव है।

पुनः आगम-नोआगमद्रव्यनिक्षेपौ द्रव्यार्थिकनयस्य विषयौ एतत्सुगमं वर्तते।

वर्तमानकालपरिच्छिन्नो भावनिक्षेपः कथं द्रव्यार्थिकनयविषयो भवतीति चेत् ?

नैतद् वक्तव्यं, वर्तमानकालेन व्यंजनपर्यायावस्थानमात्रेणोपलक्षितद्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयविषयत्वाविरोधात्।

एवं प्रथमस्थले प्रश्नोत्तररूपेण नयानां विषयकथनपरत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

ऋजुसूत्रनयः कं निक्षेपं न स्वीकरोति इति प्रतिपादयन्ति आचार्यदेवाः —

उजुमदो दुवणं णेच्छदि।।३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पुरुषसंकल्पवशेनान्यार्थस्यान्यार्थस्वरूपेण परिणामानुपलंभात्।**

कश्चिदाह—तद्भवसामान्य-सादृश्यसामान्यात्मकद्रव्यमिच्छन् ऋजुसूत्रनयो द्रव्यार्थिकः कथं नास्ति ?

आचार्यः प्राह—नैतद् वक्तव्यं, घट-पट-स्तंभादिव्यंजनपर्यायपरिच्छिन्नस्वकपूर्वापरभावविरहित-वर्तमानमात्रविषयस्य ऋजुसूत्रनयस्य द्रव्यार्थिकनयत्वविरोधात्।

अधुना शब्दनयस्य विषयौ प्रतिपादयन्नाचार्यः सूत्रमवतारयति —

सद्दणओ णामवेयणां भाववेयणां च इच्छदि।।४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**शब्दनयोऽयं द्रव्यनिक्षेपं न स्वीकरोति।**

पुनः आगमद्रव्यनिक्षेप व नोआगमद्रव्यनिक्षेप ये द्रव्यार्थिकनय के विषय हैं, यह बात सुगम है।

शंका—वर्तमान काल से परिच्छिन्न भावनिक्षेप द्रव्यार्थिकनय का विषय कैसे है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि व्यंजन पर्याय के अवस्थानमात्र वर्तमान काल से उपलक्षित द्रव्य द्रव्यार्थिक नय का विषय है, ऐसा मानने में कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में प्रश्नोत्तररूप से नयों का विषय बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

ऋजुसूत्र नय किस निक्षेप को स्वीकार नहीं करता है, यह आचार्यदेव प्रतिपादित करते हैं —

सूत्रार्थ—

ऋजुसूत्र नय स्थापना निक्षेप को स्वीकार नहीं करता है।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पुरुष संकल्प के वश से एक पदार्थ का अन्य पदार्थस्वरूप से परिणमन नहीं पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—तद्भवसामान्य व सादृश्यसामान्यरूप द्रव्य को स्वीकार करने वाला ऋजुसूत्र नय द्रव्यार्थिक कैसे नहीं है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि ऋजुसूत्र नय घट, पट व स्तम्भादि स्वरूप व्यंजन पर्यायों से परिच्छिन्न ऐसे अपने पूर्वापर भावों से रहित वर्तमान मात्र को विषय करता है, अतः उसे द्रव्यार्थिक नय मानने में विरोध आता है।

अब शब्दनय के विषयों को प्रतिपादित करते हुए आचार्यदेव सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

शब्दनय नामवेदना और भाववेदना को स्वीकार करता है।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह शब्दनय द्रव्यनिक्षेप को स्वीकार नहीं करता है, ऐसा सूत्र का अभिप्राय है।

कथं नेच्छति ?

पर्यायान्तरसंक्रान्तिविरोधात् शब्दभेदेन अर्थपठनव्यापृते वस्तुविशेषाणां गुणभावं मुक्त्वा प्रधानत्वाभावात्।

एषा नयप्ररूपणा यद्यपि युगपद् वक्तुमशक्तेः सूत्रे पश्चात् प्ररूपिता तर्ह्यपि निक्षेपार्थप्ररूपणात् पूर्वं चैव प्ररूपयितव्या, अन्यथा निक्षेपार्थप्ररूपणानुपपत्तेः।

संप्रति प्रकृतवेदनाप्ररूपणं करिष्यन्ति सूरिवर्याः—

एतासु वेदनासु का वेदना प्रकृता वर्तते ?

द्रव्यार्थिकनयं प्रतीत्य बंधोदयसत्त्वस्वरूपा नोआगमकर्मद्रव्यवेदना प्रकृतास्ति। ऋजुसूत्रनयं प्रतीत्य उदयगतकर्मद्रव्यवेदना प्रकृता। शब्दनयं प्रतीत्य कर्मोदयबंधसत्त्वजनितभाववेदना न प्रकृता, किं च भावमधिकृत्य अत्र प्ररूपणाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—नयचक्रं सुष्ठुतया विज्ञाय नयावलंबलेन संसारस्थितिच्छेदकरणोपायो विधातव्यः। पुनश्च नयातीतमात्मानं शुद्धस्वरूपं ध्यात्वा स्वशुद्धात्मा प्रकटीकर्तव्यः।

एवं द्वितीयस्थले ऋजुसूत्रादिनयविषयप्रतिपादनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

अधुना वेदनानयविभाषणताया उपसंहारः क्रियते—

वेदनानिक्षेपानुयोगद्वारे कथितवेदनाया अनेकार्थेषु अत्र कोऽर्थः प्रकृतोऽस्ति?

एतत्प्रकटीकर्तुं प्रस्तुतानुयोगद्वारस्यावश्यकास्ति। तदनुसारेण नैगम-संग्रह-व्यवहारनयत्रयद्रव्यार्थिक-

---

शंका—शब्दनय द्रव्यनिक्षेप को स्वीकार क्यों नहीं करता है ?

समाधान—एक तो शब्दनय की अपेक्षा दूसरी पर्याय का संक्रमण मानने में विरोध आता है। दूसरे वह शब्दभेद से अर्थ भेद को कथन करने में व्याप्त रहता है। अतः शब्दनय में नाम और भाव निक्षेप की ही प्रधानता रहती है, अन्य निक्षेपों की प्रधानता नहीं रहती। इसलिए शब्दनय द्रव्यनिक्षेप को स्वीकार नहीं करता है।

एक साथ कहने के लिए असमर्थ होने से यह नयप्ररूपणा यद्यपि सूत्र में पीछे कही गई है तो भी निक्षेपार्थ प्ररूपणा से पहले ही उसे कहना चाहिए, अन्यथा निक्षेपार्थ की प्ररूपणा नहीं बन सकती है।

अब आचार्यवर्य प्रकृत—प्रकरण में आई हुई वेदना की प्ररूपणा करेंगे—

शंका—इन वेदनाओं में कौन सी वेदना प्रकृत है ?

समाधान—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा बंध, उदय और सत्वरूप नोआगमकर्मद्रव्यवेदना प्रकृत है। ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा उदय को प्राप्त कर्मद्रव्यवेदना प्रकृत है। शब्दनय की अपेक्षा कर्म के उदय व बंधसत्त्व से उत्पन्न हुई भाववेदना यहाँ प्रकृत नहीं है, क्योंकि यहाँ भाव की अपेक्षा प्ररूपणा नहीं की गई है।

तात्पर्य यह है कि—नयचक्र को अच्छी तरह समझ करके नय के अवलम्बन से संसार की स्थिति को छेद करने का उपाय करना चाहिए। पुनश्च नयों से रहित आत्मा के शुद्ध स्वरूप को ध्याकर निज शुद्ध आत्मा—भगवान आत्मा को प्रकट करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में ऋजुसूत्र आदि नयों के विषय का प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदनानयविभाषणता का उपसंहार करते हैं—

वेदनानिक्षेप अनुयोगद्वार में कही गई वेदना के अनेक अर्थों में यहाँ कौन सा अर्थ प्रकृत है ?

इसको प्रगट करने के लिए प्रस्तुत इसी अनुयोगद्वार की आवश्यकता है। उसके अनुसार नैगम-संग्रह

नयावलंबनेन वेदनानिक्षेपे निर्दिष्टाः सर्वविधा वेदना अपेक्षिताः सन्ति। ऋजुसूत्रनय एकां स्थापनावेदनामस्वीकृत्य शेषां सर्वां वेदनां स्वीकरोति।

स्थापनावेदनां कथं न स्वीकरोतीति चेत्?

स्थापनानिक्षेपे संकल्पवशेन पदार्थं निजस्वरूपेण ग्रहणं न कृत्वान्यस्वरूपेण गृह्यते, एतद् ऋजुसूत्रनयेन न संभवति, किंच एकसमयवर्त्तिवर्तमानपर्यायविषयं कुर्वतानेन नयेन पदार्थस्यान्यस्वरूपेण परिणमनम-संभवमेव। शब्दनयो नामवेदनां भाववेदनां चैव गृण्हाति, स्थापनावेदनां द्रव्यवेदनां च न गृण्हाति।

अत्र द्रव्यार्थिकनयापेक्षया बंधोदयसत्त्वस्वरूपनोआगमद्रव्यवेदना ऋजुसूत्रनयावलंबनेन उदयगत-कर्मवेदना, शब्दनयापेक्षया च कर्मोदयबंधजनितभाववेदना प्रकृताः सन्ति इति ज्ञातव्यम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डे दशमग्रन्थे वेदनानाम्नि द्वितीयेऽनुयोगद्वारे प्रथमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदनानयविभाषणतानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

और व्यवहार इन तीन नय एवं द्रव्यार्थिक नय के अवलंबन से वेदनानिक्षेप में निर्दिष्ट — कथित सभी प्रकार की वेदनाएँ अपेक्षित हैं। ऋजुसूत्र नय एक स्थापनावेदना को न स्वीकार करके शेष सभी वेदनाओं को स्वीकार करता है।

स्थापनावेदना को यह ऋजुसूत्र नय क्यों नहीं स्वीकार करता है ?

स्थापनानिक्षेप में संकल्प के वश से पदार्थ को निज स्वरूप से ग्रहण न करके अन्य स्वरूप से ग्रहण करता है, यह ऋजुसूत्र नय के द्वारा संभव नहीं होता है, क्योंकि एकसमयवर्ती वर्तमानपर्यायविषय को करते हुए इस नय के द्वारा पदार्थ के अन्य स्वरूप से परिणमन असंभव ही है। शब्दनय नामवेदना और भाववेदना को ही ग्रहण करता है, स्थापनावेदना और द्रव्यवेदना को ग्रहण नहीं करता है।

यहाँ द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा बंध-उदय और सत्वस्वरूप नोआगम द्रव्यवेदना ऋजुसूत्र नय के अवलंबन से उदय को प्राप्त कर्मवेदना और शब्दनय की अपेक्षा कर्मोदय बंधजनितभाववेदना प्रकृत हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम के चतुर्थखण्डरूप दशवें ग्रंथ में वेदना नाम के द्वितीय अनुयोगद्वार के प्रथम महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदनानयविभाषणता नामक द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

卐卐卐

अथ वेदनानामविधानानुयोगद्वारम्

(द्वितीयवेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-तृतीयानुयोगद्वारम्)

तृतीयोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

अकृतानि कृतानीह, जिनबिम्बानि सर्वतः।
स्वात्मसौख्यप्रदानि स्युः, कुर्वंतु मम मंगलम्।।१।।

अथ षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डे दशमग्रन्थे द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतवेदनानाम विधाननाम्नि तृतीयानुयोगद्वारे स्थलद्वयेन चतुःसूत्रैः तृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले नैगमव्यवहार-द्वयनयापेक्षया वेदनानामविधाने अष्टौ कर्माणि ''वेयणाणाम-'' इत्यादिना कथ्यन्ते। ततः परं द्वितीयस्थले शेषान्यनयापेक्षया कर्मणां वेदनाकथनत्वेन 'संगहस्स' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि निगद्यन्ते, इति समुदायपातनिका भवति।

अधुना वेदनानामविधानाधिकारप्ररूपणार्थं श्रीमद्भूतबलिसूरिणा सूत्रमवतार्यते —

वेयणाणामविहाणे त्ति। णेगम-ववहाराणां णाणावरणीयवेयणा दंसणा-वरणीयवेयणा वेयणीयवेयणा मोहणीयवेयणा आउववेयणा णामवेयणा गोदवेयणा अंतराइयवेयणा।।१।।

अथ वेदनानामविधानानुयोगद्वार

(द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत-तृतीय अनुयोगद्वार)

तृतीय अधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — इस लोक — संसार में सब जगह जितने भी आत्मसुख को प्रदान करने वाले अकृत्रिम-कृत्रिम जिनबिम्ब हैं वे सभी मुझे मंगल प्रदान करें।।१।।

षट्खण्डागम ग्रंथ में चतुर्थखण्डरूप दशवें ग्रंथ में द्वितीय वेदनानुयोगद्वार में सोलह भेदों के अन्तर्गत वेदनानामविधान नाम के तृतीय अनुयोगद्वार में दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा तृतीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में नैगम और व्यवहार इन दो नयों की अपेक्षा से वेदनानामविधान में आठ कर्मों को ''वेयणाणाम'' इत्यादि सूत्र के द्वारा कहेंगे। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में शेष अन्य नयों की अपेक्षा से कर्मों की वेदना का कथन करने हेतु ''संगहस्स'' इत्यादि तीन सूत्र को कहेंगे। यह सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब वेदनानामविधान अधिकार की प्ररूपणा करने हेतु श्रीमान् भूतबली आचार्यसूत्र को अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

अब वेदनानाम विधान अधिकार प्राप्त है। नैगम व व्यवहार नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना, दर्शनावरणीयवेदना, वेदनीयवेदना, मोहनीयवेदना, आयुवेदना, नामवेदना, गोत्रवेदना और अन्तरायवेदना इस प्रकार वेदना आठ भेदरूप है।।१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**नैगम-व्यवहारनययोरपेक्षया ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीय-आयु-र्नाम-गोत्रान्तरायकर्मभिरष्टविधा वेदना कथितास्ति।**

वेदनानामविधानं किमर्थमागतम् ?

प्रकृतवेदनाया विधानप्ररूपणार्थं तन्नामविधानप्ररूपणार्थं चागतम्।

तत्र तावन्नैगम-व्यवहारयोर्वेदनाविधानमुच्यते। तद्यथा—

या सा नोआगमद्रव्यकर्मवेदना सा अष्टविधा—ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-वेदनीय-मोहनीय-आयु-र्नाम-गोत्र-अंतरायभेदेन।

कुत एतत् ?

अष्टविधस्य दृश्यमानस्य अज्ञानादर्शन-सुखदुःखवेदन-मिथ्यात्व-कषाय-भवधारण-शरीर-गोत्र-वीर्या-द्यन्तरायकार्यस्य अन्यथानुपपत्तेः। न च कारणभेदेन विना कार्यभेदोऽस्ति, अन्यत्र तथानुपलंभात्।

कश्चिदाह—भवतु नाम कार्यभेदेन उदयगतकर्मणोऽष्टविधत्वं, ततस्तस्योत्पत्तेः, न बंधसत्त्वयोः, तत्कार्यानुपलंभात् इति चेत् ?

आचार्यदेवः प्राह—नैतत् कथयितव्यं, उदयाष्टविधत्वेन उदयकारणसत्त्वस्य सत्त्वकारणबंधस्य चाष्टविधत्वसिद्धेः। एवं वेदनाया विधानं प्ररूपितम्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नैगम और व्यवहारनय की अपेक्षा से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठ कर्मों के द्वारा आठ प्रकार की वेदना कही है।

शंका—इस सूत्र में वेदनानामविधान यह पद क्यों आया है ?

समाधान—प्रकृतवेदना के विधान का प्ररूपण करने हेतु तथा वेदना के नाम का विधान प्ररूपित करने हेतु "वेदनानामविधान" यह पद सूत्र में आया है।

उससे पहले नैगम व व्यवहार नय की अपेक्षा वेदना का विधान करते हैं। वह इस प्रकार है—

जो वह नोआगमद्रव्यकर्मवेदना कही है वह ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय के भेद से आठ प्रकार की है।

प्रश्न—ऐसा क्यों है ?

उत्तर—क्योंकि ऐसा नहीं मानने पर जो यह अज्ञान, अदर्शन, सुख-दुःखवेदन, मिथ्यात्व, कषाय, भवधारण, शरीर व गोत्ररूप एवं वीर्यादि के अन्तरायरूप आठ प्रकार का कार्य दिखाई देता है, वह नहीं बन सकता है। यदि कहा जाये कि यह जो आठ प्रकार का कार्य भेद दिखाई देता है वह कारणभेद के बिना भी बन जायेगा, सो ऐसा मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि अन्यत्र ऐसा पाया नहीं जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—कार्य के भेद से उदयगत कर्म आठ प्रकार के भले ही होवें, क्योंकि उससे उसकी उत्पत्ति होती है। किन्तु बंध और सत्त्व आठ प्रकार के नहीं हो सकते, क्योंकि उनका कार्य नहीं पाया जाता है।

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि जब उदय आठ प्रकार का है, तब उदय का कारण सत्त्व और सत्त्व का कारण बंध भी आठ प्रकार का सिद्ध होता है। इस प्रकार वेदना के भेदों की प्ररूपणा की गई है।

संप्रति तन्नामप्ररूपणं करिष्यन्त्याचार्यदेवाः। तद्यथा—ज्ञानावरणीयवेदना ज्ञानमावृणोतीति ज्ञानावरणीय-कर्मद्रव्यम्, ज्ञानावरणीयमेव वेदना ज्ञानावरणीयवेदना। अत्र तत्पुरुषसमासो न कर्तव्यः, द्रव्यार्थिकनयेषु भावस्य प्रधानत्वाभावात्। एतेषु नयेषु प्रधानं समासोऽपि युज्यते, विभक्तिलोपेन एकपदभावोपलंभात् एकत्रास्तित्वदर्शनाच्च। वेदनाशब्दोऽपि प्रत्येकं प्रयोक्तव्यः, अष्टानां भिन्नवेदनानां एकस्य वाचनाशब्दस्य वाचकत्वविरोधात्।

एवं प्रथमस्थले अष्टकर्मणां नाम सुखदुःखाद्यनुभवकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

संप्रति सर्वकर्मणां वेदनाप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

संगहस्स अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणा।।२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र वेदनाया विधानं पूर्वमिव प्ररूपयितव्यं, अविशेषात्।**

अधुना नामविधान-मुच्यते। तद्यथा—

अष्टानामपि कर्मणां वेदनेति वक्तव्यं, अष्टेति संख्यायां ज्ञानावरणादिसकलभेदसंभवात् एकस्मात् वेदनाशब्दात् सकलवेदनाविशेषाविनाभावि-एकवेदनाजातेरुपलंभात्, अन्यथा संग्रहवचनानुपपत्तेः।

अब आचार्यदेव उसके नामों की प्ररूपणा करेंगे। वह इस प्रकार है—ज्ञानावरणीयवेदना, इसका निरुक्त्यर्थ है—ज्ञान का जो आवरण करता है, वह ज्ञानावरणीय कर्मद्रव्य है और 'ज्ञानावरणीय रूप वेदना ही ज्ञानावरणीयवेदना' है। यहाँ तत्पुरुष समास नहीं करना चाहिए, क्योंकि द्रव्यार्थिक नयों में भाव की प्रधानता नहीं पाई जाती है। इन नयों में पदों का समास ही योग्य है, क्योंकि एक तो विभक्ति का लोप हो जाने से एकत्व पाया जाता है और दूसरे उनका एकत्र अस्तित्व भी देखा जाता है। यहाँ वेदना शब्द का भी प्रत्येक के साथ प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि आठों वेदनाएं भिन्न-भिन्न हैं इसलिए उनका एक वेदना शब्द वाचक है, ऐसा मानने में विरोध आता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आठ कर्मों के नाम और उनके सुख-दुःखादि के अनुभव का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब समस्त कर्मों की वेदना का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

संग्रह नय की अपेक्षा आठों ही कर्मों की एक वेदना होती है।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ वेदना का विधान पूर्व के समान ही प्ररूपित करना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब नामविधान का वर्णन करते हैं। वह इस प्रकार है—

आठों ही कर्मों की वेदना ऐसा कहना चाहिए। क्योंकि आठ इस संख्या में ज्ञानावरणादि कर्मों के सब भेद संभव हैं। सूत्र में जो एक 'वेदना' शब्द कहा है, सो उससे वेदना के सब भेदों की अविनाभावी एक वेदना जाति का ग्रहण होता है, क्योंकि इनके बिना संग्रह वचन नहीं होता है।

अर्थात् संग्रह नय का काम एक सामान्य धर्म द्वारा अवान्तर भेदों का संग्रह करना है। अभिप्राय यह है कि नैगम और व्यवहारनय की अपेक्षा प्रकृत वेदना आठ प्रकार की बतलाई है, किन्तु यह संग्रहनय उन आठों ही कर्मों की एक वेदना जाति को स्वीकार करता है, क्योंकि उक्त संग्रहनय में अभेद की प्रधानता है। यही कारण है कि इस नय की अपेक्षा आठों ही कर्मों की एक वेदना कही गई है।

अधुना ऋजुसूत्रनयापेक्षया वेदनाप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

उजुसुदस्स णो णाणावरणीयवेयणा णोदंसणावरणीयवेयणा णोमोहणीय-वेयणा णोआउअवेयणा णोणामवेयणा णोगोदवेयणा णोअंतराइयवेयणा वेयणीयं चेव वेयणा।।३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **ऋजुसूत्रनयापेक्षया वेदनीयमन्तरेण सप्तकर्मणां वेदना न संभवति।**

कश्चिदाशंकते — ऋजुसूत्रनयः पर्यायार्थिकोऽस्ति, अतोऽयं द्रव्यं कथं विषयीकरोति ?

आचार्यः समाधत्ते — नैतद् वक्तव्यं, व्यञ्जनपर्यायमधिष्ठितस्य द्रव्यस्य तद्विषयत्वाविरोधात्।

ऋजुसूत्रनयविषयभूतद्रव्यस्य उत्पादविनाशलक्षणत्वं विरुध्यते इति चेत् ?

न, किं च विवक्षितपर्यायसद्भाव एवोत्पादः, तथा चार्पितासद्भाव एव व्ययः, उभयव्यतिरिक्तावस्थाना-नुपलंभात्। न च प्रथमसमये उत्पन्नस्य द्वितीयादिसमयेषु अवस्थानं, तत्र प्रथमद्वितीयादिसमयकल्पनायाः कारणाभावात्। न चोत्पादश्चैवावस्थानं, विरोधात् उत्पादलक्षणभावव्यतिरिक्तावस्थानलक्षणानुपलंभाच्च। ततोऽवस्थानाभावादुत्पाद-विनाशलक्षणद्रव्यमिति सिद्धम्।

वेदनानाम सुखदुःखे, लोके तथा संव्यवहारदर्शनात्। न च ते सुखदुःखे वेदनीयपुद्गलस्कंधं मुक्त्वान्य-कर्मद्रव्येभ्यः उत्पद्येते, फलाभावेन वेदनीयकर्माभावप्रसंगात्। तस्मात् सर्वकर्मणां प्रतिषेधं कृत्वा प्राप्तोदय-

---

अब ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से वेदना की प्ररूपणा हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा न ज्ञानावरणीय वेदना है, न दर्शनावरणीय वेदना है, न मोहनीयवेदना है, न आयुवेदना है, न नामवेदना है, न गोत्रवेदना है और न अन्तरायवेदना है, किन्तु एकमात्र वेदनीय ही वेदना है।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा वेदनीय के बिना सात कर्मों की वेदना संभव नहीं होती है।

यहाँ कोई शंका करता है कि — ऋजुसूत्र नय तो पर्यायार्थिक नय है अतः वह द्रव्य को विषय कैसे करता है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं कि — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि व्यंजन पर्याय को प्राप्त द्रव्य उसका विषय है, ऐसा मानने में कोई विरोध नहीं आता है।

शंका — ऋजुसूत्र नय के विषयभूत द्रव्य का उत्पाद-विनाशलक्षणपना विरुद्ध पड़ता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि विवक्षित पर्याय का सद्भाव ही उत्पाद है और विवक्षित पर्याय का असद्भाव ही व्यय है, क्योंकि इन दोनों से रहित अवस्थान पाया नहीं जाता है। प्रथम समय में उत्पन्न पर्याय का द्वितीय आदि समयों में अवस्थान नहीं होता है, क्योंकि उसमें प्रथम-द्वितीय आदि समयों की कल्पना के कारणों का अभाव पाया जाता है। केवल उत्पाद ही अवस्थान नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से विरोध आता है तथा उत्पादस्वरूप भाव को छोड़कर अवस्थान का और कोई लक्षण नहीं पाया जाता है। इसलिए अवस्थान का अभाव होने से उत्पाद व विनाशस्वरूप द्रव्य है , यह सिद्ध हुआ।

वेदना का अर्थ सुख-दुःख है, क्योंकि लोक में वैसा व्यवहार देखा जाता है और वे सुख-दुःख वेदनीयरूप पुद्गलस्कंध के सिवा अन्य कर्मद्रव्यों से नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि इस प्रकार फल का अभाव

वेदनीयद्रव्यं चैव 'वेदना' इत्युक्तम्।

अष्टानां कर्मणां उदयगतपुद्गलस्कंधो वेदनेति किमर्थं अत्र न गृह्यते ?

न गृह्यते, किं च वेदनानां स्वीकुर्वाणस्य ऋजुसूत्रनयस्याभिप्राये तदसंभवात्। न चान्यस्मिन् ऋजुसूत्रेऽन्यस्य ऋजुसूत्रस्य संभवः, भिन्नविषयाणां नयानामेकविषयत्वविरोधात्।

तात्पर्यमत्र — सर्वां वेदनां ज्ञात्वा स्वशुद्धात्मतत्त्वमेवाभ्यसनीयमिति।

अधुना शब्दनयापेक्षया वेदनाप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सद्दणयस्स वेयणा चेव वेयणा।।४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **शब्दनयापेक्षया वेदनीयद्रव्यकर्मोदयजनितसुखदुःखे अष्टकर्मणामुदयजनितजीवपरिणामो वा वेदना, न द्रव्यम्, शब्दनयविषये द्रव्याभावात्।**

तात्पर्यमत्र — सुखदुःख परिणामनिमित्तेनोत्पन्नहर्षविषादौ परित्यज्य परमसाम्यसुधारसमनुभवनीयमिति।

संप्रति वेदनानामविधानस्योपसंहारः क्रियते —

बंधोदयसत्त्वस्वरूपेण जीवस्थितकर्मरूपपौद्गलिकस्कंधेषु क्व क्व कस्य कस्य नयस्य कीदृक् प्रयोगोऽस्ति? एवं नयाश्रितप्रयोगप्ररूपणायै प्रस्तुतानुयोगद्वारस्यावश्यकता वर्णितास्ति। तदनुसारं नैगमव्यवहारनयाश्रयेण नोआगमद्रव्यकर्मवेदना ज्ञानावरणादिभेदेनाष्टविधा कथितास्ति, यथाक्रमेण अज्ञान-

---

होने से वेदनीय कर्म के अभाव का प्रसंग आता है। इसलिए प्रकृत में सब कर्मों का प्रतिषेध करके उदयगत वेदनीय द्रव्य को ही 'वेदना' ऐसा कहा है।

शंका — आठ कर्मों का उदयगत पुद्गलस्कंध वेदना है, ऐसा यहाँ क्यों नहीं ग्रहण करते हैं ?

समाधान — नहीं ग्रहण किया है, क्योंकि वेदना को स्वीकार करने वाले ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय में वैसा मानना संभव नहीं है और अन्य ऋजुसूत्र में अन्य ऋजुसूत्र संभव नहीं है, क्योंकि भिन्न-भिन्न विषयों वाले नयों का एक विषय मानने में विरोध आता है। यही कारण है कि यहाँ ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा वेदना शब्द द्वारा आठ कर्मों के उदयगत पुद्गलस्कंध नहीं ग्रहण किये गये हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — सभी वेदनाओं को जानकर अपने शुद्धात्मतत्त्व का ही अभ्यास करना चाहिए।

अब शब्दनय की अपेक्षा वेदना की प्ररूपणा करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

शब्दनय की अपेक्षा वेदना ही वेदना है।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — शब्दनय की अपेक्षा वेदनीयकर्म के उदय से उत्पन्न सुख-दुःख अथवा आठों कर्मों के उदय से उत्पन्न हुआ जीव का परिणाम वेदना कहलाता है, द्रव्य नहीं, क्योंकि शब्द नय के विषय में द्रव्य का अभाव पाया जाता है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — सुख-दुःख परिणाम के निमित्त से उत्पन्न हर्ष-विषाद को छोड़कर परमसमतारूप अमृत रस का अनुभव करना चाहिए।

अब वेदनानामविधान का उपसंहार करते हैं —

बंध, उदय और सत्त्वरूप से जीव में स्थित कर्मरूप पौद्गलिक स्कंधों में कहाँ-कहाँ किस-किस नय का कैसा प्रयोग है ? इस प्रकार नयों के आश्रय से प्रयोग की गई प्ररूपणा के लिए प्रस्तुत अनुयोगद्वार की आवश्यकता का वर्णन किया है। उसी के अनुसार नैगम और व्यवहारनय के आश्रय से नोआगमद्रव्यकर्मवेदना

अदर्शन-सुखदुःखवेदन-मिथ्यात्व-कषाय-भवधारण-शरीररचना-गोत्र-वीर्यादिविषयकविघ्नस्वरूपाष्टविध-कार्यदृश्यत्वात्। एषा विधानप्ररूपणा वर्तते।

नामविधानप्ररूपणायां ज्ञानावरणीयादिरूपं कर्मद्रव्यमेव वेदना कथितास्ति। संग्रहनयापेक्षया सामान्येन अष्टकर्माणि वेदनारूपेण गृह्यन्ते, एकेन वेदनाशब्देनैव समस्तवेदनाविशेषैः सह अविनाभाविनी एका वेदनाजातिरुपलभ्यते। ऋजुसूत्रनयापेक्षया ज्ञानावरणीयादिवेदनानां निषेधं कृत्वा एकमात्रं वेदनीयकर्म एव वेदना स्वीक्रियते, लोके सुखदुःखयोर्विषयेष्वेव वेदनाशब्दो व्यवह्रियते। शब्दनयापेक्षया वेदनीयकर्म-द्रव्यस्योदयेनोत्पन्न-सुखदुःखानुभवः अष्टकर्मणामुदयेनोत्पन्नजीवपरिणाम एव वा 'वेदना' उच्यते, किंच शब्दनयस्य विषयो द्रव्यं न संभवति। एतत्सर्वं सिद्धान्तग्रन्थानां सारं ज्ञात्वा सिद्धान्तग्रन्थे पठन-पाठनयोः रुचिर्विधातव्या।

इतो विस्तरः—

अत्र वेदनायाः सामान्येन कथनं क्रियते—

''भाववेदणा आगम-णोआगमभेएण दुविहा। तत्थ वेयणाणुयोगद्दारजाणओ उवजुत्तो आगमभाववेयणा। अपरा दुविहा जीवाजीवभाववेयणाभेएण। तत्थ जीवभाववेयणा ओदइयादिभेएण पंचविहा। अट्ठकम्मजणिदा ओदइया वेयणा। तदुवसमजणिदा अउवसमिया। तक्खयजणिदा खइया। तेसिं खओवसमजणिदा ओहिणाणादिसरूवा खवोवसमिया। जीवभविय-उवजोगादिसरूवा पारिणामिया[१]।''

ज्ञानावरण आदि भेद से आठ प्रकार की कही है। क्योंकि उनके यथाक्रम से अज्ञान-अदर्शन-सुखदुःखवेदन-मिथ्यात्व-कषाय-भवधारण-शरीररचना-गोत्र-वीर्यादि विषयक विघ्नस्वरूप आठ प्रकार के कार्य देखे जाते हैं। यह विधानप्ररूपणा है।

नाम विधान की प्ररूपणा में ज्ञानावरणीय आदिरूप कर्मद्रव्य को ही वेदना कहा है। संग्रहनय की अपेक्षा सामान्य से आठों कर्म वेदनारूप से ग्रहण किये गये हैं। एक वेदनाशब्द से ही समस्त वेदना विशेष के साथ अविनाभावी एक वेदनाजाति प्राप्त होती है। ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से ज्ञानावरणीय अदि वेदनाओं का निषेध करके एकमात्र वेदनीयकर्म ही वेदना को स्वीकृत करता है, क्योंकि लोक में सुख-दुःख के विषय में ही वेदना शब्द व्यवहृत होता है—जाना जाता है। शब्दनय की अपेक्षा वेदनीयकर्मद्रव्य के उदय से उत्पन्न सुख-दुःख का अनुभव अथवा आठों कर्मों के उदय से उत्पन्न जीव का परिणाम ही 'वेदना' कहा जाता है, क्योंकि शब्दनय का विषय द्रव्य संभव नहीं होता है। यह सब सिद्धान्तग्रंथों का सार समझकर सिद्धान्तग्रंथ के पठन-पाठन में रुचि करना चाहिए।

इसका विस्तृत कथन करते हैं—

यहाँ वेदना का सामान्य से कथन किया जा रहा है—

''भाववेदना आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार की है। उनमें से जो वेदनानुयोगद्वार का जानकार होकर उसमें उपयोगयुक्त है वह आगमभाववेदना है। नोआगमभाववेदना के जीवभाववेदना और अजीवभाववेदना के भेद से दो प्रकार हैं। उनमें से जीवभाववेदना औदयिक आदि के भेद से पाँच प्रकार की है। आठ प्रकार के कर्मों के उदय से उत्पन्न हुई वेदना औदयिक वेदना है। कर्मों के उपशम से उत्पन्न हुई वेदना औपशमिक वेदना है। उनके क्षय से उत्पन्न हुई वेदना क्षायिक वेदना है। उनके क्षयोपशम से उत्पन्न हुई अवधिज्ञानादि स्वरूप वेदना क्षायोपशमिक वेदना है और जीवत्व, भव्यत्व व उपयोग आदि स्वरूप पारिणामिक वेदना है।

१. षट्खंडागम (धवलाटीकासमन्वित), पु. १०, पृ. ८।

अत्राध्यात्मकथनापेक्षया किञ्चिदुच्यते—

वेद्यते कर्म कर्मफलं चानयेति वेदना इति। अत्र अध्यात्मग्रन्थापेक्षया वेदनाशब्देन अनुभवनापेक्षया चेतना अपि गृहीतुं शक्यते। समयसारग्रन्थे श्रीमदमृतचंद्रसूरिणा कथ्यते-

ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं, प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धं।
अज्ञानसंचेतनया तु धावन्, बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बंधः।।[१]

पुनरपि गाथात्रयाणां—

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं कुणइ जो दु कम्मफलं।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं।।३८७।।
वेदंतो कम्मफलं मए कयं मुणइ जो दु कम्मफलं।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं।।३८८।।
वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं।।३८९।।[२]

आत्मख्यातिटीकायां—**ज्ञानादन्यत्रेदमहमिति चेतनं अज्ञानचेतना। सा द्विधा कर्मचेतना कर्मफलचेतना च। तत्र ज्ञानादन्यत्रेदमहं करोमीति चेतनं कर्मचेतना। ज्ञानादन्यत्रेदं वेदयेऽहमिति चेतनं कर्मफलचेतना। सा तु समस्तापि संसारबीजं। संसारबीजस्याष्टविधकर्मणो बीजत्वात्। ततो मोक्षार्थिना पुरुषेणाज्ञानचेतनाप्रलयाय सकलकर्मसंन्यासभावनां सकलकर्मफलसंन्यासभावनां च नाटयित्वा स्वभावभूता भगवती ज्ञानचेतनैवैका**

यहाँ अध्यात्मकथन की अपेक्षा किञ्चित् कथन करते हैं—

जिसके द्वारा कर्म और कर्मफल का अनुभव—वेदन होता है, उसे वेदना कहते हैं। यहाँ अध्यात्म ग्रंथ की अपेक्षा वेदनाशब्द से अनुभवन—वेदन की अपेक्षा चेतना का ग्रहण करना भी शक्य होता है। समयसार ग्रंथ में श्रीमान् अमृतचन्द्रसूरि ने कलशकाव्य में कहा है—

काव्यार्थ—यह ज्ञान नित्य ही ज्ञान की संचेतना—अनुभव से ही अत्यन्त शुद्ध प्रकाशित होता है और यह बंध तो अज्ञान की संचेतना से दौड़ता हुआ ज्ञान की शुद्धि को रोक देता है।।

श्री कुन्दकुन्दआचार्य ने भी तीन गाथाओं में कहा है—

गाथार्थ—जो आत्मा कर्मफल का अनुभव करता हुआ अपनी आत्मा को कर्मफलरूप करता है वह पुनः भी दुःख के बीजभूत ऐसे आठ प्रकार के उन कर्मों को बांध लेता है, जो कर्मफल का अनुभव करता हुआ 'मैंने यह कर्मफल किया है' ऐसा जानता है, वह आत्मा पुनरपि दुःख के बीजभूत ऐसे आठ प्रकार के उन कर्मों को बांध लेता है। जो आत्मा कर्मफल को भोगता हुआ सुखी और दुःखी होता है, वह पुनरपि दुःख के बीज ऐसे आठ प्रकार के कर्मों को बांध लेता है।।३८७-३८९।।

इसकी आत्मख्याति टीका में श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

ज्ञान से भिन्न अन्य भावों में 'यह मैं हूँ', ऐसा अनुभव करना 'अज्ञानचेतना' है इसके दो भेद है—कर्मचेतना और कर्मफलचेतना। इन दोनों का लक्षण कहते हैं—ज्ञान से भिन्न अन्य भावों में 'इसको मैं करता हूँ' ऐसा चिंतन करना—अनुभव करना कर्मचेतना है। ज्ञान से भिन्न अन्य भावों में 'इसका मैं अनुभव करता हूँ, भोगता हूँ, ऐसा अनुभव करना कर्मफल चेतना है। ये दोनों ही भेदरूप अज्ञानचेतना संसार का बीज है—

---

१. समयसार कलश काव्य २२४। २. समयसार गाथा ३८७ से ३८९ तक।

नित्यमेव नाटयितव्या। तत्र तावत् सकलकर्मसंन्यासभावनां नाटयति—

आर्याछंदः— **कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकायैः।**
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलंबे।।२२५।।

यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च वाचा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १। यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २। यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३। यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं वाचा च कायेन चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४। यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ५। यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ६। यदहमकार्षं यदचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ७। यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ८। यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च वाचा च कायेन च

मूलकारण है क्योंकि आठ प्रकार का कर्म ही संसार का बीज है और अष्टविध कर्मों का बीज अज्ञानचेतना है। इसलिए मोक्ष के इच्छुक पुरुष को—मुनि को इस अज्ञानचेतना का नाश करने के लिए संपूर्ण कर्मों के त्याग की भावना को और संपूर्ण कर्मफल के त्याग की भावना को नृत्य कराते हुए—भाते हुए स्वभावभूत भगवती ऐसी एक ज्ञानचेतना को ही निरंतर नृत्य कराना चाहिए—भाते रहना चाहिए। उन्हीं में से यहाँ पहले संपूर्णकर्मों के संन्यास—त्याग की भावना को नचाते हैं—भावित कराते हैं

काव्यार्थ—त्रिकालविषयक—अतीत, वर्तमान और भावीकाल संबंधी समस्त कर्मों को मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से छोड़कर मैं परम निष्कर्म अवस्था का—निर्विकल्प समाधिरूप ध्यान का अवलम्बन लेता हूँ।।२२५।।

१. मैंने जिन कर्मों को मन से, वचन से और काय से पूर्व में किया था, कराया था और जो करते हुए को अनुमोदना दी थी, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या हो जावे—निष्फल हो जावे।

२. जो कुछ भी कर्म मैंने मन से और वचन से पहले—अतीतकाल में किये हैं, कराये हैं और करते हुए अन्य को अनुमोदना दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या हो जावे।

३. जो कुछ भी मैंने पूर्वकाल में मन से और काय से किया है, दूसरों से कराया है और करते हुए अन्य किसी को अनुमति दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या हो जावे।

४. जो कुछ भी कर्म मैंने वचन से और काय से किये हैं, कराये हैं और करते हुए को अनुमोदना दी है वह सब दुष्कृत मेरा मिथ्या हो जावे।

५. जो कुछ भी कर्म मैंने मन से भूतकाल में किये हैं, कराये हैं और करते हुए को अनुमोदना दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या हो जावे।

६. जो कुछ भी कर्म मैंने वचन से किये हैं, कराये हैं और करते हुए को अनुमोदना दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या जो जावे।

७. जो कुछ भी कर्म मैंने काय से किया है, जो कुछ भी कर्म कराया है और जो कुछ भी कर्म करते हुए को अनुमोदना दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या हो जावे।

८. जो कुछ भी कर्म मैंने भूतकाल में मन से, वचन से और काय से किये हैं और जो कुछ भी कराया

तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ९। यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १०। यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ११। यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १२। यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १३। यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १४। यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १५। यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १६। यदहमकार्षं यदचीकरं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १७। यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १८। यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति १९। यदहमकार्षं यदचीकरं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २०। यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २१। यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २२। यदहमकार्षं यदचीकरं वाचा च

है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या हो जावे।

९. जो कुछ भी कर्म मैंने मन से, वचन से और काय से किया है और करते हुए को अनुमोदना दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या हो जावे।

१०. जो कुछ भी कर्म मैंने मन से, वचन से और काय से दूसरों से कराये हैं और करते हुए अन्य को भी अनुमोदना दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या हो जावे।

११. जो कुछ भी कर्म मैंने मन से और वचन से स्वयं किये हैं और दूसरों से कराये हैं, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

१२. जो कुछ भी शुभ-अशुभ कर्म मन से और वचन से मैंने किये हैं और करते हुए को भी अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

१३. जो कुछ भी शुभ-अशुभ कर्म मन से और वचन से मैंने कराये हैं और करते हुए को भी अनुमोदना दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

१४. जो कुछ भी कर्म मन से और काय से मैंने किये हैं या कराये हैं वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

१५. जो कुछ भी कर्म मन और काय से मैंने किये हैं या करते हुए को अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

१६. जो कुछ भी कर्म मन से और काय से मैंने कराये हैं या करते हुए को अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

१७. जो कुछ भी कर्म वचन से और काय से मैंने किये हैं या कराये हैं वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

१८. जो कुछ भी कर्म वचन से और काय से मैंने किया है या करते हुए को अनुमति दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

१९. जो कुछ भी कर्म वचन से और काय से मैंने कराया है और करते हुए को अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

२०. जो कुछ भी मैंने मन से किया है और कराया है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

२१. जो कुछ भी मैंने मन से किया है और करते हुए को अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २३। यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २४। यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतं २५। यदहमकार्षं यदचीकरं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २६। यदहमकार्षं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २७। यदहमचीकरं यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २८। यदहमकार्षं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति २९। यदहमचीकरं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३०। यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३१। यदहमकार्षं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३२। यदहमचीकरं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३३। यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३४। यदहमकार्षं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३५। यदहमचीकरं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३६। यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च कायेन च तन्मिथ्या मे

---

२२. जो कुछ भी कर्म मन से मैंने कराया है और करते हुए को भी अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

२३. जो कुछ भी कर्म वचन से मैंने किया है और कराया है, वह सब दुष्कृत मेरा मिथ्या होवे।

२४. जो कुछ भी कर्म वचन से मैंने किया है और करते हुए को अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

२५. जो कुछ भी कर्म वचन से मैंने कराये हैं और करते हुए को भी अनुमति दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

२६. जो कुछ भी कर्म काय से मैंने किये हैं और कराये हैं वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

२७. जो कुछ भी शुभ-अशुभ कर्म काय से मैंने किये हैं और करते हुए को अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

२८. जो कुछ भी कर्म काय से मैंने कराये हैं और करते हुए को भी अनुमति दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

२९. जो कुछ भी कर्म मन से, वचन से और काय से मैंने किये हैं वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

३०. जो कुछ भी कर्म मन से, वचन से और काय से कराये हैं वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

३१. जो कुछ भी कर्म मन से, वचन से और काय से मैंने करते हुए को अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

३२. जो कुछ भी कर्म मन से और वचन से मैंने किये हैं वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

३३. जो कुछ भी कर्म मन से और वचन से मैंने कराये हैं वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

३४. जो कुछ भी कर्म मन से और वचन से मैंने करते हुए अन्य को अनुमति दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

३५. जो कुछ भी कर्म मन से और काय से मैंने किया है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

३६. जो कुछ भी कर्म मन से और काय से मैंने कराया है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

३७. जो कुछ भी कर्म मन से और से काय से मैंने करते हुए अन्य को अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

दुष्कृतमिति ३७। यदहमकार्षं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३८। यदहमचीकरं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ३९। यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं वाचा च कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४०। यदहमकार्षं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४१। यदहमचीकरं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४२। यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं मनसा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४३। यदहमकार्षं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४४। यदहमचीकरं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४५। यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं वाचा च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४६। यदहमकार्षं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४७। यदहमचीकरं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४८। यत्कुर्वंतमप्यन्यं समन्वज्ञासं कायेन च तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति ४९।

आर्याछंदः— मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।।२२६।।

।। इति प्रतिक्रमणकल्पः समाप्तः।।

अनेनैव प्रकारेण—

न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १। न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं समनुजानामि मनसा च वाचा चेति २। न करोमि न कारयामि न कुर्वंतमप्यन्यं

---

३८. जो कुछ भी कर्म वचन से और काय से मैंने किया है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

३९. जो कुछ भी कर्म वचन से और काय से मैंने कराया है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

४०. जो कुछ भी कर्म वचन से और काय से मैंने करते हुए को अनुमति दी है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

४१. जो कुछ भी कर्म मन से मैंने किया है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

४२. जो कुछ भी कर्म मन से मैंने कराया है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

४३. जो कुछ भी कर्म मन से मैंने करते हुए अन्य को अुनमति दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

४४. जो कुछ भी कर्म वचन से मैंने किया है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

४५. जो कुछ भी कर्म वचन से मैंने कराया है वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

४६. जो कुछ भी कर्म मैंने करते हुए अन्य को वचन से अनुमति दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

४७. जो कुछ भी शुभ-अशुभ कर्म मैंने काय से किया है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

४८. जो कुछ भी कर्म मैंने काय से कराया है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

४९. जो कुछ भी कर्म करते हुए अन्य को मैंने काय से अनुमति दी है, वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

काव्यार्थ— मोह से मैंने जो कुछ भी कर्म किये हैं, उन सम्पूर्ण भी कर्मों का प्रतिक्रमण करके निष्कर्म—सर्वकर्मों से रहित चैतन्यस्वरूप आत्मा में अपनी आत्मा के द्वारा मैं नित्य ही वर्तन करता हूँ—रहता हूँ।।२२६।।

इस प्रकार यह प्रतिक्रमणकल्प समाप्त हुआ।

इसी तरह ४९ प्रकार से आलोचना करना चाहिए—

१. वर्तमानकाल में कुछ भी कर्म को मन से, वचन से और काय से न मैं करता हूँ, न कराता हूँ और न मैं करते हुए अन्य किसी को भी अनुमति ही देता हूँ।

२. कुछ भी कर्म को मन से और वचन से न मैं करता हूँ, न कराता हूँ और न करते हुए अन्य को भी अनुमति देता हूँ।

समनुजानामि मनसा च कायेन चेति ३। इत्यादिना आलोचनाया एकोनपंचाशत् भेदा भवन्ति।

आर्याछंदः — मोहविलासविजृंभितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।।२२७।।

न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा च कायेन चेति १। न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च वाचा चेति २। न करिष्यामि न कारयिष्यामि न कुर्वन्तमप्यन्यं समनुज्ञास्यामि मनसा च कायेन चेति ३।

इत्यादिना प्रत्याख्यानस्य एकोनपंचाशत् भेदा भवन्ति —

आर्याछंदः — प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसंमोहः।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।।२२८।।

अथ सकलकर्मफलसंन्यासभावनां नाटयति —

आर्याछंदः — विगलंतु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमंतरेणैव।
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानं।।२३०।।

नाहं मतिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे, चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये १। नाहं श्रुतज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे, चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये २। नाहमवधिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे, चैतन्यात्मानमात्मानमेव

---

३. मन और काय से कोई भी कर्म न मैं करता हूँ, न कराता हूँ और न करते हुए अन्य किसी को अनुमति ही देता हूँ। इत्यादि प्रकार से आलोचना के उनंचास भेद होते हैं।

काव्यार्थ — मोह के विलास से विस्तार को प्राप्त जो यह उदय में आते हुए कर्म हैं उन सम्पूर्ण कर्मों की आलोचना करके मैं निष्कर्म — कर्मों से रहित चैतन्यस्वरूप अपनी आत्मा में अपनी आत्मा के द्वारा ही रहता हूँ — प्रवृत्ति करता हूँ।।२२७।।

इसी प्रकार प्रत्याख्यान की विधि भी बताई है —

१. भविष्यत् काल में मैं मन से, वचन से और काय से न कुछ भी कर्म करूँगा, न कराऊँगा और न करते हुए अन्य किसी को अनुमति ही देऊँगा।

२. मन से और वचन से न मैं कुछ करूँगा, न कराऊँगा और न करते हुए अन्य को भी अनुमति ही देऊँगा।

३. मन से और काय से न मैं कुछ करूँगा, न कराऊँगा और न करते हुए अन्य किसी को अनुमति ही देऊँगा। इत्यादि के द्वारा प्रत्याख्यान के भी उनंचास भेद होते हैं।

काव्यार्थ — मोह से रहित हुआ मैं आगामी काल में होने वाले ऐसे सम्पूर्ण कर्मों का प्रत्याख्यान — त्याग करके — छोड़ करके कर्म से शून्य चैतन्यस्वरूप ऐसी अपनी आत्मा में अपनी आत्मा के द्वारा ही वर्तन करता हूँ — स्थित होता है।।२२८।।

अब संपूर्ण कर्म के फल की संन्यासभावना — त्यागभावना को दिखलाते हैं —

काव्यार्थ — कर्मरूपी विषवृक्ष के जो फल हैं, वे सब मेरे भोगे बिना ही विगलित हो जावें — नष्ट हो जावें — झड़ जावें। मैं अचल और चैतन्यस्वरूप अपनी आत्मा का ही अनुभव करता हूँ।।२३०।।

१. मैं मतिज्ञानावरण कर्म के फल को नहीं भोगता हूँ, प्रत्युत चैतन्यस्वरूप अपनी आत्मा का ही अनुभव करता हूँ।

२. मैं श्रुतज्ञानावरण कर्म के फल को नहीं भोगता हूँ, चैतन्यस्वरूप अपनी आत्मा का ही अनुभव करता हूँ।

संचेतये ३। नाहं मनःपर्ययज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे, चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ४। नाहं केवलज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे, चैतन्यात्मानमात्मानमेव संचेतये ५। इत्यादिना अष्टचत्वारिंशदधिकशतकर्मभेदाः सन्ति, सर्वाण्यपि मंत्ररूपेण चिन्तयितव्यानि — ध्यातव्यानि।

अनेन प्रकारेण कर्म-कर्मफलभेदाः पलायन्ते। स्वात्मशक्तिर्वर्धिष्यते।

श्रीकुंदकुंददेवैः प्रवचनसारेऽपि त्रिधा चेतनाः कथिताः —

परिणमदि चेदणाए आदा पुण चेदणा विधादिमदा।
सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा।।३१।।

तत्र ज्ञानपरिणतिर्ज्ञानचेतना, कर्मपरिणतिः कर्मचेतना, कर्मफलपरिणतिः कर्मफलचेतना। पुनश्च —

णाणं अट्ठवियप्पो कम्मं जीवेण जं समारुद्धं।
तमणेगविधं भणिदं फलं ति सोक्खं व दुक्खं वा।।३२।।

टीकायाः अंशाः —

णाणं अट्ठवियप्पं — ज्ञानं मत्यादिभेदेनाष्टविकल्पं भवति। अथवा पाठान्तरं णाणं अट्ठवियप्पो — ज्ञानमर्थविकल्पः तथाह्यर्थः परमात्मादिपदार्थः अनन्तज्ञानसुखादिरूपोऽहमिति, रागाद्याश्रवास्तु मत्तो भिन्ना इति स्वपराकारावभा-सेनादर्श इवार्थपरिच्छित्तिसमर्थो विकल्पः विकल्पलक्षणमुच्यते। स एव ज्ञानं

---

३. मैं अवधिज्ञानावरण कर्म के फल को नहीं भोगता हूँ, चैतन्यस्वरूप अपनी आत्मा का ही अनुभव करता हूँ।

४. मैं मनःपर्ययज्ञानावरण कर्म के फल को नहीं भोगता हूँ, चैतन्यस्वरूप अपनी आत्मा का ही अनुभव करता हूँ।

५. मैं केवलज्ञानावरण कर्म के फल को नहीं भोगता हूँ, चैतन्यस्वरूप अपनी आत्मा का ही अनुभव करता हूँ। इत्यादि प्रकार से एक सौ अड़तालिस कर्म के भेद हैं, सभी को मंत्ररूप से चिन्तन करना चाहिए, ध्यान करना चाहिए।

इस प्रकार चिन्तन करने से कर्म और कर्मफल के भेद नष्ट होंगे और आत्मशक्ति वृद्धिंगत होगी।

श्री कुन्दकुन्ददेव ने प्रवचनसार ग्रंथ में भी तीन प्रकार की चेतना कही है —

गाथार्थ — जीव चैतन्यस्वभावरूप से परिणमन करता है और वह परिणति सर्वज्ञ भगवान के द्वारा मान्य ज्ञानपरिणति में, कर्म परिणति में तथा कर्मफलपरिणति में तीन प्रकार की कही गई है।।३१।।

उनमें से ज्ञानरूप परिणति को ज्ञानचेतना, कर्मरूप से परिणति को कर्मचेतना एवं कर्मफलरूप परिणति को कर्मफलचेतना कहा है। पुनः आगे भी कहते हैं —

गाथार्थ — मति आदि के भेद से ज्ञान आठ प्रकार का है और जीव के द्वारा जो कर्म किये जाते हैं वह कर्मचेतना है। वह कर्म अनेक प्रकार का है तथा सुख-दुःख उसी कर्म के फल हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।।३२।।

यहाँ इन गाथाओं की टीका के अंश प्रस्तुत हैं —

ज्ञान मतिज्ञान आदि के भेद से आठ प्रकार का होता है। अथवा पाठान्तर के अनुसार ज्ञान को अर्थ का विकल्प कहते हैं। जिसका प्रयोजन यह है कि ज्ञान अपने और पर के आकार को झलकाने वाले दर्पण के समान स्वपर पदार्थों को जानने में समर्थ है। वह ज्ञान इस तरह जानता है कि

ज्ञानचेतनेति। कम्मं जीवेण जं समारद्धं—कर्म जीवेन यत्समारब्धं बुद्धिपूर्वकमनोवचनकायव्यापाररूपेण जीवेन यत्सम्यक्कर्तुमारब्धं तत्कर्म भण्यते। सैव कर्मचेतनेति तमणेगविधं भणिदं—तच्च कर्म शुभाशुभशुद्धोपयोग-भेदेनानेकविधं त्रिविधं भणितमिदानीं फलचेतना कथ्यते—फलं ति सोक्खं वा दुक्खं वा—फलमति सुखं दुखं वा विषयानुरागरूपं यदशुभोपयोगलक्षणं कर्म तस्य फलमाकुलत्वोत्पादकं नारकादिदुःखं, यच्च धर्मानुरागरूपं शुभोपयोगलक्षणं कर्म तस्य फलं चक्रवर्त्यादिपञ्चेन्द्रिय-भोगानुभवरूपं, तच्चाशुद्धनिश्चयेन सुखमप्या-कुलोत्पादकत्वात् शुद्धनिश्चयेन दुःखमेव। यच्च रागादिविकल्परहित-शुद्धोपयोगपरिणतिरूपं कर्म तस्य फलमनाकुलत्वोत्पादकं परमानन्दैकरूपसुखामृतमिति। एवं ज्ञानकर्म-कर्मफलचेतनास्वरूपं ज्ञातव्यम्।।[१]

तात्पर्यमत्र—**कर्मजनितवेदनाभिः संतप्ताः सर्वेऽपि संसारिणः सन्ति। ते यदा ज्ञानं—समीचीनं ज्ञानं प्राप्नुवन्ति तदा सर्वपरद्रव्यकृतवेदनाभिः स्वमात्मानं भिन्नं निश्चित्य स्वपरभेदविज्ञानबलेन शनैः शनैः परंपरया स्वात्मोपलब्धिं कर्तुं सक्षमा भविष्यन्त्येवेति ज्ञात्वा सदैव भेदविज्ञानमभ्यसनीयमिति।**

ये तीर्थंकरशिष्यतामुपगताः सर्वर्द्धिसिद्धीश्वराः।
ये ग्रथ्नंति किलांगपूर्वमयसच्छास्त्रं ध्वनेराश्रयात्।।

अनन्तज्ञान सुखादिरूप मैं परमात्मा पदार्थ हूँ तथा रागादि आस्रव को आदि लेकर सर्व पुद्गलादि द्रव्य मुझसे भिन्न हैं। इसी अर्थ-विकल्प को ज्ञान चेतना कहते हैं। इस जीव ने अपनी बुद्धिपूर्वक मन-वचन-काय के व्यापाररूप से जो कुछ करना प्रारंभ किया हो, उसको कर्म कहते हैं। यही कर्मचेतना है। सो कर्मचेतना शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग के भेद से तीन प्रकार की कही गई है। सुख तथा दुःख को कर्म का फल कहते हैं उसको अनुभव करना सो कर्मफल चेतना है। विषयानुरागरूप जो अशुभोपयोग लक्षण कर्म है उसका फल अति आकुलता को पैदा करने वाला नारक आदि का दुःख है। धर्मानुरागरूप जो शुभोपयोग लक्षण कर्म है उसका फल चक्रवर्ती आदि के पंचेन्द्रियों के भोगों के अनुभवरूप है। यद्यपि इसको अशुद्ध निश्चय से सुख कहते हैं तथापि यह आकुलता को उत्पन्न करने वाला होने से शुद्ध निश्चयनय से दुःख ही है और जो रागादि रहित शुद्धोपयोग में परिणमनरूप कर्म है उसका फल अनाकुलता को पैदा करने वाला परमानंदमयी एकरूप सुखामृत का स्वाद है। इस तरह ज्ञानचेतना, कर्मचेतना और कर्मफलचेतना का स्वरूप जानना चाहिए।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—सभी संसारी प्राणी कर्मजनित वेदनाओं से संतप्त हैं। वे जब समीचीन ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं, तब समस्त परद्रव्यकृत वेदनाओं से अपनी आत्मा को पृथक् करके स्वपर भेद विज्ञान के बल से धीरे-धीरे परम्परा से निज आत्मा को प्राप्त करने में सक्षम अवश्य हो जायेंगे, ऐसा जानकर सदैव भेदविज्ञान का अभ्यास करना चाहिए।

श्लोकार्थ—जिन्होंने तीर्थंकर भगवान की शिष्यता को स्वीकार करके समस्त ऋद्धि-सिद्धि को प्राप्त कर लिया है, जिन्होंने भगवान की दिव्यध्वनि के आश्रय से ग्यारह अंग और चौदहपूर्व ग्रंथों को रच दिया है, जो समस्त विघ्नों के विनाशक गणधर भगवान हैं, वे गणधर स्वामी तथा उनकी सम्पूर्ण ऋद्धियाँ हम सबके

---

१. प्रवचनसार गाथा ३१-३२।

ये ते विघ्नविनाशका गणधरास्तेषां समस्तर्द्धयः।
ते शांतिं परमां च सर्वसिद्धिं कुर्वन्तु नो मंगलम्।।१।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमग्रंथस्य चतुर्थखण्डे श्रीमद्भूत-बल्याचार्यकृतवेदनाखण्डे दशमे ग्रंथे द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-वेदनानिक्षेप-वेदनानयविभाषणता-वेदनानामविधानत्रयानुयोगद्वारसमन्विते श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवला-टीकाप्रमुखग्रन्थाधारेण विरचिते विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यश्चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथम-पट्टाधीशः श्री वीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचना-प्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदनानिक्षेपादित्रयानुयोगद्वारसमन्वितोऽयं प्रथमो महाधिकारः समाप्तः।

लिए उत्कृष्ट शांति, समस्त सिद्धियों को प्रदान करें एवं हमारा मंगल करें, ऐसी प्रार्थना है।।१।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के चतुर्थखण्ड में श्रीमान् भूतबली आचार्य द्वारा रचित वेदनाखण्ड में दशम ग्रंथ में द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत वेदनानिक्षेप-वेदनानयविभाषणता-वेदनानामविधान नाम के तीन अनुयोगद्वार से समन्वित इस ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य कृत धवला टीका को प्रमुख आधार बनाकर अन्य ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागर आचार्य देव उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में वेदना-निक्षेप आदि तीन अनुयोगद्वारों से समन्वित यह प्रथम महाधिकार समाप्त हुआ।

卐卐卐

अथ वेदनाद्रव्यविधानानुयोगद्वारम्

(द्वितीयवेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-चतुर्थानुयोगद्वारम्)

द्वितीयो महाधिकारः

(अन्तर्गत-प्रथमाधिकारः)

—मंगलाचरणम् —

शरीरमानसाकस्मात्, वेदनापीडितं जगत्।
उद्धरन्ति नमस्तेभ्यो, ग्रन्थेभ्यश्च नमो नमः।।१।।

अथ षट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डे दशमग्रन्थे द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-वेदनाविधान-नाम चतुर्थानुयोगद्वारमस्ति। अस्मिन् द्वितीये महाधिकारे द्वौ अधिकारौ स्तः। तत्र प्रथमेऽधिकारे त्रिभिः स्थलैः त्रिचत्वारिंशदधिकशतसूत्राणि सन्ति। द्वितीये चूलिकाधिकारे सप्ततिसूत्राणि सन्ति। तत्र प्रथमेऽधिकारे पदमीमांसायां प्रथमस्थले भेदकथनसहितत्वेन चत्वारि सूत्राणि। द्वितीयस्थले स्वामित्वकथने अष्टादशाधिक-शतसूत्राणि। अल्पबहुत्वनाम्नि तृतीयस्थले एकविंशतिसूत्राणि इति मिलित्वा त्रिचत्वारिंशदधिकशतसूत्राणि वक्ष्यन्ते।

तत्र प्रथमस्थले द्वे अन्तरस्थले स्तः। भेदसूचनपरत्वेन प्रथमेऽन्तरस्थले एकं सूत्रं। द्वितीयेऽन्तरस्थले पदमीमांसाकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि।

अथ वेदनाद्रव्यविधान अनुयोगद्वार

(द्वितीयवेदनानुयोग के अन्तर्गत-चतुर्थ अनुयोगद्वार)

द्वितीय महाधिकार

(अन्तर्गत-प्रथम अधिकार)

—मंगलाचरण —

श्लोकार्थ — यह जगत् — संसार शारीरिक, मानसिक और अकस्मात् — आगन्तुक वेदनाओं — व्याधियों से पीड़ित है। उस जगत् के जीवों का जो उद्धार करते हैं, उन भगवन्तों को एवं वेदनानुयोगद्वार नामक ग्रंथों को बारम्बार नमस्कार होवे।।१।।

षट्खण्डागम के चतुर्थखण्ड में दशवें ग्रंथ में द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत वेदनाविधान नाम का चतुर्थ अनुयोगद्वार है। इस द्वितीय महाधिकार में दो अधिकार हैं। उनमें से प्रथम अधिकार में तीन स्थलों के द्वारा एक सौ तेंतालिस सूत्र हैं। द्वितीय चूलिका अधिकार में सत्तर सूत्र हैं उनमें से प्रथम अधिकार में पदमीमांसा नामक प्रथम स्थल में भेदकथन सहित चार सूत्र हैं। द्वितीय स्थल में स्वामित्व के कथन में एक सौ अट्ठारह सूत्र हैं। अल्पबहुत्व नामक तृतीय स्थल में इक्कीस सूत्र हैं, इन सबको मिलाकर एक सौ तेंतालिस सूत्र इसमें कहेंगे।

उनमें से प्रथम स्थल में दो अन्तरस्थल हैं भेद की सूचना देने वाले प्रथम अन्तरस्थल में एक सूत्र है। द्वितीय अन्तरस्थल में पदमीमांसा का कथन करने वाले तीन सूत्र हैं।

द्वितीयस्थले अन्तरस्थलानि पंच कथ्यन्ते। तत्र प्रथमेऽन्तरस्थले स्वामित्वं विभज्यउत्कृष्टपदे ज्ञानावरणीयवेदना कस्य ? इत्यादिना ''सामित्तं दुविहं'' सूत्रमादिं कृत्वा त्रिंशत्सूत्राणि। ततश्च द्वितीयेऽन्तरस्थले उत्कृष्टपदे आयुर्वेदना द्रव्यतः उत्कृष्टा कस्येति प्रश्नोत्तररूपेण ''सामित्तेण उक्कस्सपदे'' इत्यादिना त्रयोदशसूत्राणि। तदनन्तरं तृतीयेऽन्तरस्थले जघन्यपदे ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्यतो जघन्या कस्येति प्रश्नोत्तररूपेण ''सामित्तेण जहण्णपदे'' इत्यादिना एकत्रिंशत्सूत्राणि। पुनश्च चतुर्थेऽन्तरस्थले वेदनीयवेदना जघन्या निरूपणत्वेन ''सामित्तेण जहण्णपदे वेयणीयवेदणा'' इत्यादिना द्वात्रिंशत्सूत्राणि। तत्पश्चात् पंचमेऽन्तरस्थले जघन्यायुर्वेदना निरूपणत्वेन द्वादशसूत्राणि कथ्यन्ते।

अनन्तरं तृतीयस्थले अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन 'अप्पाबहुए त्ति' इत्यादिना एकविंशतिसूत्राणि कथयिष्यन्ते। इति संक्षेपेण वेदनाद्रव्यविधानानुयोगद्वारस्य प्रथमाधिकारस्य समुदायपातनिका सूचिता भवति।

संप्रति वेदनाद्रव्यविधानप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण —

वेयणादव्वविहाणे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति—पदमीमांसा-सामित्त-मप्पाबहुए त्ति।।१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**वेदना च सा द्रव्यं च तद् वेदनाद्रव्यं। अत्र वेदनापदस्य द्रव्यपदेन सह कर्मधारयसमासो वर्तते। तस्य वेदनाद्रव्यस्य विधानं भेदः—उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्यादि-अनेकरूपप्ररूपणं, एतेषां अस्मिन्नधिकारे कथनमस्ति। विधीयते अनेनेति व्युत्पत्तेः। एतद्वेदनाद्रव्यविधानस्यार्थोऽस्ति। तत्र**

द्वितीय स्थल में पाँच अन्तरस्थल कहे हैं। उनमें से प्रथम अन्तरस्थल में स्वामित्व का विभाजन करके उत्कृष्ट पद में ज्ञानावरणीय वेदना किसके हैं ? इत्यादि के द्वारा ''सामित्तं दुविहं'' अर्थात् ''स्वामित्व दो प्रकार का है'' इस सूत्र को आदि में करके तीस सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय अन्तरस्थल में उत्कृष्ट-पद में आयु वेदना द्रव्य से उत्कृष्ट किनके हैं ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से 'सामित्तेण उक्कस्सपदे'' इत्यादि तेरह सूत्र हैं। तदनन्तर तृतीय अन्तरस्थल में जघन्यपद में ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्य से जघन्य किसके है ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से ''सामित्तेण जहण्णपदे'' इत्यादिरूप से इकतीस सूत्र हैं। पुनश्च चतुर्थ अन्तरस्थल में वेदनीयवेदना को जघन्यरूप से निरूपण करने हेतु ''सामित्तेण जहण्णपदे वेयणीयवेदणा'' इत्यादि बत्तीस सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचम अन्तरस्थल में जघन्य आयुवेदना का निरूपण करने वाले बारह सूत्र कहे हैं।

अनन्तर तृतीय स्थल में अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु ''अप्पा बहुएत्ति'' इत्यादि इक्कीस सूत्र कहेंगे। इस प्रकार संक्षेप से वेदनाद्रव्यविधान अनुयोगद्वार के प्रथम अधिकार के प्रारंभ में यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब वेदनाद्रव्यविधान की प्ररूपणा हेतु श्री भूतबली आचार्य सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

अब वेदनाद्रव्यविधान का प्रकरण है। उसमें पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वेदनारूप जो द्रव्य है वह वेदना द्रव्य कहलाता है। यहाँ वेदनापद का वेदनाद्रव्य के साथ कर्मधारय समास है। इस वेदना द्रव्य के विधान-भेद उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य आदि अनेक हैं जिनका इन अधिकार में कथन किया गया है। विधान शब्द का व्युत्पत्यर्थ है—'विधीयते अनेन'

इमानि पदमीमांसादित्रीणि अनुयोगद्वाराणि ज्ञातव्यानि भवन्ति। तत्र पदं द्विविधं—व्यवस्थापदं भेदपदमिति। यस्य यस्मिन् अवस्थानं तस्य तत्पदं, स्थानमित्युक्तं भवति। यथा—सिद्धिक्षेत्रं सिद्धानां पदं अर्थालापोऽर्थावगमस्य पदं।

उक्तं च— अत्थो पदेण गम्मइ पदमिह अट्ठरहियमणभिलप्पं।
पदमत्थस्स णिमेणं अत्थालावो पदं कुणई।।[1]

भेदो विशेषः पृथक्त्वमिति एकार्थः। पद्यते गम्यते परिच्छिद्यते इति पदम् भेदश्चैव पदं भेदपदम्। अत्र भेदपदेनोत्कृष्टादिस्वरूपेणाधिकारः। उत्कृष्टानुत्कृष्ट-जघन्याजघन्य-साद्यनादि-ध्रुवाध्रुव-ओज-युग्म-ओमविशिष्ट-नोओमविशिष्ट-नोविशिष्टपदभेदेनात्र त्रयोदश पदानि।

एतेषां पदानां मीमांसा परीक्षा यत्र क्रियते सा पदमीमांसा।

उत्कृष्टादिचतुर्णां पदानां प्रायोग्यजीवप्ररूपणं यत्र क्रियते तदनुयोगद्वारं स्वामित्वं नाम।

यत्रैतेषां चतुर्णां पदानां स्तोकबहुत्वं उच्यते तदल्पबहुत्वं नाम।

एतद् देशामर्शकसूत्रं, तेन संख्या-गुणकार-ओज-स्थान-जीवसमुदाहारा इति पञ्चानुयोगद्वाराणि अन्यानि वक्तव्यानि भवन्ति, अन्यथा संपूर्णप्ररूपणाभावात्। तेन पूर्वोक्तैः सह अत्राष्ट अनुयोगद्वाराणि ज्ञातव्यानि भवन्ति।

उक्तं च— पदमीमांसा संखा गुणयारो चउत्थयं च सामित्तं।
ओजो अप्पाबहुगं ठाणाणि य जीवसमुहारो।।[2]

अर्थात् जिसके द्वारा विधान किया जाये वह 'वेदनाद्रव्यविधान' पद का अर्थ है। इसके ये पदमीमांसा आदि तीन अनुयोगद्वार जानने चाहिए।

वह पद दो प्रकार का है—व्यवस्थापद और भेदपद। जिसका जिसमें अवस्थान है वह उसका पद अर्थात् स्थान कहलाता है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है। जैसे सिद्धक्षेत्र सिद्धों का पद है। अर्थालाप अर्थपरिज्ञान का पद है।

कहा भी है—

गाथार्थ— पद से अर्थ जाना जाता है। यहाँ अर्थ रहित जो पद है वह उच्चारण के अयोग्य है। अर्थ का स्थान पद है अतः अर्थोच्चारण पद को उत्पन्न करता है।।

भेद, विशेष और पृथक्त्व, ये एकार्थक शब्द हैं। यह शब्द का निरुक्त्यर्थ है—

'पद्यते गम्यते परिच्छिद्यते' अर्थात् जो जाना जाये, वह पद है, भेदरूप ही पद भेदपद कहलाता है। यहाँ उत्कृष्ट आदिरूप भेदपद का अधिकार है। उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, ओज, युग्म, ओमविशिष्ट और नोओमविशिष्ट, नोविशिष्ट के भेद से यहाँ तेरहपद हैं।

इन पदों की मीमांसा अर्थात् परीक्षा जिस अधिकार में की जाती है वह पदमीमांसा है।

उत्कृष्ट आदि चार पदों के योग्य जीवों की प्ररूपणा जहाँ की जाती है उसका नाम स्वामित्व अनुयोगद्वार है।

जहाँ इन चार पदों का अल्पबहुत्व कहा जाता है वह अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार है।

यह देशामर्शक सूत्र है इसलिए यहाँ संख्या, गुणकार, ओज, स्थान और जीव समुदाहार, ये पाँच अन्य अनुयोगद्वार और वक्तव्य हैं, क्योंकि इसके बिना सम्पूर्ण प्ररूपणा का अभाव पाया जाता है। इसलिए उन पूर्वोक्त तीन अनुयोगद्वारों के साथ यहाँ आठ अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं।

कहा भी है—

गाथार्थ— पदमीमांसा, संख्या, गुणकार, चौथा स्वामित्व, ओज, अल्पबहुत्व, स्थान और जीवसमुदाहार,

---

१-२. -षट्खंडागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. १०, पृ. १८-१९।

इति केऽप्याचार्या भणन्ति, तन्न घटते।

कुतः?

न तावद् ओज-अनुयोगद्वारं पृथग्भूतमस्ति, ओज-युग्मप्ररूपणाविनाभाविपदमीमांसायां तस्य प्रवेशात्।

न संख्यानियोगद्वारोऽपि पृथग्भूतोऽस्ति, उपसंहारप्ररूपणा-विनाभाविस्वामित्वे तस्य प्रवेशात्।

न गुणकारानियोगद्वारमपि पृथग्भूतमस्ति, तस्य गुणकाराविनाभावि-अल्पबहुत्वे प्रवेशात्।

न स्थानानियोगद्वारमपि पृथग्भूतमस्ति, तस्य स्थानप्ररूपणाविनाभावि-अजघन्य-अनुत्कृष्ट-द्रव्यस्वामित्वे प्रवेशात्।

न जीवसमुदाहारोऽपि भिन्नोऽस्ति, तस्यापि जीवाविनाभावि चतुर्विधद्रव्यस्वामित्वे प्रवेशात्।

तस्मात्पदमीमांसा स्वामित्वमल्पबहुत्वमिति त्रीण्येवानुयोगद्वाराणि भवन्ति।

एवं प्रथमेऽन्तरस्थले त्रिभेदान्तर्गतपंचभेदसमन्वितेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना पदमीमांसाप्रकरणे पृच्छासूत्रमवतार्यते श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण —

पदमीमांसाए णाणावरणीयवेदणा दव्वदो किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा ?।।२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतत्पृच्छासूत्रं देशामर्शकं, तेन अन्या नव पृच्छाः कर्तव्याः। अन्यथा पृच्छासूत्रस्यासंपूर्णत्वप्रसंगात्।**

ये आठ अनुयोगद्वार हैं।।

ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। परन्तु वह घटित नहीं होता है।

कैसे घटित नहीं होता है ?

उसी को स्पष्ट करते हैं — ओज अनुयोगद्वार तो पृथग्भूत है नहीं, क्योंकि ओज और युग्म प्ररूपणा की अविनाभाविनी पदमीमांसा में उसका अन्तर्भाव हो जाता है। संख्या अनुयोगद्वार भी पृथक् नहीं है, क्योंकि उपसंहार प्ररूपणा के अविनाभावी स्वामित्व में उसका अन्तर्भाव हो जाता है।

गुणकार अनुयेागद्वार भी भिन्न नहीं है, क्योंकि उसका गुणकार के अविनाभावी अल्पबहुत्व में अन्तर्भाव हो जाता है।

स्थान अनुयोगद्वार भी भिन्न नहीं है, क्योंकि उसका स्थान प्ररूपणा के अविनाभावी अजघन्य और अनुत्कृष्ट द्रव्य का कथन करने वाले स्वामित्व अनुयोगद्वार में अन्तर्भाव हो जाता है।

जीवसमुदाहार भी भिन्न नहीं है, क्योंकि उसका भी जीव के अविनाभावी चार प्रकार के द्रव्य का कथन करने वाले स्वामित्व अनुयोगद्वार में अन्तर्भाव हो जाता है।

इस कारण पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, ये तीन ही अनुयोगद्वार हैं, यह सिद्ध होता है।

इस प्रकार प्रथम अन्तरस्थल में तीन भेदों के अन्तर्गत पाँच भेद समन्वित एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब पदमीमांसा के प्रकरण में श्रीभूतबली आचार्य पृच्छा सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

पदमीमांसा का प्रकरण है। ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्य से क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है और क्या अजघन्य है ?।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह पृच्छासूत्र देशामर्शक है, इसलिए अन्य नौ प्रश्न और करना चाहिए। अन्यथा पृच्छासूत्र की अपूर्णता का प्रसंग प्राप्त होता है।

ब्रवीति च श्रीवीरसेनाचार्यः—

''ण च भूदबलिभडारओ महाकम्मपयडिपाहुडपारओ असंपुण्णसुत्तकारओ, कारणाभावादो[१]।''

तस्मात् ज्ञानावरणीयवेदना किमुत्कृष्टा किमनुत्कृष्टा किं जघन्या किमजघन्या किं सादिका किमनादिका किं ध्रुवा किमध्रुवा किमोजा किं युग्मा किं विशिष्टा किं नोओम-नोविशिष्टा ? इति त्रयोदशपदविषयमेतत्पृच्छासूत्रं द्रष्टव्यं। ज्ञानावरणीयवेदनायां विशेषाभावेन सामान्यरूपायाः त्रयोदश पृच्छाः प्ररूपिताः। किन्तु सामान्यं विशेषाविनाभावि इति कृत्वा एतेनैव सूत्रेण सूचिताः त्रयोदशपदपृच्छाः 'वत्तइस्सामो' इत्याचार्यदेवाः प्रतिज्ञां कुर्वन्ति। तद्यथा—

उत्कृष्टज्ञानावरणीयवेदना किमनुत्कृष्टा किं जघन्या किमजघन्या किं सादिका किमनादिका किं ध्रुवा किमध्रुवा किमोजा किं युग्मा किं ओमा किं विशिष्टा किं नो ओम-नोविशिष्टा इति द्वादशपृच्छाः उत्कृष्टपदस्य भवन्ति। एवं शेषपदानामपि द्वादश द्वादश पृच्छाः प्रत्येकं कर्तव्याः। अत्र सर्वपृच्छासमासः एकोनसप्ततिशतमात्रः (१६९)। तस्मादेतस्मिन् देशामर्शकसूत्रे अन्यानि त्रयोदश सूत्राणि प्रविष्टानीति वक्तव्यम्।

अधुना उत्कृष्टानुत्कृष्टादिरूपेणोत्तरं प्रयच्छताचार्येण सूत्रमवतार्यते—

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा वा अजहण्णा वा।।३।।

श्री वीरसेनाचार्य भी इस विषय में कहते हैं—

यदि ऐसा कहा जाये कि—"इस तरह तो महाकर्म प्रकृतिप्राभृत के पारंगत श्री भूतबली भट्टारक असम्पूर्ण सूत्र के कर्ता हो जाते हैं, सो बात नहीं है, क्योंकि उसका कोई कारण नहीं है।"

इसलिए ज्ञानावरणीयवेदना क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है, क्या अजघन्य है, क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है, क्या ओज है, क्या युग्म है, क्या ओम है, क्या विशिष्ट है, क्या नोओम नोविशिष्ट है ? इस प्रकार तेरह पदविषयक यह पृच्छासूत्र समझना चाहिए। इस प्रकार ज्ञानावरणीयवेदना के विषय में विशेष के बिना सामान्यरूप से प्ररूपणा करने पर तेरह पृच्छाएं कही गई हैं। किन्तु सामान्य विशेष का अविनाभावी होता है, ऐसा समझ करके इसी सूत्र से सूचित होने वाली अन्य तेरह पद पृच्छाओं को कहता हूँ इस प्रकार से आचार्यदेव प्रतिज्ञा करते हैं। वह इस प्रकार है—

उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय वेदना क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है, क्या अजघन्य है, क्या सादि है क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है, क्या ओज है, क्या युग्म है, क्या ओम है, क्या विशिष्ट है और क्या नोओम-नोविशिष्ट है, इस प्रकार बारह पृच्छाएं उत्कृष्ट पदविषयक होती हैं। इसी प्रकार शेष पदों में से भी प्रत्येक पदविषयक बारह-बारह पृच्छाएं करनी चाहिए। यहाँ सब पृच्छाओं का योग एक सौ उनहत्तर होता है (१६९)। इसी कारण इस देशामर्शक सूत्र में तेरह सूत्र और प्रविष्ट हैं, ऐसा समझना चाहिए।

अब उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट आदि रूप से उत्तर देते हुए आचार्य सूत्र अवतीर्ण करते हैं—

सूत्रार्थ—

उक्त ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट भी है, अनुत्कृष्ट भी है, जघन्य भी है और अजघन्य भी है।।३।।

---

१. षट्खंडागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. १०, पृ. २०।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतदपि देशामर्शकसूत्रं, तेनात्र शेषनवपदानि वक्तव्यानि। देशामर्शकत्वाच्चैव शेषत्रयोदशसूत्राणामत्रान्तर्भावो वक्तव्यः। तत्र तावत्प्रथमसूत्रप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—**

ज्ञानावरणीयवेदना स्यादुत्कृष्टा, गुणितकर्मांशिकसप्तमपृथिवीनारके भवस्थितिचरमसमये वर्तमाने उत्कृष्टद्रव्योपलंभात्।

ज्ञानावरणीयवेदना स्यादनुत्कृष्टा, कर्मस्थितिचरमसमय-गुणितकर्मांशिकं मुक्त्वान्यत्र सर्वत्रानुत्कृष्ट-द्रव्योपलंभात्।

स्याद् जघन्या, क्षपितकर्मांशिकक्षीणकषायचरमसमये जघन्यद्रव्योपलंभात्।

स्यादजघन्या, शुद्धनयक्षपितकर्मांशिकक्षीणकषायचरमसमयं मुक्त्वा अन्यत्राजघन्यद्रव्योपलंभात्।

स्यात्सादिका, उत्कृष्टादिपदानामेकस्वरूपेणावस्थानाभावात्।

अत्र कश्चिदाह—कथं द्रव्यार्थिकनये उत्कृष्टादिपदविशेषाणां संभवः ?

आचार्यदेवःप्राह—नैतद् वक्तव्यं, नैकगमे नैगमे सामान्यविशेषसंभवं प्रति विरोधाभावात्।

इयं ज्ञानावरणीयवेदना स्यादनादिका, जीवकर्मणोर्बंधसामान्यस्य आदित्वविरोधात्।

स्याद्ध्रुवा, अभव्येषु अभव्यसमानभव्येषु च ज्ञानावरणसामान्यस्य व्युच्छेदाभावात्।

स्यादध्रुवा, केवलिनि भगवति ज्ञानावरणव्युच्छेदोपलंभात् चतुर्णां पदानां शाश्वतभावेनावस्थानाभावाद्वा।

स्याद् युग्मा, युग्मं सममित्येकार्थः। तद् द्विविधं—कृतबादरयुग्मभेदेन। तत्र यो राशिश्चतुर्भिरवह्रियते सः कृतयुग्मः। यो राशिः चतुर्भिरवह्रियमाणो द्विरूपशेषो भवति सः बादरयुग्मं। यस्य चतुर्भिरवह्रते

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह सूत्र भी देशामर्शक है, इसलिए यहाँ शेष नौ पदों को कहना चाहिए और देशामर्शक होने से ही शेष तेरह सूत्रों का यहाँ अन्तर्भाव कहना चाहिए। उनमें से पहले प्रथम सूत्र की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है—

ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, क्योंकि भवस्थिति के अन्तिम समय में वर्तमान गुणितकर्मांशिक सप्तम पृथिवी के नारकी के उत्कृष्ट द्रव्य पाया जाता है। ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट है, क्योंकि कर्मस्थिति के अन्तिम समयवर्ती गुणित कर्मांशिक नारकी को छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र अनुत्कृष्ट द्रव्य पाया जाता है। ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् जघन्य है, क्योंकि क्षपितकर्मांशिक जीव के क्षीणकषाय के अन्तिम समय में जघन्य द्रव्य पाया जाता है, कथंचित् अजघन्य है क्योंकि शुद्ध नय की अपेक्षा क्षपितकर्मांशिक जीव के क्षीणकषाय के अन्तिम समय को छोड़कर अन्यत्र अजघन्य द्रव्य पाया जाता है। कथंचित् सादि है, क्योंकि उत्कृष्ट आदि पदों का एकरूप से अवस्थान नहीं रहता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—द्रव्यार्थिक नय में उत्कृष्ट आदि पदविशेष कैसे संभव है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अनेकों विषय करने वाले नैगम नय में सामान्य और विशेष दोनों संभव हैं, इसमें कोई विरोध नहीं आता है। यह ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् अनादि है, क्योंकि जीव और कर्म के बंधसामान्य को सादि मानने में विरोध आता है। कथंचित् ध्रुव है, क्योंकि अभव्यों में और अभव्य के समान भव्यों में ज्ञानावरण सामान्य विच्छेद नहीं होता है। कथंचित् अध्रुव है, क्योंकि केवली में ज्ञानावरण का व्युच्छेद पाया जाता है अथवा उक्त चार पदों का शाश्वतरूप से अवस्थान नहीं रहता है।

कथंचित् युग्म है। युग्म और सम ये एकार्थवाचक शब्द हैं। वह कृतयुग्म और बादरयुग्म के भेद से दो प्रकार का है। उनमें से जो राशि चार से अवहृत होती है वह कृतयुग्म कहलाती है। जिस राशि को चार से अवहृत करने पर दो रूप शेष रहते है, वह बादर युग्म कही जाती है, जिसको चार से अवहृत करने पर एक

एकांशावशेषः सः कलि-ओजः। यस्य चतुर्भिरवहृते त्र्यंकावशेषः सः तेजोजः राशिः कथ्यते।

उक्तं च—

चोद्दस बादरजुम्मं सोलस कदजुम्ममेत्तकलियोजो।
तेरस तेजोजो खलु पण्णरसेवं खु विण्णेया।।[1]

ततो ज्ञानावरणे समद्रव्यसंभवात् युग्मत्वं घटते।

स्यादोजा, कुत्रापि तत्र विषमसंख्यद्रव्योपलंभात्।

स्यादोमा, कदाचित् प्ररूपणाणामपचयदर्शनात्।

स्याद् विशिष्टा, कदाचिद् व्ययादधिकायदर्शनात्।

स्यान्नोओम-नोविशिष्टा, प्रत्येकं पदावयवे निरुद्धे वृद्धिहान्योरभावात्।

एवं प्रथमसूत्रप्ररूपणा कृता (१३)।

संप्रति द्वितीयसूत्रार्थ उच्यते। तद्यथा—

उत्कृष्टज्ञानावरणवेदना जघन्या अनुत्कृष्टा च न भवति, प्रतिपक्षे तस्यास्तित्वविरोधात्।

स्यादजघन्या, जघन्यात् उपरिमशेषद्रव्यविकल्पावस्थितेऽजघन्ये उत्कृष्टस्यापि संभवात्।

स्यात्सादिका, अनुत्कृष्टादुत्कृष्टद्रव्योत्पत्तेः।

स्यादध्रुवा, उत्कृष्टपदस्य सर्वकालमवस्थानाभावात्।

स्यात् तेजोजः, चतुर्भिरवह्रियमाणे त्रिरूपावस्थानात्।

स्यान्नोओम-नोविशिष्टा, वृद्धिहान्योस्तत्र विरोधात्।

अंश शेष रहता है, वह कलि-ओज राशि है और जिसको चार से अवहृत करने पर तीन अंक शेष रहते हैं, वह तेजोज राशि कही जाती है।

कहा भी है—

गाथार्थ— यहाँ चौदह को बादरयुग्म, सोलह को कृतयुग्म, तेरह को कलिओज और पन्द्रह को तेजोज राशि जानना चाहिए।।

इसलिए ज्ञानावरण में समान द्रव्य की संभावना होने से युग्मत्व घटित होता है। यह ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् ओजरूप है, क्योंकि कहीं पर उसमें विषम संख्या युक्त द्रव्य पाया जाता है। कथंचित् ओम है, क्योंकि कदाचित् प्ररूपणा—प्रदेशों का अपचय देखा जाता है। कथंचित् विशिष्ट है, क्योंकि कदाचित् व्यय की अपेक्षा अधिक आय देखी जाती है। कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि प्रत्येक पदभेद की विवक्षा होने पर वृद्धि-हानि नहीं देखी जाती है।

इस प्रकार प्रथम सूत्र की प्ररूपणा की गई (१३)।

अब द्वितीय सूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—

उत्कृष्ट ज्ञानावरणीयवेदना जघन्य और अनुत्कृष्ट नहीं होती, क्योंकि अपने प्रतिपक्षरूप से उसका अस्तित्व मानने में विरोध आता है। कथंचित् अजघन्य है, क्योंकि अजघन्य में जघन्य से ऊपर के शेष सब द्रव्य विकल्प सम्मिलित हैं इसलिए उसमें उत्कृष्ट भी संभव है। कथंचित् सादि है, क्योंकि अनुत्कृष्ट से उत्कृष्ट द्रव्य की उत्पत्ति होती हैं। कथंचित् अध्रुव है, क्योंकि यह उत्कृष्ट पद सर्वकाल अवस्थित नहीं रहता है, कथंचित् तेजोज है, क्योंकि इसे चार से अवहृत करने पर तीन रूप अवस्थित नहीं रहते हैं। कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि उसमें वृद्धि

---

१. षट्खंडागम (धवलाटीकासमन्वित), पु. १०, पृ. २३। २. कयाहं पदेसाणमव.....इत्यपि पाठोऽस्ति।

एवं उत्कृष्टज्ञानावरणीयवेदना पंचपदात्मिका (५)।

एवं द्वितीयसूत्रप्ररूपणा कृता।

अनुत्कृष्टज्ञानावरणीयवेदना स्याद् जघन्या, उत्कृष्टं मुक्त्वा शेषाधस्तनाशेषविकल्पेऽनुत्कृष्टे जघन्यस्यापि संभवात्। स्यादजघन्या, अनुत्कृष्टस्याजघन्याविनाभावित्वात्। स्यात्सादिका, उत्कृष्टादनुत्कृष्टोत्पत्तेः अनुत्कृष्टादपि अनुत्कृष्टोत्पत्तिदर्शनाच्च। अनादिका न भवति, अनुत्कृष्टपदविशेषविवक्षितात्। अनुत्कृष्टसामान्येऽर्पितेऽपि अनादिका न भवति, उत्कृष्टादनुत्कृष्टपदपतितं प्रति सादित्वसंभवात्। न च नित्यनिगोदेष्वपि अनादित्वं लभ्यते, तत्रानुत्कृष्टपदानां परिवर्तनेन सादित्वोपलंभात्[१]। स्यादध्रुवा, अनुत्कृष्टैकपदविशेषस्य सर्वदावस्थानाभावात्। स्यादोजः, कुत्रापि पदविशेषेऽवस्थितविषमसंख्योपलंभात्। स्याद् युग्मा, कुत्रापि द्विविधसमसंख्यदर्शनात्। स्यादोमा, कुत्रापि हानितः समुत्पन्नानुत्कृष्टपदोपलंभात्। स्याद् विशिष्टा, कुत्रापि वृद्धितः अनुत्कृष्टपदोपलंभात्। स्यान्नोओम-नोविशिष्टा, अनुत्कृष्टजघन्येऽनुत्कृष्टपदविशेषे वर्णिते वृद्धिहान्योरभावात्। एवं ज्ञानावरणानुत्कृष्टवेदना नवपदात्मिका (९)।

एवं तृतीयसूत्रप्ररूपणा कृता।

और हानि मानने में विरोध आता है। इस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय वेदना पाँच पदरूप है (५)।

इस प्रकार द्वितीय सूत्र की प्ररूपणा की गई।

अनुत्कृष्ट ज्ञानावरणीयवेदना स्यात् जघन्य है, क्योंकि उत्कृष्ट विकल्प को छोड़कर अधस्तन अशेष — समस्त विकल्परूप अनुत्कृष्ट पद में जघन्य पद भी संभव है। स्यात् अजघन्य है, क्योंकि अनुत्कृष्ट पद अजघन्य पद का अविनाभावी है। स्यात् सादि है, क्योंकि उत्कृष्ट से अनुत्कृष्ट की उत्पत्ति होती है और अनुत्कृष्ट से भी अनुत्कृष्ट की उत्पत्ति देखी जाती है। अनादि नहीं है, क्योंकि यहाँ अनुत्कृष्टरूप पद विशेष की विवक्षा है। अनुत्कृष्ट सामान्य की विवक्षा होने पर भी अनादि नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट से अनुत्कृष्ट पद के होने पर सादित्व देखा जाता है। यदि कहा जाये कि इस पद का नित्यनिगोदिया जीवों में अनादित्व प्राप्त हो जायेगा, सो भी बात नहीं है, क्योंकि वहाँ अनुत्कृष्ट पदों के पलटने से यह सादित्व पाया जाता है। स्यात् अध्रुव है, क्योंकि अनुत्कृष्टरूप एक पदविशेष का सर्वदा अवस्थान नहीं रहता है। स्यात् ओज है, क्योंकि अनुत्कृष्ट से जितने भेद हैं, उनमें से किसी भी पदविशेष में विषम संख्या का सद्भाव पाया जाता है। स्यात् युग्म है, क्योंकि कहीं पर दोनों प्रकार की समसंख्या (ऐसी संख्या जिसे चार से विभक्त करने पर कुछ भी शेष न रहे या दो अंक शेष रहें) देखी जाती है। स्यात् ओम है, क्योंकि कहीं पर हानि होने से उत्पन्न हुआ अनुत्कृष्ट पद पाया जाता है। स्यात् विशिष्ट है, क्योंकि कहीं पर वृद्धि के होने से उत्पन्न हुआ अनुत्कृष्ट पद पाया जाता है। स्यात् नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि अनुत्कृष्टरूप जघन्य पद की अथवा अनुत्कृष्टरूप पद विशेष की विवक्षा होने पर वृद्धि और हानि नहीं होती है। इस प्रकार ज्ञानावरण अनुत्कृष्ट वेदना नौ पदरूप है (९)।

इस प्रकार तृतीय सूत्र की प्ररूपणा की गई।

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीका समन्वित) पु. १०, पृ. २४।

जघन्या ज्ञानावरणवेदना स्यादनुत्कृष्टा, अनुत्कृष्टजघन्यस्य ओघजघन्येन विशेषाभावात्।
स्यात्सादिका, अजघन्यात् जघन्यपदोत्पत्तेः।
स्यादध्रुवा, शाश्वतभावेनावस्थानाभावात्।
स्याद् युग्मा, चतुर्भिरवह्रियमाणेऽकाभावात्।
स्यान्नोओम-नोविशिष्टा, वृद्धिहान्योरभावात्।
एवं जघन्यवेदना पंचप्रकारा स्वरूपेण षट्प्रकारा वा (५)।

एवं चतुर्थसूत्रप्ररूपणा कृता।

अजघन्या ज्ञानावरणवेदना स्यादुत्कृष्टा, अजघन्योत्कृष्टस्य ओघोत्कृष्टात् पृथगनुपलंभात्।
स्यादनुत्कृष्टा, तदविनाभावित्वात्।
स्यात्सादिका, परिवर्तनेन विना अजघन्यपदविशेषाणामवस्थानाभावात्।
स्यादध्रुवा, कारणं सुगमं।
स्यादोजा, स्याद् युग्मा, स्यादोमा, स्याद् विशिष्टा, सुगमम्।
स्यान्नोओम-नोविशिष्टा, पदविशेषनिरोधात्।
एवं अजघन्या नवभंगा दशभंगा वा (९)।

एषः पंचमसूत्रार्थः।

सादिकज्ञानावरणवेदना स्यादुत्कृष्टा, स्यादनुत्कृष्टा, स्याद् जघन्या, स्यादजघन्या, स्यादध्रुवा।
न ध्रुवा, सादेः ध्रुवत्वविरोधात्।
स्यादोजा, स्याद् युग्मा, स्यादोमा, स्याद् विशिष्टा, स्यान्नोओम-नोविशिष्टा।

जघन्य ज्ञानावरणवेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट है, क्योंकि सामान्य जघन्य पद से अनुत्कृष्टरूप जघन्य पद में कोई अन्तर नहीं है। कथंचित् सादि है, क्योंकि अजघन्य से जघन्य पद उत्पन्न होता है। कथंचित् अध्रुव है, क्योंकि वह शाश्वतरूप से नहीं पाया जाता है। कथंचित् युग्म है, क्योंकि उसे चार से अवहृत करने पर कोई अंक शेष नहीं रहता है। कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि उसमें वृद्धि और हानि नहीं होती है। इस प्रकार जघन्य वेदना पाँच प्रकार की है अथवा स्वपद—स्वरूप के साथ छह प्रकार की है (५)।

इस प्रकार चतुर्थ सूत्र की प्ररूपणा की गई है।

अजघन्य ज्ञानावरण वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, क्योंकि जब उत्कृष्ट पद अजघन्यरूप से विवक्षित होता है तो वह ओघ उत्कृष्ट पद से पृथक् नहीं पाया जाता है। कथंचित् अनुत्कृष्ट है, क्योंकि वह उसका अविनाभावी है। कथंचित् सादि है, क्योंकि परिवर्तन हुए विना अजघन्य पद विशेषों का अवस्थान नहीं होता है। कथंचित् अध्रुव है। इसका कारण सुगम है। कथंचित् ओज है, कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है और कथंचित् विशिष्ट है। इसका कारण सुगम है। कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि जिसकी हानि-वृद्धि नहीं हुई ऐसे पदविशेष की विवक्षा होने से यह विकल्प पाया जाता है। इस प्रकार अजघन्य के नौ अथवा दस भंग है (९)।

यह पाँचवें सूत्र का अर्थ हुआ।

सादि ज्ञानावरण वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है और कथंचित् अध्रुव है। ध्रुव नहीं है क्योंकि सादि को ध्रुव मानने में विरोध आता है। कथंचित् ओज है, कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है।

एवं सादिकवेदनाया दश भंगा एकादश भंगा वा (१०)।

एषः षष्ठसूत्रार्थः।

अनादिज्ञानावरणीयवेदना स्यादुत्कृष्टा , स्यादनुत्कृष्टा, स्याद् जघन्या, स्यादजघन्या, स्यात्सादिका।
अनादिवेदनायाः कथं सादित्वम् ?
न, वेदनासामान्यापेक्षया अनादिके उत्कृष्टादिपदापेक्षया सादित्वविरोधाभावात्।
स्याद् ध्रुवा, वेदनासामान्यस्य विनाशाभावात्।
स्यादध्रुवा, पदविशेषस्य विनाशदर्शनात्।
स्यादोजा, स्याद् युग्मा, स्यादोमा, स्याद् विशिष्टा, स्यान्नोओम-नोविशिष्टा।
एवं अनादिवेदनाया द्वादश भंगाः (१२) त्रयोदश भंगा वा (१३)

एषः सप्तमसूत्रार्थः।

ध्रुवज्ञानावरणीयवेदना स्यादुत्कृष्टा, स्यादनुत्कृष्टा, स्याद् जघन्या, स्यादजघन्या, स्यात्सादिका, स्यादनादिका, स्यादध्रुवा, स्यादोजा, स्याद् युग्मा, स्यादोमा, स्याद् विशिष्टा, स्यान्नोओम-नोविशिष्टा।
एवं ध्रुवपदस्य द्वादशभंगा त्रयोदश भंगाः (१२)। (१३)।

एषः अष्टमसूत्रार्थः।

अध्रुवज्ञानावरणीयवेदना स्यादुत्कृष्टा, स्यादनुत्कृष्टा, स्याद्-जघन्या, स्यादजघन्या, स्यात्सादिका, स्यादोजा, स्याद् युग्मा, स्यादोमा, स्याद् विशिष्टा, स्यान्नोओम-नोविशिष्टा।

इस प्रकार सादि वेदना के दस अथवा ग्यारह भंग है (१०)।

यह छठे सूत्र का अर्थ हुआ।

अनादि ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है और कथंचित् सादि है।

शंका — अनादि वेदना में सादित्व कैसे संभव है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि जो वेदनासामान्य की अपेक्षा अनादि है उसके उत्कृष्ट आदि पदों की अपेक्षा सादि होने में विरोध नहीं आता है।

कथंचित् ध्रुव है, क्योंकि वेदनासामान्य का विनाश नहीं होता है। कथंचित् अध्रुव है, क्योंकि पदविशेष का विनाश देखा जाता है। कथंचित् ओज है, कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है। इस प्रकार अनादि वेदना के बारह भंग हैं (१२)। अथवा तेरह भंग हैं (१३)।

यह सातवें सूत्र का अर्थ हुआ।

ध्रुव ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथचित् अनादि है, कथंचित् अध्रुव है, कथंचित् ओज है, कथंचित युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है, इस प्रकार ध्रुव पद के बारह अथवा तेरह भंग हैं (१२)।(१३)।

यह आठवें सूत्र का अर्थ हुआ।

अध्रुव ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् ओज है, कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है

एवं अध्रुवपदस्य दश एकादश भंगा वा (१०)। (११)।

एष नवमसूत्रार्थः।

ओजज्ञानावरणीयवेदना स्यादुत्कृष्टा, स्यादनुत्कृष्टा, स्यादजघन्या, स्यात्सादिका, स्यादध्रुवा, स्यादोमा, स्याद्विशिष्टा, स्यान्नोओम-नोविशिष्टा।

एवमोजस्य अष्ट नव भंगा वा (८)।

एष दशमसूत्रार्थः।

युग्मज्ञानावरणीयवेदना स्यादनुत्कृष्टा, स्याद् जघन्या, स्यादजघन्या, स्यात्सादिका, स्यादध्रुवा, स्यादोमा, स्याद् विशिष्टा, स्यान्नोओम-नोविशिष्टा।

एवं युग्मस्य अष्ट नव भंगा वा। (८)।

एष एकादशमसूत्रार्थः।

ओमज्ञानावरणवेदना स्यादनुत्कृष्टा, स्यादजघन्या, स्यात्सादिका, स्यादध्रुवा, स्यादोजा, स्याद् युग्मा।

एवमोमपदस्य षट् सप्त भंगा वा। (६)।

एवं द्वादशमसूत्रार्थः।

विशिष्टा ज्ञानावरणवेदना स्यादनुत्कृष्टा, स्यादजघन्या, स्यात्सादिका, स्यादध्रुवा, स्यादोजा, स्याद् युग्मा।

एवं विशिष्टपदस्य षट् सप्त भंगा वा। (६)।

एषः त्रयोदशमसूत्रार्थः।

नोओम-नोविशिष्टा ज्ञानावरणवेदना स्यादुत्कृष्टा, स्यादनुत्कृष्टा, स्याद् जघन्या, स्यादजघन्या,

---

और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है। इस प्रकार अध्रुव पद के दस अथवा ग्यारह भंग है (१०)।(११)।

यह नवमें सूत्र का अर्थ हुआ।

ओज ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् अध्रुव है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है। इस प्रकार ओज के आठ अथवा नौ भंग हैं (८)। (९)।

यह दसवें सूत्र का अर्थ हुआ।

युग्म ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् अध्रुव है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट है। इस प्रकार युग्म के आठ अथवा नौ भंग हैं (८)।

यह ग्यारहवें सूत्र का अर्थ हुआ।

ओम ज्ञानावरणवेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् अध्रुव है, कथंचित् ओज है और कथंचित् युग्म है। इस प्रकार विशिष्ट पद के छह अथवा सात भंग हैं (६)।

यह बारहवें सूत्र का अर्थ हुआ।

विशिष्ट ज्ञानावरणवेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् अध्रुव है, कथंचित् ओज है और कथंचित् युग्म है। इस प्रकार विशिष्ट पद के छह अथवा सात भंग हैं (६)।

यह तेरहवें सूत्र का अर्थ हुआ।

नोओम-नो विशिष्ट ज्ञानावरण वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है,

स्यात्सादिका, स्यादध्रुवा, स्यादोजा, स्याद् युग्मा।

एवमष्ट भंगा।(८)।

एषः चतुर्दशमसूत्रार्थः।

एतेषां पदानामंकविन्यासः—

१३।५।९।५।९।१०।१२।१२।१०।८।८।६।६।८।

अत्र गाथा— **तेरस पण णव पण णव दस दोवारस दसट्ठ अट्ठेव।**
छच्छक्कट्ठेव तहा सामण्णपदादि पदभंगा।।[१]

इतो विशेषः—

अस्मिन् सूत्रे श्रीवीरसेनाचार्यैः कथितं—

''ण च णिच्चणिगोदेसु वि अणादित्तं लब्भदि तत्थाणुक्कस्सपदाणं पल्लट्टणेण सादित्तुवलंभादो।[२]**''**

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिभिरपि स्पष्टीक्रियते—

अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलंक सुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति।।१९७।।

नित्यनिगोदलक्षणमनेन ज्ञातव्यम्। तत्कथम् ? यैर्निगोदजीवैः त्रसानां द्वीन्द्रियादीनां परिणामः—पर्यायः, कदाचिदपि—प्रायेण न प्राप्तः ते जीवा अनन्तानन्ता अनादिसंसारे निगोदभवमेवानुभवन्तो नित्यनिगोदसंज्ञाः

कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् अध्रुव है, कथंचित् ओज है और कथंचित् युग्म है। इस प्रकार आठ भंग हैं (८) ।

यह चौदहवें सूत्र का अर्थ हुआ।

इन पदों का अंक विन्यास-१३।५।९।५।९।१०।१२।१२।१०।८।८।६।६।८

यह उपयोगी गाथा द्रष्टव्य है—

गाथार्थ—तेरह, पाँच, नौ, पाँच, नौ, दस, दो बार बारह, दस, आठ, आठ, छह, छह तथा आठ ये सामान्य पद आदि के पदभंग हैं।।

यहाँ कुछ विशेष कहते हैं—

इस सूत्र में श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है—

''नित्यनिगोदिया जीवों में भी अनादिपना नहीं पाया जाता है, क्योंकि वहाँ अनुत्कृष्ट पदों के पलटने से सादित्व पाया जाता है।''

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्यदेव ने भी इस विषय को गोम्मटसारजीवकांड में स्पष्ट किया है—

गाथार्थ—ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं जिन्होंने त्रसों की पर्याय अभी तक कभी भी नहीं पाई है और जो निगोद अवस्था में होने वाले दुर्लेश्यारूप परिणामों से अत्यन्त अभिभूत रहने के कारण निगोदस्थान को कभी भी नहीं छोड़ते हैं।।१९७।।

इस गाथा से नित्यनिगोद का लक्षण जानना चाहिए। वह किस प्रकार है ? सो कहते हैं—जिन निगोद जीवों ने दो इन्द्रिय आदि त्रसों के परिणाम अर्थात् पर्याय को कभी भी प्रायः करके प्राप्त नहीं किया, वे अनन्तानन्त जीव अनादिकाल से निगोद भव को ही भोगते हुए सर्वदा नित्यनिगोद संज्ञा वाले होते हैं।

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित), पु. १०, पृ. २९। २. षट्खण्डागम धवला पुस्तक १०, पृ. २४।

सर्वदा सन्ति। किं विशिष्टाः ? भावकलंकसुप्रचुराः—भावस्य—निगोदपर्यायस्य कलंकेन तद्योग्यकषायोदया-विर्भावितदुर्लेश्यालक्षणसंक्लेशेन प्रचुराः—अत्यन्तं संघटिताः। एवंविधनित्यनिगोदजीवाः निगोदवासं निगोदभवस्थितिं कदाचिदपि न मुञ्चन्ति। तेन कारणेन निगोदभवस्य आद्यन्तरहितत्वादनन्तानन्तजीवानां नित्यनिगोदत्वं समर्थितं जातम्। नित्यविशेषणेन पुनरनित्यनिगोदाः चतुर्गतिनिगोदरूपसादिसान्तनिगोदभवयुता केचन जीवाः सन्तीति सूचितं ज्ञातव्यम्। णिच्चचतुग्गणिगोदेत्यादौ परमागमे निगोदजीवानां द्वैविध्यस्य सुप्रसिद्धत्वात्। एकदेशाभाव-विशिष्टसकलार्थवाचिना ''प्रचुरशब्देन'' कदाचिदष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यन्तरे चतुर्गतिजीवराशितो निर्गतेषु अष्टोत्तरषट्शतजीवेषु मुक्तिं गतेषु तावन्तो जीवा नित्यनिगोदभवं त्यक्त्वा चतुर्गतिभवं प्राप्नुवन्तीत्ययमर्थः प्रतिपादितो बोद्धव्यः[१]।

अनेन एतज्ज्ञायते नित्यनिगोदा अपि कदाचित् नित्यनिगोदभवं परित्यज्य चतुर्गतिभवं प्राप्तुं शक्नुवन्ति इति।

अत्र श्रीवीरसेनाचार्यैः एवमेव कथितं वर्तते 'ते अनादिका अपि सादिका सन्ति' इति।

अधुना सप्तकर्मणामपि उत्कृष्टादिरूपेण व्यवस्थाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति —

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—यथा ज्ञानावरणीयस्य पदमीमांसा कृता तथा शेषसप्तानां कर्मणां कर्तव्या, विशेषाभावात्।

उनमें क्या विशेषता पाई जाती है ?

वे भाव अर्थात् निगोद पर्याय के कलंक अर्थात् उसके योग्य कषाय के उदय से प्रकट हुई अशुभ लेश्यारूप संक्लेश से प्रचुर अर्थात् अत्यन्त संबद्ध होते हैं। इस प्रकार के नित्यनिगोद जीव निगोदवास अर्थात् निगोद की भवस्थिति को कभी भी नहीं छोड़ते। इस कारण से निगोद भव के आदि और अन्त से रहित होने से अनन्तानन्त जीवों के नित्यनिगोदपने का समर्थन होता है। नित्य विशेषण से यह सूचित होता है कि चतुर्गति निगोदरूप सादि-सान्त निगोद भव वाले कुछ जीव अनित्यनिगोद होते हैं। 'णिच्चचदुग्गतिणिगोद' इत्यादि परमागम में निगोद जीवों के दो भेद सुप्रसिद्ध हैं। एकदेश के अभाव से विशिष्ट सकल अर्थ के वाचक प्रचुर शब्द से यह अर्थ प्रतिपादित हुआ जानना कि कदाचित् छह महीना आठ समय के भीतर चतुर्गति राशि से निकलकर छह सौ आठ जीवों के मुक्ति जाने पर उतने ही जीव नित्यनिगोद भव को छोड़कर चतुर्गति भव को प्राप्त करते हैं यह अर्थ प्रतिपादित किया है ऐसा जानना चाहिए।

इससे यह ज्ञात होता है कि नित्यनिगोद जीव भी कदाचित् नित्यनिगोद की पर्याय को छोड़कर चारों गतियों में जन्म धारण कर सकते हैं।

यहाँ श्री वीरसेनाचार्य ने यही कहा है कि "वे अनादिक जीव भी सादिक हैं।"

अब सात कर्मों की भी उत्कृष्ट आदि रूप से व्यवस्था बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार सात कर्मों के उत्कृष्ट आदि पद होते हैं।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जैसे पूर्वसूत्र में ज्ञानावरण कर्म की पदमीमांसा की गई है वैसे ही शेष सात कर्मों की पदमीमांसा करनी चाहिए, क्योंकि इनमें और कोई विशेष बात नहीं है।

---

१. गोम्मटसार जीवकाण्ड टीका-जीवतत्त्वप्रदीपिका।

एवं द्वितीयेऽन्तरस्थले त्रयोदशभेदप्ररूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

एवमन्तर्गर्भितौजानुयोगद्वारा पदमीमांसा समाप्ता।

अत्र द्वितीयस्थले अन्तरस्थलानि पञ्च विभक्तानि सन्ति। तद्यथा—

उत्कृष्टपदे ज्ञानावरणीयवेदना, उत्कृष्टपदे आयुर्वेदना, जघन्यपदे ज्ञानावरणीयवेदना, जघन्या वेदनीयवेदना, जघन्यायुर्वेदना इति। एषु सूत्राणि अष्टदशोत्तर शतानि सन्ति।

अधुना स्वामित्वप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे।।५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**स्वामित्वं द्विविधं—जघन्यपदरूपमुत्कृष्टपदरूपं च। अस्मिन् सूत्रे 'पदे' इति नैषा सप्तमी विभक्तिः, किन्तु प्रथमा चैव एकारादेशे सति 'पदे' इति दृश्यते। पदशब्दः स्थानवाचको गृहीतव्यः। जघन्यं पदं यस्य स्वामित्वस्य तज्जघन्यपदं। उत्कृष्टं पदं यस्य स्वामित्वस्य तदुत्कृष्टपदं। न च जघन्योत्कृष्टस्वामित्वाभ्यां व्यतिरिक्तमन्यत्स्वामित्वमस्ति, अनुपलंभात्।**

इस प्रकार द्वितीय अन्तरस्थल में तेरह भेदों की प्ररूपणा करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार ओजानुयोगद्वारगर्भित पदमीमांसा समाप्त हुई।

विशेषार्थ— पदमीमांसा का मतलब है पदों का विचार करना। जिसमें उत्कृष्ट आदि पदों का विचार किया जाता है उसे पदमीमांसा अनुयोगद्वार कहते हैं। प्रकृत में मुख्यता से ज्ञानावरण कर्म की अपेक्षा उत्कृष्ट आदि तेरह पदों का विचार किया गया है। यद्यपि सूत्रकार ने कुल उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इन चार पदों का ही निर्देश किया है, पर देशामर्षक भाव से इनके अतिरिक्त सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, ओज, युग्म, ओम, विशिष्ट और नोओम-नोविशिष्ट, ये नौ पद और लिये गये हैं, इस प्रकार कुल तेरह पद मिलाकर इनका ज्ञानावरण कर्मद्रव्य की अपेक्षा विचार किया गया है। सर्वप्रथम तो यह बतलाया गया है कि ज्ञानावरण कर्म में ये तेरह पद कैसे घटित होते हैं। फिर इसके बाद ज्ञानावरण कर्म को उत्कृष्ट आदि पदों में से एक-एक रूप स्वीकार करके उसमें अन्य पद कहाँ कितने संभव हैं, यह बतलाया गया है और इस प्रकार इतने विवेचन के बाद अन्य सात कर्मों की भी इसी प्रकार प्ररूपणा करने की सूचना करके पदमीमांसा प्रकरण समाप्त किया गया है।

यहाँ द्वितीय स्थल में पाँच अन्तरस्थल विभक्त हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. उत्कृष्टपद में ज्ञानावरणीय वेदना २. उत्कृष्ट पद में आयुवेदना ३. जघन्य पद में ज्ञानावरणीय वेदना ४. जघन्य वेदनीयवेदना और ५. जघन्य आयुवेदना। इन पाँचों अन्तरस्थलों में एक सौ अठारह सूत्र हैं।

अब स्वामित्व का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व दो प्रकार का है—जघन्यपदविषयक और उत्कृष्टपदविषयक।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— स्वामित्व के दो भेद हैं—जघन्यपदरूप और उत्कृष्टपदरूप। इस सूत्र में 'पदे' यह सप्तमी विभक्ति नहीं है, किन्तु प्रथमा विभक्ति ही है और इसमें एकार आदेश होने से 'पदे' ऐसा रूप देखा जाता है। यहाँ पद शब्द स्थानवाचक ग्रहण करना चाहिए। जिस स्वामित्व का जघन्य पद है वह जघन्यपद कहलाता है और जिस स्वामित्व का उत्कृष्ट पद है वह उत्कृष्टपद कहलाता है और जघन्य व उत्कृष्ट स्वामित्व को छोड़कर दूसरा कोई स्वामित्व है नहीं, क्योंकि वह पाया नहीं जाता है।

अत्र कश्चिदाह — अजघन्यानुत्कृष्टद्रव्ययोः स्वामित्वेन सह चतुर्विधं स्वामित्वं किन्नोच्यते ?

आचार्यः समाधत्ते — नैतद् वक्तव्यं, अजघन्यानुत्कृष्टद्रव्यस्वामित्वे भण्यमानेऽपि जघन्योत्कृष्टविधानं मुक्त्वान्येन प्रकारेण स्वामित्वप्ररूपणानुपपत्तेः। तस्माद् द्विविधं चैव स्वामित्वमित्युक्तम्।

अथवा 'जहण्णपदे उक्कस्सपदे' इति सप्तमीनिर्देशो गृहीतव्यः। तेन जघन्यपदे एकं स्वामित्व-मुत्कृष्टपदे अपरं स्वामित्वं, एवं द्विविधं एव स्वामित्वमिति वक्तव्यम्।

अधुना स्वामित्वापेक्षया उत्कृष्टपदप्रकरणनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया कस्स ?।।६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **उत्कृष्टपदे यत् स्थितं स्वामित्वं तेनानुगमं ज्ञानावरणीयस्य करिष्यन्त्याचार्यदेवाः —**

ज्ञानावरणीयवेदनावचनं शेषवेदनाप्रतिषेधफलं। 'दव्वदो' इति निर्देशः क्षेत्रादिप्रतिषेधफलं। 'उक्कस्स' निर्देशो जघन्यादिप्रतिषेधफलः। एतदाशंकासूत्रं वर्तते, पृच्छायाः कारणाभावात्।

अधुना पृथिवीकायिकजीवस्य कर्मस्थितिनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

जो जीवो बादरपुढवीजीवेसु बेसागरोवमसहस्सेहिं सादिरेगेहि ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो।।७।।

यहाँ कोई शंका करता है कि — अजघन्य और अनुत्कृष्ट द्रव्य के स्वामित्व के साथ चार प्रकार का स्वामित्व क्यों नहीं कहा गया है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अजघन्य और अनुत्कृष्ट द्रव्य के स्वामित्व का कथन करने पर भी जघन्य और उत्कृष्ट विधान को छोड़कर अन्य प्रकार से स्वामित्व की प्ररूपणा नहीं बनती है। इस कारण सूत्र में दो प्रकार का ही स्वामित्व है, ऐसा कहा है।

अथवा 'जहण्णपदे उक्कस्सपदे' यह सप्तमी विभक्ति का निर्देश ग्रहण करना चाहिए। इसलिए जघन्य पद में एक स्वामित्व है और उत्कृष्ट पद में दूसरा स्वामित्व है, इस तरह दो प्रकार का ही स्वामित्व है, ऐसा कहना चाहिए।

अब स्वामित्व की अपेक्षा उत्कृष्टपद प्रकरण का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

स्वामित्व की अपेक्षा उत्कृष्टपदविषयक ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्य से उत्कृष्ट किसके होती है ?।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उत्कृष्ट पद में जो स्वामित्व स्थित है, उसके साथ ज्ञानावरणीय का अनुगम आचार्यदेव करेंगे —

ज्ञानावरणीयवेदना इस कथन का फल शेष वेदनाओं का प्रतिषेध करना है। 'द्रव्य से' इस निर्देश का फल क्षेत्रादि का प्रतिषेध करना है। 'उत्कृष्ट' पद के निर्देश का फल जघन्य आदि का प्रतिषेध करना है। यह आशंकासूत्र है, क्योंकि यहाँ पृच्छा का कोई कारण नहीं है।

अब पृथिवीकायिक जीव की कर्मस्थिति का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

जो जीव बादरपृथिवीकायिक जीवों में कुछ अधिक दो हजार सागरोपम से कम कर्मस्थितिप्रमाण काल तक रहा हो। उसके ज्ञानावरणीय द्रव्य की उत्कृष्ट वेदना होती है।।७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यो जीवो बादरपृथ्वीकायिकेषु जीवेषु सातिरेकद्विसहस्रसागरोपमन्यून-कर्मस्थितिप्रमाणकालपर्यंतं तिष्ठन्नास्ते तस्य ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्येण उत्कृष्टं भवति।**

अत्र कश्चिदाशंकते—जीव एव उत्कृष्टद्रव्यस्य स्वामी भवतीति कथं ज्ञायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—नैतद् वक्तव्यं, किं च मिथ्यात्वासंयमकषाययोगानां कर्मास्रवाणामन्यत्राभावात्। तेन 'जो जीवो' इति जीवोऽत्र सूत्रे विशेष्यं वर्तते, उपरि उच्यमानानि सर्वाणि विशेषणानि सन्ति। बादरपृथिवी द्विविधा—जीवाजीवभेदेन। तत्र बादरपृथ्वीजीवेषु अन्तर्मुहूर्तन्यूनत्रसस्थितेः हीनां कर्मस्थितिप्रमाणां स्थितः स जीव उत्कृष्टद्रव्यस्वामी भवति।

कुत एतत् ?

सूक्ष्मैकेन्द्रिययोगाद् बादरैकेन्द्रिययोगस्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

अप्कायिकादिबादरजीवान् परिहृत्य बादरपृथिवीकायिकेषु एव किमर्थं भ्रामितः ?

नैतद् वक्तव्यं, किं च—उपपादैकान्तानुवृद्धियोगान् परिहृत्य पृथिवीकायिकेषु देशोनद्वाविंशतिवर्षसहस्राणि परिणामयोगैः सह प्रायेण अवस्थानोपलंभात्।

कश्चिदाशंकते—

दशवर्षसहस्रेभ्योऽधिकायुष्कपृथिवीकायिकेषु बहुवारं भ्रामयित्वा तत्रोत्पत्तेः संभवाभावे सप्त-त्रि-दशवर्षसहस्रायुष्केषु अप्कायिक-वायुकायिक-वनस्पतिकायिकेषु किन्नोत्पादितः ?

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जो जीव बादरपृथ्वीकायिक जीवों में कुछ अधिक दो हजार सागरोपम से न्यून—कम कर्मस्थितिप्रमाण कालपर्यन्त रहा हो, उसके ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्य से उत्कृष्ट होती है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

जीव ही उत्कृष्ट द्रव्य का स्वामी होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगरूप कर्मों के आस्रव अन्यत्र नहीं पाये जाते हैं। इसलिए इस सूत्र में जीव को विशेष्य किया है और आगे कहे जाने वाले सब इसके विशेषण हैं।

बादर पृथिवी जीव और अजीव के भेद से दो प्रकार की है। उनमें से बादर पृथिवीकायिक जीवों में अन्तर्मुहूर्त कम त्रस स्थिति से हीन कर्मस्थिति प्रमाणकाल तक जो जीव रहा है वह उत्कृष्टद्रव्य का स्वामी होता है।

प्रश्न—ऐसा क्यों है ?

उत्तर—क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रियों के योग से बादर एकेन्द्रियों का योग असंख्यातगुणा पाया जाता है।

शंका—जलकायिक आदि बादर जीवों का परिहार करके बादर पृथिवीकायिक जीवों में ही किसलिए घुमाया है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उपपाद और एकान्तानुवृद्धि योगों को छोड़कर पृथिवीकायिकों में कुछ कम बाईस हजार वर्ष तक परिणामयोगों के साथ प्रायः अवस्थान पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—दस हजार वर्षों से अधिक आयु वाले पृथिवीकायिकों में बहुत बार घुमाकर जब वहाँ पुनः उत्पन्न कराना संभव न हो तब सात हजार, तीन हजार व दस हजार वर्ष की आयु वाले अप्कायिक, वायुकायिक व वनस्पतिकायिक जीवों में क्यों नहीं उत्पन्न कराया है ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, तेषां पर्याप्तापर्याप्तयोगात् पृथिवीकायिकपर्याप्तापर्याप्तयोगस्य असंख्येयगुणत्वात्।

एतत्कुतो ज्ञायते ?

'बादरपुढवीकाइएसु चेव अच्छिदो' इति नियमस्यान्यथानुपपत्तेः। अथवा प्रधाननिर्देशोऽयं तेनान्यत्रापि समयाविरोधेन स्थितः इति द्रष्टव्यं।

बादर पृथिवीकायिकेषु सकलकर्मस्थितिकालपर्यंतं किन्न हिंडापितः ?

न, त्रसकायिकेषु एकेन्द्रियेभ्योऽसंख्यातगुणितयोगायुष्केषु संक्लेशबहुलेषु भ्रामयित्वा तस्माद् असंख्यातगुण- द्रव्यसंचयस्य तत्रैवावस्थितस्यानुपलंभात्।

यद्येवं तर्हि त्रसकायिकेषु चैव कर्मस्थितिकालपर्यंतं किन्न हिंडापितः ?

न, सातिरेक-द्विसहस्रसागरोपमकालं मुक्त्वा तत्र त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपमकालमवस्थानाभावात्।

त्रसकायिकेषु स्वकस्थितिकालस्याभ्यन्तरे उत्कृष्टद्रव्यसंचयं कृत्वा पुनः बादरपृथिवीकायिकेषु उत्पद्य तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः त्रसस्थितिं भ्रमित्वा एकेन्द्रियेषु उत्पाद्य एवं कर्मस्थितिपर्यंतं किन्न भ्रामितः ?

न, त्रसस्थितिं समाप्य एकेन्द्रियेषु प्रविष्टस्य त्रसेषु संचितद्रव्यमगालयित्वा निर्गमनाभावात्।

एतत्कुतो ज्ञायते ?

'तसट्ठिदीए ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो' इति सूत्रनिर्देशात्।

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उनके पर्याप्त व अपर्याप्त योग से पृथ्वीकायिक जीवों का पर्याप्त व अपर्याप्त योग असंख्यातगुणा है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—'बादर पृथिवीकायिकों में ही रहा' यह नियम अन्यथा नहीं बन सकता है। अथवा यह प्रधान निर्देश है इसलिए 'अन्य जीवों में भी आगम के अविरोधरूप से रहा' ऐसा इस सूत्र का आशय समझना चाहिए।

शंका—बादर पृथिवीकायिकों में सम्पूर्ण कर्मस्थिति प्रमाणकाल तक क्यों नहीं भ्रमण कराया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि त्रस जीवों में एकेन्द्रियों से योग और आयु असंख्यातगुणी होती है और वे बहुत संक्लिष्ट होते हैं इसलिए पृथिवीकायिकों में घुमाने के पश्चात् त्रसों में घुमाया है। यदि एकेन्द्रियों में ही रखते तो इनकी अपेक्षा त्रसों में जो असंख्यातगुणे द्रव्य का संचय होता है, वह नहीं प्राप्त होता।

शंका—यदि ऐसा है तो त्रसकायिकों में ही कर्मस्थिति प्रमाणकाल तक क्यों नहीं घुमाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ कुछ अधिक दो हजार सागरोपमकाल तक ही अवस्थान हो सकता है, पूरे तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल तक अवस्थान नहीं हो सकता है।

शंका—त्रसकायिकों में अपनी स्थितिप्रमाण काल के भीतर उत्कृष्ट द्रव्य का संचय करके पुनः बादर पृथिवीकायिकों में उत्पन्न होकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर फिर त्रसस्थिति काल तक त्रसों में भ्रमण करके एकेन्द्रियों में उत्पन्न कराते हैं। इस तरह कर्मस्थिति प्रमाणकाल तक क्यों नहीं घुमाया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि त्रसस्थिति को पूर्ण करके जो जीव एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं उनका त्रसों में संचित हुए द्रव्य को बिना गाले निकलना नहीं होता है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—यह त्रसस्थिति से कम कर्मस्थिति प्रमाण काल तक रहा इसी सूत्र के निर्देश से जाना जाता है।

अधुना पृथिवीकायिकजीवपरिणमननिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तत्थ य संसरमाणस्स बहुवा पज्जत्तभवा थोवा अपज्जत्तभवा भवंति।।८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका —**उत्पत्तिवारा भवाः, पर्याप्तानां भवाः पर्याप्तभवाः, ते बहवो भवन्ति। पर्याप्तेषूत्पन्नवारशलाका बहव इत्युक्तं भवति।**

कानपेक्ष्य बहवः पर्याप्तभवाः ?

क्षपितकर्मांशिक-क्षपितघोलमान-गुणितघोलमानजीवानां पर्याप्तभवापेक्षया गुणितकर्मांशिकजीवानां पर्याप्तभवा बहवो भवन्ति। अपर्याप्तभवाः स्तोका भवन्ति।

केभ्यः स्तोका इति चेत् ?

क्षपितकर्मांशिक-क्षपितघोलमान-गुणितघोलमानजीवानामपर्याप्तभवेभ्यः स्तोकाः भवन्ति।

पुनः कश्चिदाशंकते —

गुणितकर्मांशिकापर्याप्तभवेभ्यस्तेषामेव पर्याप्तभवा बहवः सन्ति इति किन्न भण्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद् वक्तव्यं, बादरपृथिवीकायिकापर्याप्तभवशलाकाभ्यः पर्याप्तभवशलाकानां बहुत्वस्यानुक्तसिद्धेः।

कुतो बहुत्वं ज्ञायते ?

अब पृथिवीकायिक जीवों के परिणमन का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

वहाँ परिभ्रमण करने वाले जीव के पर्याप्त भव बहुत और अपर्याप्तभव थोड़े होते हैं।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उत्पत्ति के वारों को 'भव' संज्ञा है और पर्याप्तक जीवों के भव 'पर्याप्तभव' कहलाते हैं, वे पर्याप्तभव बहुत होते हैं। पर्याप्तों में उत्पन्न होने की भवशलाकाएँ बहुत हैं यह सूत्र के कथन का अभिप्राय है।

शंका — किनकी अपेक्षा पर्याप्त भव बहुत होते हैं ?

समाधान — क्षपित कर्मांशिक, क्षपित घोलमान और गुणित घोलमान जीवों के पर्याप्तभवों की अपेक्षा गुणित कर्मांशिक जीवों के पर्याप्त भव बहुत हैं। अपर्याप्तभव थोड़े हैं।

शंका — अपर्याप्त भव किनसे थोड़े हैं ?

समाधान — क्षपित कर्मांशिक, क्षपित घोलमान और गुणित घोलमान जीवों के अपर्याप्त भवों से ये भव थोड़े होते हैं।

पुनः कोई शंका करता है कि — गुणितकर्मांशिक के अपर्याप्त भवों से उसके ही पर्याप्त-भव बहुत हैं, ऐसा क्यों नहीं कहा ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तभव शलाकाओं से पर्याप्तभव शलाकाएँ बहुत हैं, यह बिना कहे भी सिद्ध है।

शंका — उनका बहुत्व किस प्रमाण से जाना जाता है ?

''बादरणिगोदपज्जत्ताणं भवट्ठिदी संखेज्जवस्ससहस्समेत्ता अपज्जत्ताणमंतोमुहुत्तमेत्ता" इति कालानुयोगद्वार-सूत्राद् ज्ञायते।

पर्याप्तेष्वेव बहुशः किमर्थमुत्पादितः ?

अपर्याप्तयोगेभ्यः पर्याप्तयोगानामसंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

किमर्थं योगबहुत्वमिष्यते ?

नैतत्, योगात् प्रदेशबहुत्वसिद्धेः।

एतदपि कुतो ज्ञायते ?

'जोगा पयडि-पदेसा'' इति सूत्रादेव ज्ञायते।

अधुना पर्याप्तापर्याप्तानां कालनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

दीहाओ पज्जत्तद्धाओ रहस्साओ अपज्जत्तद्धाओ।।९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पर्याप्तानां काला-आयूंषि दीर्घा भवन्ति, अपर्याप्तानां काला ह्रस्वाः-स्तोकाः भवन्ति।**

पर्याप्तेषु उत्पद्यमानो जीवो दीर्घायुष्केष्वेवोत्पद्यते, अपर्याप्तेषूत्पद्यमानोऽल्पायुष्केष्वेवोत्पद्यते इत्यभिप्रायो भवति।

आयुर्बंधसमययोगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

समाधान—बादर निगोद पर्याप्तों की भवस्थिति संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है और अपर्याप्तों की अन्तर्मुहूर्त मात्र है' इस कालानुयोगद्वार के सूत्र से जाना जाता है।

शंका—पर्याप्तों में ही बहुत बार क्यों उत्पन्न कराया है ?

समाधान—चूँकि अपर्याप्तकों के योगों से पर्याप्तकों के योग असंख्यातगुणे पाये जाते हैं, अतः उन्हीं में बहुत बार उत्पन्न कराया है।

शंका—योगों की बहुलता क्यों अभीष्ट है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि योग से प्रदेशों की अधिकता सिद्ध होती है।

शंका—वह भी किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—''योग से प्रकृति और प्रदेश बंध होते हैं'' इस सूत्र से ही यह जाना जाता है।

अब पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का काल निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

पर्याप्तकाल दीर्घ और अपर्याप्तकाल थोड़े होते हैं।।९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पर्याप्त जीवों के काल अर्थात् आयु पर्याप्तकाल कहलाते हैं, वे दीर्घ—अधिक होते हैं। अपर्याप्त जीवों के काल अर्थात् आयु ह्रस्व—कम होते हैं।

पर्याप्तकों में उत्पन्न होता हुआ दीर्घ आयु वालों में ही उत्पन्न होता है और अपर्याप्तकों में उत्पन्न होता हुआ अल्प आयु वालों में ही उत्पन्न होता है, यह उक्त सूत्र का अभिप्राय है।

अब आयुबंध के समय का योग निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गेण जहण्णएण जोगेण बंधदि।।१०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अपर्याप्तपर्याप्तोपपादैकान्तानुवृद्धियोगानां परिहरणार्थमायुर्बंधप्रायोग्यजघन्य-परिणामयोगग्रहणार्थं च तत्प्रायोग्यजघन्ययोगग्रहणं कृतं। कर्मस्थितिप्रथमसमयप्रभृति यावत् तस्याः चरमसमय इति तावद् गुणितकर्मांशिकजीवस्य योग्य योगस्थानानां पंक्तेः देशादिनियमेनावस्थितायाः खड्गधारासदृशः जघन्योत्कृष्टयोगाः सन्ति। तत्र आयुर्बंधयोग्यजघन्ययोगैश्चैवायुर्बध्नाति इत्युक्तं भवति।**

किमर्थं जघन्ययोगेनैव आयुर्बंधः कार्यते ?

ज्ञानावरणस्य उत्कृष्टसंचयार्थं नान्यथा उत्कृष्टसंचयः इति ज्ञातव्यः।

निषेकानां पदनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

उवरिल्लीणं ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे।।११।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् सूत्रे 'उक्कस्सपदे' उत्कृष्टपदं 'जहण्णपदे' जघन्यपदं इति प्रथमा विभक्तिर्ज्ञातव्या। क्षपितकर्मांशिकजीवस्य क्षपितघोलमान-गुणितघोलमानकर्मणोः उत्कर्षणात् एतस्योत्कर्षणं**

सूत्रार्थ—

जब-जब वह आयु को बांधता है, तब-तब आयु बंध के योग्य जघन्य परिणामयोग से ही आयु को बांधता है।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— अपर्याप्त और पर्याप्त भवसंबंधी उपपाद और एकान्तानुवृद्धि योगों का निषेध करने के लिए तथा आयु बंध के योग्य जघन्य परिणामयोग को ग्रहण करने के लिए उसके योग्य जघन्य योग का ग्रहण किया है। कर्मस्थिति के प्रथम समय से लेकर उसके अन्तिम समय तक गुणितकर्मांशिक जीव के योग्य योगस्थानों के देशादि के नियम से खड्गधारा के समान एक पंक्ति में अवस्थित जघन्य व उत्कृष्ट दोनों प्रकार के योग पाये जाते हैं। उनमें से आयु बंध के योग्य जघन्य योगों से ही आयु को बांधता है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

शंका— जघन्य योग से ही आयु का बंध क्यों कराया जाता है ?

समाधान— ज्ञानावरण कर्म का उत्कृष्ट संचय कराने के लिए जघन्य योग से ही आयु का बंध कराया जाता है, अन्यथा उत्कृष्ट संचय नहीं हो सकता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब आयु निषेकों के पद निरूपण हेतु सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

उपरिम स्थितियों के निषेक का उत्कृष्ट पद होता है और अधस्तन स्थितियों के निषेक का जघन्यपद होता है।।११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— इस सूत्र में "उक्कस्सपदे" से उत्कृष्टपद और "जहण्णपदे" से जघन्यपद ऐसी प्रथमाविभक्ति जानना चाहिए। क्षपितकर्मांशिक जीव के क्षपित घोलमान और गुणित घोलमान कर्मों के

बहुकं भवति। एतेषामेव त्रयाणामपकर्षणात् अनेनापकर्ष्यमाणद्रव्यं स्तोकं इत्युक्तं भवति।

अत्र कश्चिदाशंकते—'बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसं गदो'' इति सूत्रात् एव स्थितिबंधबहुत्वमुत्कर्षणाबहुत्वं च सिद्धं ततो निरर्थकमिदं सूत्रमिति ?

अत्र आचार्यदेवः समाधत्ते—भवति निरर्थकं यदि कषायमात्रमुत्कर्षणस्य कारणं, किन्तु तीव्रमिथ्यात्वं अर्हत्सिद्धबहुश्रुताचार्याणामत्यासादना तीव्रकषायश्च उत्कर्षणकारणम् तेन न निरर्थकमिदं सूत्रमिति।

तात्पर्यमेतत्—ज्ञानावरणकर्मणामुत्कर्षणकारणं तीव्रमिथ्यात्वादिकं भवति।

अथवा 'उपरिमस्थितीनां निषेकस्य' एतस्य सूत्रस्य एवमर्थप्ररूपणा कर्तव्या। तद्यथा— बध्यमानोत्कर्ष्यमाणप्रदेशाग्रं निक्षिप्यमाणो गुणितकर्मांशिको जीवोऽन्तरंगकारणनिमित्तेन प्रथमायां स्थितौ स्तोकं निक्षिपति, द्वितीयायां विशेषाधिकं, तृतीयायां विशेषाधिकं एवं विशेषाधिकक्रमेण निक्षिपति यावदुत्कृष्टस्थितिरिति।

एषा निषेकरचना गुणितकर्मांशिकस्य भवतीति कथं ज्ञायते ?

एतस्मादेव सूत्राद् ज्ञायते।

उक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण यत् ''ण च पमाणं पमाणंतरमवेक्खदे, अणवत्थापसंगादो[१]।।''

उत्कर्षण से इसका उत्कर्षण बहुत है और उन्हीं तीनों के अपकर्षण से इसके द्वारा अपकर्षित किया जाने वाला द्रव्य थोड़ा है, ऐसा इस सूत्र का अभिप्राय है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

''बहुत-बहुत बार संक्लेश को प्राप्त हुआ'' इस सूत्र से ही स्थितिबंध की अधिकता और उत्कर्षण की अधिकता सिद्ध है अतः यह सूत्र निरर्थक है ?

यहाँ आचार्य समाधान देते हैं कि—

यदि कषाय मात्र ही उत्कर्षण का कारण होता तो वह सूत्र निरर्थक होता। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि तीव्र मिथ्यात्व व अरहंत, सिद्ध, बहुश्रुत एवं आचार्य की अत्यासादना अर्थात् आसादन और तीव्र कषाय उत्कर्षण का कारण है। इस कारण यह सूत्र निरर्थक नहीं है।

तात्पर्य यह है कि—ज्ञानावरण कर्मों के उत्कर्षण के कारण तीव्र मिथ्यात्व आदिक होते हैं।

अथवा ''उपरिम स्थितियों के निषेक का'' इस सूत्र के अर्थ का इस प्रकार कथन करना चाहिए। वह इस प्रकार है—बध्यमान और उत्कर्षमाण प्रदेशाग्र को निक्षिप्त करता हुआ गुणित-कर्मांशिक जीव अन्तरंग कारणवश प्रथम स्थिति में थोड़े प्रक्षिप्त करता हैं। द्वितीय स्थिति में विशेष अधिक प्रक्षिप्त करता है। तृतीय स्थिति में विशेष अधिक प्रक्षिप्त करता है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति के प्राप्त होने तक विशेष अधिक के क्रम से प्रदेशाग्रों का प्रक्षेप करता है।

शंका—यह निषेक रचना गुणितकर्मांशिक जीव के होती है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्र से जाना जाता है।

श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है कि ''एक प्रमाण दूसरे प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता है, क्योंकि ऐसा मानने पर अनवस्था दोष का प्रसंग आता है।''

---

१. षट्खंडागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. १०, पृ. ४३।

इदं सूत्रं बध्यमानप्रदेशानां रचनानिर्देशं न करोति, किन्तु उत्कर्ष्यमाणप्रदेशानां रचनां निर्दिशति, एवं व्याख्यानं किन्न क्रियते ?

न, किं च—बंधानुसारिण्या उत्कर्षणायाः पृथक्प्रदेशविन्यासानुपपत्तेः।

आशंकते कश्चित्—

प्रदेशविन्यासमभूत्वा शेषपुरुषाणां अपकर्षणोत्कर्षणापेक्षया गुणितकर्मांशिकस्य अपकर्षणोत्कर्षणयोरल्पबहुत्वज्ञापनार्थं एतत्सूत्रं कथं न भवेत् ?

न भवेत् किं च—''बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसं गदो'' इति सूत्रादेव एतस्यार्थस्य सिद्धेः।

अत्र श्रीमद्वीरसेनाचार्येण भण्यते—''ण च तित्थयरादीणमासादणालक्खणमिच्छत्तेण विणा तिव्वकसाओ होदि, अणुवलंभादो[१]।''

न चैवंविधः कषायस्तीव्रोत्कर्षणस्थितिबंधयोरनिमित्तकः, एतयोर्निष्कारणत्वप्रसंगात्। ततस्तीव्रसंक्लेशो विलोमप्रदेशविन्यासकारणं, मंदसंक्लेशोऽनुलोमविन्यासकारणमिति गृहीतव्यम्।

किंफला इयं प्रदेशरचना ?

बहुकर्मस्कंधसंचयफला।

संक्लेश-विशुद्धिभ्यामनुलोमश्चैव प्रदेशविन्यासः किन्न जायते ?

नैतत्, किं च—विरुद्धाणामेककार्यकारित्वविरोधात्। एष उच्चारणाचार्याभिप्रायः प्ररूपितः।

शंका—बंधने वाले प्रदेशों की रचना का निर्देश यह सूत्र नहीं करता है, किन्तु उत्कर्षण को प्राप्त होने वाले प्रदेशों की रचना का निर्देश करता है, ऐसा व्याख्यान क्यों नहीं करते हो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कर्षण बंध का अनुसरण करने वाला होता है, इसलिए उसमें दूसरे प्रकार से प्रदेशों की रचना नहीं बन सकती है।

पुनः कोई शंका करता है कि—

प्रदेशविन्यासविशेष के लिए न होकर शेष पुरुषों के अपकर्षण और उत्कर्षण की अपेक्षा गुणितकर्मांशिक के अपकर्षण और उत्कर्षण के अल्पबहुत्व को बतलाने के लिए यह सूत्र क्यों नहीं हो सकता है ?

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि "बहुत-बहुत बार बहुत संक्लेश को प्राप्त हुआ" इस सूत्र से ही उस अर्थ की सिद्धि हो जाती है। यहाँ श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं कि—"तीर्थंकरादिकों की आसादनारूप मिथ्यात्व के बिना तीव्र कषाय नहीं होती है, क्योंकि वैसा नहीं पाया जाता है। तथा इस प्रकार की कषाय स्थिति उत्कर्षण और स्थितिबंध की निमित्त न हो, सो भी नहीं हैं, क्योंकि वैसा होने पर उसके निष्कारण होने का प्रसंग आता है । इसलिए तीव्र संक्लेश विलोमरूप से प्रदेशविन्यास का कारण है और मंदसंक्लेश अनुलोमरूप से प्रदेशविन्यास का कारण है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

शंका—इस प्रदेश रचना का क्या फल है ?

समाधान—बहुत कर्मस्कंधों का संचय करना ही इसका फल है।

शंका—संक्लेश और विशुद्धि इन दोनों से अनुलोमरूप से ही प्रदेशविन्यास होता है, ऐसा क्यों नहीं मानते हो ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि विरुद्ध कारणों से एक कार्य होता है, ऐसा मानने में विरोध आता है। यह उच्चारणाचार्य का अभिप्राय कहा है।

---

१. षट्खंडागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. १०, पृ. ४३।

एतेन किं सिद्धं जातम् ?

प्रत्याख्यानजघन्यसत्कर्मिकजीवे मिथ्यात्वस्य स्वकजघन्यात् नरकगतेः असंख्यातभागाधिकत्वं सिद्धम्।

श्रीभूतबलिपूज्यपादस्य पुनरभिप्रायो विलोमविन्यासस्य गुणितकर्मांशिकत्वमनुलोमविन्यासस्य क्षपितकर्मांशिकत्वं कारणं, न संक्लेशविशुद्धी स्तः।

आशंका—पंचेन्द्रियाणां संज्ञिनां पर्याप्तानां ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-वेदनीय-अंतरायाणां त्रिसहस्र-वर्षप्रमाणकालं मुक्त्वा यत् प्रथमसमये प्रदेशाग्रं निषिक्तं तद्बहुकं, यद् द्वितीयसमये निषिक्तं प्रदेशाग्रं तद्विशेषहीनं। एवं नेतव्यं यावदुत्कर्षेण त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः इति कालविधाने उत्कृष्टस्थित्या अपि अनुलोमप्रदेशविन्यास-दर्शनात्। एतेन कालविधानसूत्रोद्दिष्टप्रदेशविन्यासेन कथमेतद् व्याख्यानं न बाध्यते?

न बाध्यते, किं च—गुणितघोलमानादिविषये वर्तमानेन सावकासेन कालसूत्रेण एतस्य व्याख्यानस्य बाधानुपपत्तेः।

उच्चारणाया इव भुजगारकालाभ्यन्तरे चैव गुणितत्वं किन्नोच्यते ?

न, अल्पतरकालात् गुणितभुजकारकालो बहुकं इत्युपदेशमवलम्ब्य एतस्य सूत्रस्य प्रवृत्तेः।

अधुना योगस्थानं बहुबारप्राप्तकरणार्थं सूत्रमवतार्यते —

बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि।।१२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अयं जीवः बहु-बहुवारं उत्कृष्टयोगस्थानानि प्राप्नोति।**

शंका—इससे क्या सिद्ध होता है ?

समाधान—इससे त्याग के बल से जघन्य सत्कर्म को प्राप्त हुए जीव के मिथ्यात्व का जो अपना जघन्य सत्व प्राप्त होता है उससे नरकगति में उसका सत्व असंख्यातवाँ भाग अधिक सिद्ध होता है।

श्री भूतबलि पूज्यपाद भट्टारक के अभिप्राय से विलोम विन्यास का कारण गुणितकर्मांशिकत्व और अनुलोम विन्यास का कारण क्षपितकर्मांशिकत्व है, न कि संक्लेश और विशुद्धि है।

आशंका—पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त जीवों के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्म के तीन हजार वर्ष प्रमाण आबाधा को छोड़कर जो प्रथम समय में प्रदेशाग्र निषिक्त होता है वह बहुत है। जो द्वितीय समय में प्रदेशाग्र निषिक्त होता है, वह विशेष हीन है। इस प्रकार उत्कृष्ट रूप से तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार काल विधान में उत्कृष्ट स्थिति का भी अनुलोमक्रम से प्रदेश विन्यास देखा जाता है। अतः इस कालविधान सूत्र में कहे गये प्रदेश विन्यास से यह व्याख्यान बाधित कैसे नहीं होता है ?

समाधान—बाधित नहीं होता है, क्योंकि गुणित घोलमान आदि के विषय में आये हुए काल सूत्र से इस व्याख्यान का बाधित होना संभव नहीं है।

शंका—उच्चारण के समान भुजगारकाल के भीतर ही गुणितत्व क्यों नहीं कहा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अल्पतरकाल से भुजगार काल बहुत है, इस उपदेश का अवलम्बन करके यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है।

अब योगस्थान को बहुत बार प्राप्त करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

बहुत-बहुत बार उत्कृष्टयोगस्थान को प्राप्त होता है।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह जीव बहुत-बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानों को प्राप्त करता है।

बहुवारं योगस्थानप्राप्तकरणे को लाभः ?

उत्कृष्टयोगस्थानैर्बहुप्रदेशागमनं भवति, योगात् प्रदेशो बहुकः आगच्छति इति वचनात्।

एतत्सूत्रं सामान्यं विषयीकरोति—उत्सर्गव्याख्यानं करोतीत्यर्थः। अतः आयुर्बंधकालं मुक्त्वान्यत्र प्रवर्तते।

अधुना संक्लेशपरिणामबहुवारं करोतीति प्ररूप्यते —

बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणामो भवदि।।१३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अयं जीवः बहु-बहुवारं संक्लेशपरिणामं प्राप्नोति।**

किमर्थं बहुशो बहुशो बहुसंक्लेशपरिणामाः प्राप्यन्ते ?

बहुद्रव्योत्कर्षणकारणार्थं उत्कृष्टस्थितिबंधकारणार्थं च बहु-बहु वारं संक्लेशपरिणामाः प्रापयिष्यन्ते।

उत्कृष्टस्थिरिरेव किमर्थं बंधाप्यते ?

अधस्तनगोपुच्छानां सूक्ष्मत्वविधानार्थं उपरि दूरमुत्क्षिप्तानां कर्मस्कंधानां उपशामना-निकाचनाकरणैः अपकर्षणनिवारणार्थं च उत्कृष्टस्थितिर्बन्धाप्यते।

एतादृशपरिभ्रमणफलदर्शनार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं संसरिदूण बादरतसपज्जत्तएसुववण्णो।।१४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतेन पूर्वोक्तकथितविधानेन कर्मस्कंधानां संचयकरणेन एकेन्द्रियेषु विगतत्रस-**

शंका—बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानों को प्राप्त करने में क्या लाभ है ?

समाधान—उत्कृष्ट योगस्थानों के द्वारा बहुत प्रदेशों का आगमन होता है, क्योंकि योग से बहुत प्रदेश आते हैं, ऐसा वचन है।

यह सूत्र सामान्य को विषय करता है अर्थात् उत्सर्ग का व्याख्यान करने वाला है, इसलिए वह आयु के बंधकाल को छोड़कर अन्यत्र प्रवृत्त होता है।

अब संक्लेशपरिणाम बहुत बार करता है, ऐसा प्ररूपण करते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव बहुत-बहुत बार बहुत संक्लेश परिणाम वाला होता है।।१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह जीव बहुत-बहुत बार—अनेकों बार संक्लेश परिणामों को प्राप्त करता है।

शंका—बहुत-बहुत बार बहुत संक्लेशरूप परिणामों को क्यों प्राप्त कराया जाता है ?

समाधान—बहुत द्रव्य का उत्कर्षण कराने के लिए और उत्कृष्ट स्थिति का बंध कराने के लिए बहुत-बहुत बार बहुत संक्लेशरूप परिणामों को प्राप्त कराया जाता है।

शंका—उत्कृष्ट स्थिति ही किसलिए बांधते हैं ?

समाधान—अधस्तन गोपुच्छों की सूक्ष्मता के विधान के लिए और ऊपर दूर उत्क्षिप्त कर्मस्कंधों के उपशामना व निकाचना करणों द्वारा अपकर्षण का निवारण करने के लिए उत्कृष्ट स्थिति का बंध कराया जाता है।

इस प्रकार के परिभ्रमण का फल प्रदर्शित करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

जीव इस प्रकार संसरण करके बादर त्रसपर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस पूर्व में कथित विधान से कर्मस्कंधों का संचय करता हुआ कोई

स्थितिं कर्मस्थितिप्रमाणकालपर्यंतं संसृत्य बादरत्रसपर्याप्तेषु उत्पद्यते। सूत्रे त्रसनिर्देशः स्थावरप्रतिषेधफलो ज्ञातव्यः।

अत्र स्थावरत्वं किमिति प्रतिषिध्यते ?

स्थावरयोगादसंख्यातगुणेन त्रसोत्कृष्टयोगेन कर्मसंकलनार्थं स्थावरकर्मस्थितेः संख्यातगुणस्थितिषु कर्मस्कंधान् विरलय्य गोपुच्छानां सूक्ष्मत्वविधानार्थं उत्कर्षणं कृत्वा द्वाभ्यां करणाभ्यां अपकर्षणनिराकरणार्थं च स्थावराणां प्रतिषेधः कृतो भवति।

सूत्रे पर्याप्तनिर्देशोऽपर्याप्तप्रतिषेधफलो भवति।

किमर्थमपर्याप्तभावः प्रतिषिध्यते ?

त्रिविधापर्याप्तयोगेभ्यः असंख्यातगुणैः त्रिविधपर्याप्तयोगैः कर्मसंकलनार्थं अधस्तननिषेकानां सूक्ष्मरूपेण रचनाकरणार्थं उपशामना-निकाचनाभ्यां अपकर्षणप्रतिषेधार्थं चापर्याप्तकानां प्रतिषेधः क्रियते।

सूत्रे बादर शब्दस्य निर्देशः सूक्ष्मत्वप्रतिषेधफलः।

अत्र कश्चिदाशंकते—

स्थावरप्रतिषेधेनैव सूक्ष्मत्वं प्रतिषिद्धमन्यत्र सूक्ष्माणामभावादिति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतत्, किं च—सूक्ष्मनामकर्मोदयजनितसूक्ष्मत्वेन विना विग्रहगतौ वर्तमानत्रसाणां सूक्ष्मत्वाभ्युपगमात्।

जीव एकेन्द्रियों में त्रसस्थिति से रहित कर्मस्थिति प्रमाणकाल तक परिभ्रमण करके बादर त्रसपर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। सूत्र में जो त्रस का निर्देश किया है वह स्थावर जीवों के प्रतिषेध का फल जानना चाहिए।

शंका—यहाँ स्थावरपने का प्रतिषेध क्यों किया गया है ?

समाधान—स्थावरयोग से असंख्यातगुणे त्रसों के उत्कृष्ट योग द्वारा कर्मों का संचय करने के लिए स्थावरों की कर्मस्थितियों में संख्यातगुणी कर्मस्थितियों में कर्मस्कंधों का विरलन करके गोपुच्छों की सूक्ष्मता का विधान करने के लिए तथा उत्कर्षण करके दोनों करणों द्वारा अपकर्षण का निराकरण करने के लिए स्थावरों का प्रतिषेध किया गया है।

सूत्र में पर्याप्तकों के निर्देश का फल अपर्याप्तकों का निषेध करना है।

शंका—अपर्याप्तभाव का प्रतिषेध किसलिए किया जाता है ?

समाधान—अपर्याप्तकों के तीन प्रकार के योगों की अपेक्षा असंख्यातगुणे तीन प्रकार के पर्याप्तकों के योगों द्वारा कर्म का संचय करने के लिए अधस्तन निषेकों की सूक्ष्मरूप से रचना करने के लिए और उपशामना एवं निकाचना करण द्वारा अपकर्षण का प्रतिषेध करने के लिए अपर्याप्तकों का प्रतिषेध किया गया है।

सूत्र में बादर शब्द के निर्देश का प्रयोजन सूक्ष्मता का प्रतिषेध करना है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

स्थावर का प्रतिषेध करने से ही सूक्ष्मता का प्रतिषेध हो जाता है, क्योंकि सूक्ष्म जीव और दूसरी पर्याय में नहीं पाये जाते हैं ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं है, क्योंकि यहाँ पर सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जो सूक्ष्मता उत्पन्न होती है उसके बिना विग्रहगति में वर्तमान त्रसों की सूक्ष्मता स्वीकार की गई है।

कथं ते सूक्ष्माः ?

तेषां शरीराणां अनंतानंतविस्रसोपचयैः उपचितौदारिकनोकर्मस्कंधात् विनिर्गतदेहत्वात् ते सूक्ष्माः सन्ति।

सूक्ष्मत्वं किमर्थं प्रतिषिध्यते ?

योगवृद्धिनिमित्तं नोकर्म इति ज्ञापनार्थं पर्याप्तकालवर्धापनार्थं च सूक्ष्मत्वं निषिध्यते।

एतत्सूत्रं मध्यदीपकमस्ति तेन सर्वत्र कर्मस्थितौ विग्रहगत्याभावो द्रष्टव्यः।

ननु पर्याप्तापर्याप्तयोः उत्पादसंभवे सति प्रथमं पर्याप्तेषु चैव किमर्थमुत्पादितः ?

एष जीवः प्रायेण पर्याप्तेष्वेवोत्पद्यते, नापर्याप्तेषु इति ज्ञापनार्थं।

एषोऽर्थो भवावासेनैव प्ररूपितः, पुनः किमर्थमत्र प्रोक्तः ?

तस्यैवार्थस्य दृढीकरणार्थं पुनरपि प्रोक्तं अस्ति। बादरत्रसपर्याप्तकेषु ऋजुगत्या उत्कृष्टयोगेन तत्प्रायोग्योत्कृष्ट-कषायेण चोत्पन्नप्रथमसमये अन्तःकोटीकोटिप्रमाणां स्थितिं बध्नाति।

एकेन्द्रियेषु बद्धसमयप्रबद्धे आबाधां मुक्त्वा तस्या उपरि उत्कर्ष्यमाणः किं सर्वस्य सार्धमुत्कर्षयति अथवान्यथा इति चेत् ?

उच्यते — कर्मस्थितेरादिमसमयप्रबद्धकर्मपुद्गलस्कंधाः अन्तर्मुहूर्त्तोनत्रसस्थितिकालप्रमाणं उत्कर्षयन्ते एतावन्मात्रशक्तिस्थितिशेषात्। द्वितीयसमय प्रबद्धस्तस्मात् यावत्समयोत्तरस्थितिस्तावत् उत्कर्षयिष्यते,

---

शंका — वे सूक्ष्म कैसे हैं ?

समाधान — क्योंकि उनका शरीर अनन्तानन्त विस्रसोपचयों से उपचित औदारिक नोकर्म स्कंधों से रहित है, अतः वे सूक्ष्म हैं।

शंका — सूक्ष्मता का प्रतिषेध किसलिए किया गया है ?

समाधान — योगवृद्धि का निमित्त नोकर्म है, इस बात को बतलाने के लिए तथा पर्याप्तकाल को बढ़ाने के लिए उसका प्रतिषेध किया गया है।

यह सूत्र मध्यदीपक है, अतः सर्वत्र कर्मस्थिति में विग्रहगति का अभाव है यह समझना चाहिए।

शंका — पर्याप्तक व अपर्याप्तक इन दोनों में ही उत्पन्न होने की संभावना होने पर पहले पर्याप्तकों में ही किसलिए उत्पन्न कराया है ?

समाधान — यह प्रायः पर्याप्तकों में ही उत्पन्न होता है, अपर्याप्तकों में उत्पन्न नहीं होता, इस बात को बतलाने के लिए पहले अपर्याप्तकों में ही उत्पन्न कराया है।

शंका — यह अर्थ भवावास के निरूपण द्वारा ही कहा जा चुका है, उसे फिर यहाँ किसलिए कहा गया है ?

समाधान — उसी अर्थ को दृढ़ करने के लिए यहाँ उसे फिर से कहा है।

बादर त्रस पर्याप्तकों में जीव ऋजुगति, उत्कृष्ट योग और उसके योग्य उत्कृष्ट कषाय से उत्पन्न होने के प्रथम समय में अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थिति को बांधता है।

शंका — एकेन्द्रियों में बांधे हुए समय प्रबद्धों का आबाधा को छोड़कर उसके ऊपर उत्कर्षण करता हुआ क्या सबका एक साथ उत्कर्षण करता है अथवा अन्य प्रकार से ?

समाधान — इस प्रकार पूछने पर उत्तर देते हैं — कर्मस्थिति के प्रथम समय में बांधे हुए कर्म-पुद्गलस्कंधों का अन्तर्मुहूर्त कम त्रसस्थिति काल प्रमाण उत्कर्षण किया जाता है, क्योंकि इनकी इतनी

तस्य समयोत्तरशक्तिस्थितिविशेषात्। एवं सर्वे समयप्रबद्धाः समयोत्तरक्रमेणोत्कर्षयिष्यन्ते। यस्य समयप्रबद्धस्य शक्तिस्थितिर्वर्तमानबंधस्थितिसमाना स समयप्रबद्धो वर्तमानबंधचरमस्थितिरिति उत्कर्ष्यते।

एषः समयप्रबद्धः कर्मस्थितेः कियत्कालं गत्वा प्रबद्धः ?

कर्मस्थितिप्रथमसमयप्रभृति अंतर्मुहूर्तोनत्रसस्थितिविशुद्धवर्तमानबंधस्थितिमात्रं चटित्वा प्रबद्धः।

एतस्मात् उपरि समयप्रबद्धानामुत्कर्षणं एतस्यानन्तरातीतसमयप्रबद्धस्य उत्कर्षणेन तुल्यमस्ति।

अधुना पर्याप्तापर्याप्तयोः भवसंख्यानिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

तत्थ य संसरमाणस्स बहुआ पज्जत्तभवा, थोवा अपज्जत्तभवा।।१५।।

दीहाओ पज्जत्तद्धाओ रहस्साओ अपज्जत्तद्धाओ।।१६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका —**एतेन सूत्रेण भवावासः प्ररूपितोऽस्ति। एतस्यार्थः पूर्वमिव प्ररूपयितव्यः।**

एकेन्द्रियेषु प्ररूपितानां षण्णामावासानां पुनः प्ररूपणा किमर्थं क्रियते ?

एकेन्द्रियेषु प्ररूपितषडावासाश्चैव त्रसकायिकेषु अपि भवन्ति नान्ये इति ज्ञापनार्थं।

अत्र द्वितीयसूत्रे कालावासयोः प्ररूपणा कृतास्ति।

अधुना द्वि-आवासप्ररूपणानंतरं चतुरावासनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

शक्तिस्थिति शेष है। द्वितीय समय में बांधे हुए समयप्रबद्ध की उससे एक समय अधिक शक्तिस्थिति शेष है। इस प्रकार आगे के सब समयप्रबद्धों का एक-एक समय अधिक के क्रम से उत्कर्षण किया जाता है। जिस समयप्रबद्ध की शक्तिस्थिति वर्तमान में बंधे हुए कर्म की स्थिति के समान है उस समयप्रबद्ध का वर्तमान में बंधे हुए कर्म की अंतिम स्थिति तक उत्कर्षण किया जाता है।

शंका — यह समयप्रबद्ध कर्मस्थिति के कितना काल जाने पर बांधा गया है ?

समाधान — कर्मस्थिति के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त कम त्रसस्थिति से रहित वर्तमान समयप्रबद्ध की स्थिति मात्र चढ़कर बांधा गया है।

इससे आगे के समयप्रबद्धों का उत्कर्षण इसके अनन्तर अतीत समयप्रबद्ध के उत्कर्षण के समान है।

अब पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों की भवसंख्या का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वहाँ परिभ्रमण करने वाले उक्त जीव के पर्याप्तभव बहुत होते हैं और अपर्याप्तभव थोड़े होते हैं।।१५।।

पर्याप्तकाल दीर्घ होते हैं और अपर्याप्तकाल थोड़े होते हैं।।१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस सूत्र के द्वारा भवावास की प्ररूपणा की गई है। इसका अर्थ पूर्व के समान जानना चाहिए।

शंका — एकेन्द्रियों के कहे गये छह आवासों का यहाँ फिर से कथन किसलिए किया जा रहा है ?

समाधान — एकेन्द्रियों में जो छह आवास कहे हैं वे ही त्रसकायिकों में भी होते हैं, अन्य में नहीं, इस बात का ज्ञान कराने के लिए यहाँ भी उनका कथन किया है।

यहाँ द्वितीय सूत्र में काल और आवास की प्ररूपणा की गई है।

अब दो आवासों की प्ररूपणा के पश्चात् चार आवासों के निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

जदा जदा आउगं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गजहण्णएण जोगेण बंधदि।।१७।।

उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे।।१८।।

बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि।।१९।।

बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणामो भवदि।।२०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यदा यदा आयुर्बध्नाति तदा तदा तद्योग्यजघन्ययोगेन बध्नाति। एतेन सूत्रेण आयुरावासः प्ररूपितः।**

उपरिमस्थितीनां निषेकस्य उत्कृष्टपदं, अधस्तनस्थितीनां निषेकस्य जघन्यपदं भवति। इति सूत्रेण अपकर्षण-उत्कर्षणावासः कथितः। अथवा अपकर्षणोत्कर्षणबंधानां प्रदेशविन्यासावासो निरूपितोऽस्ति।

बहुबहुवारं उत्कृष्टयोगस्थानानि प्राप्नोति। एतेन योगावासः प्ररूपितः।

बहु-बहुवारं संक्लेशपरिणामो भवतीति संक्लेशावासो निरूपितः। एवं भवावास-कालावास-आयुरावास-प्रदेशविन्यासावास-योगावास-संक्लेशवासनाम्नां षडावासाः प्ररूपिताः सन्ति।

सूत्रार्थ—

जब-जब जीव आयु को बांधता है, तब-तब उसके योग्य जघन्य योग से बांधता है।।१७।।

उपरिम स्थितियों के निषेक का उत्कृष्ट पद होता है और नीचे की स्थितियों के निषेक का जघन्य पद होता है।।१८।।

बहुत-बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानों को प्राप्त करता है।।१९।।

बहुत-बहुत बार संक्लेशपरिणाम वाला होता है।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जब-जब यह जीव आयु को बांधता है, तब-तब उसके योग्य जघन्य योग से बांधता है। यहाँ सूत्र नं. १७ से आयु आवास को प्ररूपित किया गया है।

उपरिम स्थितियों के निषेक का उत्कृष्ट पद होता है और अधस्तन स्थितियों के निषेक का जघन्यपद होता है। यहाँ अट्ठारहवें सूत्र के द्वारा अपकर्षण-उत्कर्षण आवास को बतलाया गया है। अथवा अपकर्षण, उत्कर्षण और बंध के प्रदेशविन्यासावास का निरूपण किया गया है।

बहुत-बहुत बार उत्कृष्टयोगस्थानों को प्राप्त करता है, इस १९वें सूत्र के द्वारा योगावास की प्ररूपणा की गई है।

बहुत-बहुत बार संक्लेशपरिणामवाला होता है, इस २०वें सूत्र से संक्लेशावास को निरूपित किया है।

इस प्रकार भवावास, कालावास, आयुरावास, प्रदेशविन्यासावास, योगावास और संक्लेशावास नाम के छह आवास प्ररूपित किये हैं।

अत्र कश्चिदाह—

संक्लेशावासः प्रदेशविन्यासावासे अन्तर्भावः किन्न क्रियते?

आचार्यः समाधत्ते—

संक्लेशः प्रदेशविन्यासस्य कारणं नास्ति, किन्तु गुणितकर्मांशिकत्वं तस्य कारणं ज्ञातव्यं। ततस्तस्य प्रदेशविन्यासावासेऽन्तर्भावः न क्रियते।

संप्रत्ययं जीवः क्व उत्पद्यते इति आशंकायां सूत्रसप्तकमवतार्यते —

एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो।।२१।।

तेणेव पढमसमयआहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण उक्कस्सेण जोगेण आहारिदो।।२२।।

उक्कस्सियाए वड्ढिए वड्ढिदो।।२३।।

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।।२४।।

तत्थ भवट्ठिदी तेत्तीससागरोवमाणि।।२५।।

आउअमणुपालेंतो बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि।।२६।।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि—

संक्लेशावास का प्रदेशविन्यासावास में अन्तर्भाव क्यों नहीं किया गया है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—संक्लेश प्रदेशविन्यास का कारण नहीं है, किन्तु गुणितकर्मांशिकत्व उसका कारण है। इस कारण उसका प्रदेशविन्यासावास में अन्तर्भाव नहीं किया है।

अब यह जीव कहाँ उत्पन्न होता है ? ऐसी आशंका होने पर सात सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

इस प्रकार परिभ्रमण करके जो अंतिम भव ग्रहण में नीचे सातवीं पृथ्वी के नारकियों में उत्पन्न हुआ है।।२१।।

जिसने कर्मस्थिति के समान यहाँ भी प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ होकर उत्कृष्टयोग के द्वारा कर्मपुद्गलस्कंध को ग्रहण किया।।२२।।

उत्कृष्टवृद्धि से जो वृद्धि को प्राप्त हुआ है।।२३।।

अन्तर्मुहूर्त द्वारा जो सर्वलघुकाल में सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ।।२४।।

वहाँ (सातवीं पृथ्वी में) जो तेंतीस सागरोपमप्रमाण काल तक अवस्थित रहा है।।२५।।

जो आयु का उपभोग करता हुआ बहुत-बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थान को प्राप्त हुआ है।।२६।।

बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणामो भवदि।।२७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**इत्थं अनादिसंसारे संसृत्यान्तिमभवग्रहणे अधोलोके सप्तम्यां पृथिव्यां नारकेषु उत्पन्नोऽभूत्।**

अपश्चिमे भवे नारकेषु किमर्थमुत्पादितः ?

उत्कृष्टसंक्लेशेनोत्कृष्टबंधनार्थं उत्कृष्टोत्कर्षणार्थं च।

किं नाम उत्कर्षणं ?

कर्मप्रदेशानां स्थितिवर्धापनमुत्कर्षणं ज्ञातव्यम्।

किं नाम अपकर्षणम् ?

कर्मप्रदेशानां स्थितीनामपर्वतनमपकर्षणम् इति मन्तव्यम्। यथा कर्मस्थितेरभ्यन्तरेऽयं जीवः प्रथमसमये आहारको भवति, प्रथमसमये तद्भवस्थश्च, अस्य विग्रहगतेरभावात्। तथैवात्र नरकगतावपीति ज्ञातव्यम्। तेनेदं सिद्धं भवति यत्—तेन प्रथमसमयाहारकेन प्रथमसमयतद्भवस्थेन उत्कृष्टयोगेनैवाहारितः—कर्मपुद्गलो गृहीत इत्युक्तं भवति।

द्वितीयसमयप्रभृति एकान्तानुवृद्धियोगो भवति, समयं प्रति असंख्यातगुणितश्रेणिरूपेण योगवृद्धिदर्शनात्।

अन्तर्मुहूर्त्तेन सर्वलघुकालेन सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः। पर्याप्तीनां समानकाल एकसमयादिको नास्तीति प्ररूपणार्थमन्तर्मुहूर्तवचनं सूत्रे वर्तते। पर्याप्तीनामजघन्यकालप्रतिषेधार्थं सर्वलघु वचनमस्ति।

जो बहुत-बहुत बार बहुत संक्लेशपरिणामवाला हुआ है।।२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस प्रकार अनादि संसार में संसरण—भ्रमण करके कोई जीव अंतिम भव ग्रहण में अधोलोक में सातवीं पृथ्वी में नारकियों में उत्पन्न हुआ।

शंका—अंतिम भव में नारकियों में किसलिए उत्पन्न कराया है ?

समाधान—उत्कृष्ट संक्लेश से उत्कृष्ट स्थिति को बांधने के लिए और उत्कृष्ट उत्कर्षण कराने के लिए वहाँ उत्पन्न कराया है।

शंका—उत्कर्षण किसे कहते हैं ?

समाधान—कर्मप्रदेशों की स्थिति को बढ़ाना उत्कर्षण जानना चाहिए।

प्रश्न—अपकर्षण किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्मप्रदेशों की स्थिति का घटाना अपकर्षण कहलाता है, ऐसा मानना चाहिए। जिस प्रकार कर्मस्थिति के भीतर यह जीव प्रथम समय में आहारक होता है और प्रथम समय में तद्भवस्थ होता है, क्योंकि इसके विग्रहगति नहीं होती है। उसी प्रकार यहाँ नरकगति में भी जानना चाहिए। इससे सिद्ध हुआ कि प्रथम समय में आहारक और प्रथम समय में तद्भवस्थ जीव ने उत्कृष्ट योग के द्वारा ही आहरण किया, अर्थात् कर्मपुद्गल को ग्रहण किया, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

उत्पन्न होने के द्वितीय समय से लेकर एकान्तानुवृद्धि योग होता है, क्योंकि प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित श्रेणीरूप से योग की वृद्धि देखी जाती है।

अन्तर्मुहूर्त के सर्वलघुकाल से सभी पर्याप्तियों के द्वारा पर्याप्त हुआ। पर्याप्तियों का समानकाल एक समय आदि नहीं है इस बात को बतलाने के लिए सूत्र में "अन्तर्मुहूर्त" यह पद ग्रहण किया है। पर्याप्तियों के अजघन्य काल का निषेध करने के लिए 'सर्वलघु' पद कहा है। एक भी पर्याप्ति के अपूर्ण रहने पर पर्याप्तकों

एकस्या अपि पर्याप्तेरसमाप्तेः पर्याप्तकेषु परिणामयोगो न भवतीति ज्ञापनार्थं 'सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तगतः' इत्युक्तं वर्तते।

तात्पर्यमेतत्—अपर्याप्तयोगात् पर्याप्तयोगोऽसंख्यातगुण इति ज्ञापनफलमेतत् सूत्रमस्ति।

तत्र सप्तमनरके भवस्थितिः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। अनेन सूत्रेण अद्धावासः—कालावासः प्ररूपितो जातः।

आयुरनुभवन् सन् बहु-बहुवारं उत्कृष्टानि योगस्थानानि प्राप्नोति इति सूत्रेण योगावासः प्ररूपितः। बहु-बहुवारं बहुसंक्लेशपरिणामो भवतीति सूत्रेण संक्लेशावासः कथितः।

एषु सूत्रेषु त्रया आवासाः किन्न प्ररूपिताः ?

न तावद् भवावासोऽत्र संभवति, एकस्मिन् भवे भवबहुत्वाभावात्। नायुरावासः प्ररूप्यते, तस्य योगावासेऽन्तर्भावात्।

कथं योगबहुत्वमिष्यते ?

ज्ञानावरणस्य बहुद्रव्यसंचयनिमित्तम् अत्र योगबहुत्वं स्वीक्रियते।

आयुरुत्कृष्टयोगेन बध्यमानो ज्ञानावरणस्योत्कृष्टसंचयो भवति इति चेत् ?

नैतत्, किं च—ज्ञानावरणस्य बहुद्रव्यक्षयदर्शनात्। ततो योगावासादेवायुर्जघन्ययोगेनैव बध्नाति इति ज्ञायते। तस्मादायुरावासः योगावासे प्रविष्टः इति पृथग्न प्ररूपितः। नापकर्षणोत्कर्षणावासोऽपि प्ररूप्यते, तस्य संक्लेशावासेऽन्तर्भावात्। एषा संग्रहनयविषया आवासप्ररूपणा प्ररूपिता एकभवविषया इति।

में परिणाम योग नहीं होता, इस बात के ज्ञापनार्थ 'सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ' ऐसा कहा है।

तात्पर्य यह है कि—अपर्याप्त योग से पर्याप्त योग असंख्यातगुणा है, यह बतलाना इस सूत्र का प्रयोजन है।

वहाँ सातवें नरक में भवस्थिति तेंतीससागरोपम है। इस सूत्र से अद्धावास अर्थात् कालावास प्ररूपित किया गया है।

आयु का अनुभव करता हुआ बहुत-बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानों को प्राप्त करता है इस सूत्र के द्वारा योगावास का प्ररूपण किया गया है। बहुत-बहुत बार बहुत संक्लिष्ट परिणामों को प्राप्त करता है इस सूत्र से संक्लेशावास कहा है।

शंका—इन सूत्रों में तीनों आवासों की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

समाधान—यहाँ भवावास तो संभव नहीं है, क्योंकि एक ही भव में भवबहुत्व का अभाव है। आयु-आवास की प्ररूपणा भी नहीं की जा सकती है, क्योंकि उसका योगावास में अन्तर्भाव हो जाता है।

शंका—यहाँ योगबहुत्व क्यों स्वीकार किया गया है ?

समाधान—ज्ञानावरण के बहुत द्रव्य का संचय करने के लिए यहाँ योगबहुत्व स्वीकार किया गया है।

आयु को उत्कृष्ट योग द्वारा बांधने वाले के ज्ञानावरण का उत्कृष्ट संचय होता ही है ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं—कि ऐसा नहीं है, क्योंकि इस प्रकार से तो ज्ञानावरण के बहुत द्रव्य का क्षय देखा जाता है और इसलिए योगावास से आयु जघन्य योग द्वारा ही बंधती है, यह जाना जाता है। अतएव आयुरावास योगावास में अन्तर्भूत है, अतः उसकी पृथक् प्ररूपणा नहीं की है तथा यहाँ अपकर्षण-उत्कर्षण-आवास की भी प्ररूपणा नहीं की जाती है, क्योंकि उसका संक्लेशावास में अन्तर्भाव हो जाता है। यह संग्रहनय की विषयभूत एक भवविषयक आवास की प्ररूपणा कही है।

अधुना योगयवमध्यस्योपरि कालादिप्रतिपादनार्थं पंचसूत्राणि अवतार्यन्ते —

एवं संसरिदूण त्थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति जोगजवमज्झस्सुवरिमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो।।२८।।

चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो।।२९।।

दुचरिम-तिचरिमसमए उक्कस्ससंकिलेसं गदो।।३०।।

चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्सजोगं गदो।।३१।।

चरिमसमयतब्भवत्थो जादो। तस्स चरिमसमयतब्भवत्थस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा।।३२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एवं संसृत्य स्तोकावशेषे जीवितव्ये इति योगयवमध्यस्य उपरि अंतर्मुहूर्तकालंस्थितः। अन्तिमजीवगुणहानिस्थाने आवलिकाया असंख्यातभागं स्थितः। द्विचरम-त्रिचरमसमये उत्कृष्टसंक्लेशं गतः। द्विचरमत्रिचरमसमये किमर्थमुत्कृष्टसंक्लेशः प्रापितः ? बहुद्रव्योत्कर्षणार्थं तयोः समययोः उत्कृष्टसंक्लेशः प्रापितः।**

अब योगयवमध्य के ऊपर कालादि का प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

इस प्रकार परिभ्रमण करके जीवन के थोड़ा शेष रहने पर योगयवमध्य के ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा।।२८।।

अन्तिम जीवगुणहानिस्थान में आवली के असंख्यातवें भाग काल तक रहा।।२९।।

द्विचरम व त्रिचरम समयों में उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त हुआ।।३०।।

चरम और द्विचरम समय में उत्कृष्ट योग को प्राप्त हुआ।।३१।।

चरम समय में तद्भवस्थ हुआ। उस चरम समय में तद्भवस्थ हुए जीव के ज्ञानावरण की वेदना द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।।३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सूत्रों के माध्यम से श्री भूतबली आचार्य ने स्पष्ट किया है कि इस प्रकार संसार में संसरण करके आयु के थोड़ा शेष रहने पर यह जीव योगयवमध्य के ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक स्थित रहता है।

अन्तिम जीवगुणहानि के स्थान में आवली के असंख्यातवें भाग काल तक रहता है। द्विचरम-त्रिचरम समय में वह उत्कृष्ट संक्लेश भाव को प्राप्त होता है।

प्रश्न—द्विचरम और त्रिचरम समयों में उत्कृष्ट संक्लेश को क्यों प्राप्त कराया है ?

उत्तर—बहुत द्रव्य का उत्कर्षण कराने हेतु उन द्विचरम-त्रिचरम समयों में उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त कराया है।

चरम-द्विचरमसमये उत्कृष्टयोगं गतः। पुनः चरमसमये तद्भवस्थो जातः। तस्य चरमसमयतद्भवस्थस्य ज्ञानावरणीयवेदना उत्कृष्टा भवति द्रव्यापेक्षया इति ज्ञातव्यं।

एषां सूत्राणां विस्तृतार्थो धवलाटीकायां द्रष्टव्यो भवति।

संप्रतिज्ञानावरणीयस्यानुत्कृष्टद्रव्यवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।।३३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **तत उत्कृष्टद्रव्याद् भिन्नं यद् द्रव्यं तदनुत्कृष्टद्रव्यवेदना ज्ञानावरणीयस्य भवति। तद्यथा — अपकर्षणवशेन उत्कृष्टद्रव्ये एकपरमाणुना परिहीने अनुत्कृष्टद्रव्यस्य उत्कृष्टस्थानं प्राप्नोति। अपकर्षणवशात् द्विपरमाणुहान्या द्वितीयानुत्कृष्टस्थानं भवति।**

अन्यकर्मणां उत्कृष्टानुत्कृष्टद्रव्यप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं।।३४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **यथा ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टानुत्कृष्टद्रव्याणां प्ररूपणा कृता तथा आयुर्वर्जित-**

चरम और द्विचरम समय में उत्कृष्ट योग को प्राप्त हुआ, पुनः चरमसमय में तद्भवस्थ हुआ। उस चरमसमय में तद्भवस्थ जीव के द्रव्य की अपेक्षा ज्ञानावरणीयवेदना उत्कृष्ट होती है, ऐसा जानना चाहिए।

इन सूत्रों का विस्तृत अर्थ धवला टीका में देखना चाहिए।

भावार्थ — यहाँ साररूप में जानना है कि श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र जो आठ समय योग्य योगस्थान हैं, उनका नाम योगयवमध्य है। अंकसंदृष्टि में द्वीन्द्रियपर्याप्त के सर्वजघन्य परिणामयोगस्थान से लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त के उत्कृष्ट परिणामयोगस्थान पर्यन्त सब योगस्थानों की रचना जो पंक्ति के आकार से की जाती है उनका काल अपनी संख्या की अपेक्षा मध्य में स्थूल (आठसमयरूप) और दोनों पार्श्वभागों में चूँकि सूक्ष्म (४,५,६,७,८,७,६,५,४,३,२) हैं, अतएव वह रचना जौ के आकार की हो जाती है। इसीलिए उनके मध्य में अवस्थित आठ समयरूप योगस्थानों के 'यवमध्य' रूप से सूत्र में कहा गया समझना चाहिए। उसके ऊपर अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहा यह बात २८वें सूत्र में बताई है। इसी प्रकार से उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ समझना चाहिए।

अब ज्ञानावरणीयकर्म की अनुत्कृष्टद्रव्यवेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरण की उत्कृष्ट वेदना से भिन्न अनुत्कृष्ट द्रव्यवेदना है।।३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उससे अर्थात् उत्कृष्टद्रव्य से भिन्न जो द्रव्य है, वह ज्ञानावरणीय की अनुत्कृष्ट द्रव्यवेदना होती है। वह इस प्रकार है — अपकर्षण के कारण उत्कृष्ट द्रव्य में से एक परमाणु के भी कम होने पर अनुत्कृष्टद्रव्य का उत्कृष्टस्थान प्राप्त होता है। अपकर्षण के कारण दो परमाणु की हानि होने पर द्वितीय अनुत्कृष्टस्थान होता है।

अब अन्य कर्मों की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्ररूपणा के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार आयु कर्म के सिवा शेष छह कर्मों का कथन करना चाहिए।।३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट द्रव्यों की प्ररूपणा की गई है,

षट्कर्मणामुत्कृष्टानुत्कृष्टद्रव्याणां प्ररूपणा कर्तव्या।

विशेषांतरमेतत्—मोहनीयस्य त्रसस्थितेः ऊनं चत्वारिंशत् सागरोपमकोटाकोटिप्रमाणं, नामगोत्रयोः त्रसस्थितेरूनं विंशतिकोटाकोटिसागरोपमप्रमाणं बादरैकेन्द्रियेषु भ्रामयितव्यः। तथैव गुणहानिशलाका-नामन्योन्याभ्यस्तराशीनां च विशेषो ज्ञातव्यः।

एवं प्रथमेऽन्तरस्थले ज्ञानावरणादिसप्तकर्मवेदनाकथनत्वेन त्रिंशत् सूत्राणि गतानि।

अधुना स्वामित्वापेक्षया आयुर्वेदनाकथनार्थं प्रश्नोत्तरस्वरूपं सूत्रद्वयमवतार्यते—

सामित्तेण उक्कस्सपदे आउववेदणा दव्वदो उक्कस्सिया कस्स ?।।३५।।

जो जीवो पुव्वकोडाउओ परभवियं पुव्वकोडाउअं बंधदि जलचरेसु दीहाए आउवबंधगद्धाए तप्पाओग्गसंकिलेसेण उक्कस्सजोगेण बंधदि।।३६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**स्वामित्वेन उत्कृष्टपदे आयुर्वेदना द्रव्यत उत्कृष्टा किं देवस्य ? किं नारकस्य ? किं मनुष्यस्य ? किं तिरश्चश्च इति द्विसंयोगादिक्रमेण पंचदश भंगा प्रश्नानां कथयितव्याः ?**

एषां प्रश्नानां उत्तरो दीयते—

यः कश्चिद् जीवः पूर्वकोट्यायुष्कः परभवसंबंधि पूर्वकोटिप्रमाणमायुर्जलचरेषु बध्नन् दीर्घायुर्बंधकाले

उसी प्रकार आयुकर्म को छोड़कर शेष छह कर्मों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट द्रव्य की प्ररूपणा करना चाहिए।

विशेष अन्तर इतना है कि मोहनीय की त्रसस्थिति से हीन चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम और नाम व गोत्र की उक्त स्थिति से हीन बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थिति प्रमाण बादर एकेन्द्रियों में घुमाना चाहिए तथा गुणहानिशलाकाओं और अन्योन्याभ्यस्त राशियों के विशेष को भी जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम अन्तरस्थल में ज्ञानावरण आदि सात कर्मों की वेदना का कथन करने वाले तीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब स्वामित्व की अपेक्षा से आयुकर्म की वेदना का कथन करने हेतु प्रश्नोत्तरस्वरूप दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से उत्कृष्टपद में आयुकर्म की वेदनाद्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ?।।३५।।

जो जीव पूर्वकोटि प्रमाण आयु से युक्त होकर जलचर जीवों में परभवसंबंधी पूर्वकोटि प्रमाण आयु को बांधता हुआ दीर्घ आयुबंध काल में तत्प्रायोग्यसंक्लेश के साथ उत्कृष्ट योग से बांधता है।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वामित्व की अपेक्षा उत्कृष्टपद में आयुकर्म की उत्कृष्ट वेदना द्रव्य से क्या देव के होती है ? क्या नारकी के होती है ? क्या मनुष्य के होती है ? और क्या तिर्यंच के होती है ? इस प्रकार द्विसंयोग आदि के क्रम से पन्द्रह भंगों-प्रश्नों का कथन करना चाहिए।

इन प्रश्नों के उत्तर देते हैं—

जो कोई पूर्वकोटिप्रमाण आयु वाला जीव परभवसंबंधी पूर्वकोटिप्रमाण आयु को बांधता हुआ जलचर

तत्प्रायोग्यसंक्लेशेनोत्कृष्टयोगेन बध्नाति, तस्य जीवस्य द्रव्यापेक्षया आयुःकर्मणः उत्कृष्टवेदना भवति।

यो जीवः कथयिष्यमाणलक्षणैः सहितस्तस्यायुःकर्मणः उत्कृष्टद्रव्यस्य स्वामी भवति।

कानि तानि लक्षणानि ?

पूर्वकोट्यायुष्कः इति एकं लक्षणं।

पूर्वकोट्यायुर्मुक्त्वान्यः किं न गृह्यते ?

नैतत्, पूर्वकोटित्रिभागं आबाधां कृत्वा परभवसंबंधिआयुर्बध्यमानानां जीवानां एवोत्कृष्टबंधककालः संभवति।

प्रथमापकर्षः सर्वत्र सदृशः किन्न भवति ?

नैष दोषः, स्वाभाव्यात्। न च स्वभावः परपर्यनुयोगार्हः, विरोधात्।

''परभवियं पुव्वकोडाउअं बंधदि जलचरेसु'' एतद् द्वितीयविशेषणं। यथा ज्ञानावरणादीनां बंधभवे चैव बंधावलिकादिकां व्यतीत्य उदयो भवति तथायुषस्तस्मिन् भवे बद्धस्योदयो न भवति, परभवे एव भवतीति ज्ञापनार्थमायुषः परभविकविशेषणं कृतमस्ति।

जलचरेष्वेव किमर्थमायुर्बंधापितम् ?

नैष दोषः, किं च — जलचरेषु विवेकाभावात् संक्लेशवर्जितेषु सातबहुलेषु अवलंबनकरणेन विनाश्यमान-द्रव्यस्य बहुत्वाभावात्।

समयाधिकपूर्वकोट्यादि-उपरिमायुर्विकल्पानां कदलीघातो नास्ति, अधस्तनानामेवास्ति इति कथं ज्ञायते ?

जीवों में दीर्घ आयुबंधकाल में तत्प्रायोग्य संक्लेश से उत्कृष्ट योग में बांधता है, उसके द्रव्य की अपेक्षा आयुकर्म की उत्कृष्ट वेदना होती है।

जो जीव आगे कहे जाने वाले लक्षणों से सहित हो, वह आयुकर्म के उत्कृष्ट द्रव्य का स्वामी होता है।

प्रश्न — वे लक्षण कौन से हैं ?

उत्तर — पूर्वकोटि आयु वाला हो, यह एक लक्षण है।

प्रश्न — पूर्वकोटि प्रमाण आयु वाले को छोड़कर अन्य का ग्रहण क्यों नहीं किया जाता है ?

उत्तर — ऐसा नहीं है, क्योंकि पूर्व कोटि के त्रिभाग को आबाधा करके परभव संबंधी आयु को बांधने वाले जीवों के ही उत्कृष्ट बंधककाल संभव होता है।

प्रश्न — प्रथम अपकर्ष सब जगह समान क्यों नहीं होता है ?

उत्तर — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है और स्वभाव दूसरों के प्रश्न के योग्य नहीं होता है, क्योंकि ऐसा होने में विरोध आता है।

''जलचरों में परभव संबंधी पूर्वकोटिप्रमाण आयु को बांधता है'' यह द्वितीय विशेषण है। जिस प्रकार ज्ञानावरणादिकों का बांधने के भव में ही बंधावली को बिताकर उदय होता है, उसी प्रकार बांधे गये आयु कर्म का उसी भव में उदय नहीं होता, किन्तु उसका परभव में ही उदय होता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए आयु का 'परभविक विशेषण' दिया है।

प्रश्न — जलचरों में ही आयु का बंध किसलिए कराया है ?

उत्तर — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जलचर जीव विवेकहीन होने से संक्लेश रहित और सातबहुल — अधिक सुखी होते हैं। इसलिए उनके अवलम्बन करण के द्वारा नष्ट होने वाला द्रव्य बहुत नहीं पाया जाता है।

शंका — एक समय अधिक पूर्वकोटि आदिरूप आगे के आयु विकल्पों का कदलीघात नहीं होता,

समयाधिकपूर्वकोट्याद्युपरिमायूंषि असंख्यातवर्षाणीति अतिदेशात् ज्ञायते। किं च — कारणेन विना नातिदेशः क्रियते, अनवस्थाप्रसंगात्।

''दीहाए आउवबंधगद्धाए'' इति तृतीयं विशेषणं। पूर्वकोटित्रिभागमाबाधां कृत्वा आयुर्बध्यमानानां जीवानां बध्यमानायुर्जघन्यमुत्कृष्टमप्यस्ति। तत्र जघन्यबंधककालनिराकरणार्थ-'मुत्कृष्टबंधक-काले' इति भणितं। उत्कृष्टबंधककालमपि प्रथमापकर्षे चैव भवति, नान्यत्र।

एतत्कुतो ज्ञायते ?

महाबंधसूत्राद् ज्ञायते। तद्यथा — अष्टभिरपकर्षैरायुर्बध्यमानस्य सर्वस्तोका अष्टमापकर्षे आयुर्बंधककाला जघन्याः। त एवोत्कृष्टा विशेषाधिकाः इत्यादयः।

ये जीवाः सोपक्रमायुष्कास्ते स्वक-स्वकभुज्यमानायुःस्थितेः द्वौ त्रिभागेऽतिक्रान्ते परभविकायुर्बंधप्रायोग्या भवन्ति यावदसंक्षेपाद्धा इति।

ये निरुपक्रमायुष्का जीवास्ते पुनः स्वक-स्वकभुज्यमानायुषि षण्मासावशेषे आयुर्बंधप्रायोग्या भवन्ति। अनयोः द्वयोरपि जीवयोः अष्टावपकर्षा वक्तव्या भवन्ति। अस्य विशेषो धवलाटीकायां द्रष्टव्यः।

अत्र जीवानामल्पबहुत्वमुच्यते — तद्यथा — अष्टभिरपकर्षैरायुर्बध्यमाना जीवाः सर्वस्तोका भवन्ति। सप्तभिरपकर्षैरायुर्बध्यमाना जीवा संख्यातगुणाः। षड्भिरपकर्षैरायुर्बध्यमाना जीवा संख्यातगुणाः। पंचभिरपकर्षैरायुर्बध्यमाना जीवा संख्यातगुणाः। चतुर्भिरपकर्षैरायुर्बध्यमाना जीवा संख्यातगुणाः। त्रिभिरपकर्षैरायु-

---

किन्तु पूर्वकोटि से नीचे के विकल्पों का ही होता है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — एक समय अधिक पूर्वकोटि आदिरूप आगे की सब आयु असंख्यातवर्ष प्रमाण मानी जाती हैं, ऐसे अतिदेश से — कथन से जाना जाता है और कारण के बिना अतिदेश किया नहीं जाता , क्योंकि कारण के बिना अतिदेश करने पर अनवस्था दोष आता है।

'दीर्घ आयुबंधक काल में' यह तृतीय विशेषण है। पूर्वकोटि के तृतीय भाग को आबाधा करके आयु को बांधने वाले जीवों की बध्यमान आयु जघन्य भी होती है और उत्कृष्ट भी होती है। उसमें जघन्य बंधक काल का निराकरण करने के लिए 'उत्कृष्ट बंधककाल में' यह कहा है। उत्कृष्ट बंधककाल भी प्रथम अपकर्ष में ही होता है, अन्यत्र नहीं होता है।

शंका — यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — यह महाबंधसूत्र से जाना जाता है। वह इस प्रकार है — आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधने वाले जीव के आठवें अपकर्ष में जघन्य आयुबंधक काल सबसे स्तोक है। वही उत्कृष्ट आयुबंधक काल उससे विशेष अधिक है इत्यादि।

जो जीव सोपक्रमायुष्क हैं वे अपनी-अपनी भुज्यमान आयुस्थिति के दो त्रिभाग बीत जाने पर वहाँ से लेकर असंक्षेपाद्धा काल तक परभव संबंधी आयु को बांधने के लिए योग्य होते हैं।

जो निरुपक्रमायुष्क जीव होते हैं वे अपनी भुज्यमान आयु में छह माह शेष रहने पर आयु बंध के योग्य होते हैं। इन दोनों ही जीव के भी इसी प्रकार आठ अपकर्षों को कहना चाहिए। इनका विशेष वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

यहाँ जीवों के अल्पबहुत्व को कहते हैं। वह इस प्रकार है — आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधने वाले जीव सबसे स्तोक होते हैं। सात अपकर्षों द्वारा आयु को बांधने वाले जीव उनसे संख्यातगुणे हैं। छह अपकर्षों

र्बध्यमाना जीवा संख्यातगुणाः। द्वाभ्यामपकर्षाभ्यामायुर्बध्यमाना जीवा संख्यातगुणाः। प्रथमेन—एकेनापकर्षेण आयुर्बध्यमाना जीवा संख्यातगुणाः।

अष्टभ्योऽपकर्षेभ्यः संचितद्रव्यमपेक्ष्य प्रथमेनापकर्षेण संचितद्रव्यं संख्यातगुणमिति अत्र प्रथमापकर्षेणैव बंधापितं।

तात्पर्यमेतत्—यो दीर्घे आयुर्बंधककाले बध्नाति स उत्कृष्टद्रव्यस्वामी भवति, अन्यो न भवतीति उक्तमत्र ज्ञातव्यं।

''तप्पाओग्गसंकिलेसेण'' इति चतुर्थं विशेषणमत्र सूत्रेऽस्ति।

किमर्थमेतच्चतुर्थविशेषणमत्र क्रियते ?

उत्कृष्टसंक्लेशेण उत्कृष्टविशुद्ध्या च यथा शेषकर्माणि बध्यन्ते न तथायुर्बध्यते, किन्तु तत्प्रायोग्येण मध्यमसंक्लेशेण बध्यते इति ज्ञापनार्थं तत्प्रायोग्यसंक्लेशविशेषणं कृतमस्ति।

''तप्पाओग्गउक्कस्सजोगेण'' इति पंचमं विशेषणं वर्तते।

कथमेतत्पंचमं विशेषणं ?

बहुद्रव्यग्रहणार्थं।

यद्येवं तर्हि उत्कृष्टयोगेन इति किन्नोच्यते ?

नोच्यते, द्वौ समयौ मुक्त्वा उत्कृष्टायुर्बंधककालमात्रसमयं उत्कृष्टयोगेन परिणमनाभावात्। अतो यावत् शक्यते तावत् उत्कृष्टान्येव योगस्थानानि परिणमय्य यो बध्नाति स उत्कृष्टद्रव्यस्वामी भवति इति कथितमस्ति।

द्वारा आयु को बांधने वाले जीव उनसे संख्यातगुणे हैं। पाँच अपकर्षों द्वारा आयु को बांधने वाले जीव उनसे संख्यातगुणे हैं। चार अपकर्षों द्वारा आयु को बांधने वाले जीव उनसे संख्यातगुणे हैं। तीन अपकर्षों द्वारा आयु को बांधने वाले जीव उनसे संख्यातगुणे हैं। दो अपकर्षों द्वारा आयु को बांधने वाले जीव उनसे संख्यातगुणे हैं। प्रथम—एक अपकर्ष द्वारा आयु को बांधने वाले जीव उनसे संख्यातगुणे हैं।

आठ अपकर्षों द्वारा संचित द्रव्य की अपेक्षा प्रथम अपकर्ष द्वारा संचित हुआ द्रव्य संख्यातगुणा है, अतएव प्रथम अपकर्ष में ही आयु को बंधाया है।

तात्पर्य यह है कि—जो दीर्घ आयुबंधक काल में आयु को बांधता है, वह उत्कृष्ट द्रव्य का स्वामी होता है, अन्य नहीं होता है। यहाँ ऐसा जानना चाहिए।

''उसके योग्य संक्लेश से'' ऐसा चतुर्थ विशेषण सूत्र में है।

प्रश्न—उसके योग्य संक्लेश से यह चतुर्थ विशेषण किसलिए किया है ?

उत्तर—जैसे उत्कृष्ट संक्लेश और उत्कृष्ट विशुद्धि से शेष कर्म बंधते हैं, वैसे आयु कर्म नहीं बंधता, किन्तु अपने योग्य मध्यम संक्लेश से वह बंधता है, इसके ज्ञापनार्थ 'उसके योग्य संक्लेश' यह विशेषण किया है।

''उसके योग्य उत्कृष्ट योग से'' ऐसा पंचम विशेषण है।

प्रश्न—'उसके योग्य उत्कृष्ट योग से' यह पाँचवा विशेषण किसलिए किया है ?

उत्तर—बहुत द्रव्य का ग्रहण करने के लिए उक्त विशेष किया है।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो फिर 'उत्कृष्ट योग से' इतना ही क्यों नहीं कहा ?

उत्तर—नहीं कहा है, क्योंकि दो समयों को छोड़कर उत्कृष्ट आयुबंधक कालप्रमाण समय तक जीव का उत्कृष्ट योगरूप से परिणमन नहीं हो सकता। इसलिए जहाँ तक शक्य हो वहाँ तक उत्कृष्ट ही योगस्थानों को प्राप्त होकर जो जीव आयु को बंधता है, वह उत्कृष्ट द्रव्य का स्वामी होता है, यह कहा है।

अत्र सूत्रे 'बंधदि' इदं प्रथमनिर्देशो निष्फलः, 'बंधदि' इति द्वितीयनिर्देशार्थतस्तस्य पृथग्भूतार्थानुपलंभात् इति ?

नैतत्, किं च—प्रथमं 'बंधदि' पदं बध्यमानार्थे वर्तमानोऽस्ति अतः तस्य 'बध्नाति' इति अर्थे प्रवृत्तिविरोधात्।

संप्रति पूर्वकथितायुषो योग्योत्कृष्टयोगविषयप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रं भण्यते —

जोगजवमज्झस्सुवरिमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो।।३७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्राष्टसमयप्रायोग्यानां श्रेण्या असंख्यातभागमात्रयोगस्थानानां योगयवमध्यमिति संज्ञा, स्थितेः स्थितिमतां योगानां कथंचिदभेदात्। योगश्चैव यवमध्यं योगयवमध्यमिति तेन कर्मधारयसमासोऽत्र युज्यते। अथवा यो योगयवस्य मध्यं अष्टसमयकालः स योगयवमध्यं, तस्योपरि अन्तर्मुहूर्तकालं स्थितः।**

कुतः ?

तत्रतनयोगानां अधस्तनयोगेभ्यः असंख्यातगुणत्वात्।

अंतर्मुहूर्तं मुक्त्वा तत्र बहुकं कालं किं न तिष्ठति ?

न, तत्रावस्थानकालस्य उत्कृष्टस्यापि अंतर्मुहूर्तमात्रत्वात् अंतर्मुहूर्तादधिकायुर्बंधककालाभावाच्च।

योगयवमध्यात् उपरि अंतर्मुहूर्तावस्थानं न संभवति इति चेत् ?

नैतद् वक्तव्यं, असंख्यातगुणवृद्धिरूपस्थानेऽन्तर्मुहूर्तकालं अवस्थानासंभवमन्यमाने विरोधात्।

प्रश्न—यहाँ सूत्र में 'बंधदि' यह प्रथम निर्देश निरर्थक है' क्योंकि, 'बंधदि' इस द्वितीय निर्देश के अर्थ में इसका कोई भिन्न अर्थ नहीं पाया जाता है ?

उत्तर—ऐसा नहीं है, क्योंकि प्रथम पद में ''बंधदि'' यह पद 'बांधने वाला' इस अर्थ में विद्यमान है इसलिए उसकी 'बांधता है' इस अर्थ में प्रवृत्ति मानने में विरोध आता है।

अब पूर्वकथित आयु के योग्य उत्कृष्टयोग विषय का प्रतिपादन करने हेतु उत्तरसूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ—

योगयवमध्य के ऊपर अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहा।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ आठ समय के योग्य जो श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र योगस्थान होते हैं उनकी योगयवमध्य संज्ञा है, क्योंकि स्थिति से स्थिति वाले योगों का कथंचित् अभेद है। यहाँ 'योग ही यवमध्य योगयवमध्य' ऐसा कर्मधारय समास करना युक्त है। अथवा जो योगयव का मध्य आठ समय काल है यह योगयवमध्य कहलाता है। उसके ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा, ऐसा समझना।

क्यों ? क्योंकि वहाँ के योग अधस्तन योगों की अपेक्षा असंख्यातगुणे होते हैं।

शंका—अन्तर्मुहूर्त को छोड़कर वहाँ बहुत काल तक क्यों नहीं रहता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक तो वहाँ रहने का उत्कृष्ट काल ही अन्तर्मुहूर्त मात्र है और दूसरे आयु बंधक काल भी अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं पाया जाता है।

शंका—योगयवमध्य के ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहना संभव नहीं है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि असंख्यातगुणवृद्धिरूप स्थान में अन्तर्मुहूर्त काल तक रहने को असंभव मानने में विरोध आता है।

अधुना जलचरेषु उत्पन्नजीवानां विशेषकथनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो।।३८।।

कमेण कालगदसमाणो पुव्वकोडाउएसु जलचेरसु उववण्णो।।३९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अंतिमजीवगुणहानिस्थानान्तरे आवलिकाया असंख्यातभागकालपर्यंतं स्थितः। पुनः क्रमशः मृत्युं प्राप्य पूर्वकोट्यायुष्केषु जलचरेषु उत्पन्नः।**

अस्मिन् 'कमेण कालादो' इति वचनेन परभविकायुषो बद्धे पश्चात् भुज्यमानायुषः कदलीघातो नास्ति, किन्तु यथास्वरूपेणैव वेदयतीति ज्ञापितं भवति।

परभविकायुर्बद्ध्वा भुज्यमानायुषि घातयिष्यमाने को दोष इति चेत् ?

नैतत् कथयितव्यं, किं च—निर्जीर्णभुज्यमानायुषः अप्राप्तपरभविकायुरुदयस्य चतुर्गतिबाह्यस्य जीवस्याभावप्रसंगात्।

अत्र कश्चिदाशंकते—

व्याख्याप्रज्ञप्तिग्रंथे लिखितं वर्तते यत्—''जीवा दुविहा पण्णत्ता संखेज्जवस्साउआ चेव असंखेज्जवस्साउआ चेव। तत्थ जे ते असंखेज्जवस्साउआ ते छम्मासावसेसयंसि आउगंसि परभवियं आयुगं णिबंधंता बंधंति। तत्थ जे ते संखेज्जवासाउसा ते दुविहा पण्णत्ता सोवक्कमाउआ णिरुवक्कमाउआ

अब जलचरों में उत्पन्न जीवों का विशेष कथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तर में आवली के असंख्यातवें भाग काल तक रहा।।३८।।

क्रम से काल को प्राप्त होकर पूर्वकोटि आयु वाले जलचरों में उत्पन्न हुआ।।३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई जीव अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तर में आवली के असंख्यातवें भाग काल तक स्थित रहा पुनः क्रमशः मृत्यु को प्राप्त करके पूर्वकोटि आयु वाले जलचर तिर्यंच जीवों में उत्पन्न हो गया।

यहाँ सूत्र में जो 'कमेण कालादो' अर्थात् 'क्रम से काल—मृत्यु को प्राप्त होकर' यह वचन ग्रहण किया है उससे यह बात जानना कि परभवसंबंधी आयु के बंधने के पश्चात् भुज्यमान आयु का कदलीघात नहीं होता है, किन्तु वह जितनी थी उतनी का ही वेदन—अनुभव करता है।

शंका—परभवसंबंधी आयु को बांधकर भुज्यमान आयु का घात मानने में कौन सा दोष है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि जिसकी भुज्यमान आयु की निर्जरा हो चुकी है, अभी तक जिसके परभविक आयु का उदय नहीं प्राप्त हुआ है, चतुर्गति के बाह्य हो जाने से उस जीव के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है।

यहाँ कोई शिष्य शंका करता है कि—

व्याख्याप्रज्ञप्ति ग्रंथ में लिखा है कि—जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—संख्यातवर्षायुष्क और असंख्यातवर्षायुष्क। उनमें जो असंख्यातवर्षायुष्क हैं वे आयु के अंशों में छह मास शेष रहने पर परभविक आयु को बांधते हुए बांधते हैं। और जो संख्यातवर्षायुष्क जीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं—

चेव। तत्थ जे ते णिरुवक्कमाउआ ते तिभागवसेसयंति याउगंसि परभवियं आउगं कम्मं णिबंधंता बंधंति। तत्थ जे ते सोवक्कमाउआ ते सिया तिभागात्तिभागावसेसियंति यायुगंसि परभवियं आउगं कम्मं णिबंधंता बंधंति[१]।''

एतेन व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रेण सह कथं न विरोधो भवेत् ?

नैतद् वक्तव्यं, किं च—एतस्मात् तस्य पृथग्भूतस्य आचार्यभेदेन भेदमापन्नस्य एकत्वाभावात्।

बद्धपरभविकायुष्कस्य अपवर्तनाघातमकृत्वा उत्पन्नमिति ज्ञापनार्थं सूत्रे 'पुव्वकोडाउएसु उप्पण्णमिति' उक्तं भवति।

अपवर्तनाघाते कृते को दोषः इति चेत् ?

कथ्यते—न, घातेन लघुस्थितिं प्राप्तानां कर्मप्रदेशानां बहूनां निर्जराप्रसंगात्। यथा देवगत्यादिकर्माणि बद्ध्वा पुनस्तत्रानुत्पद्यान्यत्रापि उत्पादः संभवति तथात्र नास्ति। यस्या गतेरायुर्बद्धं तत्रैव निश्चयेनोत्पद्यते इति ज्ञापनार्थं स्थलचरादितिर्यक्प्रतिषेधार्थं च 'जलचरेसु उववण्णो' इत्युक्तं वर्तते।

सोपक्रमायुष्क और निरुपक्रमायुष्क। उनमें जो निरुपक्रमायुष्क हैं वे आयु में त्रिभाग शेष रहने पर परभविक आयु को बांधते हैं और जो सोपक्रमायुष्क जीव हैं वे कथंचित् त्रिभाग (कथंचित् त्रिभाग का त्रिभाग) और कथंचित् त्रिभाग—त्रिभागका त्रिभाग शेष रहने पर परभव संबंधी आयु को बांधते हैं।''

इस व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के साथ कैसे विरोध नहीं होगा ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इस सूत्र से उक्त भिन्न आचार्य के द्वारा बनाया हुआ होने के कारण पृथक् है, अतः उससे इसका मिलान नहीं हो सकता है।

बांधी हुई परभविक आयु का अपवर्तनाघात न करके उत्पन्न हुआ, इस बात का ज्ञान कराने के लिए 'पूर्वकोटि आयु वालों में उत्पन्न हुआ' ऐसा कहा है।

शंका—अपवर्तनाघात कराने में क्या दोष आता है ?

इसके समाधान में कहते हैं कि—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि घात करने से थोड़ी सी स्थिति को प्राप्त हुए बहुत कर्मप्रदेशों की निर्जरा का प्रसंग आता है। इसलिए यहाँ अपवर्तनाघात का निषेध किया है।

जिस प्रकार देवगति आदि कर्मों को बांध कर फिर वहाँ उत्पन्न न होकर अन्यत्र भी उत्पन्न होना संभव है, उस प्रकार यहाँ नहीं है। किन्तु जिस गति की आयु बांधी गई है वहाँ ही निश्चय से उत्पन्न होता है, ऐसा बतलाने के लिए तथा थलचर आदि तिर्यंचों का प्रतिषेध करने के लिए 'जलचरों में उत्पन्न हुआ' ऐसा कहा है।

विशेषार्थ—आयुबंध और गतिबंध में यही अन्तर है कि आयु बंध के पश्चात् वह जीव नियम से उसी गति में जन्म लेता है जिस गति की आयु का वह बंध करता है। किन्तु गतिबंध के संबंध में ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि एक ही पर्याय में कालभेद से परिणामों के अनुसार चारों गति नाम कर्म और उनसे संबद्ध अन्य कर्मों का बंध होता है। प्रकृत में दो बातों को ध्यान में रखकर 'जलचरों में उत्पन्न हुआ' यह वचन कहा है। प्रथम तो इस जीव ने तिर्यंचायु का बंध किया था, इसलिए आयु बंध के अनुसार वह 'जलचरों में उत्पन्न हुआ' यह कहा गया है। दूसरे तिर्यंचों के अनेक भेद हैं। उनमें से प्रकृत में जलचर तिर्यंचों में उत्पन्न कराना ही इष्ट है, यह समझकर अन्य तिर्यंचों में नहीं उत्पन्न हुआ, किन्तु जलचर तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ, यह ज्ञापन करने के लिए 'जलचरों में उत्पन्न हुआ' यह वचन कहा है।

---

१. षट्खंडागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. १०, पृ. २३७-२३८।

अस्यैव जीवस्योत्कृष्टवेदनायुषो भवतीति ज्ञापनार्थं सूत्रसप्तकमवतार्यते —

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।।४०।।

अंतोमुहुत्तेण पुणरवि परभवियं पुव्वकोडाउअं बंधदि जलचरेसु।।४१।।

दीहाए आउअबंधगद्धाए तप्पाओग्ग-उक्कस्सजोगेण बंधदि।।४२।।

जोगजवमज्झस्स उवरि अंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो।।४३।।

चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदि-भागम-च्छिदो।।४४।।

बहुसो बहुसो सादद्धाए जुत्तो।।४५।।

से काले परभवियमाउअं णिल्लेविहिदि त्ति तस्स आउअवेयणा दव्वदो उक्कस्सा।।४६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एकद्विसमयैः पर्याप्तीः न समापयति इति ज्ञापनार्थं सूत्रे 'अंतोमुहुत्तेण' ग्रहणं वर्तते। किं च—पर्याप्तिसमापनकालो जघन्यः उत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तमेव। तत्र उत्कृष्टकालप्रतिषेधार्थं सूत्रे 'सव्वलहुं' वचनं कृतमस्ति।**

इस जीव के आयु की उत्कृष्ट वेदना होती है यह बतलाने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा अतिशीघ्र सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ।।४०।।

अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा फिर भी वह जलचरों में परभवसंबंधी पूर्वकोटिप्रमाण आयु को बांधता है।।४१।।

दीर्घ आयु बंधक काल के भीतर उसके योग्य उत्कृष्ट योग से उस आयु को बांधता है।।४२।।

योगयवमध्य के ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा।।४३।।

अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तर में आवली के असंख्यातवें भाग काल तक रहा।।४४।।

बहुत-बहुत बार सातासात काल से युक्त हुआ।।४५।।

तदनंतर समय में वह परभवसंबंधी आयु की बंध व्युच्छित्ति करेगा, अतः उसके आयुवेदना द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक-दो समयों द्वारा पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करता है, यह बतलाने के लिए सूत्र में अन्तर्मुहूर्त का ग्रहण किया है। क्योंकि पर्याप्तियों को पूर्ण करने का काल जघन्य और उत्कृष्ट दोनों अन्तर्मुहूर्त ही है। उसमें उत्कृष्ट काल का प्रतिषेध करने के लिए 'सर्वलघु' पद का ग्रहण किया है।

किमर्थमुत्कृष्टकालस्य प्रतिषेधः क्रियते ?

दीर्घकालेन बहुका गोपुच्छा गलन्ति इति बहुनिषेकनिर्जराप्रतिषेधार्थं तत्प्रतिषेधः क्रियते। एकद्विपर्याप्तिषु समाप्तिं गतासु पर्याप्तो जीवः आयुर्बंधप्रायोग्यो न भवति, किंतु सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तगतश्चैवायुर्बंधप्रायोग्यो भवतीति ज्ञापनार्थं 'सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो' इत्युक्तं सूत्रे।

अन्तर्मुहूर्तकालेन पुनरपि जलचेरषु परभवसंबंधि-पूर्वकोट्यायुर्बध्नाति।

अयं जीवः पर्याप्तिसमानितसमयप्रभृति यावदन्तर्मुहूर्त्तं न गतं तावत्कदलीघातं न करोति, इति ज्ञापनार्थं 'अंतोमुहुत्तेण' निर्देशः कृतः।

किमर्थमधस्तन-भुज्यमानायुष्कस्य कदलीघातो न क्रियते ?

न क्रियते, स्वाभाव्यात्।

कदलीघातेन विनान्तर्मुहूर्तकालेन परभविकमायुः किं न बध्यते ?

न, जीवित्वा यदायुर्व्यतीतं तस्यार्धस्याधिकाबाधायां सत्यां परभवसंबंधि-आयुर्बंधाभावात्।

एतत्केन प्रमाणेन ज्ञायते?

''पुव्वकोडितिभागमेत्ता चेव आउअस्स उक्कस्साबाहा होदि'' इति कालविधानसूत्राद् ज्ञायते।

अत्र पूर्वकोट्याः स्तोकायुष्केषु जलचरेषु कथं नोत्पादितः ?

न, जलचरेषु पूर्वकोट्यायुर्बंधककालं मुक्त्वान्येषां बंधककालानां बहुत्वाभावात्।

शंका — उत्कृष्ट काल का प्रतिषेध किसलिए किया जाता है ?

समाधान — चूँकि दीर्घ काल द्वारा बहुत गोपुच्छाएं गल जाने से बहुत निषेकों की निर्जरा हो जाती है, अतः इस बात का प्रतिषेध करने के लिए उत्कृष्ट काल का प्रतिषेध किया जाता है। एक-दो पर्याप्तियों के पूर्ण होने पर पर्याप्त हुआ जीव आयुबंध के योग्य नहीं होता, किन्तु सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ ही आयुबंध के योग्य होता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए 'सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ' ऐसा कहा है।

अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा फिर भी जलचरों में परभव संबंधी पूर्वकोटि प्रमाण आयु को बांधता है।

यह जीव पर्याप्तियों को पूर्ण कर चुकने के समय से लेकर जब तक अन्तर्मुहूर्त नहीं बीतता है तब तक कदलीघात मरण नहीं करता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए 'अन्तर्मुहूर्त' पद का निर्देश किया है।

शंका — इसके नीचे भुज्यमान आयु का कदलीघात क्यों नहीं करता है ?

समाधान — नहीं करता है, क्योंकि ऐसा ही स्वभाव है।

शंका — कदलीघात के बिना अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा परभविक आयु क्यों नहीं बांधी जाती है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि जीवित रहकर जो आयु व्यतीत हुई है उसकी आधी से अधिक आबाधा के रहते हुए परभवित आयु का बंध नहीं होता है।

शंका — यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — ''पूर्वकोटि के तृतीय भाग मात्र ही आयु की उत्कृष्ट आबाधा होती है'' इस कालविधान सूत्र से जाना जाता है।

शंका — यहाँ पूर्वकोटि से कम आयु वाले जलचर जीवों में आयु का बंध क्यों नहीं कराया है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि जलचर जीवों में पूर्वकोटि प्रमाण आयु के बंधक काल को छोड़कर अन्य बंधककाल नहीं पाये जाते हैं।

दीर्घायुर्बंधककालस्याभ्यंतरे तस्य योग्यस्य उत्कृष्टयोगेन बध्नाति। योगयवमध्यस्योपरि अंतर्मुहूर्तकालं स्थितः। तत्र अन्तिमे जीवगुणहानिस्थानान्तरे आवलिकाया असंख्यातभागं स्थितः।

बहु-बहुवारं साताकालेन युक्तः। अत्र सातावेदनीयबन्धस्य योग्यकालस्य साताकाल इति नाम। एवं असातावेदनीयबंधयोग्य-संक्लेशकालस्य 'असाताकाल' इति नाम। तत्रावलंबनकरणेन गलमानद्रव्यप्रतिषेधार्थं साताकालेन बहुवारं परिणामितः।

तदनन्तरसमये 'परभवसंबंधि-आयुषो बंधव्युच्छित्तिः करिष्यति' इति तस्यायुर्वेदना द्रव्यापेक्षया उत्कृष्टा भवति।

अधुनानुत्कृष्टवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्तमणुक्कस्सं।।४७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका —**तत उत्कृष्टात् व्यतिरिक्तद्रव्यमनुत्कृष्टद्रव्यवेदना भवतीति ज्ञातव्यं।**

एवं द्वितीयेऽन्तरस्थले आयुर्वेदनाकथनत्वेन त्रयोदश सूत्राणि गतानि।

अधुना ज्ञानावरणीय जघन्यवेदनानिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया कस्स ?।।४८।।

दीर्घ आयु बंधक काल के भीतर उसके योग्य उत्कृष्ट योग से बांधता है। योगयवमध्यकाल के ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा। वहाँ अंतिम जीवगुणहानिस्थानांतर में आवली के असंख्यातवें भाग काल तक रहा। बहुत-बहुत बार साता काल से युक्त रहा। यहाँ सातावेदनीय के बंध के योग्य काल का नाम साताकाल है। असातावेदनीय के बंध योग्य संक्लेशकाल का नाम असाताकाल है। उनमें से अवलम्बन करण द्वारा गलने वाले द्रव्य का प्रतिषेध करने के लिए साताकाल के द्वारा बहुत बार परिणमन कराया है।

तदनंतर समय में परभवसंबंधी आयु की बंधव्युच्छित्ति करेगा अतः उसके आयुवेदना द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।

अब अनुत्कृष्ट वेदना का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

उससे भिन्न द्रव्य आयु की अनुत्कृष्ट द्रव्यवेदना है।।४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उससे अर्थात् उत्कृष्ट से भिन्न अनुत्कृष्ट द्रव्यवेदना होती है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय अन्तरस्थल में आयवुदेना का कथन करने वाले तेरह सूत्र पूर्ण हुए।

अब ज्ञानावरणीय की जघन्यवेदना का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

स्वामित्व के जघन्य पद में द्रव्य की अपेक्षा ज्ञानावरण की जघन्य वेदना किसके होती है ?।।४८।।

जो जीवो सुहुमणिगोदजीवेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो।।४९।।

तत्थ य संसरमाणस्स बहवा अपज्जत्तभवा थोवा पज्जत्तभवा।।५०।।

दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ रहस्साओ पज्जत्तद्धाओ।।५१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**स्वामित्वेन जघन्यपदे द्रव्यापेक्षया ज्ञानावरणस्य जघन्यवेदना कस्य भवतीति आशंकासूत्रं वर्तते। अत्र एकसंयोगादिक्रमेण पंचदशाशंकविकल्पा उत्पादयितव्या। अस्मिन् सूत्रे उत्कृष्टपदप्रतिषेधार्थं जघन्यपदग्रहणं। ज्ञानावरणीयनिर्देशः शेषकर्मप्रतिषेधफलः। द्रव्यनिर्देशः क्षेत्रादिप्रतिषेधफलोऽस्ति।**

अस्याशंकासूत्रस्योत्तरं दीयते—

यो जीवः सूक्ष्मनिगोदजीवेषु पल्योपमस्यासंख्यातभागेन न्यूनं कर्मस्थितिप्रमाणकालं स्थितः। स एव ज्ञानावरणस्य जघन्यद्रव्यस्य स्वामी भवति। पल्योपमस्यासंख्यातभागेन न्यूनं कर्मस्थितप्रमाणकालं निगोदजीवेषु स्थित इति एतत्तस्य एकं विशेषणं।

किमर्थमेतद् विशेषणं क्रियते ?

अन्यजीवैः परिणममानयोगादेतेषां योगस्यासंख्यातगुणहीनत्वात्।

असंख्यातगुणहीनयोगेन किमर्थं भ्रामितः ?

जो जीव सूक्ष्म निगोद जीवों में पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम कर्मस्थिति प्रमाण काल तक रहा है।।४९।।

वहाँ सूक्ष्म निगोदिया जीवों में परिभ्रमण करने वाले उस जीव के अपर्याप्त भव बहुत होते हैं और पर्याप्त भव थोड़े होते हैं।।५०।।

अपर्याप्तकाल बहुत और पर्याप्त काल थोड़ा है।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वामित्व से जघन्य पद में द्रव्य की अपेक्षा ज्ञानावरण कर्म की जघन्य वेदना किसके होती है, ऐसा आशंकासूत्र है। यहाँ एक संयोगादि क्रम से पन्द्रह आशंकाविकल्पों को उत्पन्न कराना चाहिए। उत्कृष्ट पद का प्रतिषेध करने के लिए जघन्य पद का ग्रहण किया है। 'ज्ञानावरणीय' इस पद के निर्देश का फल शेष कर्मों का प्रतिषेध करना है। 'द्रव्य' इस पद के निर्देश का फल क्षेत्रादि का प्रतिषेध करना है।

अब यहाँ आशंका सूत्र का उत्तर देते हैं—

जो जीव सूक्ष्मनिगोदिया जीवों में पल्योपम के असंख्यातवें भाग से न्यून कर्मस्थितिप्रमाण काल तक रहता है, वही ज्ञानावरण कर्म के जघन्य द्रव्य का स्वामी होता है। पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम कर्मस्थिति प्रमाण काल तक निगोदजीवों में रहा, यह उसका एक विशेषण है।

शंका—यह विशेषण किसलिए किया गया है ?

समाधान—क्योंकि अन्य जीवों द्वारा परिणमन किये जाने वाले योग की अपेक्षा इनका योग असंख्यातगुणा हीन है, अतः उक्त विशेषण दिया है।

शंका—असंख्यातगुणे हीन योग के साथ किसलिए घुमाया जाता है ?

संग्रहार्थं एव अनेन योगेन भ्रामितः।

पल्योपमस्यासंख्यातभागेन न्यूना कर्मस्थितिः किमर्थं कृता ?

पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रकालं एकेन्द्रियेषु संचितकर्मप्रदेशानां गुणश्रेणिरूपेण गालनार्थं।

यद्येवं तर्हि सर्वकर्मस्थितेः कर्मप्रदेशानां गुणश्रेणिनिर्जरा कथं न क्रियते ?

न, पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रसम्यक्त्वकाण्डकैः परिणतसर्वजीवस्य नियमेन निर्वाणगमनोपलंभात्।

पुनरप्याशंकते कश्चित्—

पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रसम्यक्त्वकाण्डक-संयमासंयमकाण्डकैः परिणतजीवो नियमेन निर्वाणमुपगच्छति इति कुतो ज्ञायते ?

पल्योपमस्य असंख्यातभागेन ऊनमिति निर्देशस्यान्यथानुपपत्तेः।

सूक्ष्मनिगोदेषु तिष्ठतो जीवस्य आवासनिरूपणार्थमुत्तरसूत्राणि भणितानि श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण।

तत्र च संसरणक्रियमाणस्य जीवस्य बहवोऽपर्याप्तभवा भवन्ति स्तोकाश्च पर्याप्तभवा इति ज्ञातव्यम्।

श्रीवीरसेनाचार्येण अस्यैव प्रकरणस्य विस्तृतं विवेचनं क्रियते—

एषः क्षपितकर्मांशिकोऽपर्याप्तेषु क्षपित-गुणितघोलमानेभ्यो बहुवारमुत्पद्यते, पर्याप्तकेषु स्तोकवारमुत्पद्यते।

कुतः ?

समाधान—संग्रह करने के लिए असंख्यातगुणे ही योग के साथ घुमाया है।

शंका—पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन कर्मस्थिति किसलिए की गई है ?

समाधान—पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक एकेन्द्रियों में संचित हुए कर्मप्रदेशों को गुणश्रेणिरूप से गलाने के लिए उक्त कर्मस्थिति की गई है।

शंका—यदि ऐसा है, तो सब कर्मस्थिति के कर्मप्रदेशों की गुणश्रेणी निर्जरा क्यों नहीं की जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जो जीव पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र सम्यक्त्वकाण्डकों से परिणत होते हैं उन सबका नियम से निर्वाणगमन पाया जाता है।

यहाँ फिर से कोई शंका करता है कि—

पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र सम्यक्त्वकाण्डक और संयमासंयमकाण्डकों से परिणत हुआ जीव नियम से निर्वाण को प्राप्त करता है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि इसके बिना 'पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन' यह निर्देश घटित नहीं होता है। अतएव इसी से वह जाना जाता है।

सूक्ष्म निगोदजीवों में रहने वाले उक्त जीव के आवासों के निरूपणार्थ श्री भूतबली आचार्य देव ने उत्तर सूत्रों को कहा है।

वहाँ सूक्ष्म निगोदजीवों में परिभ्रमण करने वाले उस जीव के अपर्याप्त भव बहुत होते हैं और पर्याप्त भव थोड़े होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

श्री वीरसेनाचार्य ने इसी प्रकरण का विस्तृत विवेचन किया है—यह क्षपितकर्मांशिक जीव अपर्याप्तकों में क्षपित घोलमान व गुणित घोलमान कर्मांशिक जीवों की अपेक्षा बहुत बार उत्पन्न होता है और पर्याप्तकों में थोड़े बार उत्पन्न होता है।

क्यों ?

पर्याप्तयोगादसंख्यातगुणहीनेन अपर्याप्तयोगेन स्तोकानां कर्मप्रदेशानां संचयदर्शनात्।

क्षपितकर्मांशिकपर्याप्तभवेभ्यः तस्यैवापर्याप्तभवा बहव इति किन्नोच्यते ?

नोच्यते, किं च—विकलेन्द्रियपर्याप्तस्थितेः संख्यातवर्षसहस्रत्वस्यान्यथानुपपत्तेः। तद्यथा—द्वीन्द्रियापर्याप्तकेषु यदि जीवो निरंतरमुत्पद्यते तर्हि उत्कृष्टेन अशीतिवारमुत्पद्यते। त्रीन्द्रियापर्याप्तकेषु षष्टिवारं, चतुरिन्द्रियापर्याप्तकेषु चत्वारिद्वारं, पंचेन्द्रियापर्याप्तकेषु चतुर्विंशतिवारमुत्पद्यते।

पर्याप्तानामायुःस्थितिः पुनः यथाक्रमेण द्वादशवर्षाणि, एकोनपंचाशद्रात्रिंदिवसानि, षण्मासाः, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि'। तत्र यदि द्वीन्द्रियपर्याप्तानामशीति-उत्पन्नवारा भवन्ति तर्हि द्वीन्द्रियभवस्थितिर्दश-गुणित-षण्णवतिवर्षमात्रा—नवशतषष्टिवर्षप्रमाणा एव भवति। त्रीन्द्रियाणामष्टनवतिमासा (दिन ४९×६०=९८ वर्ष), चतुरिन्द्रियाणां विंशतिवर्षाणि (मास ६×४०=२० वर्ष) भवन्ति।

न चैवं ''संख्यातानि वर्षसहस्राणि'' इति कालानियोगद्वारे एतेषां भवस्थितिप्रमाणनिरूपणात्।

ततो ज्ञायते यथा अपर्याप्तकेषु उत्पद्यमानवारेभ्यो विकलेन्द्रियपर्याप्तकेषु उत्पद्यमानवारा बहव इति, अन्यथा संख्यातवर्षसहस्रमात्र भवस्थिते अनुत्पत्तेः। यथा विकलेन्द्रियेषु पर्याप्तेषु उत्पन्नवारा बहवस्तथा सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवेषु अपि स्वकापर्याप्तकेषु उत्पन्नवारेभ्यः पर्याप्तकेषु उत्पन्नवारा बहवश्चैव, जीवत्वं प्रति विशेषाभावात् तिर्यक्त्वं प्रति विशेषाभावाद्वा। तस्मात् स्वकपर्याप्तभवेभ्यः स्वकापर्याप्तभवा बहव इति

क्योंकि पर्याप्त योग की अपेक्षा असंख्यातगुणे हीन अपर्याप्त योग द्वारा स्तोक कर्मप्रदेशों का संचय देखा जाता है।

शंका—क्षपितकर्मांशिक के पर्याप्त भवों की अपेक्षा उसी के अपर्याप्त भव बहुत हैं, ऐसा क्यों नहीं कहा जाता है ?

समाधान—नहीं कहा जाता है, क्योंकि विकलेन्द्रिय पर्याप्तकों की स्थिति संख्यात हजार वर्ष प्रमाण अन्यथा बन नहीं सकती है। आगे इसी बात को स्पष्ट करके बतलाते हैं—यदि जीव द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकों में निरन्तर उत्पन्न होता है, तो उत्कृष्टरूप से अस्सी (८०) बार उत्पन्न होता है। त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकों में (६०) बार, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकों में चालीस (४०) बार और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों में चौबीस (२४) बार उत्पन्न होता है।

पर्याप्तकों की आयु स्थिति यथाक्रम से बारह वर्ष, उनचास रात्रिदिवस, छह मास और तेंतीस सागरोपमप्रमाण है। उसमें यदि द्वीन्द्रिय पर्याप्तकों के उत्पन्न होने के बार अस्सी हों, तो द्वीन्द्रियों की भवस्थिति दसगुणे छ्यानबै अर्थात् नौ सौ साठ (वर्ष १२×८०=९६०) वर्ष प्रमाण ही होती है। त्रीन्द्रियों की भवस्थिति अट्ठानवे (दिन ४९×६०=९८) मास होती है और चतुरिन्द्रियों की बीस वर्ष (मास ६×४०=२० वर्ष) होती है। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि कालानुयोगद्वार में उक्त जीवों की उत्कृष्ट भवस्थिति संख्यात हजारवर्ष प्रमाण कही है।

इससे जाना जाता है कि अपार्यप्तों में उत्पन्न होने की वारशलाकाओं से विकलेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न होने की वारशलाकाएं बहुत हैं, अन्यथा उनकी संख्यात हजार वर्ष प्रमाण भवस्थिति नहीं बन सकती और जिस प्रकार विकलेन्द्रियों में पर्याप्तकों में उत्पन्न होने की वारशलाकाएँ बहुत हैं उसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में भी अपने अपर्याप्तकों में उत्पन्न होने की वारशलाकाओं से पर्याप्तकों में उत्पन्न

एषोऽर्थो न वक्तव्यः।

एवं भवावासः सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु प्ररूपितः।

अधुना पर्याप्तापर्याप्तकालानामल्पबहुत्वं कथ्यते—

अपर्याप्तकाला दीर्घाः—बहवः पर्याप्तकाला ह्रस्वाः—स्तोका भवन्ति। क्षपित-गुणित-घोलमानापर्याप्तानां कालेभ्यः क्षपितकर्मांशिकापर्याप्तानां काला दीर्घास्तेषां पर्याप्तकालेभ्यः एषां पर्याप्तकालाः स्तोकाः सन्ति इति अत्र ग्रहणं कर्तव्यम्।

अत्र कश्चिदाशंकते—

किमर्थमपर्याप्तकेषु दीर्घायुष्केषु चैवोत्पादयिष्यते ?

पर्याप्तयोगात् असंख्यातगुणहीनेन अपर्याप्तयोगेन स्तोककर्मप्रदेशग्रहणार्थमेव दीर्घायुष्केषु अपर्याप्तकेषु एवोत्पादयिष्यते। तत्रापि एकान्तानुवृद्धियोगकालो बहुकः, परिणामयोगात् एकान्तानुवृद्धियोगस्यासंख्यात-गुणहीनत्वात्।

सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तानामायुःस्थितेस्तेषां चैवापर्याप्तानामायुःस्थितिः बहुका इति किन्नोच्यते ?

नैतद् वक्तव्यं, अपर्याप्तानामायुःस्थितेः पर्याप्तायुःस्थितिर्बहुका इति कालविधाने उपदिष्टत्वात्।

एष अद्धावासः प्ररूपितः।

होने की वार शलाकाएँ बहुत ही हैं, क्योंकि विकलत्रयों से एकेन्द्रियों में जीवत्व की अपेक्षा अथवा तिर्यञ्चपने की अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है, अर्थात् सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव जीवत्व की अपेक्षा और तिर्यञ्चपने की अपेक्षा उक्त द्वीन्द्रियादिकों के समान है। इस कारण अपने पर्याप्त भवों से अपने अपर्याप्त भव बहुत हैं, ऐसा अर्थ नहीं कहना चाहिए।

इस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रियों में भवावास की प्ररूपणा की गई है।

अब पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों के काल का अल्पबहुत्व कहते हैं—

अपर्याप्तकाल दीर्घ अर्थात् बहुत और पर्याप्तकाल ह्रस्व अर्थात् कम होते हैं। क्षपित व गुणित घोलमान अपर्याप्तकों के काल से क्षपित कर्मांशिक अपर्याप्त का काल दीर्घ है और उनके पर्याप्तकाल से इसका पर्याप्तकाल थोड़ा है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

दीर्घ आयु वाले अपर्याप्तकों में ही किसलिए उत्पन्न कराया जाता है ?

समाधान—पर्याप्त योग से असंख्यातगुणे हीन अपर्याप्त योग के द्वारा स्तोक कर्मप्रदेशों का ग्रहण करने के लिए दीर्घ आयु वाले अपर्याप्तकों में ही उत्पन्न कराया है। यहाँ भी एकान्तानुवृद्धि योग का काल बहुत है, क्योंकि परिणाम योग से एकान्तानुवृद्धि योग असंख्यातगुणा हीन है।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकों की आयुस्थिति से उन्हीं के अपर्याप्तकों की आयुस्थिति बहुत है, ऐसा यहाँ क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि कालानुयोगद्वार में अपर्याप्तकों की आयुस्थिति से पर्याप्तकों की आयुस्थिति बहुत है, ऐसा कहा है।

यह अद्धावास की प्ररूपणा की गई है।

सा कम्पिलापुरी नित्यं मंगलं कुरुतान्मम।
मच्चित्तं विमलीकुर्यात् विमलेश्वरजन्मभूः।।

इयं जन्मभूमिवन्दना मेऽपुनर्जन्महेतवे भवेदिति याच्यतेऽत्र। *

अधुना आयुरादिचतुष्कावासनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गुक्कस्सजोगेण बंधदि।।५२।।

उवरिल्लीणं ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे हेट्ठिल्लीणं ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे।।५३।।

बहुसो बहुसो जहण्णाणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि।।५४।।

बहुसो बहुसो मंदसंकिलेसपरिणामो भवदि।।५५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका —**यदा यदायुर्बध्नाति तदा तदा तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन बध्नाति।**

किमर्थमुत्कृष्टयोगेनायुर्बध्यते ?

ज्ञानावरणस्य आगच्छत्समयप्रबद्धपरमाणूनां स्तोकत्वविधानार्थमायुःकर्म उत्कृष्टयोगेन बध्यते। अत्र उत्कृष्टस्वामित्वे प्रोक्तार्थं स्मृत्वा स्तोकत्वसाधनं कर्तव्यं।

एवमायुरावासः प्ररूपितः।

श्लोकार्थ — तीर्थंकर श्री विमलनाथ की जन्मभूमि कम्पिलापुरी नाम की तीर्थनगरी मेरा नित्य ही मंगल करे और मेरे चित्त को निर्मल करे।।

यह जन्मभूमि वंदना मेरे पुनर्जन्म को समाप्त करने में निमित्त बने यही यहाँ मेरी याचना है।

अब आयु आदि चार कर्मों के आवास का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

जब-जब आयु को बांधता है तब-तब उसके योग्य उत्कृष्ट योग से बांधता है।।५२।।

उपरिम स्थितियों के निषेक का जघन्य पद और अधस्तन स्थितियों के निषेक का उत्कृष्ट पद करता है।।५३।।

बहुत-बहुत बार जघन्य योगस्थानों को प्राप्त होता है।।५४।।

बहुत-बहुत बार मंद संक्लेशरूप परिणामों से सहित होता है।।५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह जीव जब-जब आयु कर्म का बंध करता है, तब-तब उसके योग्य उत्कृष्ट योग से बंध होता है।

प्रश्न — उत्कृष्ट योग से आयु को किसलिए बांधता है ?

उत्तर — ज्ञानावरण कर्म के आने वाले समय प्रबद्ध संबंधी परमाणुओं को कम करने के लिए आयु कर्म को उत्कृष्ट योग से बांधता है। यहाँ उत्कृष्ट स्वामित्व में कहे हुए अर्थ का स्मरण कर स्तोकपना सिद्ध करना चाहिए।

इस प्रकार आयु आवास की प्ररूपणा की गई है।

---

* यह प्रकरण कम्पिला जी में लिखा है। कम्पिला जी तीर्थ की वंदना आषाढ़ कृ. तृतीया वीर नि. सं. २५२७, दि. ९-६-२००१ को की है।

अग्रिमसूत्रे कथ्यते —

उपरिमस्थितीनां निषेकस्य जघन्यपदं, अधस्तनस्थितीनां निषेकस्य उत्कृष्टपदं च करोति अयं जीवः।

क्षपितघोलमान-गुणितघोलमानयोरपकर्षणात् क्षपितकर्मांशिकापकर्षणं बहुकं। तेषामेवोत्कर्षणात् अस्योत्कर्षणं स्तोकमिति।

अथवा एतस्य सूत्रस्यान्यार्थो निगद्यते। तद्यथा — बंधापकर्षणाभ्यामधस्तनस्थितीनां निषेकस्योत्कृष्टपदं उपरिमस्थितीनां निषेकस्य जघन्यपदं भवतीति गृहीतव्यं।

भावार्थमेतत् — बंधापकर्षणाभ्यां प्रदेशरचनां कुर्वन् सर्वजघन्यस्थितेर्बहुकं ददाति। तत उपरिमस्थितेर्विशेषहीनं ददाति। एवं नेतव्यं यावत् चरमस्थितिरिति। एष एतस्यार्थो ज्ञातव्यः।

एतेन निषेकावासः प्ररूपितः।

अयं जीवः बहु-बहुवारं जघन्ययोगस्थानानि प्राप्नोति।

सूक्ष्मनिगोदजीवेषु जघन्यानि उत्कृष्टानि चोभययोगस्थानानि सन्ति। तत्र प्रायेण जिनागमाविरोधेन

अब अगले ५३वें सूत्र में कहते हैं —

यह जीव उपरिम स्थितियों के निषेक का जघन्य पद और अधस्तन स्थितियों के निषेक का उत्कृष्ट पद करता है।

क्षपित घोलमान एवं गुणित घोलमान के अपकर्षण से क्षपितकर्मांशिक का अपकर्षण बहुत है और उसी के उत्कर्षण से इसका उत्कर्षण स्तोक — कम है।

अथवा इस सूत्र का अन्य प्रकार से अर्थ कहते हैं, जो इस प्रकार है — बंध और अपकर्षण के द्वारा अधस्तन स्थितियों के निषेक का उत्कृष्ट पद और उपरिम स्थितियों के निषेक का जघन्य पद होता है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

भावार्थ यह है कि — बंध और अपकर्षण द्वारा प्रदेशरचना को करता हुआ सर्वजघन्य स्थिति में बहुत देता है। उससे उपरिम स्थिति में विशेष हीन अर्थात् एक चय कम देता है। इस प्रकार चरम स्थिति के प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। यह इसका अर्थ जानना चाहिए।

विशेषार्थ — यहाँ निषेकावास का निर्देश करने वाले सूत्र का अर्थ दो प्रकार से बतलाया गया है। प्रथम अर्थ अपकर्षण और उत्कर्षण को ध्यान में लेकर किया गया है और दूसरा अर्थ निषेकरचना की मुख्यता से। दोनों का फलितार्थ एक ही है। प्रथम अर्थ का भाव यह है कि क्षपित-गुणित-घोलमान के ज्ञानावरण कर्म का जितना अपकर्षण होता है, उससे इस क्षपितकर्मांशिक के होने वाला ज्ञानावरण कर्म का अपकर्षण बहुत होता है। यह हुई अपकर्षण की बात, किन्तु उत्कर्षण इससे विपरीत होता है। इससे इस क्षपितकर्मांशिक जीव के कर्मनिर्जरा अधिक होती जाती है और संचित द्रव्य उत्तरोत्तर कम रहता जाता है। आगे बंध और अपकर्षण के द्वारा जो निषेकरचना का दूसरा प्रकार लिखा है, उससे भी यही अर्थ फलित होता है। इसलिए इस कथन में मात्र विवक्षाभेद है, अर्थभेद नहीं, ऐसा समझना चाहिए।

इस प्रकार निषेकावास की प्ररूपणा की गई है।

यह जीव बहुत-बहुत बार जघन्य योगस्थानों को प्राप्त करता है।

सूक्ष्मनिगोदिया जीवों में जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकार के योगस्थान हैं। उनमें से प्रायः जिनागम से अविरोध रूप में जो विधि बतलाई है उसके अनुसार जघन्य योगस्थानों में ही रहकर ज्ञानावरण कर्म बांधता

जघन्ययोगस्थानेष्वेव परिणम्य बध्नाति। तेषामसंभवे सति उत्कृष्टयोगस्थानमपि प्राप्नोति।

एतत्कथं ज्ञायते ?

सूत्रे 'बहुसो' इति निर्देशाद् ज्ञायते।

जघन्ययोगेनैव ज्ञानावरणकर्म कथं बंधापितम् ?

स्तोककर्मप्रदेशागमनार्थं जघन्ययोगेन ज्ञानावरणकर्म बंधापितं।

स्तोकयोगेन कर्मागमस्तोकत्वं कथं ज्ञायते ?

द्रव्यविधाने योगस्थानप्ररूपणान्यथानुपपत्तेः।

श्रीवीरसेनाचार्यो वदति—''ण चासंबद्धं भूदबलिभडारओ परूवेदि, महाकम्मपयडिपाहुडअमियवाणेण ओसारिदासेसरागदोसमोहत्तादो[१]''।

अत्र श्रीवीरसेनाचार्यस्य श्रीभूतबलिसूरिवर्यं प्रति महती श्रद्धा दृश्यते।

एवं योगावासः सूक्ष्मनिगोदेषु प्ररूपितः।

अयमेव जीवो बहु-बहुवारं मंदसंक्लेशपरिणामयुक्तो भवति। यावत्शक्यते तावन्मंदसंक्लेशो भवति। मंदसंक्लेशसंभवाभावे उत्कृष्टसंक्लेशमपि गच्छति।

कथमेतज्ज्ञायते ?

सूत्रे 'बहुसो' निर्देशस्यान्यथानुपपत्तेः।

है। उनकी संभावना न होने पर उत्कृष्ट योगस्थान को भी प्राप्त होता है।

शंका—यह बात किस प्रमाण से जानी जाती है ?

समाधान—सूत्र में निर्दिष्ट 'बहुसो' पद से यह बात जानी जाती है।

शंका—जघन्य योग से ही ज्ञानावरण कर्म को किसलिए बंध कराया गया है ?

समाधान—स्तोक कर्मप्रदेशों के आने के लिए जघन्य योग से ज्ञानावरण कर्म को बंधाया गया है।

शंका—स्तोक योग से थोड़े कर्म आते हैं यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—चूँकि द्रव्यविधान में योगस्थानों की प्ररूपणा अन्यथा नहीं बन सकती, इससे जाना जाता है कि स्तोक योग से थोड़े कर्म आते हैं।

श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं कि ''यदि कहा जाये कि भूतबलि भट्टारक असंबद्ध अर्थ की प्ररूपणा करते हैं, सो यह बात भी नहीं है, क्योंकि महाकर्म प्रकृतिप्राभृतरूपी अमृत के पान से उनका समस्त राग, द्वेष और मोह दूर हो गया है। इसलिए वे असम्बद्ध अर्थ की प्ररूपणा नहीं कर सकते हैं।''

यहाँ इस कथन से श्री वीरसेनाचार्य की श्री भूतबली आचार्यदेव के प्रति महती श्रद्धा प्रदर्शित होती है।

इस प्रकार सूक्ष्म निगोदिया जीवों में योगावास को प्ररूपित किया है।

यही जीव अनेकों-अनेकों बार मंद संक्लेश परिणामों से युक्त होता है। जब तक शक्य होता है तब तक मंद संक्लेशरूप परिणामों से ही युक्त होता है। मंद संक्लेशरूप परिणामों की संभावना न होने पर उत्कृष्ट संक्लेश को भी प्राप्त होता है।

शंका—यह बात किस प्रमाण से जानी जाती है ?

समाधान—सूत्र में 'बहुसो' पद का निर्देश नहीं बन सकेगा, अतः इसी से जानना चाहिए कि मंद

---

१. धवला पुस्तक १०, पृ. २७४-२७५

किमर्थं बहुसो मंदसंक्लेशं नीतः ?

ज्ञानावरणकर्मणोऽल्पस्थितिप्राप्त्यर्थं बहुवारं मंदसंक्लेशपरिणामं प्रापितः।

कषायः स्थितिबंधस्य कारणमिति कथं ज्ञायते ?

कालविधाने स्थितिबंधकारणकषायोदयस्थानप्ररूपणात्।

जघन्यस्थितेरत्र किं प्रयोजनम् ?

नैतत्, स्तोकस्थितिषु स्थितस्थूलगोपुच्छाभ्यः बहुनिर्जरोपलंभात्। अथवा बहुद्रव्यापकर्षणार्थं मंद-संक्लेशं नीतः।

एवं संक्लेशावासः प्ररूपितः।

अयं जीवः केन प्रकारेण क्व क्व जायत इति निरूपयताचार्येण सूत्रषट्कमवतार्यते —

एवं संसरिदूण बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।।५६।।

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।।५७।।

संक्लेश के संभव न होने पर वह उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त करता है।

शंका — यह जीव बहुत बार मंद संक्लेश को किसलिए प्राप्त कराया गया है ?

समाधान — ज्ञानावरण कर्म की अल्प स्थिति प्राप्त करने के लिए बहुत बार मंद संक्लेश को प्राप्त कराया गया है।

शंका — कषाय स्थितिबंध का कारण है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — काल विधान में स्थिति बंध के कारणभूत कषायोदयस्थानों की प्ररूपणा की गई है, इससे जाना जाता है कि कषाय स्थितिबंध का कारण है।

शंका — जघन्य स्थिति का यहाँ क्या प्रयोजन है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि स्थितियों के स्तोक होने पर गोपुच्छाएँ स्थूल पाई जाती हैं, जिससे बहुत प्रदेशों की निर्जरा देखी जाती है। यही यहाँ जघन्य स्थिति कहने का प्रयोजन है। अथवा, बहुत द्रव्य का अपकर्षण कराने के लिए मंद संक्लेश को प्राप्त कराया गया है।

भावार्थ — संक्लेश परिणामों के मंद होने से ज्ञानावरण कर्म का स्थितिबंध कम होता है और उपरितन स्थिति में स्थित निषेकों का अपकर्षण भी होता है। यही कारण है कि यहाँ मंद संक्लेश कथन के दो प्रयोजन बतलाये हैं।

इस प्रकार संक्लेशावास की प्ररूपणा की गई है।

यह जीव किस प्रकार से कहाँ-कहाँ उत्पन्न होता है इस बात को बतलाने हेतु आचार्यदेव छह सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

इस प्रकार परिभ्रमण करके यह जीव बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ।।५६।।

अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा अतिशीघ्र सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ।।५७।।

अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो।।५८।।

सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ।।५९।।

संजमं पडिवण्णो।।६०।।

तत्थ य भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालयित्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो।।६१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एवं—पूर्वकथितषड्भिरावासैः सूक्ष्मनिगोदेषु संसृत्य बादरपृथिवीकायिक-पर्याप्तजीवेषु उत्पन्नः।**

सूक्ष्मनिगोदेभ्यो निर्गत्य मनुष्येष्वेव किन्नोत्पन्नः ?

नैतद् वक्तव्यं, किं च—सूक्ष्मनिगोदेभ्योऽन्यत्रानुत्पद्य मनुष्येषु उत्पन्नस्य संयमासंयम-सम्यक्त्वयोरेव ग्रहणप्रायोग्यत्वोपलंभात्।

यद्येवं तर्हि सम्यक्त्वकांडक-संयमासंयमकाण्डककरणनिमित्तं मनुष्येषूत्पद्यमानो बादरपृथ्वीकायिकेषु अनुत्पद्य मनुष्येष्वेव किन्नोत्पद्यते ?

नैतत्, सूक्ष्मनिगोदेभ्यो निर्गतस्य सर्वलघुना कालेन संयमासंयमग्रहणाभावात्।

बादरपृथ्वीपर्याप्तकेषु एव किमर्थमुत्पादितः ?

अन्तर्मुहूर्त काल में मृत्यु को प्राप्त करके पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ।।५८।।

सर्वलघुकाल में योनि से निकलने रूप जन्म से उत्पन्न होकर आठ वर्ष का हुआ।।५९।।

पुनः संयम को प्राप्त कर लिया।।६०।।

वहाँ कुछ कम पूर्वकोटिमात्र भवस्थिति काल तक संयम का पालन कर अपने जीवन काल के थोड़ा शेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ।।६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस प्रकार पूर्व में कहे गये छह आवासों के द्वारा सूक्ष्म निगोद जीवों में परिभ्रमण कर बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ।

शंका—सूक्ष्म निगोद जीवों में से निकलकर मनुष्यों में ही क्यों नहीं उत्पन्न हुआ ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सूक्ष्म निगोद जीवों में से अन्यत्र न उत्पन्न होकर मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीव के संयमासंयम और सम्यक्त्व के ही ग्रहण की योग्यता पाई जाती है।

शंका—यदि ऐसा हे तो सम्यक्त्वकाण्डक और संयमासंयम काण्डकों को करने के लिए मनुष्यों में उत्पन्न होने वाला जीव बादर पृथिवीकायिकों में उत्पन्न न होकर मनुष्यों में ही क्यों नहीं उत्पन्न होता है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि सूक्ष्म निगोदों में से निकले हुए जीव के सर्वलघुकाल द्वारा संयमासंयम का ग्रहण नहीं पाया जाता है।

शंका—बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकों में ही किसलिए उत्पन्न कराया है ?

न, अपर्याप्तेभ्यो निर्गतस्य सर्वलघुकालेन संयमासंयमग्रहणाभावात्।

बादरपृथिवीकायिकेषु किमर्थमुत्पादितः ?

अप्कायिकपर्याप्तेभ्यो मनुष्येषूत्पन्नस्य सर्वलघुना कालेन संयमादिग्रहणाभावात्।

अयं एव जीवः अन्तर्मुहूर्तेण सर्वलघुं-अतिशीघ्रं सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तको जातः। अत्रैतद् ज्ञातव्यं — पर्याप्तिसमापनकालो जघन्योऽपि एकसमयादिको नास्ति, किन्तु अंतर्मुहूर्तमात्रश्चैवेति ज्ञापनार्थमन्तर्मुहूर्तग्रहणं कृतं सूत्रे।

अत्र अतिशीघ्रं कथं पर्याप्तिं नीतः ?

सूक्ष्मनिगोदजीवात् असंख्यातगुणेन बादरपृथिवीकायिकापर्याप्तयोगेन संचीयमानद्रव्यप्रतिषेधार्थं। यः पुनः सर्वलघुकालेन पर्याप्तीः न समानयति तस्य एकान्तानुवृद्धियोगकालः महान् भवति। तेन तत्र द्रव्यसंचयोऽपि बहुको भवति। तत्प्रतिषेधार्थं 'सव्वलहुं पज्जत्तिं गदो' इति सूत्रे वर्तते।

अयमेव जीवोऽन्तर्मुहूर्तेन कालं — मृत्युं कृत्वा पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। पर्याप्तीः संपूर्य यावदन्तर्मुहूर्तमात्रकालपर्यंतं विश्रम्य परभवसंबंधि-आयुर्बध्वा पुनः विश्रामादिक्रियाभिर्यावन्न गतस्तावत्कालं न करोतीति अन्तर्मुहूर्तेन कालगत' इति भणितं। बहुकालं संयमगुणश्रेण्या कर्मनिर्जरार्थं 'पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो' इति सूत्रे वर्तते।

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि अपर्याप्तकों में से निकले हुए जीव के सर्वलघु काल के द्वारा संयमासंयम के ग्रहण का अभाव पाया जाता है।

शंका — बादर पृथिवीकायिकों में किसलिए उत्पन्न कराया है ?

समाधान — क्योंकि अप्कायिक पर्याप्तों में से मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीव के सर्वलघु काल के द्वारा संयमादिका ग्रहण संभव नहीं है।

यही जीव अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा सर्वलघु-अतिशीघ्र सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ। यहाँ यह जानना चाहिए कि — पर्याप्तियों की पूर्णता का काल जघन्य भी एक समय आदिक नहीं है, किन्तु अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए सूत्र में अन्तर्मुहूर्त पद का ग्रहण किया है।

शंका — यहाँ अतिशीघ्र पर्याप्तियों को क्यों पूर्ण कराया है ?

समाधान — सूक्ष्म निगोदजीवों के योग से असंख्यातगुणे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवों के योग द्वारा संचित होने वाले द्रव्य का प्रतिषेध करने के लिए सर्वलघु काल में पर्याप्ति को पूर्ण कराया है। जो सर्वलघु काल द्वारा पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करता है उसका एकान्तानुवृद्धियोगकाल महान होता है और इसलिए वहाँ द्रव्य का संचय भी बहुत होता है अतः इस बात का निषेध करने के लिए सर्वलघु काल द्वारा पर्याप्तियों को पूर्ण करता है, यह सूत्र में कहा है।

यही जीव अन्तर्मुहूर्तकाल में मृत्यु को प्राप्त होकर पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर्याप्तियों को पूर्ण करके अन्तर्मुहर्त काल तक विश्राम करता है तथा परभव संबंधी आयु का बंध कर जब तक पुनः विश्राम आदि क्रिया को नहीं प्राप्त होता, तब तक मरण को प्राप्त नहीं होता है, इसलिए 'अन्तर्मुहूर्त में मृत्यु को प्राप्त होकर' ऐसा कहा है। बहुत काल तक संयमगुणश्रेणि के द्वारा संचित कर्मों की निर्जरा कराने के लिए 'पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ' ऐसा सूत्र में कहा है।

अयमेव जीवः सर्वलघुकालेन योनिनिष्क्रमणजन्मना जातः अष्टवर्षीयः। गर्भे पतितप्रथमसमयप्रभृति केचित् सप्तमासपर्यंतं गर्भे स्थित्वा गर्भान्निःसरन्ति, केचित् अष्टमासपर्यंतं, केचिन्नवमासपर्यंतं, केचिद् दशमासपर्यंतं वा स्थित्वा गर्भान् निःसरन्ति। तत्र गर्भलघुं गर्भनिःक्रमणजन्मवचनान्यथानुपपत्तेः सप्तमासं गर्भे स्थित्वेति गृहीतव्यम्। तेन गर्भनिष्क्रमणजन्मना जातः पुनः अष्टवर्षीयोऽभवत्। गर्भात् निष्क्रान्तप्रथमसमय-प्रभृतिअष्टवर्षेषु गतेषु संयमग्रहणयोग्यो भवति, अधस्तनकाले न भवतीति एष भावार्थः।

गर्भे पतितप्रथमसमयप्रभृति अष्टवर्षेषु गतेषु संयमग्रहणयोग्यो भवतीति केऽपि भणन्ति।

तन्न घटते, 'जोणिणिक्खमणजम्मणेण' इति सूत्रे वचनं, तद्वचनस्यान्यथानुपपत्तेः। यदि गर्भे पतितप्रथम-समयात् अष्टवर्षाणि गृण्हन्ति तर्हि 'गब्भपडणजम्मणेण अट्ठवस्सीओ जादो' इति सूत्रकारो भणेत्।

न चैवं, तस्मात् सप्तमासाधिकाष्टभिर्वर्षैः संयमं प्रतिपद्यते इति एष एवार्थो गृहीतव्यः, 'सव्वलहुं' सूत्रे कथितं तन्निर्देशस्यान्यथानुपपत्तेः।

अयमेव जीवः 'संयमं प्रतिपन्नः' इति कथ्यते।

अत्र कश्चिदाह —

सूक्ष्मनिगोदजीवः पल्योपमस्यासंख्यातभागेन कालेन यत्कर्मसंचयं करोति तद् बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तः एकसमयेन संचिनोति। यद् बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तः पल्योपमस्यासंख्यातभागेन कालेन कर्मसंचयं करोति तन्मनुष्यपर्याप्तः एकसमयेन संचिनोति। ततः बादरकायिकपर्याप्तकेषु उत्पाद्य कर्मसंचयं कृत्वा पुनः मनुष्येषु

यही जीव सबसे से लघु-अल्पकाल में योनि से निकलने रूप जन्म से उत्पन्न होकर आठ वर्ष का हुआ। गर्भ में आने के प्रथम समय से लेकर कोई सात मास गर्भ में रहकर गर्भ से निकलते हैं, कोई आठ मास पर्यन्त, कोई नौ मास पर्यन्त अथवा कोई दश मास पर्यन्त गर्भ में रहकर गर्भ से निकलते हैं। उसमें सर्वलघु — सबसे कम काल में गर्भ से निकलनेरूप जन्म का कथन अन्यरूप से बन नहीं सकता है, अतः 'सात मास गर्भ में स्थित रहा' ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इसलिए गर्भ से निष्क्रमणरूप जन्म से उत्पन्न होकर पुनः आठ वर्ष का हुआ। गर्भ से निकलने के प्रथम समय से लेकर आठ वर्ष बीत जाने पर संयम ग्रहण के योग्य होता है, इसके पहले संयम ग्रहण के योग्य नहीं होता है, यह सूत्र का भावार्थ है।

गर्भ में आने के प्रथम समय से लेकर आठ वर्षों के बीतने पर संयम ग्रहण के योग्य होता है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं।

किन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि ऐसा मानने पर योनिनिष्क्रमणरूप जन्म से यह सूत्र वचन नहीं बन सकता। यदि गर्भ में आने के प्रथम समय से लेकर आठ वर्ष ग्रहण किये जाते हैं तो 'गर्भ में आने से लेकर जन्म से आठ वर्ष का हुआ' ऐसा सूत्रकार कहते किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं कहा है। इसलिए सात मास अधिक आठ वर्ष का होने पर संयम को प्राप्त करता है, यही अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अन्यथा सूत्र में 'सर्वलघु' पद का निर्देश घटित नहीं होता है।

यही जीव 'संयम को प्राप्त हुआ' ऐसा कहते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

सूक्ष्म निगोदिया जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग काल के द्वारा जितने कर्म का संचय करता है उसे बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव एक समय में संचित कर लेता है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग काल द्वारा जितना कर्मसंचय करता है, उसे पर्याप्त मनुष्य एक समय में संचित कर लेता है। इसलिए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकों में उत्पन्न कराकर कर्मसंचय कराके, पश्चात्

उत्पाद्य कर्मसंचयं कारयित्वा सूक्ष्मनिगोदेषु उत्पादिते न कोऽपि लाभोऽस्ति इति चेत् ?

अत्राचार्यदेवः परिहरति—

अस्ति लाभः, अन्यथा सूत्रस्यानर्थकत्वप्रसंगात्। न च सूत्रमनर्थकं भवति। श्रीवीरसेनाचार्योऽत्र कथ्यते—

''वयणविसंवादकारणराग-दोस-मोहुम्मुक्कजिणवयणस्स अणत्थयत्तविरोहादो।[१]''

कथमनर्थकं न भवति ?

उच्यते—प्रथमसम्यक्त्वं संयमं चाक्रमेण गृह्णामाणो मिथ्यादृष्टिः अधःप्रवृत्तकरण-अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरणानि कृत्वा चैव गृण्हाति।

अत्र गुणश्रेणिनिर्जराव्यवस्था धवलाटीकायां द्रष्टव्यो भवति।

येनैवं सम्यक्त्व-संयमाभिमुखमिथ्यादृष्टिः असंख्यातगुणश्रेण्या बादरैकेन्द्रियेषु पूर्वकोट्यायुष्कमनुष्येषु दशसहस्रवर्षायुष्कदेवेषु च संचितद्रव्यादसंख्यातगुणं द्रव्यं निर्जरयति, तेन इमं लाभं दृष्ट्वा संयमं प्रापितः।

असंख्यातगुणश्रेण्या कर्मनिर्जरा भवतीति कथं ज्ञायते ?

उच्यते— सम्मत्तुप्पत्तीए सावयविरदे अणंतकम्मंसे।
दंसणमोहक्खवगे कसायउवसामगे य उवसंते।।१।।

मनुष्यों में उत्पन्न कराकर कर्मसंचय कराके सूक्ष्म निगोद जीवों में उत्पन्न कराने में कोई लाभ नहीं है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं—

उसमें लाभ है, अन्यथा सूत्र के निरर्थक होने का प्रसंग आएगा और सूत्र कभी निरर्थक नहीं होते हैं। श्री वीरसेनाचार्य यहाँ इस विषय में कहते हैं—

''वचनविसंवाद के कारणभूत राग, द्वेष व मोह से रहित जिन भगवान के वचन के निरर्थक मानने में विरोध आता है।।''

प्रश्न—सूत्र अनर्थक-निरर्थक कैसे नहीं होता है ?

इस विषय में उत्तर देते हैं कि—प्रथम सम्यक्त्व और संयम को एक साथ ग्रहण करने वाला मिथ्यादृष्टि जीव अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण को करके ही ग्रहण करता है। यहाँ गुणश्रेणी निर्जरा की व्यवस्था धवला टीका में देखना चाहिए।

इस प्रकार सम्यक्त्व और संयम के अभिमुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव बादर एकेन्द्रियों में पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में और दश हजार वर्ष की आयु वाले देवों में संचित किये गये द्रव्य से असंख्यातगुणे अधिक द्रव्य की निर्जरा करता है। अतएव इस लाभ को देखकर संयम को प्राप्त कराया है।

प्रश्न—वहाँ असंख्यातगुणश्रेणीरूप से कर्म निर्जरा होती है यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—इस विषय में कहते हैं कि—

गाथार्थ—सम्यक्त्वोत्पत्ति अर्थात् प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति, श्रावक (देशविरत), विरत (महाव्रती), अनन्तकर्मांश अर्थात् अनन्तानुबंधी का विसंयोजन करने वाला, दर्शनमोह का क्षय करने वाला, चारित्रमोह का उपशम करने वाला, उपशान्त मोह, चारित्रमोह का क्षय करने वाला क्षीणमोह और जिन, इनके नियम से उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणीरूप से अधिक कर्मनिर्जरा होती है। किन्तु निर्जरा का काल उससे विपरीत क्रम से संख्यातगुणित श्रेणीरूप से अधिक है, अर्थात् उक्त निर्जराकाल जितना जिनभगवान् का है

---

१. षट्खण्डागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. १०, पृ. २८०।

खवगे य खीणमोहे जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा।
तव्विवरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति[१]।।२।।

इति गाथासूत्राज्ज्ञायते।

अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणाभ्यां एव करणाभ्यां निर्जीर्यमाणद्रव्यं बादरैकेन्द्रियादिषु संचितद्रव्यादसंख्यातगुणमिति कथं ज्ञायते ?

'संजमं पडिवज्जिय' इति अभणित्वा ''संजमं पडिवण्णो'' इति सूत्रवचनादेव ज्ञायते।

श्रीवीरसेनाचार्यो ब्रूते —

''ण च फलेण विना किरियापरिसमत्तिं भणंति आइरिया[१]।''

तेन त्रसस्थावरकायिकेषु संचितद्रव्यादसंख्यातगुणं द्रव्यं निर्जीर्य संयमं प्रतिपन्नः इति गृहीतव्यम्।

अथवा गुणश्रेणिजघन्यस्थितौ प्रथमवारनिषिक्तं द्रव्यमसंख्यातावलिप्रबद्धैः संयुक्तमिति आचार्यपरंपरागतोपदेशाद् ज्ञायते, यत् संचयापेक्षया अत्र निर्जरितद्रव्यमसंख्यातगुणमिति।

तत्र च भवस्थितिं देशोनां पूर्वकोटिमात्रां संयममनुपाल्य जीवितव्ये स्तोकावशेषे मिथ्यात्वं गत इति।

तत्र संयमग्रहीतप्रथमसमये चरमसमयवर्तिमिथ्यादृष्टिजीवेन अपकृष्टद्रव्यादसंख्यातगुणं द्रव्यमपकर्ष्य गलितशेषमुदयावलीबाह्ये पूर्वोक्तगुणश्रेणि-आयामात् संख्यातगुणहीनं प्रदेशनिक्षेपेण असंख्यातगुणितगुणश्रेणिं करोति। द्वितीयसमयेऽपि एवमेव करोति। विशेषेण तु — प्रथमसमयापकृष्टद्रव्याद् द्वितीयसमयेऽसंख्यातगुणं

उससे संख्यातगुणा अधिक क्षीणमोह का है, उससे संख्यातगुणा अधिक चारित्रमोहक्षपक का है। इत्यादि।।१-२।।

इन गाथासूत्रों से जाना जाता है कि यहाँ असंख्यातगुणित श्रेणीरूप से अधिक कर्मनिर्जरा होती है।

प्रश्न — अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण इन दोनों ही करणों द्वारा निर्जरा को प्राप्त हुआ द्रव्य बादरएकेन्द्रियादिकों में संचित हुए द्रव्य से असंख्यातगुणा अधिक है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

उत्तर — वह 'संयम को प्राप्त होकर' ऐसा न कहकर 'संयम को प्राप्त हुआ' ऐसा कहे गये सूत्र वचन से ही जाना जाता है।

श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं कि — ''आचार्य प्रयोजन के बिना क्रिया की समाप्ति का निर्देश नहीं करते हैं।'' इसलिए त्रस व स्थावरकायिकों में संचित हुए द्रव्य से असंख्यातगुणे द्रव्य को निर्जीर्ण कर संयम को प्राप्त हुआ, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

अथवा गुणश्रेणी की जघन्य स्थिति में प्रथम बार दिया हुआ द्रव्य असंख्यात आवलियों के जितने समय हों, उतने समयप्रबद्धप्रमाण है इसप्रकार आचार्य परम्परागत उपदेश से जाना जाता है कि संचय की अपेक्षा यहाँ निर्जरा को प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा है।

वहाँ कुछ कम पूर्वकोटि मात्र भवस्थिति काल तक संयम का पालन करके जीवित काल के थोड़ा शेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ, ऐसा कहा है।

वहाँ संयम ग्रहण करने के प्रथम समय में चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टि द्वारा अपकृष्ट द्रव्य से असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण कर उदयावली के बाहिर पूर्वोक्त गुणश्रेणी के आयाम से संख्यातगुणे हीन आयामवाली व प्रदेशनिक्षेप की अपेक्षा असंख्यातगुणी गलितशेष गुणश्रेणी करता है। द्वितीय समय में भी इसी प्रकार करता है। विशेष इतना है कि प्रथम समय में अपकृष्ट द्रव्य की अपेक्षा द्वितीय समय में असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण करके गुणश्रेणी करता है, ऐसा कहना चाहिए।

---

१. षट्खण्डागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. १०, पृ. २८२।

द्रव्यमपकर्ष्य गुणश्रेणिं करोतीति वक्तव्यम्।

एवं समये समयेऽसंख्यातगुणितश्रेण्या द्रव्यमपकर्ष्य गुणश्रेणिं करोति यावदेकान्तवृद्धेः चरमसयम इति। तत उपरि नियमेन हानिर्भवति। तस्मादुपरि गुणश्रेणिद्रव्यं वर्धते हीयते अवस्थीयते वा, संयमपरिणामानां वृद्धि-हानि-अवस्थान-नियमाभावात्। अनेन विधानेन 'भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालयित्ता अंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गदो।'' इति सूत्रेण किंचिन्न्यूनं पूर्वकोटिप्रमाणं भवस्थितिकालपर्यंतं संयमं प्रतिपाल्य जीवनकाले अन्तर्मुहूर्तावशेषे मिथ्यात्वं प्राप्तः इति ज्ञातव्यं भवति।

पूर्वकोटिचरमसमयपर्यंतं गुणश्रेणिनिर्जरा किन्न कृता ?

न, सम्यग्दृष्टिजीवस्य भवनवासि-वानव्यंतर-ज्योतिष्कदेवेषु उत्पत्तेरभावात्। द्वयर्धपल्योपमायुः स्थितिकेषु सौधर्मैशानकल्पदेवेषु उत्पन्नस्य द्वयर्धगुणहानिमात्र पंचेन्द्रियसमयप्रबद्धाणां संचयप्रसंगात्।

अधुना अयमेव जीवः मिथ्यात्वं प्राप्य क्व क्व गच्छतीति सूत्राष्टकमवतार्यते —

सव्वत्थोवाए मिच्छत्तस्स असंजमद्धाए अच्छिदो।।६२।।

मिच्छत्तेण कालगदसमाणो दसवाससहस्साउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो।।६३।।

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।।६४।।

अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो।।६५।।

इस प्रकार समय-समय में असंख्यातगुणित श्रेणीरूप से द्रव्य का अपकर्षण कर एकान्तवृद्धि के अंतिम समय तक गुणश्रेणी करता है। उसके आगे नियम से हानि होती है। पश्चात् उसके आगे गुणश्रेणी द्रव्य बढ़ता है, घटता है, अथवा अवस्थित भी रहता है, क्योंकि वहाँ संयम परिणामों की वृद्धि, हानि अथवा अवस्थान का कोई नियम नहीं है। ''भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालयित्ता अंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गदो'' इस सूत्र से कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण भवस्थिति काल तक संयम को पालकर अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न — पूर्वकोटि के अंतिम समय तक गुणश्रेणी निर्जरा क्यों नहीं की ?

उत्तर — नहीं की है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि की भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों में उत्पत्ति संभव नहीं है। यदि डेढ़ पल्य की स्थिति वाले सौधर्म व ईशान कल्प के देवों में उत्पन्न होता है, तो उसके डेढ़ गुणहानि मात्र पंचेन्द्रिय संबंधी समयप्रबद्धों के संचय का प्रसंग आता है।

अब यही जीव मिथ्यात्व को प्राप्त करके कहाँ-कहाँ जाता है, इस बात को बतलाने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

मिथ्यात्व संबंधी सबसे स्तोक असंयमकाल में रहा।।६२।।

मिथ्यात्व के साथ मरण को प्राप्त होकर दस हजार वर्ष प्रमाण आयु की स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ।।६३।।

सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल में सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ।।६४।।

अन्तर्मुहूर्त में सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ।।६५।।

तत्थ य भवट्ठिदिं दसवाससहस्साणि देसूणाणि सम्मत्तमणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो।।६६।।

मिच्छत्तेण कालगदसमाणो बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।।६७।।

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।।६८।।

अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।।६९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—अयमेव जीवः मिथ्यात्वसंबंधि-सर्वस्तोककालपर्यंतं असंयमकाले स्थितः। अत्राल्पबहुत्वमुच्यते—

सर्वस्तोको देवगति-उत्पत्तियोग्यमिथ्यात्वकालः। ततः मनुष्यगतौ उत्पत्तियोग्यमिथ्यात्वकालः संख्यातगुणः। ततः संज्ञितिर्यग्योग्यमिथ्यात्वकालः संख्यातगुणः। ततः असंज्ञिप्रायोग्यमिथ्यात्वकालः संख्यातगुणः। चतुरिन्द्रियोत्पत्तिप्रायोग्यमिथ्यात्वकालः संख्यातगुणः। त्रीन्द्रियोत्पत्तिप्रायोग्यमिथ्यात्वकालः संख्यातगुणः। द्वीन्द्रियोत्पत्तिप्रायोग्यमिथ्यात्वकालः संख्यातगुणः। बादरैकेन्द्रियोत्पत्तिप्रायोग्यमिथ्यात्वकालः संख्यातगुणः। सूक्ष्मैकेन्द्रियोत्पत्तिप्रायोग्यमिथ्यात्वकालः संख्यातगुण इति।

अत्र एतान् सर्वकालान् परिहृत्य देवगतिसमुत्पन्नमिथ्यात्वकाले शेषे मिथ्यात्वं गतः इति ज्ञापनार्थं

वहाँ कुछ कम दस हजार वर्ष भवस्थिति तक सम्यक्त्व का पालन कर जीवन काल के थोड़ा शेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ।।६६।।

मिथ्यात्व के साथ मृत्यु को प्राप्त होकर बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ।।६७।।

सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल में सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ।।६८।।

अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर मरण को प्राप्त होकर सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ।।६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्रों का अर्थ सुगम है। यही जीव मिथ्यात्व संबंधी सबसे कम समय तक असंयमकाल में स्थित रहा।

यहाँ अल्पबहुत्व को कहते हैं—

देवगति में उत्पत्ति के योग्य मिथ्यात्व का काल सबसे स्तोक—अल्प है। उससे मनुष्यगति में उत्पत्ति के योग्य मिथ्यात्वकाल संख्यातगुणा है। उससे संज्ञी तिर्यंचों में उत्पत्ति के योग्य मिथ्यात्व का काल संख्यातगुणा है। उससे असंज्ञी तिर्यंचों में उत्पत्ति योग्य मिथ्यात्वकाल संख्यातगुणा है। उससे चतुरिन्द्रियों में उत्पत्ति योग्य मिथ्यात्वकाल संख्यातगुणा है। उससे तीन इन्द्रियों में उत्पत्ति योग्य मिथ्यात्व काल संख्यातगुणा है। उससे दो इन्द्रिय जीवों में उत्पत्तियोग्य मिथ्यात्वकाल संख्यातगुणा है। उससे बादर एकेन्द्रिय जीवों में उत्पत्तियोग्य मिथ्यात्वकाल संख्यातगुणा है। उससे सूक्ष्म एकेन्द्रियों में उत्पत्तियोग्य मिथ्यात्वकाल संख्यातगुणा है।

यहाँ इन सब कालों को छोड़कर देवगति में उत्पत्ति योग्य मिथ्यात्वकाल के शेष रहने पर मिथ्यात्व को

'सव्वत्थोवाए मिच्छत्तस्स असंजमद्धाए अच्छिदो' इति सूत्रं भणितमस्ति।

किं च—संयतस्य मिथ्यात्वं गत्वा देवगतावुत्पद्यमानस्य मिथ्यात्वेन सहावस्थानकालो जघन्योऽपि उत्कृष्टोऽपि अस्ति। अस्मिन् सूत्रे 'जघन्यकालपर्यंतं, इति उक्तं भवति।

कथमेतद् ज्ञायते ?

एतस्मादेव उभयार्थसूचकसूत्राद् ज्ञायते। ततो मिथ्यात्वं गत्वा सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालं स्थितः इति भणितमस्ति।

पुनः मिथ्यात्वेन सह मृत्युं प्राप्य दशसहस्रवर्षप्रमाणायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नो जातः। अत्र बद्धदेवायुष्कः संयत एव मिथ्यात्वं गतः न चाबद्धदेवायुष्कः संयतः इति ज्ञातव्यो भवति।

दशसहस्रवर्षायुषः अधस्तनायुष्केषु कथं नोत्पादितः ?

न, देवेषु ततोऽधस्तनायुर्विकल्पाभावात्।

अयमेव जीवोऽन्तर्मुहूर्तेन सर्वलघुकालेन सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः। देवेषु षट्पर्याप्तिपूर्णताकालो जघन्योऽपि अस्ति, उत्कृष्टोऽप्यस्ति। तत्र सर्वजघन्यकालेन पर्याप्तिं प्राप्तः।

अयमेव अन्तर्मुहूर्तेन सम्यक्त्वं संप्राप्तः। अत्र एतज्ज्ञातव्यं—वेदकसम्यक्त्वमेव एषः प्रतिपद्यते। किं च—उपशमसम्यग्दर्शनस्यान्तरकालस्य पल्योपमस्यासंख्यातभागस्य अत्रानुपलंभात्। ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वानन्तानुबंधिप्रकृतीनां विसंयोजनां प्रारभते। तत्राधःकरण-अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरणानि त्रीण्यपि करोति।

अनंतानुबंधिविसंयोजनप्रक्रिया धवलाटीकायां द्रष्टव्या। अत्र संयतेन देशोनपूर्वकोटिप्रमाण-

---

प्राप्त हुआ, इस बात के ज्ञापनार्थ 'मिथ्यात्व संबंधी सबसे स्तोक असंयमकाल में रहा' ऐसा सूत्र में कहा है।

दूसरी बात यह है कि मिथ्यात्व को प्राप्त होकर देवगति में उत्पन्न होने वाले संयत का मिथ्यात्व के समय रहने का काल जघन्य भी है और उत्कृष्ट भी है। उसमें जघन्य काल तक रहा यह सूत्र का अभिप्राय है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—यह इसी उभय अर्थ के सूचक सूत्र से जाना जाता है। इससे मिथ्यात्व को प्राप्त करके वहाँ-वहाँ सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल तक स्थित रहा, ऐसा कहा गया है।

पुनः मिथ्यात्व के साथ मृत्यु को प्राप्त होकर दस हजार वर्ष प्रमाण आयु की स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हो जाता है। यहाँ बद्धदेवायुष्क—देवायु का बंध कर लेने वाले संयत ही मिथ्यात्व को प्राप्त हुए, अबद्धदेवायुष्क—देवायु का बंध नहीं करने वाले मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुए, ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न—दस हजार वर्ष की आयु वाले जीवों को उससे नीचे की आयु वालों में क्यों नहीं उत्पन्न कराया है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि देवों में उससे—दस हजार वर्ष से नीचे की आयु का अभाव पाया जाता है। अर्थात् देवों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष है, उससे कम आयु उनमें नहीं होती है।

यही जीव अन्तर्मुहूर्तरूप सर्वलघुकाल से सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ। देवों में छह पर्याप्तियों की पूर्णता का काल जघन्य भी है और उत्कृष्ट भी है। उसमें जघन्यकाल से पर्याप्ति को पूर्ण किया।

यही जीव अन्तर्मुहूर्त काल से सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। यहाँ यह जानना चाहिए कि—यह वेदक सम्यक्त्व को ही प्राप्त करता है, क्योंकि उपशमसम्यक्त्व का अन्तरकाल जो पल्य का असंख्यातवाँ भाग है वह यहाँ नहीं पाया जाता है। उसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त का समय व्यतीत करके अनन्तानुबंधी कषायों का विसंयोजन प्रारंभ कर देता है। वहाँ अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीनों ही करणों को करता है।

अनन्तानुबंधी कषायों के विसंयोजन की प्रक्रिया धवला टीका में देखना चाहिए। यहाँ संयत ने कुछ कम

संयमगुणश्रेणीद्वारेण या कर्मनिर्जरा कृता ततोऽसंख्यातगुणितकर्मनिर्जरां करोति।

एतत्कथं ज्ञायते ?

'अणंतकम्मंसे' इति गाथासूत्राज्ज्ञायते।

तत्रायं जीवः किंचिन्न्यूनं दशसहस्रवर्ष-भवस्थितिपर्यंतं सम्यक्त्वमनुपाल्य जीवितव्ये स्तोकावशेषे मिथ्यात्वं गतः।

किमर्थं सम्यक्त्वेन सह दशसहस्रवर्षं भ्रामितः ?

नैतद् वक्तव्यं, सम्यग्दृष्टिजीवस्य स्थितिसत्त्वापेक्षया स्थितिबंधो हीनो भवति। अतः तस्य स्तोकस्थितिषु स्थितकर्मप्रदेशाणां बहूनां निर्जरोपलंभात्, जिनपूजा-वंदना-नमस्कारैश्च बहुकर्मप्रदेशनिर्जरोपलंभाच्च।

अयं जीवः प्राग्मनुष्यभवे संयतावस्थायां संयतासंयतावस्थायां वा अनन्तानुबंधिप्रकृतीः कथं न विसंयोजितः?

तत्र संयम-संयमासंयमगुणश्रेणिनिर्जराणां परिहाणिप्रसंगात्।

अवसाने मिथ्यात्वं किमिति नीतः ?

न, मिथ्यात्वमन्तरेण एकेन्द्रियेषु उत्पादाभावात्। अयमेव जीवो मिथ्यात्वेन सह मृत्युं प्राप्य बादरपृथ्वी-कायिकपर्याप्तजीवेषु उत्पन्नो जातः।

देवेषु उत्पन्नस्य प्रथमसमयसंबंधिप्रदेशसत्त्वात् बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तजीवेषु उत्पन्नप्रथमसमयप्रदेशसत्त्वं असंख्यातभागहीनं, सम्यक्त्वानन्तानुबंधि-विसंयोजनक्रियाभिः विनाशितकर्मप्रदेशत्वात्।

पूर्व कोटिप्रमाण संयमगुणश्रेणी के द्वारा जो कर्मनिर्जरा की है, उससे यह असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा करता है।

प्रश्न—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

उत्तर—यह बात "अणंतकम्मंसे" इस गाथासूत्र से जानी जाती है। वहाँ यह जीव कुछ कम दस हजार वर्ष भवस्थिति तक सम्यक्त्व का पालन करके जीवनकाल के थोड़ा शेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ।

प्रश्न—सम्यक्त्व के साथ दस हजार वर्ष तक क्यों घुमाया है ?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सम्यग्दृष्टि के जितना स्थितिसत्त्व होता है, उससे स्थितिबंध कम होता है, अतः उसके स्तोक स्थितियों में स्थित बहुत कर्मप्रदेशों की निर्जरा पाई जाती है तथा जिनपूजा वंदना और नमस्कार से भी बहुत कर्मप्रदेशों की निर्जरा पाई जाती है। इसलिए उसे दस हजार वर्ष तक सम्यक्त्व के साथ घुमाया है।

प्रश्न—इस जीव के पहले मनुष्य पर्याय में संयत अवस्था रहते हुए या संयतासंयत अवस्था को प्राप्त कराकर अनन्तानुबंधी चतुष्क की विसंयोजना क्यों नहीं कराई है ?

उत्तर—वहाँ संयम और संयमासंयम गुणश्रेणी निर्जरा की हानि का प्रसंग आने से अनन्तानुबंधिचतुष्क की विसंयोजना नहीं कराई है।

प्रश्न—अन्त में मिथ्यात्व को क्यों प्राप्त कराया है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्व के बिना एकेन्द्रियों में उत्पन्न होना संभव नहीं है।

यही जीव मिथ्यात्व के साथ मृत्यु को प्राप्त होकर बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ। देवों में उत्पन्न हुए उक्त जीव के प्रथम समय संबंधी प्रदेशसत्त्व से बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तों में उत्पन्न होने के प्रथम समय में प्रदेशसत्त्व असंख्यातवाँ भाग कम है, क्योंकि पहले सम्यक्त्व व अनन्तानुबंधी की विसंयोजन क्रिया द्वारा कर्मप्रदेश का विनाश किया जा चुका है।

बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तान् मुक्त्वा सूक्ष्मनिगोदेषु किन्नोत्पादितः ?

न, देवानां तत्र देवेषु अनन्तरमेवोत्पादाभावात्।

अत्र कश्चित्पुनः प्राह—

बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीरपर्याप्तेषु बादराप्कायिकपर्याप्तकेषु वा किन्नोत्पादितः ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

न, तेषु अयं जीवः तदैवोत्पादयिष्यते यदा देवपर्यायावसाने मिथ्यात्वकालो दीर्घो भवेत्। किं च— तेन विना तत्रोत्पादाभावात्।

कथं एतज्ज्ञायते ?

एतस्माच्चैव सूत्रात् ज्ञायते। अन्यथा बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तकेषु उत्पत्तिनियमानुपपत्तेः।

अयं जीवः मिथ्यात्वेन मृत्वा बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तकेषु उत्पद्य तत्रान्तर्मुहूर्तेन सर्वलघुकालेन सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तावस्थां संप्राप्तः।

बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तसंबंधि-एकान्तानुवृद्धियोगेन आगमिष्यमाणप्रदेशात् सूक्ष्मनिगोदपरिणामयोगेन संचितगोपुच्छा उदये गलमाना संख्यातगुणाः, ततः संचयाभावात्।

सर्वलघुकालेन पर्याप्तिं कथं नीतः ?

सर्वलघुकेन कालेन सूक्ष्मनिगोदेषु प्रवेश्य अल्पतरकालस्याभ्यन्तरे चैव पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्र-स्थितिकाण्डकघातैः अन्तःकोटाकोटिस्थितिसत्त्वकर्म घातयित्वा सूक्ष्मनिगोदस्थितिसत्त्वसमानकरणार्थं,

---

प्रश्न—बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तों को छोड़कर सूक्ष्म निगोद जीवों में क्यों नहीं उत्पन्न कराया है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि देवों की उन देवों में देवपर्याय के अनन्तर ही उत्पत्ति संभव नहीं है।

यहाँ पुनः कोई प्रश्न करता है कि—

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त अथवा बादर जलकायिक पर्याप्तकों में क्यों नहीं उत्पन्न कराया है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि उनमें यह जीव तभी उत्पन्न कराया जा सकता है जब इसके देव पर्याय के अन्त में मिथ्यात्व काल बहुत पाया जाये। उसके बिना इसका वहाँ उत्पाद संभव नहीं है।

प्रश्न—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

उत्तर—इसी सूत्र से जाना जाता है। अन्यथा बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकों में उत्पत्ति का नियम घटित नहीं होता है। यह जीव मिथ्यात्व से मरकर बादरपृथिवीकायिक पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त के सबसे छोटे काल में सभी पर्याप्तियों से पर्याप्त अवस्था को प्राप्त हुआ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त संबंधी एकान्तानुवृद्धि योग से आने वाले प्रदेश की अपेक्षा सूक्ष्म निगोद जीव संबंधी परिणाम योग से संचित गोपुच्छा, जो कि उदय में निर्जरा को प्राप्त हो रही है, संख्यातगुणी है, क्योंकि उससे संचय नही पाया जाता है।

शंका—सर्वलघुकाल में पर्याप्ति को किसलिए प्राप्त कराया है ?

समाधान—सर्वलघु काल द्वारा सूक्ष्म निगोद जीवों की अवस्था में ले जाकर अल्पतरकाल के भीतर ही पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिकाण्डकघातों के द्वारा अन्तःकोटाकोटि प्रमाण स्थितिसत्त्व का घात करके उसे सूक्ष्म निगोद जीवों के स्थितिसत्त्व के समान करने के लिए तथा बादर एकेन्द्रिय के योग से

बादरैकेन्द्रिययोगात् असंख्यातगुणहीनेन सूक्ष्मैकेन्द्रिययोगेन बंधयित्वा उदये बहुप्रदेशनिर्जरार्थं च सर्वलघुकेन कालेन पर्याप्तिं नीतः।

अयमेव जीवोऽन्तर्मुहूर्तेन मृत्युं प्राप्य सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तकजीवेषु उत्पन्नः।

कश्चिदाह —

अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदजीवान् मुक्त्वा पर्याप्तसूक्ष्मनिगोदेष्वेव किमर्थमुत्पादितः ?

आचार्यः प्राह —

न, अपर्याप्तविशुद्धितः अनन्तगुणितपर्याप्तविशुद्ध्या दीर्घस्थितिकाण्डकघातनार्थं पर्याप्तकेष्वेवोत्पाद्यते। अपर्याप्तयोगात् असंख्यातगुणेन पर्याप्तयोगेन कर्मग्रहणं कुर्वतो जीवस्य क्षपितकर्मांशिकत्वं किन्न नश्यति?

न, पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्राल्पतरकालोऽवसर्पिणिकाल इव स्वभावात् एव भुजकारकालेनान्तरित्वा प्रवर्तमानोऽस्ति, अतः आगमात् निर्जरायाः स्तोकत्वाभावात्।

स्थितिकाण्डकं घातयमानो यदि बहुशः पर्याप्तकेष्वेवोत्पद्यते, तर्हि 'बहुआ अपज्जत्तभवा, थोवा पज्जत्तभवा' इत्येतेन सूत्रेण विरोधः किन्न जायते ?

न, तस्य सूत्रस्य भुजकारकालविषयत्वात् पल्योपमस्यासंख्यातभागेनोनकर्मस्थितिविषयत्वाद्वा।

अथवा संयतचरः असंयतसम्यग्दृष्टिर्देवः सर्वलघुकालेन सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु उत्पद्यमानः पर्याप्तकेष्वेव उत्पद्यते, अतएव न पूर्वोक्तदोषसंभवः, इति ज्ञातव्यम्।

असंख्यातगुणे हीन ऐसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय के योग द्वारा बंध कराकर उदय में लाकर बहुत प्रदेशों की निर्जरा कराने के लिए भी सर्वलघु काल में पर्याप्ति को प्राप्त कराया है।

यही जीव अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर मृत्यु को प्राप्त होकर सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ।

यहाँ कोई शिष्य पूछता है कि —

अपर्याप्त सूक्ष्म निगोदियों को छोड़कर पर्याप्त सूक्ष्म निगोदियों में ही किसलिए उत्पन्न कराया है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि —

ऐसा नहीं कहना क्योंकि, अपर्याप्तकों की विशुद्धि से अनन्तगुणी पर्याप्तविशुद्धि के द्वारा दीर्घ स्थितिकाण्डकों को घात कराने के लिए पर्याप्तकों में ही उत्पन्न कराया है।

प्रश्न — अपर्याप्त योग की अपेक्षा असंख्यातगुणे पर्याप्त योग के द्वारा कर्म को ग्रहण करने वाले जीव का क्षपितकर्मांशिकत्व क्यों नहीं नष्ट होता है ?

उत्तर — नहीं, क्योंकि इसके पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण यह अल्पतरकाल अवसर्पिणी काल के समान भुजकार काल के द्वारा अन्तरित होकर स्वभाव से ही प्रवर्तमान हुआ है, इसलिए इसमें आगम — आय की अपेक्षा निर्जरा का कम पाया जाना संभव नहीं है।

प्रश्न — स्थितिकाण्डक का घातने वाला यदि बहुत बार पर्याप्तकों में ही उत्पन्न होता है, तो 'अपर्याप्त भव बहुत हैं और पर्याप्त भव स्तोक हैं इस सूत्र से विरोध क्यों नहीं होगा ?

उत्तर — नहीं, क्योंकि एक तो वह सूत्र भुजकार काल को विषय करता है और दूसरे पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन कर्मस्थिति को विषय करता है, इसलिए पूर्वोक्त दोष नहीं आता है।

अथवा, जो पहले मनुष्य पर्याय में संयत रहा है, ऐसा असंयतसम्यग्दृष्टि देव सर्वलघु काल द्वारा सूक्ष्म एकेन्द्रियों में उत्पन्न होता हुआ पर्याप्तकों में ही उत्पन्न होता है। इसलिए भी पूर्वोक्त दोष की संभावना नहीं है, ऐसा जानना चाहिए।

पुनरप्ययं जीवः क्व गच्छतीति कथयताचार्येण सूत्रमवतार्यते —

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ठिदिखण्डयघादेहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेण कम्मं हदसमुत्तियं कादूण पुणरवि बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।।७०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **यदि अन्तर्मुहूर्तमात्रोत्कीरणकाले एका स्थितिकाण्डकशलाका लभ्यते तर्हि पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्राल्पतरकालस्याभ्यन्तरे कियन्त्यः स्थितिकाण्डकशलाका लभ्यन्त इति प्रमाणेन फलगुणितेच्छाराशेः अपवर्तितायां पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राः स्थितिकाण्डकशलाकाः प्राप्यन्ते। अत्र चतुर्भिरावर्तैः शिष्याणां प्रबोधः उत्पादयितव्यः।**

अयमेव जीवः कदा मोक्षं प्राप्स्यतीति आशंकायां समाधत्ते आचार्यदेवः सूत्रचतुष्टयेन —

एवं णाणाभवग्गहणेहि अट्ठ संजमकंडयाणि अणुपालइत्ता चदुक्खुत्तो कसाए उवसामयित्ता पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि संजमासंजमकंडयाणि सम्मत्तकंडयाणि च अणुपालयित्ता एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे पुणरवि पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो।।७१।।

पुनः भी यह जीव कहाँ जाता है, इस बात को बतलाते हुए आचार्य सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिकाण्डकघात शलाकाओं के द्वारा तथा पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल के द्वारा कर्म को ह्रस्व करके फिर भी बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक जीवों में उत्पन्न हुआ।।७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यदि अन्तर्मुहूर्तमात्र उत्कीरणकाल में एक स्थितिकाण्डकशलाका प्राप्त होती है, तो पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण अल्पतरकाल के भीतर कितनी स्थितिकाण्डकशलाकाएं प्राप्त होंगी, इस प्रकार प्रमाण से फलगुणित इच्छाराशि को भाजित करने पर पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिकाण्डकशलाकाएँ प्राप्त होती हैं।

यहाँ चार आवर्तों के द्वारा शिष्यों को विशेष ज्ञान उत्पन्न कराना चाहिए।

यही जीव मोक्ष को कब प्राप्त करेगा, ऐसी आशंका होने पर आचार्य देव चार सूत्रों के द्वारा समाधान देते हैं —

सूत्रार्थ —

इस प्रकार नाना भवग्रहणों के द्वारा आठ बार संयमकाण्डकों का पालन करके चार बार कषायों को उपशान्त करके पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र संयमसंयमकाण्डकों व सम्यक्त्वकाण्डकों का पालन कर, इस प्रकार परिभ्रमण करके अन्तिम भवग्रहणों में फिर भी पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ।।७१।।

सव्वलहुं जोणिणिक्कमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ।।७२।।

संजमं पडिवण्णो।।७३।।

तत्थ भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति य खवणाए अब्भुट्ठिदो।।७४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतेन सूत्रेण संयम-संयमासंयम-सम्यक्त्वकाण्डकानां कषायोपशामनायाश्च संख्या प्ररूप्यते। तद्यथा—**

चतुर्वारं संयमे परिप्राप्ते एकं संयमकाण्डकं भवति। एतादृशानि अष्टावेव संयमकाण्डकानि भवन्ति, एतेभ्य उपरि संसाराभावात्। द्वात्रिंशद्वारा एव भावसंयमा भवन्ति इति भावार्थो ज्ञातव्यः। एतेष्वष्टसु संयमकाण्डकेषु च चत्वार एव कषायोपशामनवाराः भवन्ति। जीवस्थानचूलिकायां यच्चारित्रमोहनीयस्य उपशामनविधानं दर्शनमोहनीयस्य उपशामनविधानं च प्ररूपितं अत्र तदेव प्ररूपयितव्यमस्ति।

संयमासंयमकाण्डकानि पुनः पल्योमपस्यासंख्यातभागमात्राणि। संयमासंयमकाण्डकेभ्यः सम्यक्त्व-काण्डकानि विशेषाधिकानि, एकत्रिंशद्रूपैरनन्तानुबंधिविसंयोजनकाण्डकानि पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राणि।

कथमेतज्ज्ञायते ?

गुरुपदेशाज्ज्ञायते।

अनेन विधानेन कर्मनिर्जरां कृत्वा अपश्चिमे भवग्रहणे पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु किमर्थमुत्पादितः ?

सर्वलघुकाल में योनिनिष्क्रमणरूप जन्म से उत्पन्न होकर आठ वर्ष का हुआ।।७२।।

उसके पश्चात् संयम को प्राप्त हुआ।।७३।।

वहाँ कुछ कम पूर्वकोटि मात्र भवस्थिति तक संयम का पालन कर जीवन काल के कुछ शेष रहने पर क्षपणा के लिए उद्यत हुआ।।७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ ७१वें सूत्र के द्वारा संयम, संयमासंयम और सम्यक्त्व के काण्डकों की तथा कषायोपशामना की संख्या कही गई है। वह इस प्रकार है—

चार बार संयम को प्राप्त करने पर एक संयमकाण्डक होता है। ऐसे आठ ही संयमबाण्डक होते हैं, क्योंकि इससे आगे संसार नहीं रहता है। अर्थात् ३२ बार ही भाव संयम होते हैं, ऐसा भावार्थ जानना। इन आठ संयमकाण्डकों के भीतर कषायोपशामना के वार चार ही होते हैं। जीवस्थानचूलिका में जो चारित्रमोहनीय के उपशामनविधान की और दर्शनमोहनीय के उपशामनविधान की प्ररूपणा की गई है, उसी की यहाँ प्ररूपणाकरना चाहिए।

पुनः संयमासंयमकाण्डक पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। संयमासंयमकाण्डकों से सम्यक्त्वकाण्डक विशेष अधिक हैं। इकतीसरूप अनंतानुबंधी विसंयोजन कांडक पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र हैं।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—यह गुरु के उपदेश से जाना जाता है।

शंका—इस विधान से कर्मनिर्जरा कराके अंतिम भवग्रहण में पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में किसलिए उत्पन्न कराया है ?

क्षपकश्रेण्यारोहणार्थमेवोत्पादितः।

अयमेव जीवः सर्वलघुकालेन योनिनिष्क्रमणजन्मना जातोऽष्टवर्षीयो भूत्वा संयमं प्रतिपन्नः। तत्र देशोनं पूर्वकोटिमात्रं भवस्थितिपर्यंतं संयममनुपाल्य जीवितव्ये स्तोकावशेषे कर्मक्षपणायामभ्युत्थितः इति ज्ञातव्यं भवति।

यथा चूलिकायां चारित्रमोहक्षपणविधानं दर्शनमोहक्षपणविधानं च प्ररूपितं तथैवात्रापि प्ररूपयितव्यं भवतीति।

विशेषण तु — उपशमसम्यक्त्वप्राप्तिं कुर्वतो जीवस्य गुणश्रेण्या प्रदेशनिर्जरा यावन्ती भवति ततः संयतासंयतस्य गुणश्रेण्या प्रदेशनिर्जरा असंख्यातगुणा ज्ञातव्या। ततः संयतस्य समयं प्रति गुणश्रेण्या प्रदेशनिर्जरा असंख्यातगुणा। ततोऽनन्तानुबंधिकर्माणि विसंयोजतो जीवस्य समयं प्रति गुणश्रेण्या प्रदेशनिर्जरा असंख्यातगुणा। ततो दर्शनमोहनीयं क्षपयतः प्रदेशनिर्जरा असंख्यातगुणा। ततो चारित्रमोहनीयं उपशमयतोऽपूर्वकरणस्य मुनेः गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणा। अनिवृत्तिकरणस्य मुनेर्गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणा। सूक्ष्मसांपरायिकस्य मुनेर्गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणा। उपशांतकषायस्य मुनेर्गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणा। ततोऽपूर्वकरणस्य क्षपकस्य मुनेर्गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणा। अनिवृत्तिकरणक्षपकस्य मुनेर्गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणा। सूक्ष्मकषायक्षपकस्य गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणा। ततः क्षीणकषायक्षपकस्य महामुनेर्गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणा। स्वस्थानसयोगिकेवलिनोऽर्हद्भगवतो गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणा। योगनिरोधेन वर्तमानसयोगिकेवलिनोऽर्हद्भगवतो गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणा इति निर्जराविशेषो ज्ञातव्यो भवति।

समाधान — क्षपकश्रेणि आरोहण कराने के लिए पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न कराया है।

यही जीव सर्वलघुकाल के द्वारा योनिनिष्क्रमणरूप जन्म से उत्पन्न होकर आठ वर्ष का हुआ और वहाँ संयम को ग्रहण कर लिया। वहाँ कुछ कम पूर्वकोटिमात्र भवस्थिति तक संयम का पालन करके अपने जीवनकाल के कुछ शेष रहने पर कर्मक्षपणा के लिए उद्यत हो गया, ऐसा यहाँ जाना चाहिए।

जिस प्रकार चूलिका में चारित्रमोह के क्षय करने की विधि और दर्शनमोह के क्षय करने की विधि कही गई है, उसी प्रकार यहाँ भी उसे कहना चाहिए।

विशेषता यह है कि उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले जीव के जो गुणश्रेणी द्वारा प्रदेश निर्जरा होती है, उससे संयतासंयत के गुणश्रेणी द्वारा होने वाली प्रदेशनिर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे प्रतिसमय संयत के गुणश्रेणी द्वारा होने वाली प्रदेशनिर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे अनन्तानुबंधी का विसंयोजन करने वाले के गुणश्रेणी द्वारा प्रति समय होने वाली प्रदेशनिर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे दर्शनमोहनीय का क्षय करने वाली की प्रदेशनिर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे चारित्रमोहनीय का उपशम करने वाले अपूर्वकरणवर्ती मुनि की गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे अनिवृत्तिकरणवर्ती मुनि की गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे सूक्ष्मसाम्परायिक मुनि की गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे उपशान्तकषाय मुनि की गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे अपूर्वकरण क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले मुनि की गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे अनिवृत्तिकरण क्षपक मुनि की गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक मुनि की गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे क्षीणकषाय महामुनि की गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे स्वस्थान सयोगकेवली अर्हन्त भगवान की गुणश्रेणि निर्जरा असंख्यातगुणी है। उससे योगनिरोध अवस्थान के स्थान विद्यमान सयोगकेवली अर्हन्त भगवान की गुणश्रेणीनिर्जरा असंख्यातगुणी है। इस प्रकार निर्जरा की विशेषता जानने योग्य होती है।

अत्र कश्चिदाशंकते—

अत्र सूत्रस्य टीकायां चारित्रमोहक्षपणविधानं किमर्थं न लिख्यते ?

आचार्यः प्राह समाधानं—

ग्रंथबहुत्वभयेन पुनरुक्तदोषभयेन वा न लिख्यते।

तात्पर्यमत्र—अस्मिन् पंचमकालेऽपि भवद्भिः भवतीभिश्च सम्यक्त्वं संयमासंयमं संयमं वा संप्राप्य मिथ्यात्वेऽसंयमे वा पतनभयेन भेतव्यं, प्रतिदिनं प्रतिक्षणं वा जागरूको भूत्वा प्रमादः परिहर्तव्य इति एतत्पठनस्याभिप्रायो ज्ञातव्यः।

अधुना ज्ञानावरणीयस्य जघन्यवेदनास्वामित्वं प्रतिपादयताचार्येण सूत्रमवतार्यते—

चरिमसमयछदुमत्थो जादो। तस्स चरिमसमयछदुमत्थस्स णाणावरणीय-वेदणा दव्वदो जहण्णा।।७५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**चरमसमयछद्मस्थो नाम क्षीणकषायः। अस्य व्याख्या क्रियते श्रीवीरसेनाचार्येण—''छदुमं णाम आवरणं, तम्हि चिट्ठदि त्ति छदुमत्थो त्ति उप्पत्तीदो।''**

अत्रोपसंहार उच्यते—तस्य द्वे अनुयोगद्वारे-प्ररूपणा प्रमाणमिति। तत्र तावत्प्रवाह्यमानेनोपदेशेन प्ररूपणा उच्यते। तद्यथा—ज्ञानावरणीयस्य कर्मस्थित्यादिसमये यद् बद्धं कर्म तस्य क्षीणकषायचरमसमये

यहाँ कोई शंका करता है कि—

इस सूत्र की टीका में चारित्रमोह के क्षपक का विधान किसलिए नहीं लिखा गया है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

ग्रंथ बड़ा हो जाने के भय से अथवा पुनरुक्त दोष के भय से उसे यहाँ नहीं लिखा है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—इस पंचमकाल में भी आप सभी नर-नारियों को सम्यक्त्व को, संयमासंयम कोअथवा संयम को प्राप्त करके पुनः मिथ्यात्व अथवा असंयम में गिरने के भय से भयभीत होना चाहिए तथा प्रतिदिन, प्रतिक्षण जागरूक होकर प्रमाद छोड़ना चाहिए। यही इस ग्रंथ के पढ़ने का अभिप्राय—सार जानना चाहिए।

अब ज्ञानावरणीय कर्म की जघन्य वेदना के स्वामित्व का प्रतिपादन करते हुए आचार्य सूत्र अवतरित करते हैं—

सूत्रार्थ—

इसके पश्चात् यह जीव अन्तिम समयवर्ती छद्मस्थ हुआ। उस अन्तिम समयवर्ती छद्मस्थ के ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य है।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चरमसमयवर्ती छद्मस्थ का दूसरा नाम है—क्षीणकषाय। आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने इसकी व्याख्या की है—छद्म नाम आवरण का है, उसमें जो स्थित रहता है, वह छद्मस्थ है, यह इसकी व्युत्पत्ति है।

यहाँ उपसंहार करते हैं—

इसके प्ररूपणा और प्रमाण ये दो अनुयोगद्वार है। उनमें पहिले प्रवाहरूप से आये हुए उपदेश के अनुसार प्ररूपणा कही जाती है। वह इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय का कर्मस्थिति के प्रथम समय में जो कर्म बांधा गया है, उसका क्षीणकषाय के अंतिम समय में एक भी परमाणु नहीं है। कर्मस्थिति के द्वितीय समय में

एकोऽपि परमाणुर्नास्ति। कर्मस्थितिद्वितीयसमये यद्बद्धं तदपि नास्ति। एवं तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमादिसमयेषु प्रबद्धं कर्म क्षीणकषायचरमसमये नास्तीति नेतव्यं यावत्पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रनिर्लेपनस्थानानां प्रथमविकल्प इति।

निर्लेपनस्थानानि पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्राणि चैव भवन्तीति कथं ज्ञायते ?

कषायप्राभृतचूर्णिसूत्रादेव ज्ञायते। तद्यथा—

कर्मस्थित्यादिसमये यद् बद्धं कर्म तत्कर्मस्थितिचरमसमये शुद्धं निर्लेपयितव्यमिति। तच्चैव कर्मस्थितिद्विचरमसमयेऽपि शुद्धं निर्लेपयति। एवं त्रिचरमचतुश्चरमादिष्वपि शुद्धं निर्लेपयतीति भणित्वा नेतव्यं यावदसंख्यातानि पल्योपमप्रथमवर्गमूलानि अधस्तादवतीर्य स्थितिसमय इति। एवं शेषसमयप्रबद्धानामपि प्ररूपयितव्यमिति। ततः कर्मस्थित्यादिसमयप्रभृति पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राणां समयप्रबद्धानामेकोऽपि परमाणुः क्षीणकषायचरमसमये नास्तीति ज्ञायते। शेषसमयप्रबद्धानामेकद्वित्रिपरमाणून् आदौ कृत्वा यावदुत्कर्षेण अनन्ताः परमाणवः सन्ति।

अप्रवाह्यमानेनोपदेशेन पुनः कर्मस्थितेः असंख्यातभागमात्राणि कर्मस्थित्यादिसमयप्रबद्धस्य निर्लेपनस्थानानि भवन्ति। एवं सर्वसमयप्रबद्धानां वक्तव्यम्। शेषाणां पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राणां समयप्रबद्धानामेक-परमाणुमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन अनंताः परमाणवः सन्ति।

प्रमाणमुच्यते—सर्वद्रव्ये समीकरणे कृते द्वयर्धगुणहानिमात्राः समयप्रबद्धा भवन्ति। पुनः एतेषां

जो कर्म बांधा गया है, वह भी नहीं है। इसी प्रकार तृतीय-चतुर्थ और पंचम आदि समयों में बांधा गया कर्म क्षीणकषाय के अन्तिम समय में नहीं है। इस प्रकार पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण निर्लेपनस्थानों के प्रथम विकल्प के प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए।

शंका—निर्लेपनस्थान पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण ही होते हैं, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—यह कषायप्राभृत के चूर्णिसूत्रों से जाना जाता है। जो इस प्रकार है—

कर्मस्थिति के प्रथम समय में जो कर्म बांधा गया है, वह कर्मस्थिति के अंतिम समय में न होने के कारण निर्जरा को नहीं प्राप्त होता। वही कर्मस्थिति के द्विचरम समय में भी न होने के कारण निर्जरा को नहीं प्राप्त होता है। इसी प्रकार त्रिचरम और चतुश्चरम आदि समयों में भी न होने के कारण निर्जरा को नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार कहकर पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूल नीचे उतरकर स्थिति समय तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार शेष समयप्रबद्धों का भी कथन करना चाहिए। इसलिए कर्मस्थिति के प्रथम समय से लेकर पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र समयप्रबद्धों का एक भी परमाणु क्षीणकषाय के अंतिम समय में नहीं है, यह जाना जाता है। शेष समयप्रबद्धों के एक दो व तीन परमाणुओं से लेकर उत्कृष्टरूप से अनन्त परमाणु तक होते हैं।

प्रवाहरूप से नहीं आये हुए उपदेश के अनुसार कर्मस्थिति के आदि समयप्रबद्ध के निर्लेपन स्थान कर्मस्थिति के असंख्यातवें भाग मात्र होते हैं। इसी प्रकार सब समयप्रबद्धों का कथन करना चाहिए। शेष रहे पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र समयप्रबद्धों के एक परमाणु से लेकर उत्कृष्टरूप से अनन्त परमाणु तक शेष रहते हैं।

अब प्रमाण का कथन करते हैं—सब द्रव्य का समीकरण करने पर डेढ़ गुण हानि मात्र समयप्रबद्ध

द्वयर्धगुण-हानिमात्रसमयप्रबद्धानामसंख्यातभाग एव नष्टः, शेषबहुभागा क्षीणकषायचरमसमये सन्ति।

कुत एतत् ?

क्षीणकषायचरमगुणश्रेणिचरमगोपुच्छात् द्विचरमादिगुणश्रेणिगोपुच्छानां असंख्यातभागत्वात्।

एषा प्रमाणप्ररूपणा प्रवाह्यमान-अप्रवाह्यमानोपदेशयोर्द्वयोरपि समाना, अप्रवाह्यमानोपदेशेनापि द्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धानामुपलंभात्।

कश्चिदाह — मोहनीयस्य कषायप्राभृते कथितनिर्लेपनस्थानानि ज्ञानावरणस्य कथं वक्तुं शक्यन्ते ?

आचार्यः प्राह — नैतद्, विरोधाभावात्।

संप्रति अजघन्यवेदनास्वामित्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।७६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **संप्रति अजघन्यद्रव्यप्ररूपणायां क्रियमाणायां चतुर्विधा प्ररूपणा भवति। तद्यथा — क्षपितकर्मांशिकस्य कालपरिहाण्यपेक्षया एका, गुणितकर्मांशिकस्य कालपरिहाण्यपेक्षया द्वितीया, क्षपितकर्मांशिकस्य सत्त्वापेक्षया तृतीया, गुणितकर्मांशिकस्य सत्त्वापेक्षया चतुर्थीति।**

तत्र तावत्पूर्वकोटिसमयानां श्रेण्याकारेण रचनां कृत्वा क्षपितकर्मांशिकस्य कालपरिहाण्या अजघन्यद्रव्यप्रमाणप्ररूपणां करिष्यन्ति श्रीदिगंबरजैनाचार्याः। तद्यथा — पल्योपमस्य असंख्यातभागेन न्यूनं

होते हैं। इन डेढ़ गुणहानि मात्र समयप्रबद्धों का असंख्यातवां भाग ही नष्ट हुआ है। शेष बहुभाग क्षीणकषाय के अन्तिम समय में है।

प्रश्न — ऐसा क्यों है ?

उत्तर — क्योंकि क्षीणकषाय की अन्तिम गुणश्रेणी की अन्तिम गोपुच्छा से द्विचरम आदि गुणश्रेणि की गोपुच्छाएं असंख्यातवें भागमात्र होती हैं।

यह प्रमाणप्ररूपणा प्रवाह से आये हुए और प्रवाह से न आये हुए दोनों ही उपदेशों के अनुसार समान है, क्योंकि प्रवाह से नहीं आये हुए उपदेश के अनुसार भी डेढ़ गुणहानिमात्र समयप्रबद्ध पाये जाते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि — कषाय प्राभृत में मोहनीय कर्म के कहे गये निर्लेपनस्थान ज्ञानावरण के कैसे कहे जा सकते हैं ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि इसमें कोई विरोध नहीं आता है।

अब अजघन्य वेदना के स्वामित्व के निरूपण हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

द्रव्य की अपेक्षा जघन्य से भिन्न ज्ञानावरण की वेदना अजघन्य है।।७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अब अजघन्य द्रव्य की प्ररूपणा करते समय चार प्रकार की प्ररूपणा होती है।

वह इस प्रकार है — क्षपितकर्मांशिक के कालपरिहानि की अपेक्षा एक, गुणितकर्मांशिक के कालपरिहानि की अपेक्षा द्वितीय और क्षपितकर्मांशिक के सत्व की अपेक्षा तृतीय और गुणितकर्मांशिक के सत्व की अपेक्षा चतुर्थ।

उनमें से पहिले पूर्वकोटि के समयों की श्रेणीरूप से रचना करके क्षपितकर्मांशिक के काल की परिहानि से अजघन्य द्रव्य प्रमाण प्ररूपणा को श्री दिगम्बर जैनाचार्य कर रहे हैं। वह इस प्रकार है — पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन कर्मस्थिति प्रमाण काल तक सूक्ष्म निगोद जीवों में क्षपित-कर्मांशिक स्वरूप से रहकर फिर वहाँ से निकलकर त्रसकायिकों में उत्पन्न होकर पश्चात् पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र संयमासंयमकाण्डकों को, पल्योपम के असंख्यातवें

कर्मस्थितिपर्यंतं सूक्ष्मनिगोदेषु क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन स्थित्वा ततो निःसृत्य त्रसकायिकेषु उत्पद्य पुनः पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राणि संयमासंयमकाण्डकानि च पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राणि सम्यक्त्वकाण्डकानि पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राणि अनंतानुबंधि-विसंयोजनकाण्डकानि चाष्टसंयम-काण्डकानि चतुर्वारं कषायोपशामनां च समयाविरोधेन कृत्वा बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तकेषु उत्पद्य मनुष्येषु उत्पन्नः।

ततः सप्तमासाधिकाष्टभिर्वर्षैः त्रीण्यपि करणानि कृत्वा सम्यक्त्वं संयमं च युगपत् प्रतिपद्य पुनः देशोनपूर्वकोटिपर्यंतं संयमगुणश्रेणिनिर्जरां कृत्वा अनंतानुबंधिचतुष्कं विसंयोज्य दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा अंतर्मुहूर्तावशेषे जीवितव्ये इति चारित्रमोहनीयक्षपणायां अभ्युत्थितो भूत्वा स्थिति-अनुभागकाण्डकघातसहस्रैः गुणश्रेणिनिर्जरया च चारित्रमोहनीयं क्षपयित्वा क्षीणकषायचरमसमये एकसमयकालीन-एकनिषेकस्थितौ स्थित्यां ज्ञानावरणस्य जघन्यद्रव्यं भवति।

एतस्य जघन्यद्रव्यस्योपरि अपकर्षणोत्कर्षणमाश्रित्य एकपरमाणूत्तरं वर्द्धिते तदेव अजघन्यस्थानं अजघन्यस्थानत्वं प्राप्नोति। एतदजघन्यस्थानस्य अगणितस्थानस्य व्यवस्थाज्ञप्त्यर्थं धवलाटीकायाः स्वाध्यायो विधातव्यः।

अधुना दर्शनावरणीयत्रिकस्य जघन्यद्रव्यनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं। णवरि विसेसो मोहणीयस्स खवणाए अब्भुट्ठिदो चरिमसमयसकसाई जादो। तस्स चरिमसमयसकसाइस्स मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा।।७७।।

भागमात्र सम्यक्त्व काण्डकों को, पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र अनन्तानुबंधिविसंयोजनकाण्डकों को, आठ संयम काण्डकों को तथा चार बार कषायोपशामना को समय — आगम में कही गई विधि के अनुसार अविरोधरूप से करके बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकों में उत्पन्न हो पुनः मनुष्यों में उत्पन्न हुए।

इसके पश्चात् सात मास अधिक आठ वर्षों में तीनों ही करणों को करके उनके द्वारा सम्यक्त्व व संयम को एक साथ प्राप्त कर फिर कुछ कम पूर्वकोटि काल तक संयमगुणश्रेणि निर्जरा करके अनन्तानुबंधिचतुष्क की विसंयोजना करके दर्शनमोहनीय का क्षय करके जीवित के अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर चारित्रमोह की क्षपणा में उद्यत होकर स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात हजारों बार करके और गुणश्रेणिनिर्जरा के द्वारा चारित्रमोहनीय का क्षय करके क्षीणकषाय के अन्तिम समय में एक समय काल वाली एक निषेकस्थिति के स्थित रहने पर ज्ञानावरणीय कर्म का जघन्य द्रव्य होता है।

इस जघन्य द्रव्य के ऊपर अपकर्षण तथा उत्कर्षण का आश्रय लेकर एक परमाणु वृद्धि होने पर वही जघन्य स्थान अजघन्य स्थानपने को प्राप्त हो जाता है। इस अजघन्य स्थान के अगणित स्थान की व्यवस्था को जानने के लिए धवलाटीका का स्वाध्याय करना चाहिए।

अब दर्शनावरणीयत्रिक का जघन्य द्रव्य निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्म की जघन्य द्रव्यवेदना होती है। विशेष इतना है कि मोहनीय कर्म के क्षय में उद्यत हुआ जीव सकषाय भाव के अन्तिम समय को प्राप्त हुआ। उस अन्तिम समयवर्ती सकषायी जीव के द्रव्य की अपेक्षा मोहनीय की वेदना जघन्य होती है।।७७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा ज्ञानावरणीयस्य प्रोक्तं तथा मोहनीयस्यापि वक्तव्यं। विशेषेण तु पल्योपमस्यासंख्यातभागेन न्यूनां कर्मस्थितिं सूक्ष्मनिगोदेषु स्थित्वा मनुष्येषु उत्पद्य पल्योपमस्य असंख्यात-भागमात्रानंतानुबंधिविसंयोजन-संयमासंयमकाण्डकानि अष्टसंयमकाण्डकानि चतुर्वारं कषायोपशामनां च बहुभि- र्भवग्रहणैः कृत्वा पुनः अवसानं मनुष्येषु उत्पद्य सप्तमासाधिकाष्टवर्षाणां उपरि सम्यक्त्वं संयमं च गृहीत्वा संयमगुणश्रेणिनिर्जरां कृत्वा क्षपकश्रेणिमारुह्य चरमसमयवर्तिसूक्ष्मसांपरायिको जातः। तस्य महामुनेर्जघन्या मोहनीयद्रव्यवेदना जायते।**

दर्शनावरणीय-अंतरायाणां पुनः क्षीणकषायचरमसमये जघन्यं जातमिति ज्ञानावरणभंगश्चैव भवति।

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।७८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**जघन्यद्रव्यात् परमाणूत्तरादिद्रव्यमजघन्या वेदना ज्ञातव्या। विशेषव्यवस्था धवलाटीकायां पठितव्या भवति।**

एवं तृतीयेऽन्तरस्थले ज्ञानावरणीयवेदनाप्रमुखत्वेन एकत्रिंशत्सूत्राणि गतानि।

अधुना वेदनीयस्य जघन्यवेदनास्वामित्वप्रतिपादनार्थंएकोनत्रिंशत्सूत्राण्यवतार्यन्ते श्रीभूतबलिसूरिवर्येण—

सामित्तेण जहण्णपदे वेदणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया कस्स ?।।७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— जैसे ज्ञानावरणीय कर्म के संबंध में कहा गया है उसी प्रकार मोहनीय कर्म के विषय में भी कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन कर्मस्थिति तक सूक्ष्म निगोद जीवों में रहकर मनुष्यों में उत्पन्न हो पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र सम्यक्त्वकाण्डक अनन्तानुबंधिविसंयोजनकाण्डक व संयमासंयमकाण्डक, आठ संयमकाण्डक चार बार कषायोपशामना को बहुत भव ग्रहणों द्वारा करके फिर अन्त में मनुष्यों में उत्पन्न होकर सात मास अधिक आठ वर्षों के ऊपर सम्यक्त्व और संयम को ग्रहण कर संयमगुणश्रेणिनिर्जरा करके क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक हुआ। उन महामुनि के मोहनीय द्रव्य की वेदना जघन्य होती है।

परन्तु दर्शनावरण और अन्तराय का द्रव्य क्षीणकषाय के अन्तिम समय में जघन्य होता है, अतएव इनकी प्ररूपणा ज्ञानावरण के ही समान है।

सूत्रार्थ—

उक्त तीनों कर्मों की इससे भिन्न अजघन्य द्रव्यवेदना है।।७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— जघन्य द्रव्य की अपेक्षा एक परमाणु आदि से अधिक द्रव्य अजघन्य वेदना है। विशेष व्यवस्था धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय अन्तरस्थल में ज्ञानावरणीय वेदना की प्रमुखता वाले इकतीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदनीय कर्म की जघन्य वेदना के स्वामित्व का प्रतिपादन करने हेतु श्री भूतबली आचार्य उनतीस सूत्र अवतरित करते हैं—

सूत्रार्थ—

स्वामित्व के जघन्य पद में वेदनीय कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा अजघन्य किसके होती है ?।।७९।।

जो जीवो सुहुमणिगोदेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो।।८०।।

तत्थ य संसरमाणस्स बहुआ अपज्जत्तभवा, थोवा पज्जत्तभवा।।८१।।

दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ, रहस्साओ पज्जत्तद्धाओ।।८२।।

जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गउक्कस्सएण जोगेण बंधदि।।८३।।

उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे।।८४।।

बहुसो बहुसो जहण्णाणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि।।८५।।

बहुसो बहुसो मंदसंकिलेसपरिणामो भवदि।।८६।।

एवं संसरिदूण बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।।८७।।

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।।८८।।

अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो।।८९।।

जो जीव सूक्ष्म निगोदिया जीवों में पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन कर्मस्थिति तक रहा है।।८०।।

उनमें परिभ्रमण करने वाले उक्त जीव के अपर्याप्त भव बहुत और पर्याप्त भव स्तोक हैं।।८१।।

अपर्याप्तकाल दीर्घ और पर्याप्तकाल थोड़ा है।।८२।।

यह जीव जब-जब आयु को बांधता है, तब-तब तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योग से बांधता है।।८३।।

उपरिम स्थितियों के निषेक का जघन्य पद और अधस्तन स्थितियों के निषेक का उत्कृष्ट पद होता है।।८४।।

बहुत-बहुत बार जघन्य योगस्थानों को प्राप्त करता है।।८५।।

बहुत-बहुत बार मंद संक्लेश परिणामों से संयुक्त होता है।।८६।।

इस प्रकार संसरण करके बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ।।८७।।

अन्तर्मुहूर्तकाल के द्वारा सर्वलघुकाल में सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ।।८८।।

अन्तर्मुहूर्त में मृत्यु को प्राप्त होकर पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ।।८९।।

सव्वलहुं जोणिणिक्कमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ।।९०।।

संजमं पडिवण्णो।।९१।।

तत्थ य भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो।।९२।।

सव्वत्थोवाए मिच्छत्तस्स असंजमद्धाए अच्छिदो।।९३।।

मिच्छत्तेण कालगदसमाणो दसवाससहस्साउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो।।९४।।

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।।९५।।

अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो।।९६।।

तत्थ य भवट्ठिदिं दसवाससहस्साणि देसूणाणि सम्मत्तमणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो।।९७।।

मिच्छत्तेण कालगदसमाणो बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।।९८।।

अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।।९९।।

अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।।१००।।

सर्वलघु काल में योनिनिष्क्रमणरूप जन्म से उत्पन्न होकर आठ वर्ष का हुआ।।९०।।

पुनः संयम को प्राप्त हुआ।।९१।।

वहाँ कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष मात्र भवस्थिति तक संयम का पालन कर जीवनकाल के थोड़ा शेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया।।९२।।

मिथ्यात्व संबंधी सबसे थोड़े असंयमकाल में रहा।।९३।।

मिथ्यात्व के साथ मृत्यु को प्राप्त करके दस हजार वर्ष की आयु वाले देवों में उत्पन्न हुआ।।९४।।

अन्तर्मुहूर्त द्वारा सर्वलघुकाल में सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ।।९५।।

वहाँ अन्तर्मुहूर्त में सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया।।९६।।

वहाँ कुछ कम दस हजार वर्ष प्रमाण भवस्थिति तक सम्यक्त्व का पालन करके अपने जीवनकाल में थोड़ा समय शेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ।।९७।।

मिथ्यात्व के साथ काल को प्राप्त होकर बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ।।९८।।

अन्तर्मुहूर्त के द्वारा सर्वलघु काल में सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हो गया।।९९।।

अन्तर्मुहूर्त में मृत्यु को प्राप्त करके सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ।।१००।।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ट्ठिदिखंडयघादेहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागमेत्तेण कालेण कम्मं हदसमुप्पत्तियं कादूण पुणरवि बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।।१०१।।

एवं णाणाभवग्गहणेहि अट्ठ संजमकंडयाणि अणुपालइत्ता चदुक्खुत्तो कसाए उवसामइत्ता पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि संजमासंजम-कंडयाणि सम्मत्तकंडयाणि च अणुपालइत्ता, एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे पुणरवि पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो।।१०२।।

सव्वलहुं जोणिणिक्कमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ।।१०३।।

संजमं पडिवण्णो।।१०४।।

अंतोमुहुत्तेण खवणाए अब्भुट्ठिदो।।१०५।।

अंतोमुहुत्तेण केवलणाणं केवलदंसणं च समुप्पादयित्ता केवली जादो।।१०६।।

तत्थ य भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं केवलिविहारेण विहरित्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति चरिमसमयभवसिद्धियो जादो।।१०७।।

पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र स्थितिकाण्डकघातों के द्वारा पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र काल में कर्म को हतसमुत्पत्तिक करके फिर भी बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ।।१०१।।

इस प्रकार नाना भवग्रहणों के द्वारा आठ संयमकाण्डकों का पालन करके चार बार कषायों का उपशम करके पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण संयमासंयमकाण्डकों व सम्यक्त्वकाण्डकों का पालन करके इस प्रकार संसार में परिभ्रमण करके अन्तिम भव ग्रहण में फिर से भी पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ।।१०२।।

सर्वलघु काल में योनिनिष्क्रमणरूप जन्म से उत्पन्न होकर आठ वर्ष का हुआ।।१०३।।

पुनः संयम को प्राप्त किया।।१०४।।

वहाँ अन्तर्मुहूर्त में क्षपणा के लिए उद्यत हुआ।।१०५।।

वहाँ अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान और केवलदर्शन को उत्पन्न कर केवली पद प्राप्त किया।।१०६।।

वहाँ कुछ कम पूर्वकोटिमात्र भवस्थितिप्रमाण काल तक केवलि विहार से विहार करके जीवितकाल के थोड़ा शेष रहने पर अंतिम समयवर्ती भव्यसिद्धिक हुआ।।१०७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतेषां सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।**

कश्चिद् भव्यो जीवः वेदनीयकर्मणो जघन्यवेदनां सूक्ष्मनिगोदभवेऽनुभूय संसारे संसरन् सम्यक्त्वं संयमं चापि प्राप्नुवन् पुनः पुनः मिथ्यात्वनिमित्तेन जगति भ्रान्त्वा चरमभवे केवलज्ञानमुत्पाद्य अर्हन् परमात्मा संजायते।

अत्र कश्चिदाह—

किं केवलज्ञानम् ?

बाह्यार्थ-अशेषपदार्थावगमः केवलज्ञानम्।

किं केवलदर्शनम् ?

त्रिकालविषयानन्तपर्यायसहितस्वकरूपसंवेदनम् केवलदर्शनम्। एते द्वे अपि ज्ञाने समुत्पाद्य केवली जायत इत्युक्तं भवति।

तत्र केवलिकाले किंचिन्न्यूनं पूर्वकोटिमात्रभवस्थितिप्रमाणकालपर्यंतं केवलिविहारेण विहृत्य स्तोकावशेषे जीवितव्ये अन्तिमसमयवर्ति-भव्यसिद्धिको जातः।

तदेव विस्तीर्यते—

केवलज्ञानोत्पन्नप्रथमसमये वेदनीयद्रव्यस्यापकर्षणं कृत्वा उदयादिगुणश्रेणिं करोति। तद्यथा—

उदये स्तोकं प्रदेशाग्रं ददाति। अनन्तरकालेऽसंख्यातगुणितप्रदेशाग्रं ददाति। एवं गुणश्रेणिशीर्षपर्यंतम-संख्यातगुणितश्रेणिरूपेण प्रदेशाग्रं ददाति।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है।

किसी भव्य जीव ने वेदनीयकर्म की जघन्य वेदना को सूक्ष्म निगोद के भव में अनुभव करके संसार में संसरण करते हुए सम्यक्त्व और संयम को भी प्राप्त कर लिया, पुनः पुनः मिथ्यात्व के निमित्त से संसार में भ्रमण करके मनुष्य के अंतिम भव में केवलज्ञान को उत्पन्न करके अर्हन्त परमात्मा हो जाते हैं।

यहाँ कोई प्रश्न करता है—

केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—बाह्यार्थ अशेष पदार्थों के अवगम—परिज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

प्रश्न—केवलदर्शन का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—तीनों काल विषयक अनन्तपर्यायों से सहित आत्मस्वरूप के संवेदन को केवलदर्शन कहते हैं। ये दोनों ही—केवलज्ञान और केवलदर्शन को उत्पन्न करके केवली होते हैं, ऐसा सूत्र का अभिप्राय हुआ।

वहाँ केवलीकाल में कुछ कम पूर्वकोटि मात्र भवस्थितिप्रमाण कालपर्यन्त केवली विहार से विहार करके पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर विहार करके अपने शेष जीवनकाल के थोड़ा शेष रहने पर अन्तिम समयवर्ती भव्यसिद्धिक हुए।

इसी को विस्तार से बताते हैं—

केवलज्ञान के उत्पन्न होने के प्रथम समय में वेदनीय द्रव्य का अपकर्षण करके उदयादिगुणश्रेणि को करते हैं, जो इस प्रकार है—उदय में स्तोक प्रदेशाग्र को देते हैं। अनन्तर काल में असंख्यातगुणश्रेणीरूप से प्रदेशाग्र को देते हैं। इस प्रकार गुणश्रेणी के शीर्षपर्यन्त असंख्यातगुणितश्रेणीरूप से प्रदेशाग्र को देते हैं।

एवमसंख्यातगुणश्रेणिरूपेण प्रदेशाग्रं निर्जरयन् स्थितिकाण्डकघात-अनुभागकाण्डकघातमन्तरेण केवलिविहारेण विहृत्य आयुषोऽन्तर्मुहूर्तावशेषे दण्ड-कपाट-प्रतर-लोकपूरणसमुद्घातं करोति।

तत्र प्रथमसमये देशोनचतुर्दशरज्जु-आयामेन स्वकदेहविष्कंभात् त्रिगुणविष्कंभेन स्वकदेहविष्कंभेन वा विष्कंभत्रिगुणपरिधिना एकसमयेन वेदनीयस्थितिं खण्डयित्वा विनाशितसंख्यातबहुभागो भूत्वा अप्रशस्तानां कर्मणामनुभागस्य घातितानन्तबहुभागसंयुक्तो दण्डं नाम समुद्घातं करोति। ततो द्वितीयसमये द्वाभ्यामपि पार्श्वाभ्यां स्पृष्टवातवलयं देशोनचतुर्दशरज्ज्वायतं स्वकविष्कंभबाहल्यं शेषस्थितेः घातितासंख्यातबहुभागं घातितशेषानुभागस्य घातितानन्तबहुभागं कपाटसमुद्घातं करोति। ततस्तृतीयसमये वातवलयवर्जिताशेष-लोकक्षेत्रमापूर्य घातितशेषस्थितेः घातितासंख्यातबहुभागं घातितशेषानुभागस्य घातितानन्तबहुभागं प्रतरसमुद्घातं करोति। ततश्चतुर्थसमये सर्वलोकमापूर्य घातितशेषस्थितेः एकसमयेन घातितासंख्यातबहुभागं संघातित-शेषानुभागस्य घातितानन्तबहुभागं सर्वकर्मणां स्थापितान्तर्मुहूर्तस्थितिं लोकपूरणसमुद्घातं करोति।

तदनु ततोऽवतरन् आयुषः संख्यातगुणामवशेषस्थितिं अन्तर्मुहूर्तेन शेषस्थितेः संख्यातबहुभागं हन्ति, शेषानुभागस्य अनंतबहुभागं अंतर्मुहूर्तेन हन्ति। एतस्मात् स्थितिकाण्डकस्यानुभागकाण्डकस्य चान्तर्मुहूर्तप्रमाण-उत्कीरणकालोऽस्ति।

एतस्मात् अंतर्मुहूर्तं गत्वा बादरकाययोगेन बादरमनोयोगं निरुणद्धि। ततोऽन्तर्मुहूर्तेन बादरकाययोगेन बादरवचोयोगनिरोधं करोति। ततोऽन्तर्मुहूर्तेन बादरकाययोगेन बादरोच्छ्वासनिःश्वासं निरुणद्धि। ततोऽन्तर्मुहूर्तेन

इस प्रकार असंख्यातगुणितश्रेणिरूप से प्रदेशाग्र की निर्जरा करते हुए स्थितिकाण्डकघातों व अनुभाग काण्डकघातों के बिना केवलि विहार से विहार करके आयु के अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर दण्ड, कपाट, प्रतर व लोकपूरण समुद्घात को करते हैं।

उसमें प्रथम समय में कुछ कम चौदह राजु आयाम—विस्तार के द्वारा अपने देह के विस्तार की अपेक्षा तिगुने विस्तार द्वारा अथवा अपने देह प्रमाण विस्तार द्वारा तथा विस्तार से तिगुनी परिधि द्वारा एक समय में वेदनीय की स्थिति को खण्डित कर उसके संख्यात बहुभाग के विनाश से संयुक्त एवं अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग के अनन्त बहुभाग के घात से सहित दण्ड नामके समुद्घात को करते हैं। पश्चात् द्वितीय समय में दोनों ही पार्श्वभागों से वातवलय को छूने वाले कुछ कम चौदह राजु आयाम वाले, अपने विस्तार प्रमाण बाहल्य वाले शेष स्थिति के असंख्यात बहुभाग के घात से सहित और घातने से शेष रहे अनुभाग के अनन्त बहुभाग को घातने वाले ऐसे कपाट नामके समुद्घात को करते हैं। पश्चात् तृतीय समय में वातवलयों को छोड़कर समस्त लोकक्षेत्र को व्याप्त कर घात करने से शेष रही स्थिति के असंख्यात बहुभाग का तथा घातने से शेष रहे अनुभाग के अनन्त बहुभाग का घात करने वाले प्रतर नामके समुद्घात को करते हैं। पश्चात् चतुर्थ समय में समस्त लोक को पूर्ण करके एक समय में घातने से शेष रही स्थिति के असंख्यात बहुभाग को तथा घातने से शेष रहे अनुभाग के अनन्त बहुभाग को घातकर सब कर्मों की अन्तर्मुहूर्त स्थिति को स्थापित करने वाले लोकपूरण समुद्घात को करते हैं।

तत्पश्चात् वहाँ से उतरते हुए आयुकर्म से संख्यातगुणी जो शेष कर्मों की स्थिति है उसमें से अन्तर्मुहूर्त द्वारा शेष स्थिति के संख्यात बहुभाग को घातते हैं और शेष अनुभाग के अनन्त बहुभाग को अन्तर्मुहूर्त द्वारा घातते हैं। यहाँ से लेकर स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डक का उत्कीरणकाल अन्तर्मुहूर्त है।

यहाँ से अन्तर्मुहूर्त जाकर बादरकाययोग द्वारा बादर मनोयोग का निरोध करते हैं। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त से बादर काययोग के द्वारा बादर वचनयोग का निरोध करते हैं। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में बादर काययोग द्वारा बादर उच्छ्वास-निच्छ्वास का निरोध करते हैं। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में बादर काययोग द्वारा बादर काययोग का निरोध करते हैं।

बादरकाययोगेन बादरकाययोगनिरोधं विदधाति।

ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्ममनोयोगनिरोधं करोति। ततोऽन्तर्मुहूर्तेन सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मवचोयोगं निरुणद्धि। ततोऽन्तर्मुहूर्तेन सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मोच्छ्वासनिरोधं करोति। पश्चादन्तर्मुहूर्तेन सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मकाययोगनिरोधं कुर्वन् आगमवर्णितकरणानि करोति।

एतत्करणलक्षणं धवलाटीकायां दृष्टव्यम्।

एवं अन्तर्मुहूर्तकालं कृष्टिगतयोगो भूत्वा सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपातिनाम शुक्लध्यानं ध्यायति। कृष्टिवेदक-चरमसमयेऽसंख्यातबहुभागं नाशयति। एवं योगनिरोधे जाते सति आयुःसमानि वेदनीयनामगोत्रकर्माणि करोति। पश्चादन्तर्मुहूर्ते अयोगिकेवली भूत्वा शैलेश्यं प्रतिपद्यते। तत्र सूक्ष्मक्रिया-अनिवृत्तिनामचतुर्थशुक्लध्यानं ध्यायति। ततोऽयोगिकेवलिद्विचरमसमये देवगति-वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वैक्रियिकाहारकशरीरांगोपांग-पंचवर्ण-पंचरस-प्रशस्तगंध-अष्टस्पर्श-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघु-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुस्वर-अयशःकीर्ति-निर्माणनामधेयाः चत्वारिंशत् देवगतिसहगताः प्रकृतीः, अन्यतरवेदनीय-औदारिकशरीर-पंचसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-षट्संहनन-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-पंचवर्ण-पंचरस-अप्रशस्तगंध-अप्रशस्तविहायोगति-उपघात-अपर्याप्त-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्रनामधेयास्त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीः मनुष्यगतिसहगताः, एवमेताः त्रिसप्ततिप्रकृतीः विनाशयति। पुनः अयमेव भगवान्-अयोगिकेवली चरमसमयेऽन्यतरवेदनीय-मनुष्यगति-मनुष्यायुः पंचेन्द्रिय-

---

पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काययोग द्वारा सूक्ष्म मनोयोग का निरोध करते हैं। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में सूक्ष्म काययोग के द्वारा सूक्ष्म वचनयोग का निरोध करते हैं। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में सूक्ष्म काययोग के द्वारा सूक्ष्म उच्छ्वास का निरोध करते हैं। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में सूक्ष्मकाययोग के द्वारा सूक्ष्मकाययोग का निरोध करते हुए आगम में वर्णित इन करणों को करते हैं।

इन करणों का लक्षण धवला टीका में देखना चाहिए अर्थात् धवला टीका का स्वाध्याय करके करण के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टिगतयोग होकर सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति नामक शुक्लध्यान को ध्याते हैं। कृष्टिवेदक के अन्तिम समय में असंख्यात बहुभाग को नष्ट करते हैं। योग का निरोध हो जाने पर वेदनीय, नाम व गोत्रकर्म को आयु के समान करते है। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में अयोगी होकर शैलेश्य भाव को प्राप्त होते हैं। वहाँ सूक्ष्मक्रिया-अनिवृत्ति नामक चतुर्थ शुक्लध्यान को ध्याते हैं। तत्पश्चात् अयोगिकेवली के द्विचरम समय में देवगति, वैक्रियिक, आहारक, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आहारक शरीरांगोपांग, पाँच वर्ण, पाँच रस, प्रशस्त गन्ध, आठ स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त-विहायोगति, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, अयशकीर्ति और निर्माण नामकी चालीस देवगति के साथ रहने वाली तथा अन्यतर वेदनीय, औदारिक शरीर, पाँच स्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, पाँच वर्ण, पाँच रस, अप्रशस्त गंध, अप्रशस्त विहायोगति, उपघात, अपर्याप्त, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र ये तेतीस प्रकृतियाँ मनुष्यगति के साथ रहने वाली है, इस प्रकार इन तिहत्तर प्रकृतियों का अयोगकेवली द्विचरम समय में विनाश करते हैं पुनः यही अयोगकेवली भगवान अंतिम समय में दो में से एक वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र के साथ बारह प्रकृतियों का नाश करके

जाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-तीर्थकर-उच्चगोत्रैः सह द्वादशप्रकृतीर्विनाश्य चरमभवसिद्धिको भवति।

वेदनीयकर्मणो जघन्यवेदनास्वामित्वनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स वेदणीयवेदणा दव्वदो जहण्णा।।१०८।।

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।१०९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र निर्लेपनस्थानानां प्ररूपणा उपसंहारप्ररूपणा च ज्ञानावरणसदृशा ज्ञातव्या। तद्व्यतिरिक्तं वेदनीयस्य वेदना द्रव्यापेक्षया अजघन्या भवति।**

अत्रापि क्षपितकर्मांशिक-गुणितकर्मांशिकयोः कालपरिहाण्यपेक्षा अजघन्यप्रदेशप्ररूपणायां क्रियमाणायां ज्ञानावरणसदृशं कथनमस्ति। विशेषेण तु — क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन वा गुणितकर्मांशिकलक्षणेन वा आगत्य सप्तमासाधिक-अष्टमासानामुपरि संयमं गृहीत्वान्तर्मुहूर्तेण चरमसमयभवसिद्धिको जात इति अवतारयितव्यम्।

विस्तरेण तु धवलाटीकायां पठितव्यम्।

नामगोत्रकर्मणोर्जघन्याजघन्यप्ररूपणाप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं णामा-गोदाणं।।११०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा वेदनीयस्य जघन्याजघन्यद्रव्यस्य प्ररूपणा कृता तथा नामगोत्रयोरपि**

अन्तिम समयवर्ती भवसिद्धिक हो जाते हैं अर्थात् सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं।

अब वेदनीय कर्म की जघन्य वेदना के स्वामित्व का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उस अन्तिम समयवर्ती भवसिद्धिक के वेदनीय की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है।।१०८।।

इससे भिन्न उसकी वेदना द्रव्य की अपेक्षा अजघन्य होती है।।१०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ निर्लेपनस्थानों की प्ररूपणा और उपसंहार की प्ररूपणा ज्ञानावरण कर्म की प्ररूपणा के समान जानना चाहिए। इससे भिन्न वेदनीय कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा अजघन्य होती है।

यहाँ भी क्षपितकर्मांशिक और गुणितकर्मांशिक के कालपरिहानि की अपेक्षा अजघन्य प्रदेशों की प्ररूपणा करते समय ज्ञानावरण के समान कथन है। विशेष इतना है कि क्षपितकर्मांशिकरूप से अथवा गुणितकर्मांशिकरूप से आकर सात मास अधिक आठ वर्षों के ऊपर संयम को ग्रहण कर अन्तर्मुहूर्त में अन्तिम समयवर्ती भवसिद्धिक हुआ, ऐसा अर्थ अवतरित करना चाहिए।

विस्तार से इसका वर्णन धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

नाम और गोत्रकर्म की जघन्य-अजघन्य प्ररूपणा को बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ-

इसी प्रकार नाम और गोत्र कर्म के जघन्य एवं अजघन्य द्रव्य को कहना चाहिए।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जिस प्रकार से वेदनीय कर्म की जघन्य-अजघन्य द्रव्य की प्ररूपणा

कर्तव्यं, विशेषाभावात्।

एवं चतुर्थेऽन्तरस्थले वेदनीयवेदनाकथनत्वेन द्वात्रिंशत्सूत्राणि गतानि।

अधुना आयुःकर्मवेदनाप्ररूपणार्थं एकादशसूत्राण्यवतार्यन्ते श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण —

सामित्तेण जहण्णपदे आउगवेदणा दव्वदो जहण्णिया कस्स ?।।१११।।

जो जीवो पुव्वकोडाउओ अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु आउअं बंधदि रहस्साए आउअबंधगद्धाए।।११२।।

तप्पाओग्गजहण्णएण जोगेण बंधदि।।११३।।

जोगजवमज्झस्स हेट्ठदो अंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो।।११४।।

पढमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभाग-मच्छिदो।।११५।।

कमेण कालगदसमाणो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो।।११६।।

तेणेव पढमसमयआहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण जहण्णजोगेण आहारिदो।।११७।।

की गई है। उसी प्रकार नाम और गोत्रकर्म की भी प्ररूपणा करना चाहिए, उसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार चतुर्थ अन्तरस्थल में वेदनीय कर्म की वेदना का कथन करने वाले बत्तीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब आयुकर्म की वेदना का प्ररूपण करने हेतु श्रीमान् भूतबली आचार्य ग्यारह सूत्र अवतीर्ण करते हैं —

सूत्रार्थ —

स्वामित्व की अपेक्षा जघन्य पद में आयु की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ?।।१११।।

जो पूर्वकोटि की आयु वाला जीव नीचे सप्तम पृथिवी के नारकियों में थोड़े आयु बंधक काल द्वारा आयु को बांधता है।।११२।।

तत्प्रायोग्य जघन्य योग से बांधता है।।११३।।

योग्य व मध्य के नीचे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा।११४।।

प्रथम जीवगुणहानि स्थानान्तर में आवली के असंख्यातवें भाग काल तक रहा।।११५।।

क्रम से मृत्यु को प्राप्त होकर नीचे सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न हुआ।।११६।।

उस ही प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थजीव ने जघन्य योग द्वारा आहार ग्रहण किया।।११७।।

जहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदो।।११८।।

अंतोमुहुत्तेण सव्वचिरेण कालेण सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।।११९।।

तत्थ य भवट्ठिदिं तेत्तीसं सागरोवमाणि आउअमणुपालयंतो बहुसो असादद्धाए जुत्तो।।१२०।।

थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति से काले परभवियमाउअं बंधहिदि त्ति तस्स आउववेदणा दव्वदो जहण्णा।।१२१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**स्वामित्वापेक्षया जघन्यपदे आयुष्कर्मवेदना द्रव्यस्यापेक्षया जघन्या कस्य भवतीति प्रश्ने सति यः कश्चिद् जीवः पूर्वकोट्यायुष्कः सन् अधोलोके सप्तम्यां पृथिव्यां नारकेषु लघु आयुर्बंधककाले आयुर्बध्नाति तस्य द्रव्यतो जघन्यायुर्वेदना भवति।**

पूर्वकोट्यायुष्कश्चैव किमर्थं नरकायुर्बंधापितः ?

अवलम्बनाकरणेन बहुद्रव्यगालनार्थं।

अवलंबनाकरणं किम् ?

परभवसंबंधि-आयुरुवरिमस्थितिद्रव्यस्य अपकर्षणेन अधोनिपतनमवलंबनाकरणं नाम।

एतस्य अपकर्षणा संज्ञा किं न कृता ?

जघन्य वृद्धि से वृद्धि को प्राप्त हुआ।।११८।।

अन्तर्मुहूर्त में सर्वदीर्घ काल द्वारा सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ।।११९।।

वहाँ भवस्थिति तक तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु का पालन करता हुआ बहुत बार असाता वेदनीय के बंध योग्य काल से युक्त हुआ।।१२०।।

जीवित के स्तोक काल शेष रहने पर जो अनन्तर काल में परभविक आयु को बांधेगा, उसके आयु कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है।।१२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वामित्व की अपेक्षा जघन्य पद में आयु कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ? ऐसा प्रश्न होने पर जो कोई जीव पूर्वकोटि आयु वाला तिर्यंच अथवा मनुष्य होता हुआ अधोलोक में सातवीं नरकपृथिवी में नारकियों की लघु आयु बंध करने के काल में आयु का बंध करता है उसके द्रव्य की अपेक्षा जघन्य आयुकर्म की वेदना होती है।

शंका—पूर्वकोटिप्रमाण आयु वाले जीव को ही किसलिए नरकायु का बंध कराया है ?

समाधान—अवलम्बन करण के द्वारा बहुत द्रव्य की निर्जरा कराने के लिए पूर्वकोटि आयु वाले को नारकायु का बंध कराया है।

शंका—अवलम्बना करण किसे कहते हैं ?

समाधान—परभव संबंधी आयु की उपरिम स्थिति में स्थित द्रव्य का अपकर्षण के द्वारा नीचे पतन करना अवलम्बना करण कहा जाता है।

शंका—इसकी अपकर्षणाकरण संज्ञा क्यों नहीं की है ?

न कृता, उदयाभावेन उदयावलिबाह्योऽनिपतमानस्य अपकर्षणव्यपदेशविरोधात्।

अथवा पूर्वकोटित्रिभागे प्रारब्धायुर्बंधस्य अष्टाप्यपकर्षाः कालेन जघन्या भवन्ति, नान्यस्येति ज्ञापनार्थं पूर्वकोटिग्रहणं कृतम्। दीपशिखाद्रव्यस्य स्तोकत्वं स्वीकृत्य अधःसप्तम्यां पृथिव्यां नारकेषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुर्बंधापितः।

अष्टभिरपकर्षैर्बध्नातीति ज्ञापनार्थं ''रहस्साए आउअबंधगद्धाए'' इति सूत्रे प्रोक्तं, अन्यत्र आयुर्बंधकाले जघन्यत्वाभावात्।

'तत्प्रायोग्यजघन्येन योगेन बध्नाति'। इति सूत्रे कथितं।

कश्चिदाशंकते—

किमर्थं जघन्ययोगेनैव आयुर्बंधापितम् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

स्तोककर्मप्रदेशागमनार्थं जघन्ययोगेन आयुर्बंधापितम्।

'योगयवमध्यस्य अधस्तात् अन्तर्मुहूर्तकालं स्थितः।' इति सूत्रे कथितं।

योगयवमध्यात् अधस्तनयोगा उपरिमयोगेभ्योऽसंख्यातगुणहीना इति कृत्वा यवमध्यस्याधोऽन्तर्मुहूर्तकालपर्यंतं स्थापितः।

'प्रथमे जीवगुणहानिस्थानान्तरे आवलिकायाः असंख्यातभागं स्थितः।' इति सूत्रमस्ति।

किंच—तत्रासंख्यातभागवृद्धिं मुक्त्वान्यवृद्धीनामभावात् जघन्ययोगेन स्तोकद्रव्यागमाद्वा।

'क्रमेण कालगतसमानोऽधः सप्तम्यां पृथिव्यां नारकेषु उत्पन्नः।' बद्धपरभविकायुष्को जीवो

समाधान—नहीं की है, क्योंकि परभविक आयु का उदयाभाव होने से इसका उदयावलि के बाहर पतन नहीं होता, इसलिए इसकी अपकर्षण संज्ञा करने का विरोध है।

अथवा पूर्वकोटि के त्रिभाग में प्रारंभ किये गये आयु बंध के आठों अपकर्ष काल की अपेक्षा जघन्य होते हैं, अन्य के नहीं, इस बात के ज्ञापनार्थ सूत्र में पूर्वकोटि पद का ग्रहण किया है। दीपशिखाद्रव्य के थोड़ेपन की इच्छा कर नीचे सप्तम पृथिवी के नारकियों में तेंतीस सागरोपम प्रमाण आयु को बांधता है। आठ अपकर्षों द्वारा बांधता है, इसके ज्ञापनार्थ सूत्र में 'थोड़े आयु बंधककाल से' यह कहा है, क्योंकि अन्यत्र आयु बंधक काल जघन्य नहीं है।

''तत्प्रायोग्य जघन्य योग से बांधता है।'' ऐसा सूत्र में कहा है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

जघन्य योग से ही आयु को किसलिए बंधाया है ?

आचार्य देव इसका समाधान देते हैं कि—

थोड़े कर्मप्रदेशों के आस्रव के लिए जघन्य योग से आयु को बांधना बताया है।

योगयवमध्य के नीचे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा, ऐसा सूत्र में कहा गया है।

योगयवमध्य से नीचे के योग उपरिम योगों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हीन हैं, अतः यवमध्य के नीचे अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहराया है।

'प्रथम जीवगुणहानिस्थानान्तर में आवली के असंख्यातवें भाग काल तक रहा' ऐसा सूत्र है। क्योंकि वहाँ असंख्यातभागवृद्धि को छोड़कर अन्य वृद्धियों का अभाव है, अथवा जघन्य योग से थोड़े द्रव्य का आगमन है'' क्रम से मृत्यु को प्राप्त होकर नीचे सातवीं पृथ्वी के नारकियों में उत्पन्न हुआ।' जिसने परभविक आयु को बांध लिया है वह भुज्यमान आयु का कदलीघात नहीं करता है, ऐसा जानकरके अन्तर्मुहूर्त कम

भुज्यमानायुषः कदलीघातं न करोतीति कृत्वाऽन्तर्मुहूर्तोन-पूर्वकोटित्रिभागमवलम्बनाकरणं कृत्वापवर्तनाघातेन परभवसंबंधि-आयुरघातयित्वा नारकेषु उत्पन्न इति ज्ञापनार्थं 'कमेण कालगदादि' वचनं भणितम्।

'तेनैव प्रथमसमयाहारकेन प्रथमसमयतद्भवस्थेन जघन्ययोगेन आहारितः।'

अत्र सूत्रे अन्यतरसमयप्रतिषेधार्थं 'तेणेव' इति भणितं। प्रथमसमयवर्ती आहारको भूत्वापि द्वितीय-तृतीयसमयवर्ति-तद्भवस्थस्य जघन्योपपादयोगो न भवति इति ज्ञापनार्थं ''पढमसमयआहारएण पढमसमय-तब्भवत्थेण'' आहारितः पुद्गलपिण्डः, स्तोकप्रदेशग्रहणार्थं ''जहण्णेण उववादजोगेण आहारिदो'' इति भणितम्।

'जघन्याया वृद्ध्याः वर्द्धितः।'

एकान्तानुवृद्धियोगानां वृद्धिर्जघन्याप्यस्ति उत्कृष्टाप्यस्ति। तत्र ''जहण्णाए वड्ढीए वड्ढिदो' इति ज्ञापनार्थं इदं भणितम्।

'अन्तर्मुहूर्तेन सर्वचिरेण कालेन सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः।'

दीर्घे अपर्याप्तकाले जघन्यैकान्तानुवृद्धियोगेन स्तोकपुद्गलग्रहणार्थं 'सव्वचिरेण कालेण' इत्युक्तं।

किमर्थमपर्याप्तकालो वर्द्धापितः ?

पर्याप्तकाले आयुषोऽपकर्षकरणात् अपर्याप्तकालेऽपकर्षणं जघन्ययोगेन बहुभवतीति ज्ञापनार्थं अपर्याप्तकालो वर्द्धापितः। 'तत्र च भवस्थितिं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि आयुरनुपालयन् असाताबंधयोग्यकालेन युक्तः।'

किमर्थमसाताबंधयोग्यकाले बहुशो योजितः ?

पूर्वकोटि के त्रिभाग में अवलम्बनाकरण करके अपवर्तनाघात से परभवसंबंधी आयु का घात न करके नारकियों में उत्पन्न हुआ, इस बात के ज्ञापनार्थ सूत्र में 'क्रम से मृत्यु को प्राप्त हुआ' इत्यादि वाक्य कहा है।

''उस ही प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ जीव ने जघन्य योग के द्वारा आहार वर्गणाओं को ग्रहण किया।''

यहाँ सूत्र में द्वितीयादि अन्य समयों का प्रतिषेध करने के लिए 'उस ही ने' ऐसा कहा है। प्रथम समयवर्ती आहारक होकर भी द्वितीय व तृतीय समयवर्ती तद्भवस्थ जीव के जघन्य उपपादयोग नहीं होता है, इस बात के ज्ञापनार्थ 'प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ जीव ने पुद्गलपिंड को आहाररूप से ग्रहण किया, अर्थात् स्तोक प्रदेशों को ग्रहण करने के लिए जघन्य उपपादयोग से आहार को प्राप्त हुआ 'ऐसा कहा है।'

''जघन्य वृद्धि से वृद्धि को प्राप्त हुआ'', ऐसा सूत्र में कहा है।

एकान्तानुवृद्धि योगों की वृद्धि जघन्य भी है और उत्कृष्ट भी है। उनमें जघन्य वृद्धि द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ, इस बात का परिज्ञान कराने के लिए वह सूत्र कहा है।

''अन्तर्मुहूर्त में सर्वदीर्घ काल द्वारा सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ'' ऐसा सूत्र में कहा है।

सो दीर्घ अपर्याप्तकाल के भीतर जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग से स्तोक पुद्गलों का ग्रहण करने के लिए 'सर्वदीर्घकाल द्वारा' ऐसा कहा है।

शंका — अपर्याप्तकाल किसलिए बढ़ाया है ?

समाधान — पर्याप्तकाल में जो आयु का अपकर्षण किया जाता है, उसकी अपेक्षा अपर्याप्तकाल में जघन्य योग से किया गया अपकर्षण बहुत होता है, इसके ज्ञापनार्थ अपर्याप्तकाल को बढ़ाया है।

''वहाँ भवस्थिति तक तेंतीस सागरोपम प्रमाण आयु का पालन करता हुआ बहुत बार असातावेदनीय के बंध योग्य काल से युक्त हुआ।''

शंका — बहुत बार असाताकाल से युक्त किसलिए कराया है ?

अपकर्षेण बहुद्रव्यनिर्जरार्थं बहुशोऽसाताबंधयोग्यकालेन योजितः।

'जीवितव्ये स्तोकावशेषे योऽनन्तरकाले परभविकायुर्बंधिष्यति तस्यायुर्वेदना द्रव्यतो जघन्या भवति।'

किमर्थमायुर्बंधप्रथमसमये जघन्यस्वामित्वं न दीयते ?

न, उदयेन गलमानगोपुच्छापेक्षया भवत्समयप्रबद्धस्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्। विस्तरेण तु धवला-टीकायां द्रष्टव्यम्।

एवं आयुषो जघन्यस्वामित्वं समाप्तम्।

अजघन्यवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।१२२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **जघन्याद् दीपशिखाद्रव्याद् एकपरमाण्वधिक-द्विपरमाण्वधिकादिद्रव्यं तद्व्यतिरिक्तं कथ्यते। एतत्सर्वमजघन्यद्रव्यवेदना भवति। अस्या अपि विस्तरं धवलाटीकायां पठितव्यम्।**

एवं पंचमेऽन्तरस्थले आयुर्वेदनानिरूपणत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

अत्र पर्यंतं स्वामित्वकथने पंचभिरन्तरस्थलैः अष्टादशाधिकशतसूत्राणि कथितानि।

संप्रति तृतीयेस्थलेऽल्पबहुत्वं कथ्यते —

अधुना अल्पबहुत्वप्ररूपणायां अनुयोगद्वारत्रयप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

समाधान — अपकर्षण द्वारा बहुत द्रव्य की निर्जरा कराने के लिए बहुत बार असाता बंध के योग्य काल से युक्त कराया है।

"जीवित के स्तोक शेष रहने पर जो अनन्तर काल में परभविक आयु को बांधेगा, उसके आयु की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है।"

शंका — आयु बंध के प्रथम समय में जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं दिया जाता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि उदय से निर्जीण होने वाली गोपुच्छा की अपेक्षा आने वाला समयप्रबद्ध असंख्यातगुणा पाया जाता है। यह विषय विस्तार से धवला टीका में देखना चाहिए।

इस प्रकार आयुकर्म का जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ।

अब अजघन्य वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

जघन्य द्रव्य से भिन्न अजघन्य द्रव्यवेदना है।।१२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जघन्य दीपशिखाद्रव्य से एक परमाणु अधिक, दो परमाणु अधिक आदि द्रव्य तद्व्यतिरिक्त कहलाता है। वह सब अजघन्य द्रव्यवेदना होती है। इसका भी विस्तृत वर्णन धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

इस प्रकार पंचम अन्तरस्थल में आयु कर्म की वेदना का निरूपण करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

यहाँ तक स्वामित्व के कथन में पाँच अन्तरस्थलों के द्वारा एक सौ अठारह सूत्रों का कथन किया गया है।

अब तृतीय स्थल में अल्पबहुत्व कहते हैं —

अब अल्पबहुत्व प्ररूपणा में तीन अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

अप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे।।१२३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् सूत्रे 'अप्पाबहुए त्ति'' अत्र य इति शब्दः स अल्पबहुत्वमेकं स्वतन्त्राधिकारं अथवा इतरेभ्योऽनुयोगद्वारेभ्यो व्यवच्छेदार्थं वर्तते। तत्र त्रीण्यनुयोगद्वाराणि जघन्य-उत्कृष्ट-जघन्योत्कृष्टपदाल्पबहुत्वभेदेन। अष्टानां कर्मणां जघन्यद्रव्यविषयमल्पबहुत्वं जघन्यपदाल्पबहुत्वं नाम। उत्कृष्टद्रव्यविषयमुत्कृष्टपदाल्पबहुत्वं नाम। तदुभयद्रव्यविषयं जघन्योत्कृष्टपदाल्पबहुत्वं नाम। एतेभ्यस्त्रिभ्योऽतिरिक्तचतुर्थभंगो नास्ति, अनुपलंभात्।**

जघन्यपदापेक्षया जघन्यायुर्वेदनाकथनार्थं सूत्रमवतार्यते—

जहण्णपदेण सव्वत्थोवा आयुगवेदणा दव्वदो जहण्णिया।।१२४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूत्रे ज्ञानावरणीयादिकर्मप्रतिषेधार्थ आयुःपदनिर्देशोऽस्ति। क्षेत्रादिप्रतिषेधफलो द्रव्यनिर्देशः। उत्कृष्टादिप्रतिषेधफलो जघन्यनिर्देशो वर्तते। उपरि उच्यमानजघन्यद्रव्येभ्य एतदायुर्द्रव्यं स्तोकमिति ज्ञापनार्थं 'सव्वत्थोवेत्ति' प्रोक्तं।**

कथं सर्वस्तोकत्वमिति चेत् ?

सूत्रार्थ—

अल्पबहुत्व की प्ररूपणा में जघन्यपद, उत्कृष्टपद और जघन्योत्कृष्ट पद इस प्रकार तीन अनुयोगद्वार हैं।।१२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र में 'अप्पा बहुएत्ति' में जो इति शब्द है, वह अल्पबहुत्व एक स्वतंत्र अधिकार है, यह बतलाने के लिए अथवा दूसरे अनुयोगद्वारों से उसे अलग करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसके जघन्य, उत्कृष्ट व जघन्योत्कृष्ट के भेद से तीन अनुयोगद्वार हैं। उनमें आठ कर्मों के 'जघन्य द्रव्य विषयक अल्पबहुत्व का नाम जघन्यपद अल्पबहुत्व है। उसके उत्कृष्ट द्रव्य विषयक अल्पबहुत्व को उत्कृष्टपद अल्पबहुत्व कहते हैं। जघन्य व उत्कृष्ट द्रव्य को विषय करने वाला अल्पबहुत्व जघन्योत्कृष्टपद-अल्पबहुत्व कहलाता है। इन तीन के अतिरिक्त और कोई चतुर्थ भंग नहीं है, क्योंकि वह पाया नहीं जाता है।

अब जघन्य पद की अपेक्षा जघन्य आयु की वेदना का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

जघन्य पद अल्पबहुत्व की अपेक्षा द्रव्य से जघन्य आयु कर्म की वेदना सबसे स्तोक—कम है।।१२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के प्रतिषेध करने हेतु 'आयु' पद का कथन किया है। क्षेत्रादिक का प्रतिषेध करने के लिए 'द्रव्य' पद का निर्देश किया है। उत्कृष्टादि का प्रतिषेध करने हेतु 'जघन्य' पद को रखा है। आगे कहे जाने वाले कर्मों के जघन्य द्रव्य की अपेक्षा यह आयु कर्म का द्रव्य स्तोक है, इसके ज्ञापनार्थ 'सबसे स्तोक है' ऐसा कहा है।

शंका—वह सबसे स्तोक कैसे है ?

अंगुलस्यासंख्यातभागेन दीपशिखाया अपवर्त्य किंचिदूनीकृतेन पुनः जघन्यायुर्बंधककालेनापवर्तितेन एकसमयप्रबद्धे भागे हृते तत्र एकभागमात्रत्वात्।

संप्रति नामगोत्रकर्मणोर्जघन्यवेदना निरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

णामा-गोदवेदणाओ दव्वदो जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ असंखेज्ज-गुणाओ।।१२५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अंगुलस्य असंख्यातभागो गुणकारोऽस्ति, तच्च असंख्यातावसर्पिण्युत्सर्पिणी-समयप्रमाणं ज्ञातव्यं, पल्योपमस्य असंख्यातभागेन गुणितांगुलस्यासंख्यातभागत्वात्।**

अयोगिभगवतश्चरमसमये जघन्यद्रव्ये नामगोत्रयोः समयप्रबद्धाः पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्राः सन्ति, इति केन प्रमाणेन ज्ञायते ?

''क्षपितकर्मांशिकस्य सार्धैकगुणहानिमात्रा एकेन्द्रियसमयप्रबद्धा सन्ति'' इति गुरूपदेशाज्ज्ञायते।

पुनरपि कश्चिदाह—

संयमादिगुणश्रेणिभिस्तन्नष्टं ततस्तत्संभावना तत्र नास्ति ?

आचार्य आह—

नैतद् वक्तुं शक्यते, किं च संयमादिगुणश्रेणिभिस्तदसंख्यातभागस्यैव नष्टत्वात्।

किमर्थं नामगोत्रयोस्तुल्यत्वम् ?

समाधान—कारण यह है कि आयु कर्म का जघन्य द्रव्य, दीपशिखा से अपवर्तित कर कुछ कम करके फिर जघन्य आयुबंधक काल से अपवर्तित किये गये ऐसे अंगुल के असंख्यातवें भाग का एक समयप्रबद्ध में भाग देने पर वहाँ एक भाग मात्र लब्ध होता है, इसलिए सर्वस्तोक है।

अब नाम और गोत्र कर्म की जघन्य वेदना का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

द्रव्य से जघन्य नाम व गोत्र की वेदनाएं दोनों ही आपस में तुल्य होकर उससे असंख्यातगुणी होती हैं।।१२५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अंगुल का असंख्यातवाँ भाग यहाँ गुणकार है। जो असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों के समयों के बराबर है, क्योंकि वह पल्योपम के असंख्यातवें भाग से गुणित अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

शंका—अयोगकेवली के अंतिम समय में जो जघन्य द्रव्य होता है, उसमें नाम व गोत्र के समयप्रबद्ध पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—क्षपितकर्मांशिक के डेढ़गुणहानि मात्र एकेन्द्रियसंबंधी समयप्रबद्ध होते हैं, इस प्रकार गुरु के उपदेश से जाना जाता है।

पुनः कोई शंका करता है कि—

संयमादि गुणश्रेणियों द्वारा उक्त द्रव्य चूँकि नष्ट हो चुका है। अतएव उसकी वह संभावना वहाँ नहीं है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

ऐसा कहना शक्य नहीं है, क्योंकि संयमादि गुणश्रेणियों द्वारा उसका असंख्यातवाँ भाग ही नष्ट होता है।

शंका—नाम व गोत्र के द्रव्य की समानता किसलिए है ?

तदेवोच्यते — आउवभागो थोवो, णामागोदे समो तदो अहिओ।
आवरणमंतराए, भागो मोहे वि अहिओ दु।।१।।
सव्वुवरि वेयणीए, भागो अहिओ दु कारणं किं तु।
सुहदुक्खकारणंता, ट्ठिदिविसेसेण सेसाणं[1]।।२।।

इत्येतेन न्यायेन तुल्यावयवत्वात्।

संप्रति ज्ञानावरणादित्रिकस्य जघन्यवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणाओ दव्वदो जहण्णियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।।१२६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **अत्र विशेषाधिकप्रमाणं नामगोत्रद्रव्यमावलिकायाः असंख्यातभागेन खण्डितैकखंडप्रमाणं भवति।**

कुतः ?

स्वाभाविकत्वात्।

एकसमयप्रबद्धात् आयुःस्वरूपेण स्तोकद्रव्यं परिणमति। तदावलिकाया असंख्यातभागेन खण्डिते तत्रैकखण्डेनाधिकं भूत्वा नामगोत्रस्वरूपेण परिणमति। नामगोत्रद्रव्यमावलिकायाः असंख्यातभागेन खण्डिते तत्रैकखंडेन अधिकं भूत्वा ज्ञानावरण-दर्शनावरण-अन्तरायाणां स्वरूपेण परिणमति। ज्ञानावरणभाग-

---

समाधान — इसका समाधान निम्न गाथा द्वारा किया जा रहा है।

गाथार्थ — आयु का भाग सबसे स्तोक है, नाम व गोत्र में समान होकर वह आयु की अपेक्षा अधिक है, उससे अधिक भाग आवरण अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय का है, इससे अधिक भाग मोहनीय में है। सबसे अधिक भाग वेदनीय में है, इसका कारण उसका सुख-दुःख में निमित्त होना है। शेष कर्मों के भाग की अधिकता उनकी अधिक स्थिति होने के कारण है।।१-२।।

इस न्याय से नाम व गोत्र का द्रव्य तुल्य आय-व्यय के कारण समान है।

अब ज्ञानावरणादि तीन कर्मों की जघन्य वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

द्रव्य से जघन्य ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अन्तराय की वेदनाएं तीनों ही आपस में तुल्य होकर नाम व गोत्र की वेदना से विशेष अधिक हैं।।१२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ विशेष अधिकता का प्रमाण नाम-गोत्र के द्रव्य को आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें एक खण्ड प्रमाण होता है।

क्यों ?

क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

एक समयप्रबद्ध में से आयुस्वरूप से स्तोक द्रव्य परिणमन करता है। उसको आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें एक खण्ड से अधिक होकर वह नाम-गोत्र स्वरूप से परिणमता है। नाम और गोत्र कर्म के द्रव्य को आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें एक खण्ड से अधिक

---

१. षट्खंडागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. १०, पृ. ३८७।

मावलिकायाः असंख्यातभागेन खण्डिते तत्रैकखण्डेन ततोऽधिकं भूत्वा मोहनीयस्वरूपेण परिणमति। मोहभागमावलिकाया असंख्यातभागेन खण्डिते तत्रैक खण्डेन तस्मादधिकं भूत्वा वेदनीयस्वरूपेण परिणमति इति एषः स्वभावः।

अतः आवलिकाया असंख्यातभागेन नामद्रव्यसंचये खण्डिते तत्रैकखण्डेन ततोऽधिकं त्रयाणां घातिकर्मणां जघन्यद्रव्यं भवति। सयोगिभगवतो गुणश्रेण्या नामगोत्रद्रव्याणां या निर्जरा देशोनपूर्वकोटिपर्यंतं जाता सा अप्रधाना, नामगोत्रद्रव्यं पल्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डिते तत्र एकखण्डस्यैव गुणश्रेणिनिर्जरया नष्टत्वात्।

अधुना मोहनीयवेदनाया जघन्यत्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया।।१२७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूत्रे यत् विशेषप्रमाणं कथितं, तद् ज्ञानावरणद्रव्यमावलिकाया असंख्यातभागेन खण्डितैकखण्डमात्रम् इति ज्ञातव्यम्।**

कुत एतत् ? स्वाभाविकत्वात्।

अधस्तनगुणश्रेणिभ्योऽसंख्यातगुणायाः क्षीणकषायगुणश्रेण्याः त्रयाणां घातिकर्मणां जातनिर्जरा अप्रधाना, स्वक-स्वकद्रव्यं पल्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डिते तत्र एकखण्डस्य एव नष्टत्वात्।

होकर वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तरायस्वरूप से परिणमता है। ज्ञानावरण के भाग को आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें एक खण्ड से अधिक होकर मोहनीयस्वरूप से परिणमता है। मोहनीय के भाग को आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें एक खण्ड से अधिक होकर वेदनीयस्वरूप से परिणमता है। यह इस प्रकार का स्वभाव है।

इसलिए नामकर्म संबंधी द्रव्य के संचय को आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें एक खण्ड से अधिक उक्त द्रव्य तीन घातिया कर्मों का जघन्य द्रव्य होता है। सयोगी भगवान के गुणश्रेणी द्वारा जो नाम और गोत्र संबंधी द्रव्य की कुछ कम पूर्वकोटि तक निर्जरा हुई है वह गौण है, क्योंकि नाम व गोत्र कर्म के द्रव्य को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें से एक खण्ड की गुणश्रेणि निर्जरा के द्वारा नष्ट हुआ है।

अब मोहनीय कर्म की वेदना के जघन्यपने का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

द्रव्य की अपेक्षा जघन्य मोहनीय कर्म की वेदना उक्त तीन घातिया कर्मों की वेदना से विशेष अधिक है।।१२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में जो विशेष का प्रमाण कहा है वह ज्ञानावरण कर्म के द्रव्य को आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें से वह एक खण्डमात्र है, ऐसा जानना चाहिए।

ऐसा क्यों है ?

क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

अधस्तन गुणश्रेणियों की अपेक्षा असंख्यातगुणी ऐसी क्षीणकषाय गुणश्रेणि के द्वारा हुई तीन घातिया कर्मों की निर्जरा गौण है, क्योंकि अपने-अपने द्रव्य को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें से एक खण्ड ही उसके द्वारा नष्ट हुआ है।

अधुना वेदनीयकर्मणो जघन्यवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

वेयणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया।।१२८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **द्रव्यापेक्षया वेदनीयकर्मणो जघन्यवेदना विशेषाधिका कथ्यते।**

कियन्मात्रोऽयं विशेषः ?

आवलिकायाः असंख्यातभागेन मोहद्रव्यं खण्डिते तत्रैकखण्डमात्रोऽयं विशेषः कथ्यते, स्वाभाविकत्वात्।

अत्र कश्चिदाशंकते —

कषायनोकषायद्रव्यं सर्वं गृहीत्वा स्थितलोभसंज्वलनद्रव्यं सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये येन मोहनीयस्य जघन्यं जातं, वेदनीयस्य पुनः अयोगिकेवलिनो भगवतो द्विचरमसमये व्युच्छिन्नासातावेदनीयसत्त्वस्य चरमसमये सातावेदनीयद्रव्यमेकं चैव गृहीत्वा जघन्यं जातं, तेन वेदनीयजघन्यद्रव्याद् मोहनीयजघन्यद्रव्येण संख्यातगुणेन भवितव्यमिति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद् वक्तव्यं, असातावेदनीयस्य गुणश्रेणिचरमगोपुच्छया उदयाभावेन स्तबुकसंक्रमेण सातावेदनीय-स्वरूपेण परिणतया सह सातावेदनीयचरमगोपुच्छाया जघन्यतदभ्युपगमात्।

न च सातावेदनीयचरमगोपुच्छाया एव वेदनीय जघन्यस्वामित्वं भवतीति नियमः, असातावेदनीय-चरमगोपुच्छाया अपि जघन्यस्वामित्वे सति विरोधाभावात्।

अब वेदनीय कर्म की जघन्य वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

द्रव्य से जघन्य वेदनीय कर्म की वेदना विशेष अधिक है।।१२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — द्रव्य की अपेक्षा वेदनीय कर्म की जघन्य वेदना विशेष अधिक कही गई है।

प्रश्न — यह विशेष कितना प्रमाण है ?

उत्तर — आवली के असंख्यातवें भाग से मोहद्रव्य को खण्डित करने पर उसमें से एक खण्डमात्र यह विशेष कहा गया है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

कषाय और नोकषायरूप सब द्रव्य को ग्रहण कर स्थित संज्वलन लोभ का द्रव्य चूँकि सूक्ष्मसाम्परायिक के अन्तिम समय में मोहनीय का जघन्य द्रव्य हुआ है, किन्तु वेदनीय कर्म का द्रव्य अयोगकेवली भगवान् के द्विचरम समय में असातावेदनीय के सत्त्व की व्युच्छित्ति हो जाने पर उसके चरम समय में केवल एक सातावेदनीय के ही द्रव्य को ग्रहण कर जघन्य हुआ है, इसीलिए वेदनीय के जघन्य द्रव्य की अपेक्षा मोहनीय का जघन्य द्रव्य संख्यातगुणा होना चाहिए ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उदय का अभाव होने से स्तिबुक संक्रमण के द्वारा सातावेदनीयस्वरूप से परिणत हुई असातावेदनीय की गुणश्रेणिरूप अन्तिम गोपुच्छा के साथ सातावेदनीय की चरम गोपुच्छा के द्रव्य को जघन्य स्वीकार किया गया है।

दूसरा सातावेदनीय की चरम गोपुच्छा के ही वेदनीय का जघन्य स्वामित्व होता है ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि असातावेदनीय की चरम गोपुच्छा में भी जघन्य स्वामित्व के होने में कोई विरोध नहीं है।

सयोगिकेवलिगुणश्रेणिनिर्जरया गलितद्रव्यमप्रधानम्, अयोगिकेवलि-चरमसमयगुणश्रेणिगोपुच्छाद्रव्ये असंख्यातपल्योपमप्रथमवर्गमूलैः खण्डिते तत्र एकखण्डप्रमाणत्वात्।

अधुना आयुःकर्मप्रमुखाष्टकर्मणां उत्कृष्टवेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रपञ्चकमवतार्यते —

उक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा आउववेयणा दव्वदो उक्कस्सिया।।१२९।।

णामागोदवेदणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ असंखेज्ज-गुणाओ।।१३०।।

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।।१३१।।

मोहणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया।।१३२।।

वेदणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया।।१३३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**उत्कृष्टपदापेक्षया द्रव्येण उत्कृष्टायुर्वेदना सर्वस्तोका भवति, उत्कृष्टायुर्बंध-ककालमात्रसमयप्रबद्धप्रमाणत्वात्। अत्र प्रकृति-विकृतिस्वरूपेण नष्टद्रव्यमप्रधानं, आवलिकाया असंख्यातभाग-मात्रसमयप्रबद्धप्रमाणत्वात्।**

सयोगकेवली संबंधी गुणश्रेणिनिर्जरा द्वारा नष्ट हुआ द्रव्य यहाँ गौण है, क्योंकि अयोगकेवली के चरम समय संबंधी गुणश्रेणि गोपुच्छा के द्रव्य को पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलों द्वारा खण्डित करने पर उसमें से वह एकखण्डप्रमाण है।

अब आयुकर्म की प्रमुखता के साथ आठ कर्मों की उत्कृष्ट वेदना का प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उत्कृष्ट पद की अपेक्षा द्रव्य से उत्कृष्ट आयु की वेदना सबसे स्तोक है।।१२९।।

द्रव्य से उत्कृष्ट नाम व गोत्र की वेदनाएं दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणी हैं।।१३०।।

द्रव्य से उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अन्तराय कर्मों की वेदनाएं तीनों ही आपस में तुल्य होकर उनसे विशेष अधिक हैं।।१३१।।

द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट मोहनीय की वेदना उनसे विशेष अधिक है।।१३२।।

द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट वेदनीय की वेदना उससे विशेष अधिक है।।१३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उत्कृष्ट पद की अपेक्षा द्रव्य से उत्कृष्ट आयु कर्म की वेदना सबसे स्तोक—कम होती है। क्योंकि उत्कृष्ट आयु बंधककाल के जितने समय हैं, उतने मात्र समयप्रबद्ध प्रमाण हैं। यहाँ प्रकृति व विकृतिस्वरूप से निर्जीण द्रव्य अप्रधान हैं, क्योंकि वह आवली के असंख्यातवें भागमात्र समयप्रबद्धों के बराबर हैं।

द्रव्येण नाम-गोत्रवेदना द्वे अपि समाने भूत्वा असंख्यातगुणा एव।

को गुणकारः ?

पल्योपमस्य असंख्यातभागः।

कुतः?

संख्यातावलिमात्रसमयप्रबद्धैरायुःसंबंधितैः नाम्नो गोत्रस्य वा द्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धेषु अपवर्तितेषु पल्योपमस्य असंख्यातभागोपलंभात्।

ज्ञानावरणादित्रयकर्मणां उत्कृष्टा वेदना विशेषाधिका कथितास्ति।

अत्र कियन्मात्रो विशेषः ?

अधस्तनद्रव्याणि आवलिकाया असंख्यातभागेन खंडिते तत्रैकखण्डमात्रो भवति।

कुत एतत् ?

स्वाभाविकत्वात्।

त्रयाणां घातिकर्मणां किमर्थं तुल्यता ?

नैतद् वक्तव्यं, किं च एतेषां कर्मणां प्रदेशानां आयव्ययतुल्यत्वात् तुल्यता वर्तते।

एतदपि कुतः ?

स्वाभाविकत्वात्।

एतेषां कर्मणां अपेक्षया मोहनीयकर्मणो वेदना द्रव्येण उत्कृष्टा विशेषाधिकास्ति।

द्रव्य से उत्कृष्ट नाम और गोत्र कर्म की वेदनाएं दोनों ही समानरूप में होकर असंख्यातगुणी ही हैं।

गुणकार क्या है ?

गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

क्यों ?

क्योंकि संख्यात आवलियों के बराबर आयु संबंधी समयप्रबद्धों से नाम व गोत्र के डेढ गुणहानिमात्र समयप्रबद्धों को अपवर्तित करने पर पल्योपम का असंख्यातवां भाग पाया जाता है।

ज्ञानावरण आदि तीन कर्मों की उत्कृष्ट वेदना विशेष अधिक कही गई है।

प्रश्न — यहाँ विशेष का प्रमाण क्या है ?

उत्तर — अधस्तन द्रव्य को आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें से वह एक खण्ड मात्र है।

प्रश्न — ऐसा क्यों है ?

उत्तर — क्योंकि ऐसा ही स्वभाव है।

प्रश्न — तीन घातिया कर्मों के प्रदेश की तुल्यता/समानता किसलिए है ?

उत्तर — ऐसा नहीं कहना चाहिए, चूँकि इन तीनों के प्रदेशों का आय व व्यय समान है इसलिए तीनों में समानता है।

प्रश्न — वह भी क्यों है ?

उत्तर — क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

इन कर्मों की अपेक्षा मोहनीय कर्म की द्रव्य से उत्कृष्ट वेदना विशेष अधिक है।

अत्रापि अधस्तनद्रव्याणि आवलिकाया असंख्यातभागेन खण्डिते तत्रैकखण्डमात्रो भवति।

कुतः ?

स्वाभाविकत्वात्।

त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिषु स्थितप्रदेशपिंडात् उपरिमदशसागरोपमकोटीकोटिषु स्थितप्रदेशपिंडोऽप्रधानः, त्रिंशत्कोटिकोटिषु सागरोपमेषु पतितद्रव्यं पल्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डितेषु तत्रैकखंडप्रमाणत्वात्।

द्रव्यापेक्षया उत्कृष्टा वेदनीयवेदना विशेषाधिका अस्ति। अधस्तनद्रव्यमावलिकाया असंख्यातभागेन खण्डिते तत्रैकखंडमात्रो विशेषो भवति, स्वाभाविकत्वात्।

संप्रति जघन्योत्कृष्टपदापेक्षया आयुरादिकर्मणां वेदनानिरूपणार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

जहण्णुक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा आउववेयणा दव्वदो जहण्णिया।।१३४।।

सा चेव उक्कस्सिया असंखेज्जगुणा।।१३५।।

णामा-गोदवेदणाओ दव्वदो जहण्णियाओ (दो वि तुल्लाओ) असंखेज्जगुणाओ।।१३६।।

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेदणाओ दव्वदो जहण्णियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।।१३७।।

यहाँ भी अधस्तन द्रव्य को आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें से एक खण्ड मात्र होता है, वह विशेष है।

क्यों ?

क्योंकि ऐसा ही स्वभाव है। तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितियों में स्थित प्रदेशपिण्ड से ऊपर दस कोडाकोडी सागरोपमों में स्थित प्रदेशपिण्ड अप्रधान है, क्योंकि तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों में पतित द्रव्य को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें से वह एक खण्ड के बराबर है।

द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट वेदनीय की वेदना उससे विशेष अधिक है। अधस्तन द्रव्यको आवली के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें से वह एकखण्डप्रमाण है, वह विशेष कहलाता है, क्योंकि ऐसा ही स्वभाव देखा जाता है।

अब जघन्य और उत्कृष्ट पद की अपेक्षा आयु आदि कर्मों की वेदना का निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जघन्योत्कृष्ट पद से द्रव्य की अपेक्षा आयुकर्म की जघन्य वेदना सबसे स्तोक है।१३४।।

उसकी ही उत्कृष्ट वेदना उससे असंख्यातगुणी है।।१३५।।

द्रव्य से जघन्य नाम व गोत्र कर्म की वेदनाएं दोनों ही तुल्य होकर उससे असंख्यातगुणी हैं।।१३६।।

द्रव्य से जघन्य ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय की वेदनाएं तीनों ही तुल्य व उनसे विशेष अधिक हैं।।१३७।।

मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया।।१३८।।

वेदणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया।।१३९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अंगुलस्य असंख्यातभागेन दीपशिखाया अपवर्त्य किंचिदूनं कृत्वा जघन्यायुर्बंधककालेऽपवर्तितेन एकसमयप्रबद्धे भागे हृते तत्र एकभागत्वात्।**

सा चैवोत्कृष्टवेदना असंख्यातगुणा भवति।

को गुणकारः ?

अंगुलस्यासंख्यातभागो गुणकारो वर्तते।

कुतः ?

दीपशिखास्वरूपेण स्थितजघन्यद्रव्येण एकसमयप्रबद्धमंगुलस्य असंख्यातभागेन खण्डितैकखण्डमात्रेण संख्यातावलिगुणितसमयप्रबद्धमात्रोत्कृष्टद्रव्ये भागे हृते अंगुलस्य असंख्यातभागोपलंभात्।

द्रव्यात् नाम-गोत्रयोर्जघन्या वेदना तुल्या अपि असंख्यातगुणा अस्ति।

अत्रापि गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभागोऽस्ति। आयुषः उत्कृष्टद्रव्येण किंचिन्न्यूनद्विगुणोत्कृष्ट-बंधककाले योगगुणकारेण च गुणितैकसमयप्रबद्धमात्रेण द्वयर्धगुणहानिगुणितैकसमयप्रबद्धमात्रनाम-गोत्रजघन्यद्रव्ये भागे हृते पल्योपमस्य असंख्यातभागोपलंभात्।

अग्रे [१]त्रिसूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।

द्रव्य से जघन्य मोहनीय की वेदना उनसे विशेष अधिक है।।१३८।।

द्रव्य से जघन्य वेदनीय की वेदना उनसे विशेष अधिक है।।१३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वह दीपशिखा से अपवर्तित करके कुछ कम कर फिर जघन्य आयु बंध काल से अपवर्तित किये गये ऐसे अंगुल के असंख्यातवें भाग का एक समयप्रबद्ध में भाग देने पर उसमें से एकभागप्रमाण है।

उसकी ही उत्कृष्ट वेदना उससे असंख्यातगुणी होती है।

प्रश्न—गुणकार क्या है ?

उत्तर—अंगुल का असंख्यातवां भाग गुणकार है।

कैसे ?

दीपशिखास्वरूप से स्थित जघन्य द्रव्य से एक समयप्रबद्ध अंगुल के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें एक खण्डमात्र से संख्यात आवलियों से गुणित समयप्रबद्धमात्र उत्कृष्ट द्रव्य में भाग देने पर अंगुल का असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है।

द्रव्य से नाम और गोत्र कर्म की जघन्य वेदना एक समान होकर भी असंख्यातगुणी है।

यहाँ भी गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है, क्योंकि कुछ कम दुगुने उत्कृष्ट बंधकाल और योगगुणकार से गुणित एक समयप्रबद्ध मात्र आयु कर्म के उत्कृष्ट द्रव्य का डेढ़ गुणहानि गुणित एक समयप्रबद्ध मात्र नाम व गोत्र कर्म के जघन्य द्रव्य में भाग देने पर पल्योपम का असंख्यातवां भाग पाया जाता है।

आगे अर्थात् १३७-१३८-१३९ इन तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है, इसलिए उनका विशेष वर्णन नहीं किया है।

---

१. अग्रे-सूत्र १३७, १३८, १३९।

अधुना नामगोत्रादिकर्मणामुत्कृष्टवेदनानिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

णामा-गोदवेदणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ असंखेज्ज-गुणाओ।।१४०।।

णाणावरणीय-दंसणावरणीय अंतराइयवेदणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।।१४१।।

मोहणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया।।१४२।।

वेयणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया।।१४३।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पल्योपमस्यासंख्यातभागो गुणकारो ज्ञातव्यः।**

द्वयर्धगुणहानिगुणितैकेन्द्रियसमयप्रबद्धमात्रेण वेदनीयद्रव्येण योगगुणकारगुणितद्वयर्धगुणहान्या गुणितैकेन्द्रिय-समयप्रबद्धमात्रे नामगोत्रोत्कृष्टद्रव्ये भागे हृते पल्योपमस्य असंख्यातभागोपलंभात्।

शेषकर्मणामर्थो ज्ञायत एव।

तात्पर्यमत्र—इमाः सर्वाः वेदनाः सर्वज्ञैरेव गम्यन्ते न चास्माभिः। वयं तु शारीरिक-मानसिक-आगंतुकादिनानाविधा वेदनाः अनुभवामः। ताभ्यः कथं मुक्ता भविष्याम इत्येव चिन्तयितव्यम्। तथा तासां वेदनानां अनुभवनेन विमुक्ता भूत्वा निर्विकल्पे ध्याने स्थानं प्राप्तुं यावत् न शक्नुमः तावत् शक्त्यनुसारेण

अब नाम-गोत्र आदि कर्मों की उत्कृष्ट वेदना का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

द्रव्य से उत्कृष्ट नाम व गोत्र की वेदनाएं दोनों ही तुल्य होकर उससे असंख्यातगुणी हैं।।१४०।।

द्रव्य से उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय की वेदनाएं तीनों ही तुल्य व उनसे विशेष अधिक हैं।।१४१।।

द्रव्य से उत्कृष्ट मोहनीय की वेदना उनसे विशेष अधिक है।।१४२।।

द्रव्य से उत्कृष्ट वेदनीय की वेदना उससे विशेष अधिक है।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— पल्योपम का असंख्यातावं भाग यहाँ गुणकार जानना चाहिए।

डेढ़ गुणहानि से गुणित एकेन्द्रिय के समयप्रबद्धमात्र वेदनीय कर्म के द्रव्य का योगगुणकार से गुणित डेढ़ गुणहानि द्वारा एकेन्द्रिय के समयप्रबद्ध को गुणित करने पर जो प्राप्त हो उतने मात्र नाम व गोत्र के उत्कृष्ट द्रव्य में भाग देने पर पल्योपम का असंख्यातवां भाग पाया जाता है।

शेष कर्मों का अर्थ ज्ञात ही है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—ये सभी वेदनाएं सर्वज्ञ भगवान के ही गम्य हैं, हम लोग इन्हें नहीं जानते हैं। हम सभी तो शारीरिक-मानसिक-आगंतुक आदि अनेक प्रकार की वेदनाओं का अनुभव करते हैं। उन वेदनाओं से हम कैसे मुक्त होंगे, ऐसा चिन्तन करते रहना चाहिए तथा उन वेदनाओं के अनुभव से विमुक्त होकर निर्विकल्प ध्यान में स्थित होना जब तक शक्य नहीं है, तब तक शक्ति के अनुसार देशव्रत अथवा

देशव्रतानि महाव्रतानि वा गृहीतव्यानि भवन्ति। एतन्निश्चयो विधातव्यः।

एवं गुणकारानुयोगद्वारगर्भितात्पबहुत्वं समाप्तम्।

इतो विशेषः—

यस्यां तीर्थकरजन्मभूमौ सौधर्मेंद्राज्ञया धनपतिः पंचदशमासान् रत्नवृष्टिं कुरुते। यत्र च प्रभवो जन्म गृहीत्वा बाल्यक्रीडां कुर्वन्ति, सर्वत्र धूलिकणान् पवित्रयन्ति। यत्र च देवानामागमनं निरंतरं चलति गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञानकल्याणकमहोत्सवैः असंख्यदेवाः देव्यश्च आगत्य स्वस्वपुण्यं वर्धयन्ति। एतादृशी जन्मभूमयः संप्रति अविकसिताः दृश्यन्ते वर्तमानकाले तु अतिशयक्षेत्राणि जनानामाकर्षण- स्थलानि नवनवान्यपि वर्द्धन्ते। तथापि जन्मभूमीनां दर्शन-वंदना-उपासना-जीर्णोद्धारादिभिः संचितं पुण्यं अनुपममतुलमेवेति निश्चेतव्यम्।

अस्यां तीर्थयात्रायां श्रीविमलनाथस्य त्रयोदशतीर्थकरस्य जन्मभूमिं कांपिल्यपुरीं वन्दित्वा तत्रोपविश्य षट्खण्डागमटीकां लिखित्वा हर्षातिरेकमनुभूयते स्म। मध्ये आषाढ़कृष्णातृतीयायां सप्तविंशत्यधिक-पंचविंशतिशततमे वीराब्दे एकाधिक-द्विसहस्रतमे खिष्ट्राब्दे तीर्थभूमौ लिखिता टीका मे जन्मजन्मनि भावश्रुतज्ञानवृद्ध्यै भूयादिति याच्यते।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डे दशमे ग्रंथे वेदनानाम्नि द्वितीयेऽनुयोगद्वारे चतुर्थ वेदनाद्रव्यविधाने द्वितीये महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणि-टीकायां प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

महाव्रतों को ग्रहण करना चाहिए। ऐसा निश्चय करना चाहिए।

इस प्रकार गुणकार अनुयोगद्वार गर्भित अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

यहाँ विशेष कथन करते हैं—

तीर्थंकर भगवान की जिस जन्मभूमि पर सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से धनपति कुबेर पन्द्रह महीने तक रत्नवृष्टि करते हैं। जहाँ तीर्थंकर प्रभु जन्म लेकर बालक्रीड़ा करते हैं और सभी जगह धूल के कणों को पवित्र करते हैं और जहाँ देवों का आगमन निरन्तर चलता रहता है, क्योंकि भगवान तीर्थंकर के गर्भ-जन्म-दीक्षा-केवलज्ञानकल्याणक महोत्सवों को मनाने हेतु असंख्यात देव-देवियाँ आकर अपने-अपने पुण्य को वृद्धिंगत करतेहैं। ऐसी तीर्थंकर जन्मभूमियाँ आज अविकसित देखी जा रही हैं, वर्तमान में अतिशयक्षेत्ररूप नये-नये तीर्थस्थलों की वृद्धि हो रही है, जो लोगों के आकर्षण का केन्द्र बन रहे हैं। फिर भी भगवन्तों की जन्मभूमियों का दर्शन एवं उनकी वंदना, उपासना और उनके जीर्णोद्धार आदि के द्वारा संचित पुण्य अनुपम और अतुलनीय ही है, ऐसा निश्चित समझना चाहिए।

इस तीर्थयात्रा में तेरहवें तीर्थंकर श्री विमलनाथ भगवान की जन्मभूमि कांपिल्यपुरी—कम्पिला जी (फर्रुखाबाद-उत्तरप्रदेश के निकट) की वंदना करके वहाँ बैठकर षट्खण्डागम की टीका लिखकर मेरे मन में अत्यन्त हर्ष का अनुभव हुआ। मध्य में वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ सत्ताइस, ईसवी सन् दो हजार एक में आषाढ़ कृष्णा तृतीया के दिन इस कम्पिल जी तीर्थभूमि पर मेरे द्वारा लिखी गई टीका जन्म-जन्म में मेरे भावश्रुत ज्ञान की वृद्धि के लिए होवे, यही मेरी याचना है।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के चतुर्थ खण्ड में दशवें ग्रंथ में वेदना नाम के द्वितीय अनुयोगद्वार में चतुर्थ वेदना द्रव्यविधान नामक द्वितीय महाधिकार में गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

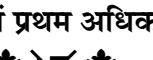

अथ चूलिकानाम

(चतुर्थवेदनाद्रव्यविधानानुयोगद्वारस्य चूलिका)

द्वितीयोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

अनंत! दृग्ज्ञानसुवीर्यसौख्यं, अनंततां याति तव प्रसादात्।
अनंतदोषान् जिन! मे लुनीहि, नमाम्यनन्तं हृदि धारये त्वाम्।।१।।

द्वितीयवेदनाऽनुयोगद्वारे षोडशभेदान्तर्गत चतुर्थवेदनाद्रव्यविधानानुयोगद्वारस्य इयं चूलिकास्ति।

द्वितीयचूलिकानामाधिकारे सप्ततिसूत्राणि कथ्यन्ते। तत्रापि त्रीणि स्थलानि सन्ति। तत्र प्रथमस्थले योगापेक्षयाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''एत्तो जं भणिदं'' इत्यादिना एकत्रिंशत्सूत्राणि। पुनश्च द्वितीयस्थले ''जोगट्ठाण-परूवणदाए'' इत्यादिना दशभेदकथनत्वेन एकादशान्तरस्थलगर्भितेन च अष्टत्रिंशत्सूत्राणि। ततश्च तृतीयस्थले प्रदेशबंधकथनत्वेन ''जाणि चेव'' इत्यादिना एकं सूत्रमिति चूलिकायाः समुदायपातनिका कथिता।

अधुना चूलिकाधिकारप्ररूपणायां अल्पबहुत्वद्विविधप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते श्रीमद्भूतबलिमहामुनीन्द्रेण —

अथ चूलिका नामक द्वितीय अधिकार

चतुर्थ वेदनाद्रव्यविधान अनुयोगद्वार की चूलिका

—मंगलाचरण —

श्लोकार्थ — हे अनन्तनाथ भगवान्! दर्शन, ज्ञान, वीर्य और सुख ये चारों आपके प्रसाद से अनन्तपने को प्राप्त होते हैं। अर्थात् आप इन अनन्त चतुष्टयों से समन्वित हैं। हे जिनेन्द्र भगवान्! मैंने आपको अपने हृदय में धारण किया है। मैं अनंत जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ। हे नाथ! आप मेरे अनन्तदोषों का छेदन कीजिए।।१।।

द्वितीय वेदनानुयोगद्वार में सोलह भेदों के अन्तर्गत चतुर्थ वेदनाद्रव्यविधान अनुयोगद्वार की यह चूलिका है।

चूलिका नामक द्वितीय अधिकार में सत्तर सूत्र कहे जा रहे हैं। उसमें भी तीन स्थल हैं। उसमें प्रथम स्थल में योग की अपेक्षा अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले ''एत्तो जं भणिदं'' इत्यादि इकतीस सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में ''जोगट्ठाण परूवणदाए'' इत्यादि के द्वारा दश भेद कथनरूप से और ग्यारह अन्तरस्थलों में गर्भित अड़तीस सूत्र हैं। आगे तृतीय स्थल में प्रदेशबंध के कथन हेतु ''जाणि चेव'' इत्यादि एक सूत्र है, यह चूलिका अधिकार के सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब चूलिका अधिकार की प्ररूपणा में अल्पबहुत्व के दो भेद प्रतिपादन करने हेतु श्रीमान् भूतबली महामुनीन्द्र सूत्र अवतरित करते हैं —

एत्तो जं भणिदं 'बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि जहण्णाणि च' एत्थ अप्पाबहुगं दुविहं जोगप्पाबहुगं पदेसअप्पाबहुगं चेव।।१४४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मात् चूलिकाधिकारात् पूर्वं भणितमास्ते—बहु-बहुबारं उत्कृष्टयोग-स्थानानि प्राप्नोति जीवः बहुशो बहुशो जघन्ययोगस्थानानि च प्राप्नोति। अस्यैव प्रकरणस्य विस्तरेण जिज्ञासया अल्पबहुत्वस्य भेदौ प्ररूप्येते। अत्र तयोर्नाम्नी कथ्येते—योगाल्पबहुत्वं प्रदेशाल्पबहुत्वं च।**

अत्र कश्चिदाशंकते—

त्रिभिरनुयोगद्वारैर्वेदनाद्रव्यविधानं विस्तरेण प्ररूप्य तस्य समाप्तौ सत्यां किमर्थमुपरिमो ग्रंथ उच्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, किं च अस्मिन् ग्रंथे उत्कृष्टस्वामित्वं भण्यमाने 'बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि' इति कथितमस्ति। जघन्यस्वामित्वेऽपि भण्यमाने 'बहुसो बहुसो जहण्णाणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि' इति भणितम्। एतयोर्द्वयोरपि सूत्रयोरर्थो न सम्यगवगतः। ततो द्वयोरपि सूत्रयोः शिष्याणां निश्चयजननार्थमियं अल्पबहुत्वादिप्ररूपणा योगविषया क्रियते।

अत्राभिप्रायोऽयं—वेदनाद्रव्यविधानस्य चूलिकाप्ररूपणार्थमुपरिमो ग्रंथ आगत इति ज्ञातव्यो भवति।

सूत्रार्थ—

इससे पूर्व में जो यह कहा गया है कि ''बहुत-बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानों को प्राप्त होता है और बहुत-बहुत बार जघन्य योगस्थानों को भी प्राप्त होता है'' यहाँ यह अल्पबहुत्व दो प्रकार का है—योग अल्पबहुत्व और प्रदेश अल्पबहुत्व।।१४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस चूलिका अधिकार से पूर्व में कहा गया है कि—यह जीव बहुत-बहुत बार उत्कृष्टयोगस्थान को प्राप्त करता है और बहुत-बहुत बार जघन्ययोगस्थानों को प्राप्त करता है। इसी प्रकरण को विस्तार से जानने की इच्छा होने पर अल्पबहुत्व के दो भेद प्ररूपित किये गये हैं। यहाँ उन दोनों के नाम कहते हैं—

योग अल्पबहुत्व और प्रदेश अल्पबहुत्व ये दो भेद अल्पबहुत्व के होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

तीन अनुयोगद्वारों से वेदनाद्रव्यविधान की विस्तार से प्ररूपणा करके उसके समाप्त हो जाने पर फिर आगे का ग्रंथ किसलिए कहा जाता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इस ग्रंथ में उत्कृष्ट स्वामित्व का कथन करते समय 'बहुत-बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानों को प्राप्त होता है, जघन्य स्वामित्व का भी कथन करते हुए 'बहुत-बहुत बार जघन्य योगस्थानों को प्राप्त होता है' ऐसा कहा गया है, इन दोनों ही सूत्रों का अर्थ भली भांति नहीं ज्ञात हुआ है, इसलिए दोनों ही सूत्रों के विषय में शिष्यों को निश्चय कराने के लिए यह योगविषयक अल्पबहुत्व आदि की प्ररूपणा की जाती है।

यहाँ अभिप्राय यह है कि—वेदनाद्रव्यविधान की चूलिका के प्ररूपणार्थ आगे के ग्रंथ का अवतार हुआ है, ऐसा जानना चाहिए।

का चूलिका ?

सूत्रसूचितार्थप्रकाशनं चूलिका नाम ज्ञातव्यम्।

अत्र योगस्याल्पबहुत्वेऽपगते क्षपितकर्मांशिक-गुणितकर्मांशिकयोर्योगधारासंचारो ज्ञातुं शक्यते, इति जीवसमासान् आश्रित्य योगाल्पबहुत्वमुच्यते। कारणाल्पबहुत्वानुसारी चैव कार्याल्पबहुत्वमिति ज्ञापनार्थं प्रदेशाल्पबहुत्वमुच्यते। ''कारणपूर्वं कार्यमिति न्यायात्।'' तावत्कारणाल्पबहुत्वं प्रथममेव भणिष्यन्ति आचार्यदेवाः।

अधुना सूक्ष्मादिजीवानां जघन्ययोगाल्पबहुत्वप्ररूपणार्थं सूत्रसप्तकमवतार्यते —

सव्वत्थोवो सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो।।१४५।।
बादरेइंदिय अपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१४६।।
बीइंदिय अपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१४७।।
तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१४८।।
चउरिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१४९।।
असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१५०।।
सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१५१।।

शंका — चूलिका किसे कहते हैं ?

समाधान — सूत्र में सूचित अर्थ को विशेषरूप से प्रकाशित करने का नाम चूलिका है, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ योगविषयक अल्पबहुत्व के ज्ञात हो जाने पर क्षपितकर्मांशिक और गुणितकर्मांशिक की योगधारा के संचार को जानना शक्य हो जाता है, अतः जीवसमासों का आश्रय लेकर योगअल्पबहुत्व का कथन करते हैं और कारण अल्पबहुत्व के अनुसार ही कार्य अल्पबहुत्व होता है, इस बात को बतलाने के लिए प्रदेशअल्पबहुत्व का कथन करते हैं। कारणपूर्वक कार्य होता है, इस न्याय से पहले कारण अल्पबहुत्व को आचार्यदेव कहेंगे।

अब सूक्ष्म आदि जीवों का जघन्ययोगअल्पबहुत्व को प्ररूपित करने हेतु सात सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य योग सबसे स्तोक है।।१४५।।
बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य योग उससे असंख्यातगुणा है।।१४६।।
उससे दो इन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।।१४७।।
उससे तीन इन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।।१४८।।
उससे चार इन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्ययोग असंख्यातगुणा है।।१४९।।
उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्ययोग असंख्यातगुणा है।।१५०।।
उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्ययोग असंख्यातगुणा है।।१५१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूक्ष्मैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य प्रथमसमयतद्भवस्थस्य विग्रहगतौ वर्तमानस्य जघन्य-उपपादयोगो गृहीतव्यः।**

प्रथमसमयाहारक-प्रथमसमयतद्भवस्थस्य सूक्ष्मैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्य-उपपादयोगः किन्न गृहीतः ?

न, नोकर्मसहकारिकारणबलेन योगो वृद्धिमागते तत्र योगस्य जघन्यत्वसंभवाभावात्।

सूक्ष्मैकेन्द्रियापेक्षया बादरैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य जघन्ययोगोऽसंख्यातगुणो वर्तते। अत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागोऽस्ति।

बादरैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य प्रथमसमयतद्भवस्थस्य विग्रहगतौ वर्तमानस्य जघन्योपपादयोगात् अधस्तनसूक्ष्मैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तोपपादयोगस्थानेषु असंख्यातयोगगुणहानीनां संभवात्। तत्रतननानागुणहानिशलाकाः विरलय्य द्विगुणीकृत्य अन्योन्याभ्यस्ते कृते गुणकारराशिर्भवतीति प्रोक्तं भवति।

द्वीन्द्रियस्यापर्याप्तकस्य जघन्ययोगोऽसंख्यातगुणो वर्तते।

अत्र कारणं पूर्वमिव प्ररूपयितव्यम्। सर्वत्र लब्ध्यपर्याप्तकस्य प्रथमसमयतद्भवस्थस्य विग्रहगतौ वर्तमानस्य जघन्य-उपपादयोगो गृहीतव्यः।

त्रीन्द्रियापर्याप्तकस्य जघन्ययोगोऽसंख्यातगुणोऽस्ति। अधस्तननानागुणहानिशलाका विरलय्य द्विगुणीकृत्य अन्योन्याभ्यस्तराशिः वर्तते।

एवमग्रेऽपि चतुरिन्द्रियापर्याप्त-असंज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्त-संज्ञिपंचेन्द्रियापर्याप्तानामपि ज्ञातव्यम्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव उस भव के प्रथम समय में स्थित हुआ, उसके विग्रहगति में जघन्य उपपाद योग ग्रहण करना चाहिए।

शंका—आहारक होने के प्रथम समय में रहने वाले व उस भव के प्रथम समय में स्थित हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के जघन्य उपपादयोग को क्यों नहीं ग्रहण किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नोकर्म सहकारी कारण के बल से योग के वृद्धि को प्राप्त होने पर वहाँ योग की जघन्यता संभव नहीं है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा होता है। यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

तद्भवस्थ विग्रहगति में वर्तमान ऐसे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक एकेन्द्रिय जीव के जघन्य उपपादयोग से अधस्तन सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उपपादयोगस्थानों में असंख्यात योगगुणहानियों की संभावना पाई जाती है। वहाँ की नानागुणहानिशलाकाओं का विरलन करके दुगुणा करके परस्पर में गुणा करने पर गुणकार राशि होती है, ऐसा सूत्र में कहा गया है।

दो इन्द्रिय अपर्याप्तक जीव का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।

यहाँ इसके कारण की प्ररूपणा पूर्व के समान ही करना चाहिए। सब जगह उस भव में स्थित होने के प्रथम समय में रहने वाले व विग्रहगति में वर्तमान ऐसे लब्ध्यपर्याप्तक के जघन्य उपपादयोग को ग्रहण करना चाहिए।

तीन इन्द्रिय अपर्याप्तक का जघन्ययोग असंख्यातगुणा है। अधस्तन नानागुणहानि शलाकाओं का विरलन करके द्विगुणित कर उन्हें परस्पर में गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो, वह यहाँ गुणकार है।

इसी प्रकार आगे भी चार इन्द्रिय अपर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और संज्ञीपञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकों के विषय में जानना चाहिए।

संप्रति सूक्ष्मैकेन्द्रियाद्यपर्याप्तानां उत्कृष्टयोगाल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१५२।।

बादरेइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१५३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभागो ज्ञातव्यः।**

अत्र सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तौ द्विविधौ—लब्ध्यपर्याप्त-निर्वृत्यपर्याप्तभेदेन। तयोः कस्यापर्याप्तकस्य उत्कृष्टयोगो गृह्यते ?

अत्र सूक्ष्मैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य उत्कृष्टपरिणामयोगो गृहीतव्यः। किं च—निर्वृत्यपर्याप्तकस्य उत्कृष्टयोगो नाम उत्कृष्टएकान्तानुवृद्धियोगः, तत एतस्य उत्कृष्टपरिणामयोगस्य असंख्यातगुणत्वदर्शनात्।

कुतो ज्ञायते ?

जघन्योत्कृष्टवीणातो[१] ज्ञायते।

बादरैकेन्द्रियापर्याप्तकस्य उत्कृष्टो योगोऽसंख्यातगुणो भवति। अत्रापि लब्ध्यपर्याप्तकस्य बादरैकेन्द्रिय-उत्कृष्टपरिणामयोगो गृहीतव्यः, जघन्योत्कृष्टवीणातो बादरैकेन्द्रिय-उत्कृष्टपरिणामयोगो निर्वृत्यपर्याप्तकस्य उत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगं संवीक्ष्य एतस्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

संप्रति एकेन्द्रियपर्याप्तकानां जघन्योत्कृष्टयोगप्ररूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि अपर्याप्तकों का उत्कृष्ट योग अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१५२।।

उससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—गुणकार यहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

शंका—यहाँ लब्ध्यपर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक के भेद से सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक दो प्रकार के माने हैं। उनमें से कौन से अपर्याप्तकों का उत्कृष्ट योग यहाँ ग्रहण किया गया है ?

समाधान—सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों के उत्कृष्ट परिणामयोग को यहाँ ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि निर्वृत्त्यपर्याप्तकों का उत्कृष्ट योग जो उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग है उससे इसका उत्कृष्ट परिणामयोग असंख्यातगुणा देखा जाता है।

शंका—यह कहाँ से जाना जाता है ?

समाधान—यह जघन्योत्कृष्ट वीणा से जाना जाता है।

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा होता है। यहाँ भी लब्ध्यपर्याप्तक बादर एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट परिणामयोग ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि जघन्य-उत्कृष्ट वीणा के अनुसार बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग को देखकर इन बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का असंख्यातगुणपना पाया जाता है।

अब एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का जघन्योत्कृष्ट योग प्ररूपित करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

---

१. धवला पुस्तक १०, पृ. ३९८।

सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१५४।।
बादरेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१५५।।
सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१५६।।
बादरेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१५७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सूक्ष्मैकेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकस्य जघन्यपरिणामयोगो गृहीतव्यः। तथैव बादरैकेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकस्य जघन्यपरिणामयोगो गृहीतव्यः। शेषयोः सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। सर्वत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभाग एव ज्ञातव्यः।**

संप्रति द्वीन्द्रियाद्यपर्याप्तकानामुत्कृष्टयोगप्ररूपणार्थं सूत्रपंचकमवतार्यते —

बीइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१५८।।
तीइंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो।।१५९।।
चदुरिंदिय-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो।।१६०।।
असण्णिपंचिंदिय अपज्जत्तयस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो।।१६१।।
सण्णिपंचिंदिय अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्ज-गुणो।।१६२।।

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग उससे असंख्यातगुणा है।।१५४।।
बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग उससे असंख्यातगुणा है।।१५५।।
उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१५६।।
उससे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य परिणामयोग ग्रहण करना चाहिए। उसी प्रकार से अगले सूत्र के अनुसार बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य परिणाम योग ग्रहण करना चाहिए। शेष दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। सर्वत्र गुणकार पल्योपम का असंख्यातवां भाग ही जानना चाहिए।

अब दो इन्द्रिय आदि अपर्याप्तक जीवों का उत्कृष्ट योग बतलाने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे दो इन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१५८।।
उससे तीन इन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१५९।।
उससे चार इन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१६०।।
उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१६१।।
उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१६२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र द्वीन्द्रियापर्याप्तकौ द्विविधौ—लब्ध्यपर्याप्त-निर्वृत्यपर्याप्तभेदेन।**

तत्र एतयोः कस्योत्कृष्टयोगो गृहीतव्यः ?

अत्र निर्वृत्यपर्याप्तकस्य उत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगो गृहीतव्यः।

कुतः ?

द्वीन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकोत्कृष्टपरिणामयोगादपि द्वीन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तस्य उत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्य जघन्योत्कृष्टवीणाबलेन असंख्यातगुणत्वोपलंभात्। उपरिमेष्वपि निर्वृत्यपर्याप्तकस्य उत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगश्चैव गृहीतव्यः। शेषसूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।

संप्रति द्वीन्द्रियादिपर्याप्तानां जघन्योत्कृष्टयोगनिरूपणार्थं एकादश सूत्राण्यवतार्यन्ते श्रीभूतबलिसूरिवर्येण —

बीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१६३।।

तीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१६४।।

चउरिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१६५।।

असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१६६।।

सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१६७।।

बीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यहाँ दो इन्द्रिय अपर्याप्त जीव के लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्त के भेद से दो भेद कहे गये हैं।

शंका— इन दोनों में से किसका उत्कृष्ट योग ग्रहण करना चाहिए ?

समाधान— यहाँ निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीव के उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धियोग ग्रहण करना चाहिए।

क्यों ?

क्योंकि द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट परिणाम योग से भी द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योग जघन्योत्कृष्ट वीणा के बल से असंख्यातगुणा पाया जाता है। आगे के सूत्रों में भी जहाँ अपर्याप्त पद आया है। वहाँ निर्वृत्त्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धियोग को ही ग्रहण करना चाहिए। शेष सूत्रों का अर्थ सुगम है।

अब दो इन्द्रिय आदि अपर्याप्त जीवों का जघन्योत्कृष्टयोग निरूपण करने हेतु श्री भूतबली आचार्य ग्यारह सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे द्वीन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।।१६३।।

उससे तीन इन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।।१६४।।

उससे चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।।१६५।।

उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।।१६६।।

उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।।१६७।।

उससे दो इन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१६८।।

तीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१६९।।

चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१७०।।

असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१७१।।

सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।।१७२।।

एवमेक्केक्कस्स जोगगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१७३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पूर्वोक्ताशेषयोगस्थानानां गुणकारस्य प्रमाणमेतेन सूत्रेण प्ररूपितं।**

पल्योपमस्य असंख्यातभागो गुणकारो भवतीति कथं ज्ञायते ?

एतस्मादेव सूत्राज्ज्ञायते। एतत्सूत्रं स्वयं प्रमाणभूतं भवतीति प्रमाणान्तरं नापेक्षते, अनवस्थाप्रसंगात्।

अयं मूलवीणाया अल्पबहुत्वालापो देशामर्शकः, सूचितप्ररूपणाद्यनुयोगद्वारत्वात्। तेनात्र प्ररूपणा प्रमाणमल्पबहुत्वमिति त्रीण्यनुयोगद्वाराणि प्ररूपयितव्यानि।

तत्र तावत्प्ररूपणा वक्ष्यते। तद्यथा—

सप्तानां लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासानामुपपादयोगस्थानानि एकान्तानुवृद्धियोगस्थानानि परिणामयोग-स्थानानि च। सप्तानां निर्वृत्यपर्याप्तजीवसमासानामुपपादयोगस्थानानि एकान्तानुयोगवृद्धियोगस्थानानि च। सप्तानां निर्वृत्तिपर्याप्तानां परिणामयोगस्थानानि चैव।

प्ररूपणा समाप्ता।

उससे तीन इन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्टयोग असंख्यातगुणा है।।१६९।।

उससे चार इन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्टयोग असंख्यातगुणा है।।१७०।।

उससे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्टयोग असंख्यातगुणा है।।१७१।।

उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।।१७२।।

इस प्रकार प्रत्येक जीव के योग का गुणकार पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।।१७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पूर्वोक्त सम्पूर्ण योगस्थानों के गुणकार का प्रमाण इस १७३वें सूत्र के द्वारा प्ररूपित किया गया है।

शंका—पल्योपम का असंख्यातवां भाग गुणकार होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह इसी सूत्र से जाना जाता है। यह सूत्र स्वयं प्रमाणभूत होने से किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता, क्योंकि ऐसा न मानने पर अनवस्था दोष का प्रसंग आता है।

यह मूल वीणा का अल्पबहुत्व-आलाप देशामर्शक है, क्योंकि वह प्ररूपणा आदि अनुयोगद्वारों का सूचक है। इसलिए यहाँ प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व इन तीन अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा करना चाहिए।

उनमें से प्ररूपणा को कहते हैं—

वह इस प्रकार है—सात लब्ध्यपर्याप्त जीवसमासों के उपपादयोगस्थान, एकान्तानुवृद्धियोगस्थान और परिणामयोगस्थान होते हैं। सात निर्वृत्यपर्याप्त जीवसमासों के उपपादयोगस्थान व एकान्तानुवृद्धियोगस्थान होते हैं। सात निर्वृत्तिपर्याप्तकों के परिणामयोगस्थान ही होते हैं।

प्ररूपणा समाप्त हुई।

संप्रति प्रमाणमुच्यते। तद्यथा—

एतेषां कथितसर्वजीवसमासानामुपपादयोगस्थानानां एकान्तानुवृद्धियोगस्थानां परिणामयोगस्थानानां च प्रमाणं श्रेण्याः असंख्यातभागोऽस्ति।

इति प्रमाणप्ररूपणा गता।

अल्पबहुत्वं द्विविधं—योगस्थानाल्पबहुत्वं योगविभागप्रतिच्छेदाल्पबहुत्वं चेति। तत्र तावद् योगस्थानाल्पबहुत्वं वक्ष्यते। तद्यथा—

सप्तानां लब्ध्यपर्याप्तानामुपपादयोगस्थानानि सर्वस्तोकानि। ततस्तेषां एकान्तानुवृद्धियोगस्थानानि असंख्यातगुणानि। ततः परिणामयोगस्थानानि असंख्यातगुणानि।

सप्तानां निर्वृत्त्यपर्याप्तजीवसमासानां सर्वस्तोकानि उपपादयोगस्थानानि। एकान्तानुवृद्धियोगस्थानान्यसंख्यातगुणानि।

सप्तानां निर्वृत्तिपर्याप्तकानां नास्त्यल्पबहुत्वम्, परिणामयोगस्थानानि मुक्त्वा तत्रान्येषां योगस्थानानामभावात्।

सर्वत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागः।

एवं योगस्थानाल्पबहुत्वं समाप्तम्।

चर्तुदशजीवसमासानां योगाविभागप्रतिच्छेदाल्पबहुत्वं त्रिविधम्—स्वस्थानं परस्थानं सर्वपरस्थानमिति। एतेषां विस्तरो धवलाटीकायां पठितव्यो भवद्भिः।

अधुना प्रदेशाल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अब प्रमाण का वर्णन करते हैं। वह इस प्रकार है—

इन उक्त सब जीवसमासों के उपपादयोगस्थानों, एकान्तानुवृद्धियोगस्थानों और परिणामयोगस्थानों का प्रमाण जगश्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र है।

इस प्रकार प्रमाण की प्ररूपणा समाप्त हुई।

अल्पबहुत्व दो प्रकार है—योगस्थान अल्पबहुत्व और योगविभागप्रतिच्छेद अल्पबहुत्व। उनमें योगस्थान अल्पबहुत्व को कहते हैं। वह इस प्रकार है—

सात लब्ध्यपर्याप्तकों के उपपादयोगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे उनके एकान्तानुवृद्धि-योगस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे परिणामयोगस्थान असंख्यातगुणे हैं।

सात निर्वृत्ति-अपर्याप्त जीवसमासों के उपपादयोगस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे एकान्तानुवृद्धि योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।

सात निर्वृत्तिपर्याप्तकों के अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि परिणामयोगस्थानों को छोड़कर उनमें अन्य योगस्थानों का अभाव है।

गुणकार सब जगह पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

इस प्रकार योगस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

चौदह जीवसमासों का योगाविभागप्रतिच्छेद अल्पबहुत्व तीन प्रकार का है—स्वस्थान, परस्थान और सर्वपरस्थान। इनका विस्तृत वर्णन आप धवला टीका में पढ़ें।

अब प्रदेशों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

पदेसअप्पाबहुए त्ति जहा जोगअप्पाबहुगं णीदं तधा णेदव्वं। णवरि पदेसा अप्पाए त्ति भाणिदव्वं।।१७४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा पूर्वं योगाल्पबहुत्वं प्ररूपितमस्ति तथैव प्रदेशाल्पबहुत्वमपि प्ररूपयितव्यमत्र। विशेषेण तु योगस्थाने प्रदेश इति वक्तव्यं। यथा स्वस्थान-परस्थान-सर्वपरस्थानभेदेन जघन्योत्कृष्टयोगाल्पबहुत्वप्ररूपणा कृतास्ति तथैव योगनिमित्तेन जीवेषु आगतकर्मप्रदेशानामप्यल्पबहुत्वप्ररूपणा कर्तव्यास्ति, किं च—सर्वत्र कारणानुसारिकार्योपलम्भात्।**

कश्चिदाह—यदि कारणानुसार्यैव कार्यं तर्हि समयं प्रति योगवशेनागच्छत्कर्मप्रदेशैरसंख्यातैर्भवितव्यम्, किं च—योगेषु असंख्याताविभागप्रतिच्छेदाः सन्ति इति चेत् ?

आचार्यः प्राह—नैतत्, एकयोगाविभागप्रतिच्छेदेऽपि अनंतकर्मप्रदेशाकर्षणशक्तिदर्शनात्।

पुनरप्याशंकते—योगात् कर्मप्रदेशानामागमो भवतीति कथं ज्ञायते ?

आचार्यः समाधत्ते—एतस्मादेव प्रदेशाल्पबहुत्वसूत्राज्ज्ञायते। न च सूत्रमागमप्रमाणं प्रमाणान्तरमपेक्षते, अनवस्थाप्रसंगात्। तेन गुणितकर्मांशिकः तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेभ्यश्चैव भ्रामयितव्यः, अन्यथा बहुप्रदेशसंचयानुपपत्तेः। क्षपितकर्मांशिकोऽपि तत्प्रायोग्यजघन्ययोगपंक्त्या खड्गधारासदृश्या प्रवर्तयितव्यः, अन्यथा

सूत्रार्थ—

जिस प्रकार योग अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार प्रदेश अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष इतना है कि योग के स्थान में यहाँ ''प्रदेश'' ऐसा कहना चाहिए।।१७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार पहले योग का अल्पबहुत्व प्ररूपित किया जा चुका है उसी प्रकार प्रदेशों का अल्पबहुत्व भी यहाँ प्ररूपित करना चाहिए। विशेषरूप से योग के स्थान में प्रदेश शब्द का प्रयोग करना चाहिए। जिस प्रकार स्वस्थान, परस्थान और सर्वपरस्थान के भेद से जघन्य और उत्कृष्ट योग का अल्पबहुत्व बतलाया गया है, उसी प्रकार योग के निमित्त से जीव में आने वाले कर्मप्रदेशों का भी अल्पबहुत्व प्ररूपित करना चाहिए, क्योंकि सब जगह कारण के अनुसार ही कार्य पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—यदि कार्य कारण का अनुसरण करने वाला ही होता है, तो प्रतिसमय योग के वश से आने वाले कर्मप्रदेश असंख्यात होने चाहिए, क्योंकि योग में असंख्यात अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—ऐसा नहीं है, क्योंकि योग के एक अविभागप्रतिच्छेदों में भी अनन्त कर्मप्रदेशों के आकर्षण की शक्ति देखी जाती है।

पुनः कोई शंका करता है कि—योग से कर्मप्रदेशों का आगमन होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

आचार्य इसका भी समाधान देते हैं कि—वह इसी प्रदेशाल्पबहुत्वसूत्र से जाना जाता है, क्योंकि सूत्र ही आगम प्रमाण है, वह किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता है, ऐसा न मानने पर अनवस्था दोष का प्रसंग आता है। इसी कारण गुणित कर्मांशिक को तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योगों से ही घुमाना चाहिए, क्योंकि इसके बिना उसके बहुत प्रदेशों का संचय घटित नहीं होता है। क्षपितकर्मांशिक को भी खड्गधारा सदृश तत्प्रायोग्य जघन्य योगों की पंक्ति से प्रवर्ताना चाहिए, अन्यथा कर्म और नोकर्म के प्रदेशों में स्तोकपना संभव नहीं है।

कर्मनोकर्मप्रदेशानां स्तोकत्वं न संभवति।

एवं चूलिकायां प्रथमस्थले योगापेक्षया-प्रदेशापेक्षयाचाल्पबहुत्व निरूपणत्वेन एकत्रिंशत्सूत्राणि गतानि।

मंगलाचरणम्

सार्धद्वीपद्वये सप्त-त्युत्तराणि शतानि च।
सन्ति कर्मभुवस्तासु, त्रैकालिकजिनेश्वराः।।१।।
अनन्तानन्ततीर्थेशा, मोक्षमार्गप्रदर्शकाः।
तीर्थचक्रभृतश्चैतान् वन्दे सर्वार्थसिद्धये।।२।।

ॐ सार्द्धद्वयद्वीपसंबंधिपंचभरत-पंचैरावत-पंचमहाविदेहस्थित-सप्तत्युत्तरशतकर्मभूमिषूत्पन्नातीत-वर्तमान-भविष्यत्कालीनानन्तानन्ततीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

एतद्विश्वशांतिमहावीरविधानं अन्तिमतीर्थंकरभगवन्महावीरषड्विंशतिशततमो जन्मजयंतीमहोत्सवो भगवन्- महावीरस्वामिनश्च विश्वस्मिन् शांतिं सुभिक्षं क्षेमं आरोग्यं सर्वसिद्धिं समृद्धिं च वितरन्तुतराम्। इति प्रार्थ्यते मया[१]।

चूलिकायाः पातनिका—

अथ वेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत चतुर्थानुयोगद्वारस्य त्रीण्यनुयोगद्वाराणि विभज्य पुनश्च चूलिकायां मध्ये पंचसप्तत्यधिकशततमे सूत्रे दशानुयोगद्वाराणि कथितानि। इदं चूलिकायां द्वितीयस्थलमस्ति।

इस प्रकार चूलिका अधिकार के प्रथम स्थल में योग की अपेक्षा और प्रदेश की अपेक्षा अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले इकतीस सूत्र पूर्ण हुए।

— मंगलाचरण—

श्लोकार्थ—ढाई द्वीप में एक सौ सत्तर कर्मभूमियाँ हैं, उनमें त्रैकालिक जिनेश्वर भगवान—भूत-भविष्यत्-वर्तमान इन तीनों कालों में जो अनन्तानन्त तीर्थंकर हुए हैं तथा वे सभी अनन्तानन्त तीर्थंकर भगवान मोक्षमार्ग के प्रदर्शक हैं एवं वे तीर्थंकर धर्मतीर्थरूपी चक्र को धारण करने वाले हैं उन सभी को मैं सर्वार्थसिद्धि की प्राप्ति हेतु अर्थात् सम्पूर्ण प्रयोजनों की सिद्धि के लिए वन्दन करता हूँ।।१-२।।

ढाई द्वीपों में जो पाँच भरतक्षेत्र हैं, पाँच ऐरावत क्षेत्र हैं तथा पाँच महाविदेह क्षेत्रों में स्थित एक सौ सत्तर कर्मभूमियों में उत्पन्न भूतकाल, वर्तमानकाल एवं भविष्यत् काल संबंधी अनन्तानन्त तीर्थंकरों को मेरा बारम्बार नमस्कार होवे।

यह विश्वशांति महावीर विधान तथा अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का छब्बीस सौवां जन्मजयंती महोत्सव एवं भगवान महावीर स्वामी विश्व में शांति, सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य, सर्वसिद्धि एवं समृद्धि को प्रदान करें, यही मेरी प्रार्थना है।

अब चूलिका के द्वितीय स्थल की पातनिका प्रस्तुत है—

अब वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत चतुर्थ अनुयोगद्वार को तीन अनुयोगद्वारों में विभक्त करके पुनः चूलिका के मध्य में एक सौ पिचहत्तरवें सूत्र में दश अनुयोगद्वार कहे हैं। यह चूलिका का द्वितीय स्थल है।

---

१. मगसिर शु. १०, वी.नि.सं. २५२८ (दिनाँक २५-१२-२००१) को राजाबाजार-दिल्ली में लिखा है। अतः महावीर स्वामी के २६वें जन्मजयंती महोत्सव के संदर्भ में यह मंगलाचरण किया है।

अथ चूलिकायां द्वितीयस्थले एकादशान्तरस्थलानि विभज्यन्ते। तत्र प्रथमेऽन्तरस्थले ''जोगट्ठाण-परूवणदाए'' इत्यादि दशभेदसूचनत्वेन सूत्रद्वयं। द्वितीयेऽन्तरस्थले ''अविभागपडिच्छेद'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि। तृतीयेऽन्तरस्थले ''वग्गपरूवणदाए'' इत्यादिना सूत्रद्वयं। चतुर्थेऽन्तरस्थले ''फद्दयपरूवणदाए'' इत्यादिना सूत्रद्वयं। पंचमेऽन्तरस्थले ''अंतरपरूवणदाए'' इत्यादिना सूत्रद्वयं। षष्ठेऽन्तरस्थले ''ठाणपरूवण'' इत्यादिना सूत्रद्वयं। सप्तमेऽन्तरस्थले ''अणन्तरोवणिधाए'' इत्यादिना पंचसूत्राणि। अष्टमेऽन्तरस्थले ''परंपरोवणिधाए'' इत्यादिना सूत्रचतुष्टयं। नवमेऽन्तरस्थले ''समयपरूवणदाए'' इत्यादिना चत्वारि सूत्राणि। दशमेऽन्तरस्थले ''वड्ढिपरूवणदाए'' इत्यादिना पंचसूत्राणि। एकादशेऽन्तरस्थले ''अप्पाबहुए त्ति'' इत्यादिना सप्तसूत्राणि वक्ष्यन्ते।

पुनश्च तृतीयस्थले प्रदेशबंधनिरूपणत्वेन ''जाणि चेव'' इत्यादिना एकं सूत्रं कथयिष्यते। इति समुदायेन पातनिका सूचिता भवति।

अधुना योगस्थानप्ररूपणायां अनुयोगद्वारसंख्याप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण —

जोगट्ठाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि दस अणुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति।।१७५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका —**दशानुयोगद्वाराणां नामनिरूपणं अग्रिमसूत्रे करिष्यते। अत्र योगश्चतुर्विधः — नामयोगः स्थापनायोगो द्रव्ययोगो भावयोगश्चेति। नामस्थापनायोगौ सुगमौ इति न तयोरर्थ उच्यते।**

द्रव्ययोगो द्विविधः — आगमद्रव्ययोगो नोआगमद्रव्ययोगश्चेति। तत्रागमद्रव्ययोगो योगप्राभृतज्ञाय-

---

चूलिका के द्वितीय स्थल में ग्यारह अन्तरस्थल विभक्त किये हैं। उनमें से प्रथम अन्तरस्थल में ''जोगट्ठाणपरूवणदाए'' इत्यादि दो सूत्रों के द्वारा दश भेद सूचित किये जायेंगे। द्वितीय अन्तरस्थल में 'अविभागपडिच्छेद'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तृतीय अन्तरस्थल में ''वग्गपरूवणदाए'' इत्यादि दो सूत्र हैं। चतुर्थ अन्तरस्थल में ''फद्दयपरूवणदाए'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पंचम अन्तर स्थल में ''अन्तरपरूवणदाए'' इत्यादि दो सूत्र हैं। छठे अन्तरस्थल में ''ठाणपरूवण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। सातवें अन्तरस्थल में ''अणन्तरोवणिधाए'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। आठवें अन्तरस्थल में ''परंपरोवणिधाए'' इत्यादि चार सूत्र हैं। नवमें अन्तरस्थल में ''समयपरूवणदाए'' इत्यादि चार सूत्र हैं। दशवें अन्तरस्थल में ''वड्ढिपरूवणदाए'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। ग्यारहवें अन्तरस्थल में ''अप्पा बहुएत्ति'' इत्यादि सात सूत्र कहेंगे।

पुनश्च तृतीय स्थल में प्रदेशबंध का निरूपण करने हेतु ''जाणि चेव'' इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब योगस्थान प्ररूपणा में अनुयोगद्वारों की संख्या का प्ररूपण करने हेतु श्रीमान् भूतबली आचार्य सूत्र को अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

योगस्थानों की प्ररूपणा में ये दश अनुयोगद्वार जानने योग्य होते हैं।।१७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — दश अनुयोगद्वारों के नामों का निरूपण अग्रिम — अगले सूत्र में करेंगे। यहाँ योग के नामयोग, स्थापनायोग, द्रव्ययोग और भावयोग ये चार प्रकार बताये हैं। उनमें से नाम और स्थापना योग सुगम हैं अतः उनका अर्थ नहीं कहते हैं।

द्रव्य योग दो प्रकार का है — आगमद्रव्ययोग और नोआगमद्रव्ययोग। उनमें योगप्राभृत का जानकार

कोऽनुपयुक्तः। नोआगमद्रव्ययोगस्त्रिविधः—ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तद्रव्ययोगश्चेति। ज्ञायकशरीर-भाविद्रव्ययोगौ सुगमौ। तद्व्यतिरिक्तद्रव्ययोगोऽनेकविधः। तद्यथा—

सूर्यनक्षत्रयोगो ग्रहनक्षत्रयोगः कोणांगारयोगः चूर्णयोगो मन्त्रयोग इत्येवमादयः।

तत्र भावयोगो द्विविधः—आगमभावयोगो नोआगमभावयोगश्च। तत्रागमभावयोगो योगप्राभृतज्ञायक उपयुक्तः। नोआगमभावयोगस्त्रिविधः—गुणयोगः संभवयोगो योजनायोगश्चेति। तत्रापि गुणयोगो द्विविधः—सचित्तगुणयोगोऽचित्तगुणयोगश्च। तत्राचित्त-गुणयोगो यथा रूपरसगंधस्पर्शादिभिः पुद्गलद्रव्ययोगः, आकाशादीनां स्व-स्वात्मनो गुणैः सह योगो वा। तत्र सचित्तगुणयोगः पंचविधः—औदयिक औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिकः पारिणामिकश्चेति। तत्र गतिलिंगकषायादिभिर्जीवस्य योगः औदयिकगुणयोगः। औपशमिकसम्यक्त्वसंयमयोगैर्जीवस्य योगः औपशमिकगुणयोगः। केवलज्ञान-दर्शन-यथाख्यातसंयमादिभिः योगः क्षायिकगुणयोगो नाम। अवधि-मनःपर्ययादिभिर्जीवस्य योगः क्षायोपशमिकगुणयोगो नाम। जीव-भव्यत्वादिभिर्योगः पारिणामिकगुणयोगो नाम। इंद्रो मेरुं चालयितुं समर्थ इति एषः संभवयोगो नाम।

योऽसौ योजनायोगः सः त्रिविधः—उपपादयोग एकान्तानुवृद्धियोगः परिणामयोगश्चेति।

एतेषु योगेष्वत्र योजनायोगेनाधिकारोऽस्ति, शेषयोगेभ्यः कर्मप्रदेशानामागमनाभावात्।

अत्रपर्यंतं योगस्य विवेचनं अधुना स्थानस्य विवेचनं क्रियते—

उपयोग रहित जीव आगमद्रव्ययोग कहलाता है। नोआगमद्रव्ययोग तीन प्रकार का है—ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्ययोग। ज्ञायकशरीर और भावी नोआगमद्रव्ययोग सुगम हैं। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्ययोग अनेक प्रकार का है। वह इस प्रकार है—

सूर्यनक्षत्रयोग, ग्रहनक्षत्रयोग, कोण-अंगारयोग, चूर्णयोग व मंत्रयोग इत्यादि।

भावयोग दो प्रकार का है—आगमभावयोग और नोआगमभावयोग। उनमें से योगप्राभृत का जानकार उपयोगयुक्त जीव आगमभावयोग कहा जाता है। नोआगमभावयोग तीन प्रकार का है—गुणयोग, संभवयोग और योजनायोग। उनमें से गुणयोग दो प्रकार का है-सचित्तगुणयोग और अचित्तगुणयोग। उनमें से अचित्तगुणयोग-जैसे रूप, रस गंध और स्पर्श आदि गुणों से पुद्गलद्रव्य का योग अथवा आकाश आदि द्रव्यों का अपने-अपने गुणों के साथ योग यह अचित्त गुणयोग कहलाता है। उनमें से सचित्तगुणयोग पांच प्रकार का है—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक। उनमें से गति, लिंग और कषाय आदि के द्वारा जो जीव का योग होता है वह औदयिक सचित्तगुणयोग है। औपशमिक सम्यक्त्व और संयम से जो जीव का योग होता है वह औपशमिक सचित्तगुणयोग है। केवलज्ञान, केवलदर्शन एवं यथाख्यातसंयम आदिकों से होने वाला जीव का योग क्षायिक गुणयोग कहा जाता है। अवधि व मनःपर्यय आदिकों के साथ होने वाले जीव के योग को क्षायोपशमिक गुणयोग कहते हैं। जीवत्व व भव्यत्व आदि के साथ होने वाला योग पारिणामिक सचित्त गुणयोग कहलाता है। इन्द्र मेरु पर्वत को चलाने के लिए समर्थ है, इस प्रकार जो शक्ति का योग है वह संभवयोग कहा जाता है।

जो योजना-(मन-वचन व काय का व्यापार) योग है वह तीन प्रकार का है—उपपादयोग, एकान्तानुवृद्धियोग और परिणामयोग। इन योगों में यहाँ योजनायोग का अधिकार है, क्योंकि शेष योगों से कर्मप्रदेशों का आगमन संभव नहीं है।

यहाँ तक योग का विवेचन हुआ है, अब स्थान का विवेचन करते हैं—

स्थानं नामस्थापनाद्रव्यभावभेदेन चतुर्विधमस्ति। एतेषु नाम-स्थापनास्थाने सुगमे स्तः, अतएव तयोरर्थो न कथ्यते। द्रव्यस्थानं द्विविधं — आगम-नोआगमद्रव्यस्थानभेदेन। तत्र आगमतो द्रव्यस्थानं स्थानप्राभृत-ज्ञायकोऽनुपयुक्तः। नोआगमद्रव्यस्थानं त्रिविधं — ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तस्थानभेदेन। तत्र ज्ञायकशरीर-भाविस्थाने सुगमे। तद्व्यतिरिक्तद्रव्यस्थानं त्रिविधं — सचित्त-अचित्त-मिश्रनोआगमद्रव्यस्थानं च। यत् तत्सचित्तनोआगमद्रव्यस्थानं तद्विविधं — बाह्यमभ्यंतरं चेति। यत्तद् बाह्यं तद्विविधं ध्रुवमध्रुवं।

यत्तद् ध्रुवं तत्सिद्धानामवगाहनस्थानं।

कुतः ?

तेषां सिद्धानामवगाहनाया वृद्धिहान्योरभावेन स्थिरस्वरूपेण अवस्थानात्।

यत्तदध्रुवं सचित्तस्थानं तत्संसारस्थानां जीवानामवगाहना।

कुतः ?

तेषां वृद्धिहान्योरुपलंभात्।

यत्तदभ्यन्तरं सचित्तस्थानं तद्विविधं — संकोचन-विकोचात्मकं तद्विहीनं च।

यत्तत्संकोचन-विकोचनात्मकमभ्यन्तरसचित्तस्थानं तत् सर्वेषां सयोगजीवानां जीवद्रव्यं। यत्तत् तद्विहीन-मभ्यन्तरं सचित्तस्थानं तत्केवलज्ञान-दर्शनधराणां मोक्षस्थितिबंधापरिणतानां सिद्धानां अयोगिकेवलिनां वा जीवद्रव्यं।

जीवद्रव्यस्य जीवद्रव्यमभिन्नस्थानं कथं भवति ?

न, स्वतो व्यतिरिक्तद्रव्याणामन्यद्रव्यस्थानहेतुत्वाभावात्, स्वकत्रिकोटि — उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप-

---

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से स्थान चार प्रकार का है। इनमें नाम व स्थापनास्थान सुगम है, अतएव उनका अर्थ नहीं कहते हैं। द्रव्यस्थान दो प्रकार का है — आगम द्रव्यस्थान और नोआगमद्रव्यस्थान। उनमें स्थानप्राभृत का जानकार उपयोगरहित जीव आगमद्रव्यस्थान कहा जाता है। नोआगमद्रव्यस्थान ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तस्थान के भेद से तीन प्रकार का है। उसमें से ज्ञायक शरीर और भावि स्थान सुगम हैं। तद्व्यतिरिक्त स्थान तीन प्रकार का है — सचित्त, अचित्त और मिश्र नोआगमद्रव्यस्थान। जो सचित्त नोआगम द्रव्यस्थान है वह दो प्रकार है — बाह्य और अभ्यन्तर। इनमें से जो बाह्य है, वह दो प्रकार है — ध्रुव और अध्रुव। जो ध्रुव है वह सिद्धों का अवगाहन स्थान है।

कैसे ?

क्योंकि वृद्धि और हानि का अभाव होने से उन सिद्धों की अवगाहना स्थिरस्वरूप से अवस्थित है। जो अध्रुव सचित्तस्थान है वह संसारी जीवों की अवगाहना है।

ऐसा क्यों है ?

क्योंकि उसमें वृद्धि और हानि पाई जाती है।

जो अभ्यन्तर सचित्तस्थान है। वह दो प्रकार का है — संकोच-विकोचात्मक और तद्विहीन।

इनमें जो संकोचनविकोचनात्मक अभ्यन्तर सचित्तस्थान है वह योगयुक्त सब जीवों का जीवद्रव्य है। जो तद्विहीन अभ्यन्तर सचित्तस्थान है वह केवलज्ञान व केवलदर्शन को धारण करने वाले एवं मोक्ष व स्थितिबंध से अपरिणत ऐसे सिद्धों का अथवा अयोगकेवलियों का जीवद्रव्य है।

शंका — जीवद्रव्य का जीवद्रव्य अभिन्न स्थान कैसे हो सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि अपने से भिन्न द्रव्यों के अन्य द्रव्यस्थान का हेतुत्व न होने से अपने त्रिकोटि

परिणाम-भेदाभेदत्वेन सर्वद्रव्याणामवस्थानोपलंभात्।

यत्तदचित्तद्रव्यस्थानं तद्द्विविधं — रूप्यचित्तद्रव्यस्थानमरूप्यचित्तद्रव्यस्थानं चेति।

यत्तद् रूपि-अचित्तस्थानं तद् द्विविधं — अभ्यन्तरं बाह्यं च। यत्तदभ्यन्तरं तद् द्विविधं — जहद्वृत्तिकं अजहद्वृत्तिकं च। यत्तद् जहदवृत्ति-अभ्यन्तरस्थानं तत् कृष्ण-नील-रुधिर-हारिद्र-शुक्ल-सुरभिगंध-दुरभिगंध-तिक्त-कटुक-कषायाम्ल-मधुर-स्निग्ध-रूक्ष-शीतोष्णादिभेदेन अनेकविधं। यत्तदजहद्वृत्ति-अभ्यंतर-रूप्यचित्तद्रव्यस्थानं तत्पुद्गलमूर्ति-वर्ण-गंध-रस-स्पर्शानुपयोगत्वादिभेदेन अनेकविधं। यत्तद् बाह्यरूप्य-चित्तद्रव्यस्थानं तदेकाकाशप्रदेशादिभेदेन असंख्यातविकल्पम्।

यत्तदरूपि-अचित्तद्रव्यस्थानं तद् द्विविधं — अभ्यन्तरं बाह्यं चेति। यत्तदभ्यन्तरमरूपि-अचित्तद्रव्यस्थानं तद् धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय-आकाशास्तिकाय-कालद्रव्याणां स्व-स्वात्मनः स्वरूपावस्थानहेतुपरिणामाः। यत्तद् बाह्यमरूपि-अचित्तद्रव्यस्थानं तद् धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय-कालद्रव्यैरवष्टब्धाकाशप्रदेशाः। आकाशास्तिकायस्य नास्ति बाह्यस्थानं, आकाशावगाहिनोऽन्यस्य द्रव्यस्याभावात्। यत्तद् मिश्रद्रव्यस्थानं तद् लोकाकाशः।

भावस्थानं द्विविधं — आगम नोआगमभावस्थानभेदेन। तत्र आगमभावस्थानं नाम, स्थानप्राभृतज्ञायक उपयुक्तः। नोआगमभावस्थानमौदयिकादिभेदेन पंचविधं।

अत्र औदयिकभावस्थानेन अधिकारः, अघातिकर्मणामुदयेन तत्प्रायोग्येन योगस्योत्पत्तेः।

योगो क्षायोपशमिक इति केऽपि भणन्ति, तत्कथं घटते ?

(उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य) स्वरूप परिणाम के कथंचित् भेदाभेदरूप से सब द्रव्यों का अवस्थान पाया जाता है।

जो अचित्त द्रव्यस्थान है वह दो प्रकार का है — रूपी अचित्तद्रव्यस्थान और अरूपी अचित्तद्रव्यस्थान।

इनमें जो रूपी अचित्तद्रव्यस्थान है, वह दो प्रकार का है — अभ्यन्तर और बाह्य। जो अभ्यन्तर रूपीअचित्तद्रव्यस्थान है वह दो प्रकार का हैं — जहद्वृत्तिक और अजहद्वृत्तिक। जो जहद्वृत्तिक अभ्यन्तर रूपीअचित्तद्रव्यस्थान है वह कृष्ण, नील, लाल, पीला, सफेद, सुगन्ध, दुर्गन्ध, तिक्त, कटुक, कषाय, आम्ल, मधुर, स्निग्ध, रुक्ष, शीत व उष्ण आदि के भेद से अनेक प्रकार का है। जो अजहद्वृत्तिक अभ्यन्तर रूपीअचित्तद्रव्यस्थान है वह पुद्गल का मूर्तित्व, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श व अनुपयोग आदि भेद से अनेक प्रकार का है। जो बाह्य रूपीअचित्तद्रव्यस्थान है वह एक आकाशप्रदेश आदि के भेद से असंख्यात भेदरूप है।

जो अरूपी अचित्तद्रव्यस्थान है वह दो प्रकार का है — अभ्यन्तर अरूपी अचित्तद्रव्यस्थान और बाह्य अरूपी अचित्तद्रव्यस्थान। जो अभ्यन्तर अरूपीअचित्तद्रव्यस्थान है वह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल द्रव्यों के अपने-अपने स्वरूप से अवस्थान के हेतुभूत परिणामों स्वरूप है, जो बाह्य अरूपी अचित्त द्रव्यस्थान है वह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय व काल द्रव्य से अवष्टब्ध — व्याप्त आकाशप्रदेशों स्वरूप है। आकाशास्तिकाय का बाह्य स्थान नहीं है, क्योंकि आकाश को स्थान देने वाले दूसरे द्रव्य का अभाव है। जो मिश्रद्रव्यस्थान है वह लोकाकाश है।

भावस्थान आगम और नोआगम भावस्थान के भेद से दो प्रकार का है। उनमें स्थानप्राभृत का जानकार उपयोगयुक्त जीव आगमभावस्थान है। नोआगम भावस्थान औदायिक आदि के भेद से पाँच प्रकार का है।

यहाँ औदयिक भावस्थान का अधिकार है, क्योंकि योग की उत्पत्ति तत्प्रायोग्यअघातिया कर्मों के उदय से होती है।

शंका — योग क्षायोपशमिक है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। वह कैसे घटित होता है ?

वीर्यान्तरायक्षयोपशमेन कुत्रापि योगस्यवृद्धि-मुपलक्ष्यक्षायोपशमिकत्वप्रतिपादनात् घटते।

योगस्य स्थानं योगस्थानं, योगस्थानस्य प्ररूपणता योगस्थान-प्ररूपणता, तस्यां योगस्थानप्ररूपणतायां दश अनुयोगद्वाराणि ज्ञातव्यानि भवन्ति।

किमर्थमत्र योगस्थानप्ररूपणा क्रियते?

पूर्वोक्ताल्पबहुत्वे सर्वजीवसमासानां जघन्योत्कृष्टयोगस्थानानां स्तोकबहुत्वमेव ज्ञापितं। कियद्भिः अविभागप्रतिच्छेदैः स्पर्द्धकैः वर्गणाभिर्वा जघन्योत्कृष्टयोगस्थानानि भवन्तीति नोक्तं। योगस्थानानां षडेव अन्तराणि अल्पबहुत्वे प्ररूपितानि। ततस्तेषामन्यत्र निरन्तरं वृद्धिर्भवसीति ज्ञायते। सा च वृद्धिः सर्वत्र किमवस्थिता किमनवस्थिता किं वा वृद्धेः प्रमाणमिति एतदपि तत्र न प्ररूपितं। तत एतेषामप्ररूपितार्थानां प्ररूपणार्थं योगस्थानप्ररूपणा क्रियते।

किं योगो नाम ?

जीवप्रदेशानां संकोच-विकोच-भ्रमणस्वरूपो योगः। न जीवगमनं योगः, अयोगिनोऽघातिकर्मक्षयेण ऊर्ध्वं गच्छतोपि सयोगत्वप्रसंगात्।

सः च योगो मनोवचनकाय भेदेन त्रिविधः। तत्र बाह्यपदार्थचिन्ताव्यापृतं मनसः समुत्पन्नजीवप्रदेश-परिस्पन्दो मनोयोगः। भाषावर्गणास्कंधानां भाषास्वरूपेण परिणामयतो जीवस्य जीवप्रदेशानां परिस्पन्दो वचोयोगः। वात-पित्त-श्लेष्मादिभिः जनितपरिश्रमेण जातजीवप्रदेशपरिस्पन्दो काययोगः।

समाधान — कहीं पर वीर्यान्तराय के क्षयोपशम के योग की वृद्धि को पाकर चूंकि उसे क्षायोपशमिक प्रतिपादन किया गया है, अतएव वह भी घटित होता है।

योग का स्थान योगस्थान है और योगस्थान की प्ररूपणा, योगस्थानप्ररूपणता है, उस योगस्थानप्ररूपणा में दस अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं।

शंका — यहाँ योगस्थानप्ररूपणा किसलिए की गई है ?

समाधान — पूर्वोक्त अल्पबहुत्व में सब जीवसमासों के जघन्य व उत्कृष्ट योगस्थानों का अल्पबहुत्व ही बतलाया गया है। किन्तु कितने अविभागप्रतिच्छेदों, स्पर्द्धकों अथवा वर्गणाओं से जघन्य व उत्कृष्ट योगस्थान होते हैं, यह वहाँ नहीं कहा गया है। योगस्थानों के छह ही अन्तर अल्पबहुत्व में कहे गये हैं। इससे दूसरी जगह उनके निरन्तर वृद्धि होती है, ऐसा जाना जाता है। परन्तु वह वृद्धि सब जगह क्या अवस्थित होती है या अनवस्थित तथा वृद्धि का प्रमाण क्या है, यह भी वहाँ नहीं कहा गया है। इसलिए इन अप्ररूपित अर्थों के प्ररूपणार्थ योगस्थान प्ररूपणा की गई है।

शंका — योग किसे कहते हैं ?

समाधान — जीव प्रदेशों का जो संकोच-विकोच व परिभ्रमणरूप परिष्पन्दन होता है वह योग कहलाता है। जीव के गमन को योग नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसा मानने पर अघातिया कर्मों के क्षय से ऊर्ध्व गमन करने वाले अयोगकेवलियों के भी सयोगत्व का प्रसंग आवेगा।

वह योग मन, वचन व काय के भेद से तीन प्रकार का होता है, उनमें बाह्य पदार्थ के चिन्तवन में प्रवृत्त हुए मन से उत्पन्न जीव प्रदेशों के परिष्पन्दन को मनयोग कहते हैं। भाषावर्गणा के स्कन्धों का भाषास्वरूप से परिणमाने वाले जीव के जो जीवप्रदेशों का परिष्पन्दन होता है, वह वचनयोग कहलाता है। वात, पित्त व कफ आदि के द्वारा उत्पन्न परिश्रम से जो जीवप्रदेशों का परिष्पन्दन होता है, वह काययोग कहा जाता है।

यद्येवं तर्हि त्रयाणामपि योगानामक्रमेण वृत्तिः प्राप्नोति इति चेत् ?

नैष दोषः, यदर्थं जीवप्रदेशानां प्रथमं परिस्पन्दो जातः, अन्यस्मिन् जीवप्रदेशपरिस्पन्दसहकारिकारणे जातेऽपि तस्यैव प्रधानत्वदर्शनेन तस्य तद्व्यपदेशविरोधाभावात्।

तस्माद् योगस्थानप्ररूपणा सम्बद्धा चैव, नासंबद्धा इति सिद्धं जातम्।

अधुना दशानामनुयोगद्वाराणं नामनिर्देशार्थमुपरिमसूत्रमवतार्यते —

अविभागपडिच्छेदपरूवणा वग्गणपरूवणा फद्दयपरूवणा अंतर-परूवणा ठाणपरूवणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा समयपरूवणा वड्डिपरूवणा अप्पाबहुए त्ति।।१७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अत्र दशसु अनियोगद्वारेषु अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा चैव किमर्थं पूर्वं प्ररूपिता?**

न, अनवगतेषु अविभागप्रतिच्छेदेषु उपरिमाधिकाराणां प्ररूपणोपायाभावात्।

तदनंतरं वर्गणाप्ररूपणा किमर्थं निरूपिता ?

नैष दोषः, अनवगतासु वर्गणासु स्पर्द्धकप्ररूपणानुपपत्तेः। स्पर्द्धकेषु अनवगतेषु अंतरप्ररूपणादीनामुपायाभावात् शेषानियोगद्वारेषु स्पर्द्धकप्ररूपणा पूर्वं चैव कृता। स्पर्द्धकबहुत्वनिबंधनान्तरेऽनवगते

शंका — यदि ऐसा है तो तीनों भी योगों की एक साथ प्रवृत्ति प्राप्त होती है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जीवप्रदेशपरिष्पन्द के अन्य सहकारी कारण के होते हुए भी जिसके लिए जीव प्रदेशों का प्रथम परिष्पन्दन हुआ उसके अन्य सहकारी कारण के होते हुए भी जिसके लिए जीवप्रदेशों का प्रथम परिष्पन्द हुआ है, उसकी ही प्रधानता देखी जाने से उसकी उक्त संज्ञा होने में कोई विरोध नहीं आता है।

इस कारण योगस्थानप्ररूपणा संबंध ही है, असम्बद्ध नहीं है, यह सिद्ध हो जाता है।

अब दश अनुयोगद्वारों के नाम निर्देश करने हेतु आगे का सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्द्धकप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा, अनन्तरोपनिधा, परम्परोपनिधा, समयप्ररूपणा, वृद्धिप्ररूपणा और अल्पबहुत्व ये दस अनुयोगद्वार हैं।।१७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूत्र का अभिप्राय शंका-समाधान द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

शंका — यहाँ दस अनुयोगद्वारों में पहले अविभाग प्रतिच्छेदप्ररूपणा का ही निर्देश किसलिए किया गया है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि अविभागप्रतिच्छेदों के अज्ञात होने पर आगे के अधिकारों की प्ररूपणा का कोई अन्य उपाय संभव नहीं है।

शंका — उसके पश्चात् वर्गणाप्ररूपणा की प्ररूपणा किसलिए की गई है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वर्गणाओं के अज्ञात होने पर स्पर्द्धकों की प्ररूपणा नहीं बन सकती है। स्पर्द्धकों के अज्ञात होने पर अन्तरप्ररूपणा आदिकों के जानने का कोई उपाय न होने से शेष अनुयोगद्वारों में स्पर्द्धक प्ररूपणा पहले ही की गई है। स्पर्द्धकबहुत्व के कारणभूत अन्तर के अज्ञात होने पर

बहुस्पर्द्धकाधिष्ठितस्थानादीनां प्ररूपणोपायाभावात् शेषानुयोगद्वारेभ्यः पूर्वमेव अंतरप्ररूपणा। स्थानेषु अनवगतेषु अनंतरोपनिधादीनामवगमोपायाभावात् पूर्वं स्थानप्ररूपणा कृता। अनंतरोपनिधायां अनवगतायां परंपरोपनिधां अवगंतुं न शक्यते इति पूर्वं अनंतरोपनिधा प्ररूपिता। परंपरोपनिधायां अनवगतायां समय-वृद्धि-अल्पबहुत्वानाम-वगमोपायाभावात् परंपरोपनिधा प्ररूपिता। समयेषु अनवगतेषु उपरिमाधिकाराणा-मुत्थानाभावात् समयप्ररूपणा पूर्वं प्ररूपिता। वृद्धिप्ररूपणायां अनवगतायां तत्रावस्थानकालावगमोपायात् अल्पबहुत्वात् पूर्वं वृद्धिप्ररूपणा कृता। एवं प्ररूपितानां सर्वेषां स्तोकबहुत्वज्ञापनार्थमल्पबहुत्वप्ररूपणा पश्चात् कृता।

एवं प्रथमेऽन्तरस्थले योगस्थानप्ररूपणायां दशभेदकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

अधुना प्रथमप्ररूपणाविषयकप्रश्नोत्तरप्ररूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

अविभागपडिच्छेदपरूवणाए एक्केक्कम्हि जीवपदेसे केवडिया जोगाविभागपडिच्छेदा ?।।१७७।।

असंखेज्जा लोगा जोगाविभागपडिच्छेदा।।१७८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका —**एतद् योगाविभागप्रतिच्छेदसंख्याविषयं आशंकासूत्रं वर्तते।**

एकैकस्मिन् जीवप्रदेशे योगाविभागप्रतिच्छेदाः किं संख्याताः किमसंख्याताः किमनन्ता भवन्तीति

बहुत स्पर्द्धकों से अधिष्ठित स्थान आदि अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा का कोई उपाय न होने से शेष अनुयोगद्वारों से पहले ही अन्तर प्ररूपणा की गई है। स्थानों के अज्ञात होने पर अनन्तरोपनिधा आदिकों के जानने का कोई उपाय न होने से पहले स्थानप्ररूपणा की गई है। अनन्तरोपनिधा के अज्ञात होने पर परम्परोपनिधा का जानना शक्य नहीं है। अतः उससे पहले अनन्तरोपनिधा की प्ररूपणा की गई है। परम्परोपनिधा के अज्ञात होने पर समय, वृद्धि और अल्पबहुत्व के जानने का कोई उपाय न होने से परम्परोपनिधा की प्ररूपणा की गई है। समयों के अज्ञात होने पर आगे के अधिकारों का उत्थान नहीं बनता, अतएव पहले समयप्ररूपणा कही गई है। वृद्धिप्ररूपणा के अज्ञात होने पर वहाँ अवस्थान काल के जानने का कोई उपाय नहीं है, अतः अल्पबहुत्व से पहले वृद्धिप्ररूपणा की गई है। इस क्रम से प्ररूपित सब अधिकारों के अल्पबहुत्व को बतलाने के लिए अल्पबहुत्व की प्ररूपणा पश्चात् बाद में की गई है।

इस प्रकार प्रथम अन्तरस्थल में योगस्थान प्ररूपणा में दश भेदों का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब प्रथम प्ररूपणाविषयक प्रश्नोत्तर के द्वारा प्ररूपणा करने के लिए दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा के अनुसार एक-एक जीवप्रदेश के आश्रित कितने योगाविभाग प्रतिच्छेद होते हैं ?।।१७७।।

एक-एक जीवप्रदेश में असंख्यातलोकप्रमाण योगाविभागप्रतिच्छेद होते हैं।।१७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ पहला सूत्र योगाविभागप्रतिच्छेद विषयक आशंकासूत्र है।

एक-एक जीवप्रदेश में योगाविभागप्रतिच्छेद क्या संख्यात हैं, क्या असंख्यात हैं और क्या अनन्त है, इस प्रकार यहाँ तीन प्रकार की आशंका होती है।

अत्र त्रिविधा आशंका भवति।

एतस्य निर्णयार्थमुत्तरसूत्रमस्ति—

योगाविभागप्रतिच्छेदो नाम किम् ?

एकस्मिन् जीवप्रदेशे योगस्य या जघन्या वृद्धिः सा योगाविभागप्रतिच्छेदः। तेन प्रमाणेन एकजीवप्रदेशस्थित-जघन्ययोगे प्रज्ञया छिद्यमाने असंख्यातलोकमात्रा योगाविभागप्रतिच्छेदा भवन्ति। एकजीवप्रदेशस्थितोत्कृष्टयोगेऽपि एतेन प्रमाणेन छिद्यमाने असंख्यातलोकमात्रा एव अविभागप्रतिच्छेदा भवन्ति, एकजीवप्रदेशस्थितजघन्ययोगात् एकजीवस्थितोत्कृष्टयोगस्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

एकजीवप्रदेशस्थितजघन्ययोगे असंख्यातलोकैः खण्डिते तत्रैकखण्डमविभागप्रतिच्छेदो नाम। तेन प्रमाणेन एकैकस्मिन् जीवप्रदेशे असंख्यातलोकमात्रा योगाविभागप्रतिच्छेदा भवन्तीति उक्तं भवति।

अत्र कश्चिदाशंकते—यथा कर्मप्रदेशेषु स्वकजघन्यगुणस्यानंतिमभागोऽविभागप्रतिच्छेदसंज्ञितो जातस्तथात्राप्येकजीवप्रदेशजघन्ययोगस्यानन्तिमभागोऽविभागप्रतिच्छेदः किन्न जायते ?

आचार्यः समाधत्ते—नैष दोषः, कर्मगुणस्येव योगस्यानन्तिमभागवृद्धेरभावात्।

योगे प्रज्ञया छिद्यमाने योंऽशो विभागं न गच्छति स अविभागप्रतिच्छेद इति केऽपि भणन्ति।

तन्न घटते, पूर्वमविभागप्रतिच्छेदेऽनवगते प्रज्ञया छेदानुपपत्तेः। उपपत्तौ वा कर्माविभागप्रतिच्छेदा इव अनन्ता योगाविभागप्रतिच्छेदा भवेयुः। न चैवं, असंख्याता लोका योगाविभागप्रतिच्छेदा इति सूत्रेण—

इसके निर्णयार्थ उत्तर सूत्र प्राप्त हुआ है—

शंका—योगाविभागप्रतिच्छेद किसे कहते हैं ?

समाधान—एक जीवप्रदेश में योग की जो जघन्य वृद्धि है, उसे योगाविभागप्रतिच्छेद कहते हैं। उस प्रमाण से एक जीव प्रदेश में स्थित जघन्य योग को बुद्धि से छेदने पर असंख्यातलोकप्रमाण योगाविभागप्रतिच्छेद होते हैं। एक जीवप्रदेश में स्थित उत्कृष्ट योग को भी इसी प्रमाण से छेदने पर असंख्यात लोकप्रमाण ही अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं, क्योंकि एक जीवप्रदेश में स्थित जघन्ययोग की अपेक्षा एक जीवप्रदेश में स्थित उत्कृष्टयोग असंख्यातगुणा पाया जाता है।

एक जीवप्रदेश में स्थित जघन्य योग को असंख्यात लोकों से खण्डित करने पर उनमें से एक खण्ड अविभागप्रतिच्छेद कहलाता है। शेष प्रमाण से एक-एक जीवप्रदेश में असंख्यातलोकप्रमाणयोगाविभागप्रतिच्छेद होते हैं, यह अभिप्राय है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—जिस प्रकार कर्मप्रदेशों में अपने जघन्यगुण के अनन्तवें भाग की अविभाग प्रतिच्छेद संज्ञा होती है, उसी प्रकार यहाँ भी एक जीव प्रदेश संबंधी जघन्य योग के अनन्तवें भाग की अविभागप्रतिच्छेद संज्ञा क्यों नहीं होती है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार कर्मगुण के समान योग की अनन्तभागवृद्धि पाई जाती है, वैसी यहाँ संभव नहीं है।

योग को बुद्धि से छेदने पर जो अंश विभाग को नहीं प्राप्त होता है, वह अविभागप्रतिच्छेद कहलाता है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं।

वह घटित नहीं होता है, क्योंकि पहले अविभागप्रतिच्छेद के अज्ञात होने पर बुद्धि से छेद करना घटित नहीं होता। अथवा यदि वह घटित होता है, ऐसा स्वीकार किया जाये तो जैसे कर्म के अविभागप्रतिच्छेद अनन्त होते हैं, वैसे ही योग के अविभागप्रतिच्छेद भी अनन्त होना चाहिए। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा

''**असंखेज्जा लोगा जोगाविभागपडिच्छेदा।**''

एतेन सूत्रेण वर्गप्ररूपणा कृता, एकजीवप्रदेशाविभागप्रतिच्छेदानां वर्गव्यपदेशात्।

तात्पर्यमत्र — वर्गणां स्वरूपं ज्ञात्वा स्वात्मतत्त्वमेवाभ्यनीयमिति।

अधुना योगस्थानप्रदेशप्रमाणावधारणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवदिया जोगाविभागपडिच्छेदा।।१७९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **एकैकस्मिन् जीवप्रदेशे योगाविभागप्रतिच्छेदा असंख्यातलोकमात्रा भवन्तीति कृत्वा लोकमात्रान् जीवप्रदेशान् स्थापयित्वा तत्प्रायोग्यासंख्यातलोकैर्गृहीतकरणोत्पादैः गुणिते योगाविभागप्रतिच्छेदा एकैकस्मिन् योगस्थाने भवन्ति। अनुभागस्थानमिव अनंतैरविभागप्रतिच्छेदैर्योगस्थानं न भवति, किन्तु असंख्यातैर्योगाविभागप्रतिच्छेदैर्भवन्तीति ज्ञापितम्।**

एवं द्वितीयेऽन्तरस्थले अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणाकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

समाप्ता अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा।

अधुना वर्गणालक्षणनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

वग्गणपरूवणदाए असंखेज्जलोगजोगाविभागपडिच्छेदाणमेया वग्गणा भवदि।।१८०।।

होने पर 'असंख्यात लोक प्रमाण योग के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, इस सूत्र से विरोध उत्पन्न हो जायेगा।

इस सूत्र द्वारा वर्गों की प्ररूपणा की गई है, क्योंकि एक जीव प्रदेश के अविभागप्रतिच्छेदों की वर्ग यह संज्ञा है।

तात्पर्य यह है कि — वर्गणा के स्वरूप को जानकर अपने आत्मतत्व का ही अभ्यास करना चाहिए।

अब योगस्थान के प्रदेशों का प्रमाण अवधारण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

एक-एक जीवप्रदेश में इतने मात्र योगाविभाग प्रतिच्छेद होते हैं।।१७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एक-एक जीव प्रदेश में योग के अविभागप्रतिच्छेद असंख्यात लोकमात्र होते हैं, ऐसा करके लोकमात्र जीवप्रदेशों को स्थापित कर गृहीत करण के द्वारा उत्पादित तत्प्रायोग्य असंख्यात लोकों से गुणित करने पर इतने मात्र योग के अविभागप्रतिच्छेद एक-एक योगस्थान में होते हैं। अनुभागस्थान के समान योगस्थान अनन्त अविभागप्रतिच्छेदों से नहीं होता, किन्तु वह असंख्यात योग के अविभागप्रतिच्छेदों से होते हैं, यह बतलाया गया है।

इस प्रकार द्वितीय अन्तरस्थल में अविभागप्रतिच्छेद प्ररूपणा का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

यह अविभाग प्रतिच्छेदप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब वर्गणा का लक्षण निरूपित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

वर्गप्ररूपणा के अनुसार असंख्यात लोकमात्र योगाविभागप्रतिच्छेदों की एक वर्गणा होती है।।१८०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**वर्गप्ररूपणानुसारेण असंख्यातलोकमात्रयोगाविभागप्रतिच्छेदानामेका वर्गणा भवति।**

किमर्थमेषा वर्गप्ररूपणा आगता ?

किं सर्वे जीवप्रदेशा योगाविभागप्रतिच्छेदैः सदृशा आहोस्वित् विसदृशा इति पृष्टे सति सदृशाः सन्ति विसदृशा अपि सन्तीति ज्ञापनार्थं वर्गप्ररूपणा आगता।

असंख्यातलोकमात्रयोगाविभागप्रतिच्छेदानामेका वर्गणा भवतीति भणिते योगाविभागप्रतिच्छेदैः सदृशधनवतां सर्वजीवप्रदेशानां योगाविभागप्रतिच्छेदासंभवात् असंख्यातलोकमात्राविभागप्रतिच्छेदप्रमाणा एका वर्गणा भवतीति गृहीतव्यम्। एवं सर्ववर्गणानां प्रत्येकं प्रमाणप्ररूपणं कर्तव्यं, विशेषाभावात्।

अधुना वर्गणासंख्यानिर्धारणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवमसंखेज्जाओ वग्गणाओ सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ।।१८१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**योगाविभागप्रतिच्छेदापेक्षया सदृशसर्वजीवप्रदेशान् सर्वान् गृहीत्वा एका वर्गणा भवति। पुनः अन्यानपि जीवप्रदेशान् योगाविभागप्रतिच्छेदेभ्योऽधिकान् उपरि उच्यमानवर्गणानामेकजीवप्रदेशयोगाविभागप्रतिच्छेदेभ्य ऊनान् गृहीत्वा द्वितीया वर्गणा भवति। एवमनेन विधानेन गृहीतसर्ववर्गणा श्रेण्या असंख्यातभागमात्राः सन्ति।**

कथमेतज्ज्ञायते ?

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— वर्गप्ररूपणा के अनुसार असंख्यातलोकमात्र योगाविभागप्रतिच्छेदों की एक वर्गणा होती है।

शंका— इस वर्गप्ररूपणा का अवतार किसलिए हुआ है ?

समाधान— क्या सब जीवप्रदेश योगाविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा सदृश हैं या विसदृश हैं, ऐसा पूछने पर उत्तर में 'वे सदृश भी हैं और विसदृश भी हैं' इस बात के ज्ञापनार्थ वर्गप्ररूपणा का अवतार हुआ है।

असंख्यातलोकमात्रयोगाविभागप्रतिच्छेदों की एक वर्गणा होती है, ऐसा कहने पर योगाविभाग-प्रतिच्छेदों की अपेक्षा समान धन वाले सब जीव प्रदेशों के योगाविभागप्रतिच्छेद असंभव होने से असंख्यात लोकमात्र अविभागप्रतिच्छेदों के बराबर एक वर्गणा होती है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार सब वर्गणाओं में प्रत्येक वर्गणा के प्रमाण की प्ररूपणा करना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब वर्गणा की संख्या के निर्धारण हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इस प्रकार श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात वर्गणाएं होती हैं।।१८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— योगाविभाग प्रतिच्छेदों की अपेक्षा समान सब जीव प्रदेशों को ग्रहण कर एक वर्गणा होती है। पुनः योगाविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा परस्पर समान पूर्ववर्गणासंबंधी जीवप्रदेशों के योगाविभागप्रतिच्छेदों से अधिक, परन्तु आगे कही जाने वाली वर्गणाओं के एक जीवप्रदेश संबंधी योगाविभागप्रतिच्छेदों से हीन, ऐसे दूसरे भी जीवप्रदेशों को ग्रहण करके दूसरी वर्गणा होती है। इस प्रकार इस विधान से ग्रहण की गई सब वर्गणाएं श्रेणि के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

शंका— यह कैसे जाना जाता है ?

एतस्माच्चैव सूत्रात् , न च प्रमाणं प्रमाणान्तरेण साध्यते, अनवस्थाप्रसंगात्।

अत्र विस्तरस्तु धवलाटीकायां द्रष्टव्यो भवति।

एवं तृतीयेंऽतरस्थले वर्गणाप्ररूपणाकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

एवं वर्गणाप्ररूपणा समाप्ता।

संप्रति स्पर्द्धकप्ररूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

फद्दयपरूवणाए असंखेज्जाओ वग्गणाओ सेडीए असंखेज्जदि-भागमेत्तीयो तमेगं फद्दयं होदि।।१८२।।

एवमसंखेज्जाणि फद्दयाणि सेडीए असंखेज्जदि भागमेत्ताणि।।१८३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**संख्यातवर्गणाभिरेकं स्पर्द्धकं न भवतीति ज्ञापनार्थमसंख्याता वर्गणाः— 'असंखेज्जाओ वग्गणाओ' इति निर्दिष्टं। पल्योपम-सागरोपमादिप्रमाणवर्गणाभिरेकं स्पर्द्धकं न भवतीति ज्ञापनार्थं 'सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताहि वग्गणाहि एगं फद्दयं होदि त्ति' भणितं।**

स्पर्द्धकमिति किमुक्तं भवति ?

क्रमवृद्धिः क्रमहानिश्च यत्र विद्यते तत्स्पर्द्धकम्।

कोऽत्र क्रमो नाम ?

समाधान—यह इसी सूत्र से जाना जाता है। किसी एक प्रमाण को दूसरे प्रमाण से सिद्ध नहीं किया जाता, क्योंकि इस प्रकार से अनवस्था का प्रसंग आता है।

यहाँ विस्तृत वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय अन्तरस्थल में वर्गणा की प्ररूपणा को बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार वर्गणाप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब स्पर्द्धकों की प्ररूपणा हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्पर्धकप्ररूपणा के अनुसार श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र जो असंख्यात वर्गणाएं हैं, उनका एक स्पर्धक होता है।।१८२।।

इस प्रकार एक योगस्थान में श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात स्पर्द्धक होते हैं।।१८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संख्यात वर्गणाओं से एक स्पर्धक नहीं होता है, इस बात को बतलाने के लिए "असंखेज्जाओ वग्गणाओ" इस सूत्र द्वारा निर्देश किया है। पल्योपम व सागरोपम आदि के बराबर वर्गणाओं से एक स्पर्धक नहीं होता, इस बात के ज्ञापनार्थ श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र वर्गणाओं से एक स्पर्धक होता है, ऐसा सूत्र में कहा है।

शंका—स्पर्धक से क्या अभिप्राय है ?

समाधान—जिसमें क्रमवृद्धि और क्रमहानि होती है वह स्पर्धक कहलाता है।

शंका—यहाँ 'क्रम' का अर्थ क्या है ?

स्वक-स्वकजघन्यवर्गाविभागप्रतिच्छेदेभ्य एकैकाविभागप्रतिच्छेदवृद्धिः, उत्कृष्टवर्गाविभागप्रतिच्छेदेभ्यः एकैकाविभागप्रतिच्छेदहानिश्च क्रमो नाम। द्विप्रभृतीनां वृद्धिर्हानिश्चाक्रमः।

अनेन प्रकारेण एकस्मिन् योगस्थाने श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणि असंख्यातस्पर्द्धकानि भवन्ति।

संख्यातस्पर्द्धकैः योगस्थानं न भवति, असंख्यातैरेव स्पर्द्धकैर्भवतीति ज्ञापनार्थं असंख्यातनिर्देशः कृतः। 'सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि' इति वचनेन पल्योपम-सागरोपमादीनां प्रतिषेधः कृतः। सर्वेषां स्पर्द्धकानां वर्गणाः सदृश्यः, अन्यथा स्पर्द्धकान्तराणां सदृशत्वानुपपत्तेः।

एवं चतुर्थेऽन्तरस्थले स्पर्द्धकप्ररूपणकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

एवं स्पर्द्धकप्ररूपणा समाप्ता।

अधुना अंतरप्ररूपणाप्ररूपणार्थं प्रश्नोत्तरसमन्वितसूत्रमवतार्यते —

अंतरपरूवणदाए एक्केक्कस्स फद्दयस्स केवडियमंतरं ? असंखेज्जा लोगा अंतरं।।१८४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **अंतरप्ररूपणाया अनुसारेण एकैकस्य स्पर्द्धकस्य कियदन्तरमिति प्रश्ने सति असंख्यातलोकप्रमाणमन्तरमिति कथयन्ति श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्याः।**

कश्चिदाह — किमर्थमन्तरप्ररूपणा क्रियते ?

आचार्यःप्राह — प्रथमस्पर्द्धकस्योपरि प्रथमस्पर्द्धके चैव वर्द्धिते द्वितीयं स्पर्द्धकं भवतीति ज्ञापनार्थं क्रियते।

समाधान — अपने-अपने जघन्य वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेदों से एक-एक अविभागप्रतिच्छेद की वृद्धि और उत्कृष्ट वर्ग के अविभाग प्रतिच्छेदों से एक-एक अविभागप्रतिच्छेद की जो हानि होती है, उसे क्रम कहते हैं। दो व तीन आदि अविभागप्रतिच्छेदों की हानि व वृद्धि अक्रम कहलाती है।

इस प्रकार एक योगस्थान में श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात स्पर्द्धक होते हैं।

संख्यात स्पर्धकों से योगस्थान नहीं होता है। किन्तु असंख्यात स्पर्धकों से ही होता है, इस बात के ज्ञापनार्थ असंख्यात पद का निर्देश किया है। 'श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र' इस सूत्रवचन से पल्योपम व सागरोपम आदिकों का निषेध किया गया है। सब स्पर्धकों की वर्गणाएं सदृश होती हैं, क्योंकि इसके बिना स्पर्धकों के अन्तरों की समानता घटित नहीं होती है।

इस प्रकार चतुर्थ अन्तरस्थल में स्पर्द्धकों की प्ररूपणा का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार स्पर्द्धकप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अन्तरप्ररूपणा को प्ररूपित करने हेतु प्रश्नोत्तरसमन्वित सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अन्तरप्ररूपणा के अनुसार एक-एक स्पर्धक का कितना अन्तर होता है ? असंख्यातलोकप्रमाण अन्तर होता है।।१८४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अन्तरप्ररूपणा के अनुसार एक-एक स्पर्द्धक का कितना अन्तर होता है ? ऐसा प्रश्न होने पर श्री भूतबली आचार्य कहते हैं कि उसका अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण होता है।

यहाँ कोई शिष्य शंका करता है कि —

अन्तरप्ररूपणा किसलिए की जाती है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि —

प्रथम स्पर्धक के ऊपर प्रथम स्पर्धक के ही बढ़ जाने पर द्वितीय स्पर्धक होता है, इस बात के बतलाने

पुनराशंकते — प्रथमस्पर्द्धकस्योपरि प्रथमस्पर्द्धकमेव वर्द्धते इति कथं ज्ञायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते — प्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्गणाया एकवर्गात् द्वितीयस्पर्द्धकप्रथमवर्गणाया एकवर्गो द्विगुणश्चैव भवतीति गुरूपदेशात्।

एवं स्पर्द्धकानामन्तरं असंख्यातलोकमात्रं वर्तते।

संप्रति स्पर्द्धकानामन्तरं निरूपणार्थं सूत्रमवतरति —

एवदियमंतरं।।१८५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **अस्मिन् 'चेव' शब्दोऽध्याहारयितव्यः। तेन 'एतावदेव चान्तरं भवति' अतः सिद्धं सर्वस्पर्द्धकानां सदृशत्वं। अत्र द्रव्यार्थिकनयावलम्बनायां एकवर्गस्य सदृशत्वेन स्वकान्तः क्षिप्तसदृशधनवतो वर्गणासंज्ञां कृत्वा एकपंक्तेः स्पर्द्धकसंज्ञां कृत्वा निक्षेपाचार्यप्ररूपितगाथानामर्थं भणन्ति आचार्यदेवाः।**

एतेषां संदृष्टिर्धवलाटीकायां द्रष्टव्यः।

एवं पंचमेऽन्तरस्थले अंतरप्ररूपणानिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति जघन्ययोगस्थानप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

ठाणपरूवणादाए असंखेज्जाणि फद्दयाणि सेडीए असंखेज्जदि भागमेत्ताणि, तमेगं जहण्णय जोगट्ठाणं भवदि।।१८६।।

हेतु अन्तरप्ररूपणा की जाती है।

पुनः भी शंका होती है कि — प्रथम स्पर्धक के ऊपर प्रथम स्पर्धक ही बढ़ता है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

आचार्यदेव इसका भी समाधान देते हैं कि — प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा संबंधी एक वर्ग से द्वितीय स्पर्धक संबंधी प्रथम वर्गणा का एक वर्ग दुगुणा ही होता है, इस प्रकार के गुरु के उपदेश से वह जाना जाता है।

इस प्रकार स्पर्द्धकों का अन्तर असंख्यातलोकप्रमाण होता है।

अब पुनः स्पर्द्धकों का अन्तर निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ-

स्पर्द्धकों के बीच इतना अन्तर होता है।।१८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ "चेव" शब्द का अध्याहार करना चाहिए, इसलिए 'इतना ही अन्तर होता है', ऐसा सूत्र का अर्थ हो जाता है। इसीलिए समस्त स्पर्धकों के अन्तरों की समानता सिद्ध हो जाती है। यहाँ द्रव्यार्थिक नय के अवलम्बन से समानता होने के कारण सदृश धन वालों को अपने भीतर रखने वाले एक वर्ग की वर्गणा संज्ञा व एक पंक्ति की स्पर्धक संज्ञा करके निक्षेपाचार्य द्वारा कही गई गाथाओं का अर्थ आचार्यदेव कहते हैं।

इनकी संदृष्टि धवला टीका में देखना चाहिए।

इस प्रकार पाँचवें अन्तर स्थल में अन्तरप्ररूपणा का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब जघन्ययोग स्थान को प्ररूपित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

स्थानप्ररूपणा के अनुसार श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र जो असंख्यात स्पर्द्धक हैं उनका एक जघन्य योगस्थान होता है।।१८६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**स्थानप्ररूपणानुसारेण श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणि असंख्यातस्पर्द्धकानि सन्ति, तेषामेकजघन्ययोगस्थानं भवति।**

सर्वेषां जीवानां योगः किमेकविकल्प एव आहोस्वित् अनेकविकल्प इति चेत् ?

आचार्यः कथयति—एकविकल्पो न भवति, अनेकविकल्पो भवति इति ज्ञापनार्थं स्थानप्ररूपणा आगता। तत्र असंख्यातानि स्पर्द्धकानि गृहीत्वा जघन्ययोगस्थानं भवतीति वचनेन संख्यातानन्तस्पर्द्धकानां प्रतिषेधः कृतः। श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणि इति वचनेन पल्योपम-सागरोपमादिस्पर्द्धकानां प्रतिषेधः कृतः।

संप्रति जघन्यस्थानस्य वर्गणानामविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणायां प्ररूपणा प्रमाणमल्पबहुत्वमिति त्रीण्यनुयोगद्वाराणि भवन्ति।

तद्यथा—प्रथमवर्गणायां सन्ति अविभागप्रतिच्छेदाः। द्वितीयवर्गणायां सन्ति अविभागप्रतिच्छेदाः। एवं नेतव्यं यावच्चरमवर्गणा इति।

प्ररूपणा समाप्ता।

प्रथमस्यां वर्गणायां अविभागप्रतिच्छेदाः कियन्तः ?

असंख्यातलोकमात्राः। द्वितीयवर्गणायामपि असंख्यातलोकमात्राः। एवं नेतव्यं यावच्चरमवर्गणा इति।

संप्रत्यत्र प्रथमस्पर्द्धकप्रमाणानुगमं कथयिष्यन्त्याचार्यदेवाः। एतदपि प्रकरणं धवलाटीकायां पठितव्यं भवति।

प्रथमस्पर्द्धकस्य योगाविभागप्रतिच्छेदाः सर्वस्तोकाः। चरमस्पर्द्धकयोगाविभागप्रतिच्छेदा

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्थानप्ररूपणा के अनुसार श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र जो असंख्यात स्पर्द्धक हैं उन सभी का एक जघन्य योगस्थान होता है।

शंका—सब जीवों का योग क्या एक भेदरूप ही है अथवा अनेक भेदरूप है ? ऐसा प्रश्न होने पर आचार्यदेव उत्तर में कहते हैं—

समाधान—वह एक भेदरूप नहीं होता है, अनेक भेदरूप होता है ऐसा ज्ञापित करने हेतु स्थानप्ररूपणा अवतरित हुई है। वहाँ असंख्यात स्पर्धकों को ग्रहण करके एक जघन्य योगस्थान होता है, इस कथन से संख्यात व अनन्त स्पर्धकों का प्रतिषेध किया गया है। 'श्रेणि के असंख्यातवें भाग' इस वचन से पल्योपम व सागरोपम आदि प्रमाण वाले स्पर्धकों का प्रतिषेध किया गया है।

यहाँ जघन्यस्थान संबंधी वर्गणाओं के अविभागप्रतिच्छेदों की प्ररूपणा में प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार हैं।

वे इस प्रकार हैं—प्रथम वर्गणा में अविभाग प्रतिच्छेद हैं। द्वितीय वर्गणा में अविभागप्रतिच्छेद हैं। इस प्रकार अन्तिम वर्गणा तक ले जाना चाहिए।

प्ररूपणा समाप्त हुई।

प्रथम वर्गणा में कितने अविभागप्रतिच्छेद हैं ?

असंख्यात लोकमात्र हैं। द्वितीय वर्गणा में भी वे असंख्यात लोकमात्र हैं। इस प्रकार अन्तिम वर्गणा तक ले जाना चाहिए।

अब यहाँ प्रथम स्पर्द्धकप्रमाण का अनुगम आचार्यदेव कहेंगे। यह प्रकरण भी धवला टीका में पठनीय है।

अब अल्पबहुत्व कहते हैं—

प्रथम स्पर्धक के योगाविभागप्रतिच्छेद सबसे स्तोक हैं। उनसे चरम स्पर्धक के योगाविभागप्रतिच्छेद

असंख्यातगुणाः। अप्रथम-अचरमस्पर्द्धकानां योगाविभागप्रतिच्छेदा असंख्यातगुणाः। अचरमस्पर्द्धकेषु योगाविभागप्रतिच्छेदा विशेषाधिकाः। अप्रथमस्पर्द्धकानां योगाविभागप्रतिच्छेदा विशेषाधिकाः। सर्वस्पर्द्धकानां योगाविभागप्रतिच्छेदा विशेषाधिकाः। एवं सूक्ष्मनिगोदस्य जघन्यमुपपादस्थानं प्ररूपितम्।

अधुना योगस्थानं संख्यानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवमसंखेज्जाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदि भागमेत्ताणि।।१८७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **चतुर्दशजीवसमासानां उपपादयोगस्थानानि पृथक्-पृथक् श्रेण्या असंख्यात-भागमात्राणि। तेषामेवैकान्तानुवृद्धियोगस्थानानि श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणि। परिणामयोगस्थानानि श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणीति प्ररूपितं भवति।**

एवं षष्ठेऽन्तरस्थले स्थानप्ररूपणाकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

एवं स्थानसंख्याप्ररूपणा समाप्ता।

संप्रत्यनंतरोपनिधापेक्षया योगस्थाननिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अणंतरोवणिधाए जहण्णए जोगट्ठाणे फद्दयाणि थोवाणि।।१८८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **अनंतरोपनिधाया अनुसारेण जघन्ये योगस्थाने स्पर्द्धकानि स्तोकानि सन्ति। एषा अनंतरोपनिधा किमर्थमागता ?**

असंख्यातगुणे हैं। उनसे अप्रथम और अचरम स्पर्धकों के योगाविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे हैं। उनसे अचरम स्पर्धकों में योगाविभागप्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं। उनसे अप्रथम स्पर्धकों के योगाविभागप्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं। उनसे सब स्पर्धकों के योगाविभागप्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं। इस प्रकार सूक्ष्म निगोदिया जीव के जघन्य उपपादस्थान की प्ररूपणा की गई है।

अब योगस्थान की संख्यानिरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इस प्रकार वे योगस्थान असंख्यात हैं, जो श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र हैं।।१८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — चौदह जीवसमासों के उपपादयोगस्थान पृथक्-पृथक् श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र हैं, उनके ही एकान्तानुवृद्धि योगस्थान भी श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र हैं, परिणामयोगस्थान भी श्रेणि के असंख्यातवें भागमात्र हैं, यह भी इसी से प्ररूपित होता है।

इस प्रकार छठे अन्तरस्थल में स्थानप्ररूपणा का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार स्थान संख्याप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अनन्तरोपनिधा की अपेक्षा योगस्थान का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अनन्तरोपनिधा के अनुसार जघन्य योगस्थान में स्पर्धक स्तोक हैं।।१८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — श्री भूतबली आचार्य ने सूत्र में कहा है कि अनन्तरोपनिधा के अनुसार जघन्य योगस्थान में स्पर्धक कम हैं।

शंका — यह अनन्तरोपनिधा किसलिए प्राप्त हुई है ?

श्रेण्या असंख्यातभागमात्रयोगस्थानानि एतानि किं विशेषाधिकक्रमेण स्थितानि, किं संख्यातगुणक्रमेण, किमसंख्यातगुणक्रमेण किमनन्तगुणक्रमेण स्थितानि इति पृच्छायां एतेन क्रमेण स्थितानीति ज्ञापनार्थमनंतरोपनिधा आगतास्ति।

कश्चिदाशंकते — जघन्ये योगस्थाने स्पर्द्धकानि स्तोकानि इति भणितेऽत्र स्पर्द्धकसंख्या किं स्थानस्य चरमस्पर्द्धकप्रमाणेन, किं द्विचरमस्पर्द्धकप्रमाणेन एवं गत्वा किं स्थानस्य जघन्यस्पर्द्धकप्रमाणेन किं यथास्वरूपेण स्थितस्पर्द्धकप्रमाणेन गृह्यते इति चेत् ?

आचार्यः समाधत्ते — न तावच्चरमस्पर्द्धकप्रमाणेन द्विचरमादिस्पर्द्धकप्रमाणेन च यथास्वरूपेण स्थितस्पर्द्धकप्रमाणेन च स्पर्द्धकसंख्या गृह्यते, किंतु जघन्ययोगस्थानजघन्यस्पर्द्धकप्रमाणेन स्पर्द्धकसंख्या गृहीतव्या।

कथमेतज्ज्ञायते ?

जघन्यस्थानस्पर्द्धकेभ्यः द्वितीययोगस्थानस्पर्द्धकानामन्यथा विशेषाधिकत्वानुपपत्तेः। अतोऽनेनैव ज्ञायते, उक्तस्पर्द्धकसंख्या जघन्ययोगस्थानसंबंधि-जघन्यस्पर्द्धकप्रमाणेन गृह्यते।

संप्रति द्वितीयादियोगस्थानेषु स्पर्द्धकप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

बिदिए जोगट्ठाणे फद्दयाणि विसेसाहियाणि।।१८९।।

तदिये जोगट्ठाणे फद्दयाणि विसेसाहियाणि।।१९०।।

समाधान — श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र योगस्थान क्या विशेषाधिक क्रम से स्थित हैं, क्या संख्यातगुणे क्रम से स्थित हैं, क्या असंख्यातगुणे क्रम से और क्या अनन्तगुणे क्रम से स्थित हैं ? ऐसा पूछने पर-वे इस क्रम से स्थित हैं इसके ज्ञापनार्थ अनन्तरोपनिधा प्राप्त हुई है।

यहाँ कोई शंका करता है कि — जघन्य योगस्थान में स्पर्धक स्तोक हैं, ऐसा कहने पर यहाँ स्पर्धक संख्या क्या स्थानसंबंधी चरम स्पर्धक के प्रमाण से, क्या द्विचरम स्पर्धक के प्रमाण से इस प्रकार जाकर क्या स्थान संबंधी जघन्य स्पर्धक के प्रमाण से और क्या यथास्वरूप से स्थित स्पर्धक के प्रमाण से ग्रहण की जाती है ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं कि — उक्त स्पर्धक संख्या न चरम स्पर्धक के प्रमाण से, न द्विचरम स्पर्धक के प्रमाण से और न यथास्वरूप से स्थित स्पर्धक के प्रमाण से ही ग्रहण की जाती है, किन्तु जघन्य योगस्थान संबंधी जघन्य स्पर्धक के प्रमाण से स्पर्धक संख्या ग्रहण करना चाहिए।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — चूँकि जघन्य स्थान संबंधी स्पर्धकों की अपेक्षा द्वितीय योगस्थान संबंधी स्पर्धकों के विशेषाधिकपना अन्यथा बन नहीं सकता, अतः इसी से जाना जाता है कि उक्त स्पर्धक संख्या जघन्य-योगस्थान संबंधी जघन्यस्पर्धक के प्रमाण से ग्रहण की गई है।

अब द्वितीय आदि योगस्थानों में स्पर्धकों के प्रतिपादन हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

दूसरे योगस्थान में स्पर्धक विशेष अधिक हैं।।१८९।।

तृतीय योगस्थान में स्पर्धक विशेष अधिक होते हैं।।१९०।।

एवं विसेसाहियाणि विसेसाहियाणि जाव उक्कस्सट्ठाणेत्ति।।१९१।।

विसेसो पुण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि फद्दयाणि।।१९२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**जघन्ययोगस्थानसंबंधि-प्रक्षेपभागहारेण श्रेण्या असंख्यातभागमात्रेण कृतयुग्मेन जघन्ययोगस्थानजघन्यस्पर्द्धकेषु अपवर्तितेषु एको योगप्रक्षेपोंऽगुलस्य असंख्यातभागमात्रजघन्य-स्पर्द्धकप्रमाणो वृद्धिहान्योरभावेन अवस्थित आगच्छति। एतस्मिन् प्रक्षेपे जघन्यस्थानं प्रतिराशिं कृत्वा प्रक्षिप्ते द्वितीययोगस्थानं भवति। तेन प्रथमयोगस्थानस्पर्द्धकेभ्यो द्वितीययोगस्थानस्पर्द्धकानि इति प्रोक्तं भवति।**

तृतीययोगस्थाने स्पर्द्धकानि विशेषाधिकानि। एवं उत्कृष्टस्थानपर्यंतं तान्युत्तरोत्तरविशेषाधिक-विशेषाधिकानि भवन्तीति ज्ञातव्यं भवति।

अत्र विशेषस्य प्रमाणमंगुलस्यासंख्यातभागमात्राणि स्पर्द्धकानि ज्ञातव्यानि सन्ति।

एवं सप्तमेऽन्तरस्थले अनंतरोपनिधाप्रतिपादनत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

एवं अनंतरोपनिधा समाप्ता।

अधुना द्विगुणवृद्धिप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

परंपरोवणिधाए जहण्णजोगट्ठाणफद्दएहिंतो तदो सेडीए असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा।।१९३।।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थान तक वे उत्तरोत्तर विशेष अधिक-विशेष अधिक होते गये हैं।।१९१।।

यहाँ विशेष का प्रमाण अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र स्पर्द्धक हैं।।१९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— जघन्य योगस्थान संबधी प्रक्षेपभागहार का जो कि श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण व कृतयुग्म है, जघन्य योगस्थान संबंधी जघन्य स्पर्धकों में भाग देने पर अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र जघन्य स्पर्धक प्रमाण एक योगप्रक्षेप आता है। यह योगप्रक्षेप वृद्धि व हानि का अभाव होने से अवस्थित है। इस प्रक्षेप में जघन्य स्थान को प्रतिराशि करके मिलाने पर द्वितीय योगस्थान होता है। इसीलिए प्रथम योगस्थान के स्पर्धकों से द्वितीय योगस्थान के स्पर्धक विशेष अधिक हैं। ऐसा कहा गया है।

तृतीय योगस्थान में स्पर्धक विशेष अधिक हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थानपर्यन्त वे उत्तरोत्तर विशेष अधिक-विशेष अधिक होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ विशेष का प्रमाण अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र स्पर्द्धक हैं ऐसा जानने योग्य हैं।

इस प्रकार सातवें अन्तर स्थल में अनंतरोपनिधा का प्रतिपादन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार अनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

अब दुगुनी वृद्धि का प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

परंपरोपनिधा के अनुसार जघन्य योगस्थान संबंधी स्पर्धकों की अपेक्षा उससे श्रेणी के असंख्यातवें भाग स्थान जाकर वे दुगुणी-दुगुणी वृद्धि को प्राप्त होते हैं।।१९३।।

एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव उक्कस्सजोगट्ठाणेत्ति।।१९४।।

एगजोगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं सेडीए असंखेज्जदिभागो, णाणाजोग-दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१९५।।

णाणाजोगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि। एगजोगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं।।१९६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**परंपरोपनिधानुसारेण जघन्ययोगस्थानसंबंधिस्पर्द्धकापेक्षया ततः श्रेण्या असंख्यातभागमात्रं गत्वा ते द्विगुण-द्विगुणवृद्धिं प्राप्नुवन्ति।**

एषा परंपरोपनिधा किमर्थमागता ?

कथितविधिना प्रक्षेपोत्तरक्रमेण श्रेण्या असंख्यातभागमात्रेषु योगस्थानेषु समुत्पन्नेषु जघन्ययोगस्थाना-दुत्कृष्टयोगस्थानं किं विशेषाधिकं संख्यातगुणं असंख्यातगुणं वेति पृच्छायां 'असंख्यातगुणमिति ज्ञापनार्थं ' इयं परंपरोपनिधा आगतास्ति। तद्यथा—

जघन्ययोगस्थानप्रक्षेपभागहारं श्रेण्या असंख्यातभागं विरलय्य जघन्ययोगस्थानं समखंडं कृत्वा दत्ते विरलनरूपं प्रति योगप्रक्षेपप्रमाणं प्राप्नोति। पुनस्तत्र एकप्रक्षेपं गृहीत्वा जघन्यस्थानं प्रतिराशिं कृत्वा प्रक्षिप्ते द्वितीयस्थानं भवति। द्वितीयप्रक्षेपं गृहीत्वा द्वितीयस्थानं प्रतिराशिं प्रक्षिप्ते तृतीययोगस्थानं भवति।

इस प्रकार उत्कृष्ट योगस्थान तक वे दुगुणी-दुगुणी वृद्धि को प्राप्त होते चले जाते हैं।।१९४।।

एक योग-दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण और नाना योग-दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।।१९५।

नाना योगदुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं। उनसे एक योगदुगुणवृद्धि हानि-स्थानान्तर असंख्यातगुणा है।।१९६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ प्रथम सूत्र का अभिप्राय यह है कि परंपरोपनिधा के अनुसार जघन्य योगस्थान संबंधी स्पर्द्धकों की अपेक्षा उससे श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र जाकर दुगुनी-दुगुनी वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

शंका—यह परम्परोपनिधा किसलिए प्राप्त हुई है ?

समाधान—उक्त विधि से प्रक्षेप अधिक क्रम से श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र योगस्थानों के उत्पन्न होने पर 'उत्कृष्ट योगस्थान जघन्य योगस्थान की अपेक्षा क्या विशेष अधिक हैं, क्या संख्यातगुणा है अथवा क्या असंख्यातगुणा है' ऐसा पूछने पर 'असंख्यातगुणा हैं, इस बात को बतलाने हेतु परम्परोपनिधा प्राप्त हुई है। वह इस प्रकार से है—

श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्ययोगस्थान के प्रक्षेप भागहार का विरलन कर जघन्य योगस्थान को समखण्ड करके देने पर प्रत्येक विरलनरूप के प्रति एक योगप्रक्षेप का प्रमाण प्राप्त होता है। पुनः उनमें से एक प्रक्षेप को ग्रहण कर जघन्य योगस्थान को प्रतिराशि करके उसमें मिला देने पर द्वितीय स्थान होता है।

पुनस्तृतीयप्रक्षेपं गृहीत्वा तृतीययोगस्थानं प्रतिराशिं कृत्वा प्रक्षिप्ते चतुर्थयोगस्थानं भवति। एवं यावन्नेतव्यं विरलनमात्रप्रक्षेपाः सर्वे प्रविष्टाः इति तावत्। तदा द्विगुणवृद्धिस्थानमुत्पद्यते।

एवमुत्कृष्टयोगस्थानपर्यंतं ते द्विगुण-द्विगुणवृद्धिं प्राप्नुवन्तो गच्छन्तीति ज्ञातव्यं।

एकयोगद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तरं श्रेण्या असंख्यातभागप्रमाणमस्ति, नानायोग-द्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तरं च पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रमस्ति।

अत्राल्पबहुत्वप्ररूपणार्थमुत्तरसूत्रे भण्यते —

नानायोगद्विगुणवृद्धि-हानिस्तोकान्तराणि स्तोकानि। एकयोगद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तरमसंख्यात-गुणमिति ज्ञातव्यं।

अत्र गुणकारः श्रेण्या असंख्यातभागोऽस्ति। एवमेते पूर्वं प्ररूपितसर्वाधिकाराः सर्वजीवसमासानामुपपाद-योगस्थानानां एकान्तानुवृद्धियोगस्थानानां परिणामयोगस्थानानां च पृथक्-पृथक् प्ररूपयितव्याः भवन्ति।

एवं अष्टमेऽन्तरस्थले परंपरोपनिधानिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

एवं परंपरोपनिधा समाप्ता।

अधुना समयप्ररूपणानिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

समयपरूवणदाए चदुसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदि-भागमेत्ताणि।।१९७।।

द्वितीय प्रक्षेप को ग्रहण कर द्वितीय स्थान को प्रतिराशि करके उसमें मिला देने पर तृतीय योगस्थान होता है। पश्चात् तृतीय प्रक्षेप को ग्रहण कर तृतीय योगस्थान को प्रतिराशि करके उसमें मिला देने पर चतुर्थ योगस्थान होता है। इस प्रकार विरलन मात्र सब प्रक्षेपों के प्रविष्ट होने तक ले जाना चाहिए। तब दुगुणी वृद्धि का स्थान उत्पन्न होता है।

इस प्रकार उत्कृष्ट योगस्थान तक वे दुगुनी-दुगुनी वृद्धि को प्राप्त होते चले जाते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

एक योग द्विगुणवृद्धि-हानि स्थानान्तर श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण और नाना योग-दुगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र हैं।

यहाँ अल्पबहुत्व की प्ररूपणा के लिए अगले (१९६वें) सूत्र में कहा है —

नानायोगद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं। उनसे एक योगद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानांतर असंख्यातगुणा है, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ गुणकार श्रेणी का असंख्यातवाँ भाग है। इस प्रकार पूर्वप्ररूपित इन सब अधिकारों की प्ररूपणा सब जीव समासों संबंधी उपपादयोगस्थानों, एकान्तानुवृद्धियोगस्थानों और परिणामयोगस्थानों के विषय में पृथक्-पृथक् करना चाहिए।

इस प्रकार आठवें अन्तरस्थल में परंपरोपनिधा का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार परम्परोपनिधा समाप्त हुई।

अब समयप्ररूपणा का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

समयप्ररूपणा के अनुसार चार समय रहने वाले योगस्थान श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।१९७।।

पंचसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि।।१९८।।

एवं छसमइयाणि सत्तसमइयाणि अट्ठसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि।।१९९।।

पुणरवि सत्तसमइयाणि छसमइयाणि पंचसमइयाणि चदुसमइयाणि उवरि तिसमइयाणि विसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदि-भागमेत्ताणि।।२००।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**समयप्ररूपणतानुसारेण चतुःसमयिकानि योगस्थानानि श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणि भवन्ति।**

अत्र 'समयप्ररूपणतायां' इति किमर्थमुच्यते ?

पूर्वोक्ताधिकारस्मारणार्थं कथ्यते।

समयप्ररूपणा किमर्थमागता ?

समयैर्विशेषितयोगस्थानानां प्रमाणप्ररूपणार्थं। समयैः प्ररूपणता समयप्ररूपणता, तस्यां 'समयप्ररूप-णतायां' इति शब्दस्योत्पत्तेः। येषु योगस्थानेषु जीवाः चतुःसमयमुत्कृष्टेण परिणमन्ति तानि योगस्थानानि चतुःसमयिकानि इति भणन्ति। तेषां प्रमाणं श्रेण्या असंख्यातभागः, एवमुक्ते सूक्ष्मैकेन्द्रिय-लब्ध्यपर्याप्तप्रभृति यावत्पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तक इति एतेषां परिणामयोगस्थानानां एकेन्द्रियादि यावत्संज्ञि-पंचेन्द्रियनिर्वृत्तिपर्याप्त-

---

पंचसामयिक योगस्थान श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र हैं।।१९८।।

इसी प्रकार षट्सामयिक, सप्तसामयिक, अष्टसामयिक योगस्थान श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र हैं।।१९९।।

फिर भी सप्तसामयिक, षट्सामयिक, पंचसामयिक, चतुःसामयिक तथा उपरिम त्रिसामयिक व द्विसामयिक योगस्थान श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र हैं।।२००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ प्रथम सूत्र का अभिप्राय यह है कि समय प्ररूपणता के अनुसार चतुःसामयिक योगस्थान श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र होते हैं।

शंका—यहाँ 'समयप्ररूपणता में' यह पाठ किसलिए कहा गया है ?

समाधान—उक्त पाठ पूर्व में कथित अधिकार का स्मरण कराने के लिए कहा गया है।

शंका—समयप्ररूपणा किसलिए प्राप्त हुई है ?

समाधान—समयों से विशेषता को प्राप्त हुए योगस्थानों के प्रमाण को बतलाने के लिए समय प्ररूपण का अवतार हुआ है, क्योंकि समयों से प्ररूपणा समयप्ररूपणता है, उस समयप्ररूपणता में ऐसी यह शब्द की व्युत्पत्ति है। जिन योगस्थानों में जीव उत्कर्ष से चार समय परिणमते हैं, वे चतुःसामयिक अर्थात् चार समय रहने वाले योगस्थान कहे जाते हैं। उनका प्रमाण श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र है, ऐसा कहने पर सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक को आदि लेकर पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तक इनके परिणामयोगस्थानों का तथा एकेन्द्रिय को आदि लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक के जघन्य परिणामयोगस्थान से लेकर आगे

जघन्यपरिणामयोगस्थानप्रभृति उपरि तत्प्रायोग्यश्रेण्या असंख्यातभागमात्राणां निरंतरं गतानां परिणामयोग-स्थानानां च ग्रहणं, उपपादयोगस्थानानामेकान्तानुवृद्धियोगस्थानानां च न ग्रहणं कर्तव्यम्, तेषामेकसमयं मुक्त्वोपरि अवस्थानाभावात्।

यानि योगस्थानानि एकसमयमादौ कृत्वा यावदुत्कृष्टेण पंचसमय इति जीवाः परिणमन्ति तानि पंचसमयिकानि नाम। तेषामपि प्रमाणं श्रेण्या असंख्यातभागः। एतानि योगस्थानानि उपरि भण्यमान-षट्समयिकादियोगस्थानानि चैकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियावसानानां परिणामयोगेषु योजयितव्यानि, न शेषेषु।

पंचसमयिकयोगस्थानेभ्यः उपरिमाणि षट्-सप्त-अष्टसमयानां प्रायोग्यानि यानि योगस्थानानि तेषां प्रमाणं पृथक्-पृथक् श्रेण्या असंख्यातभागोऽस्ति।

यवमध्याद् अधस्तनानां सप्तसमयिकादियोगस्थानानां पूर्वं प्ररूपितं। पुनः यवमध्यादुपरिमाणानां सप्त-षट्-पंच-चतु-समयिकयोगस्थानानां तेषां चैव प्रमाणं प्ररूपयामीति ज्ञापनार्थं 'पुणरवि' ग्रहणं कृतं। एतैः पूर्वं प्ररूपितयोगस्थानेभ्यस्त्रिसमयिक-द्विसमयिक-योगस्थानानि उपरि भवन्तीति ज्ञापनार्थं सूत्रे 'उवरि' शब्दनिर्देशः कृतः। अथवा 'उवरि' शब्दो मध्यदीपकः। तेन सर्वत्र श्रेण्या असंख्यातभागमात्राध-स्तनचतुःसमयिकयोगस्थानानां उपरि पंचसमयिकयोगस्थानानि भवन्ति। तेषां श्रेण्या असंख्यातभागमात्रा-णामुपरि षट्समयिकानि भवन्ति। तेषां श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणामुपरि सप्तसमयिकानि। तेषां श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणामुपरि अष्टसमयिकानि।

तेषां श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणामुपरि पुनरपि सप्तसमयिकानि। तेषां श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणा-

---

तत्प्रायोग्य श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र निरन्तर गये हुए परिणामयोगस्थानों का भी ग्रहण करना चाहिए, उपपादयोगस्थानों और एकान्तानुवृद्धि योगस्थानों का ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनका एक समय को छोड़कर आगे अवस्थान संभव नहीं है।

जिन योगस्थानों में जीव एक समय को आदि लेकर उत्कर्ष से पाँच समय तक परिणमते हैं वे पंचसामयिक कहलाते हैं। उनका भी प्रमाण श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र है। इन योगस्थानों को तथा आगे कहे जाने वाले षट्सामयिक आदि योगस्थानों को एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के परिणामयोगों में जोड़ना — लगा लेना चाहिए, शेषों में नहीं।

पंचसामयिक योगस्थानों से आगे के छह, सात व आठ समयों के योग्य जो योगस्थान हैं, उनका प्रमाण पृथक्-पृथक् श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र है।

यवमध्य से नीचे के सप्तसामयिक आदि योगस्थानों का प्रमाण पूर्व में कहा जा चुका है। पुनः यवमध्य से ऊपर के जो सात, छह, पाँच और चार समय निरन्तर प्रवर्तने वाले योगस्थान हैं, उनके ही प्रमाण की प्ररूपणा करते हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ सूत्र में 'पुणरवि' पद का ग्रहण किया गया है। इन पूर्वप्ररूपित योगस्थानों में से तीन समय व दो समय निरन्तर प्रवर्तने वाले योगस्थान ऊपर होते हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ 'उवरि' शब्द का निर्देश किया है। अथवा, यह 'उवरि' शब्द मध्यदीपक है। इस कारण सर्वत्र श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र नीचे के चार समय वाले योगस्थानों के ऊपर पाँच समय वाले योगस्थान होते हैं। पुनः श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र ऊपर छह समय वाले योगस्थान होते हैं। श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र उनके ऊपर सात समय वाले योगस्थान होते हैं। पुनः श्रेणी के असंख्यात भागमात्र आठ समय रहने वाले योगस्थान होते हैं।

श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र उक्त योगस्थानों के ऊपर फिर से भी सात समय रहने वाले योगस्थान होते हैं। श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र उनके ऊपर छह समय रहने वाले योगस्थान होते हैं। श्रेणी के

मुपरि षट्समयिकानि। तेषां श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणामुपरि पंचसमयिकानि। तेषां श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणामुपरि चतुःसमयिकानि। तेषां श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणामुपरि त्रिसमयिकानि। तेषां श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणामुपरि द्विसमयिकानि योगस्थानानि श्रेण्या असंख्यातभागमात्राणीति योजयितव्यानि।

एवं नवमेऽन्तरस्थले समयप्ररूपणाप्रतिपादनत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

एवं समयप्ररूपणा।

अधुना वृद्धिप्ररूपणानुसारेण योगस्थानेषु वृद्धिहानिनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

वड्ढिपरूवणदाए अत्थि असंखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जगुणवड्ढि-हाणी असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी।।२०१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**वृद्धिप्ररूपणानुसारेण योगस्थानेषु असंख्यातभागवृद्धि-हानि-संख्यातभागवृद्धि-हानि-संख्यातगुणवृद्धिहानि-असंख्यातगुणवृद्धिहानिरूपैर्वृद्धयो हानयश्च भवन्ति।**

वृद्धिप्ररूपणा किमर्थमागता ?

योगस्थानेषु एतावन्त्यो वृद्धिहानयः सन्ति एतावन्त्यो न सन्ति इति ज्ञापनार्थमियं प्ररूपणा आगता।

असंख्यातवें भागमात्र उनके ऊपर पाँच समय रहने वाले योगस्थान होते हैं। श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र उनके ऊपर चार समय रहने वाले योगस्थान होते हैं। श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र उनके ऊपर तीन समय रहने वाले योगस्थान होते हैं। श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र उनके ऊपर दो समय रहने वाले योगस्थान हैं। इस प्रकार सब जगह श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र हैं, यह लगा लेना चाहिए। अर्थात् योगस्थानों में इतनी वृद्धि-हानियाँ हैं और इतनी नहीं है, इस बात के बतलाने हेतु यह वृद्धिप्ररूपणा प्राप्त हुई है।

यहाँ नवमें अन्तर स्थल में समयप्ररूपणा का प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार समय प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब वृद्धिप्ररूपणा के अनुसार योगस्थानों में वृद्धि-हानि का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

वृद्धि प्ररूपणा के अनुसार योगस्थानों में असंख्यातभागवृद्धि-हानि, संख्यात-भागवृद्धि-हानि, संख्यातगुणवृद्धि-हानि और असंख्यातगुणवृद्धि-हानि, ये वृद्धियाँ व हानियाँ होती हैं।।२०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रानुसार वृद्धिप्ररूपणा की अपेक्षा योगस्थानों में असंख्यातभाग वृद्धि-हानि-संख्यातभागवृद्धि-हानि-संख्यातगुणवृद्धिहानि-असंख्यातगुणवृद्धि-हानिरूपों से वृद्धियाँ और हानियाँ होती हैं।

शंका—वृद्धिप्ररूपणा किसलिए प्राप्त हुई है ?

समाधान—योगस्थानों में इतनी वृद्धि-हानियाँ हैं और इतनी नहीं है, इस बात के ज्ञापनार्थ यह वृद्धिप्ररूपणा प्राप्त हुई है।

नेदं प्रयोजनं, परंपरोपनिधाया एव तदवगमात् ?

न, द्विगुण-द्विगुणयोगस्थानप्रतिपादने तस्या व्यापारात्। योगस्थानवृद्धिहानीनां प्रमाणप्ररूपणार्थं तासां कालप्ररूपणार्थं च वृद्धिप्ररूपणा आगतेति सिद्धं भवति।

संप्रति वृद्धित्रय-हानित्रयाणां जघन्योत्कृष्टकालनिरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तिण्णिवड्ढि-तिण्णिहाणीओ केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण एगसमयं।।२०२।।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।।२०३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **अस्मिन् सूत्रे त्रिवृद्धि-त्रिहानिप्ररूपणायां पूर्वसूत्रात् आदिमानानां तिसृणां ग्रहणं कर्तव्यं, किं च — असंख्यातगुणवृद्धिहानीनामुपरि सूत्रे पृथक् प्ररूपणादर्शनात्।**

असंख्यातभागवृद्धौ जघन्येन एकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये शेषतिसृणां वृद्धीनामेकवृद्धिं चतसृणां हानीनामेकतमहानिं वा गतस्य असंख्यातभागवृद्धिकालो जघन्येन एकसमयो भवति। एवं शेषद्विवृद्धीनां त्रिहानीनां चैकसमयप्ररूपणा कर्तव्या।

उत्कृष्टेन आवलिकाया असंख्यातभागो वर्तते।

एतस्यार्थ उच्यते — एकजीवो यस्मिन् कस्मिन्नपि योगस्थाने स्थितोऽसंख्यातभागवृद्धिं गतः। तत्रैकसमयं

शंका — यह कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि परम्परोपनिधा से ही उनको ज्ञान हो जाता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि परम्परोपनिधा का व्यापार दुगुणे-दुगुणे योगस्थानों का परिज्ञान कराने के लिए होती है। योगस्थानों की वृद्धि व हानि का प्रमाण बतलाने के लिए तथा उनके काल की प्ररूपणा करने के लिए वृद्धिप्ररूपणा प्राप्त हुई है, यह सिद्ध होता है।

अब तीन प्रकार की वृद्धि और तीन प्रकार की हानियों का जघन्य एवं उत्कृष्टकाल निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

तीन वृद्धियाँ और तीन हानियाँ कितने काल तक होती हैं ? जघन्य से वे एक समय होती हैं।।२०२।।

उत्कृष्ट से आवली का असंख्यातवाँ भागमात्र उक्त हानिवृद्धियों का काल है।।२०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस सूत्र में आदि की तीन वृद्धि और तीन हानियों की प्ररूपणा में पूर्वसूत्र से ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि असंख्यातगुणवृद्धि-हानियों की प्ररूपणा अगले सूत्र में पृथक् रूप से देखी जाती है।

असंख्यातभागवृद्धि पर जघन्य से एक समय रहकर द्वितीय समय में शेष तीन वृद्धियों में किसी एक वृद्धि अथवा चार हानियों में किसी एक हानि को प्राप्त होने पर असंख्यातभागवृद्धि का काल जघन्य से एक समय होता है। इसी प्रकार शेष दो वृद्धियों और तीन हानियों के एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए।

उत्कृष्ट से आवली का असंख्यातवाँ भागमात्र उक्त हानि-वृद्धियों का काल है।

इसका अर्थ कहते हैं — एक जीव जिस किसी भी योगस्थान में स्थित होकर असंख्यातभागवृद्धि योग

स्थित्वा द्वितीयसमये ततोऽसंख्यातभागोत्तरयोगं गतः। एवं द्वयोरसंख्यातभागवृद्धिसमययोरुपलब्धिर्जाता। ततस्तृतीयसमये तस्मादसंख्यातभागोत्तरमन्ययोगं गतः। तत्र त्रयाणामसंख्यातभागवृद्धिसमयानामुपलब्धिर्जाता। एवं निरंतरमसंख्यातभागवृद्धिं तावत्करोति यावदुत्कृष्टेन आवलिकाया असंख्यातभागोऽस्ति। तत उपरिमसमये निश्चयेन अन्यवृद्धीनामन्यहानीनां वा गच्छति इति। एवं शेषवृद्धि-हानीनामपि स्वकनामनिर्देशं कृत्वा उत्कृष्टकालप्ररूपणा कर्तव्या।

अत्र असंख्यातभागवृद्धिहानि-संख्यातभागवृद्धिहानि-संख्यातगुणवृद्धिहानिनामधेया तिस्रः वृद्धिहानयो गृहीताः सन्ति।

संप्रति असंख्यातगुणवृद्धिहानिकालनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

असंखेज्जगुण-वड्ढिहाणी केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण एग-समओ।।२०४।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२०५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**असंख्यातगुणवृद्धिमसंख्यातगुणहानिं वा एकसमयं कृत्वानर्पितवृद्धिहान्यौ गतस्य एकसमयो भवति। असंख्यातगुणवृद्धौ असंख्यातगुणहानौ वा सुष्ठु यदि बहुकं कालं तिष्ठति तर्हि अन्तर्मुहूर्तमेव।**

को प्राप्त हुआ। वहाँ एक समय रहकर दूसरे समय में उससे असंख्यातवें भाग से अधिक योग को प्राप्त हुआ। इस प्रकार असंख्यातभागवृद्धि के दो समयों की उपलब्धि हुई। पश्चात् तृतीय समय में उसकी अपेक्षा असंख्यातवें भाग से अधिक दूसरे योग को प्राप्त हुआ। वहाँ असंख्यातभागवृद्धि के तीन समय उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार उत्कर्ष आवली के असंख्यातवें भाग काल तक निरन्तर असंख्यातभागवृद्धि को करता है। तत्पश्चात् आगे के समय में निश्चय से दूसरी वृद्धियों को या हानियों को प्राप्त होता है। इसी प्रकार शेष वृद्धि-हानियों के भी अपने नाम का निर्देश कर उत्कृष्ट काल की प्ररूपणा करना चाहिए।

यहाँ असंख्यातभागवृद्धि-हानि, संख्यातभागवृद्धि-हानि, संख्यातगुणवृद्धि-हानि के नाम वाली तीनों वृद्धि और हानियाँ ग्रहण की गई हैं।

अब असंख्यातगुणी वृद्धि-हानि का काल निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

असंख्यातगुण वृद्धि और हानि कितने काल होती है ? जघन्य से वे एक समय होती हैं।।२०४।।

उक्त वृद्धि व हानि उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त काल तक होती है।।२०५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— असंख्यातगुणी वृद्धि अथवा असंख्यातगुणी हानि को एक समय करके अविवक्षित वृद्धि या हानि को प्राप्त होने पर एक समय होता है। असंख्यातगुणी वृद्धि अथवा हानि होने पर यदि बहुत अधिक काल तक रहे, तो वह अन्तर्मुहूर्त तक ही रहता है।

एवं दशमेऽन्तरस्थले वृद्धिप्ररूपणाकथनपरत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

एवं वृद्धिप्ररूपणा गता।

अधुना अल्पबहुत्वानुसारेण सूत्रसप्तकमवतार्यते —

अप्पाबहुएत्ति सव्वत्थोवाणि अट्ठसमइयाणि जोगट्ठाणाणि।।२०६।।

दोसु वि पासेसु सत्तसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।२०७।।

दोसु वि पासेसु छसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।२०८।।

दोसु वि पासेसु पंचसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।२०९।।

दोसु वि पासेसु चदुसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्ज-गुणाणि।।२१०।।

उवरि तिसमइयाणि जोगट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।।२११।।

बिसमइयाणि जोगट्ठाणाणि असंखेज्जाणि।।२१२।।

यहाँ दशवें अन्तरस्थल में वृद्धिप्ररूपणा के कथन की मुख्यता वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार वृद्धिप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अल्पबहुत्व के अनुसार सात सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

अल्पबहुत्व के अनुसार आठ समय योग्य योगस्थान सबसे स्तोक हैं।।२०६।।

दोनों ही पार्श्वभागों में सात समय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं।।२०७।।

दोनों ही पार्श्वभागों में छह समय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं।।२०८।।

दोनों ही पार्श्वभागों में पाँच समय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं।।२०९।।

दोनों ही पार्श्वभागों में चार समय योग्य योगस्थान दोनों ही तुल्य व उनसे असंख्यातगुणे हैं।।२१०।।

उनसे तीन समय योग्य उपरिम योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२११।।

उनसे दो समय योग्य योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।।२१२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अल्पबहुत्वानुसारेण अष्टसमयिकानि योगस्थानानि सर्वस्तोकानि भवन्ति। अल्पबहुत्वप्ररूपणा किमर्थमागता ?**

श्रेण्या असंख्यातभागत्वेन अवगतप्रमाणानां अष्टसमयिकादियोगस्थानानां स्तोकबहुत्वप्ररूपणार्थं। अत्र 'सव्वत्थोवाणि' इति भणिते उपरि भण्यमानयोगस्थानेभ्यः स्तोकानीति भणितं भवति।

द्वयोरपि पार्श्वयोः सप्तसमयिकानि योगस्थानानि द्वौ अपि तुल्यौ असंख्यातगुणौ स्तः।

अत्र को गुणकारः ? पल्योपमस्य असंख्यातभागः। उपरि उच्यमानाल्पबहुत्वप्रदेशेषु सर्वत्र एष एव गुणकारो वक्तव्यः।

द्वयोरपि पार्श्वयोः षट्समयिकानि योगस्थानानि द्वौ अपि तुल्यौ असंख्यातगुणितौ स्तः।

द्वयोरपि पार्श्वयोः पंचसमयिकानि योगस्थानानि द्वावपि तुल्यौ असंख्यातगुणितौ स्तः।

द्वयोरपि पार्श्वयोः चतुःसमयिकानि योगस्थानानि द्वावपि तुल्यौ असंख्यातगुणितौ भवतः।

उपरि त्रिसमयिकानि योगस्थानानि असंख्यातगुणानि।

अत्र 'उवरि त्ति' निर्देशः किमर्थं कृतः ?

उपरि भण्यमानत्रिसमयिक-द्विसमयिकयोगस्थानानि यवमध्यादुपरि चैव भवन्ति, अधस्तनं न भवन्तीति ज्ञापनार्थम्।

द्विसमयिकानि योगस्थानानि असंख्यातानि भवन्ति।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ प्रथम सूत्र का अभिप्राय यह है कि अल्पबहुत्व के अनुसार आठ समय वाले योगस्थान सबसे कम होते हैं।

शंका—अल्पबहुत्व प्ररूपणा किसलिए प्राप्त हुई है ?

समाधान—श्रेणी के असंख्यातवें भाग स्वरूप से जिनका प्रमाण ज्ञात हो चुका है, उन आठ समय वाले आदि योगस्थानों का अल्पबहुत्व बतलाने के लिए अल्पबहुत्व प्ररूपणा प्राप्त हुई है।

'सबसे स्तोक हैं', ऐसा यहाँ कहने पर आगे कहे जाने वाले योगस्थानों से स्तोक हैं यह अभिप्राय ग्रहण किया गया है।

दोनों ही पार्श्वभागों में सात समय वाले योगस्थान दोनों ही समान एवं उनसे असंख्यातगुणे हैं।

यहाँ गुणकार क्या है ? पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। आगे कहे जाने वाले अल्पबहुत्व प्रदेशों में सर्वत्र यही गुणकार कहना चाहिए।

दोनों ही पार्श्वभागों में छह समय वाले योगस्थान दोनों ही एक समान एवं उनसे असंख्यातगुणे होते हैं। दोनों ही पार्श्वभागों में पाँच समय वाले योगस्थान दोनों ही एक समान एवं उनसे असंख्यातगुणे हैं। दोनों ही पार्श्वभागों में चार समय वाले योगस्थान दोनों ही एक समान एवं उनसे असंख्यातगुणे हैं। उनसे तीन समय वाले उपरिम योगस्थान असंख्यातगुणे हैं।

शंका—यहाँ 'उपरि' शब्द का निर्देश किसलिए किया है ?

समाधान—आगे कहे जाने वाले तीन समय और दो समय वाले योगस्थान यवमध्य से ऊपर ही होते हैं नीचे नहीं होते, इस बात के बतलाने हेतु सूत्र में 'उवरि' शब्द का निर्देश किया है।

उनसे दो समय वाले योगस्थान असंख्यातगुणे होते हैं।

एवं एकादशेऽन्तरस्थले अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सप्तसूत्राणि गतानि।

एवमल्पबहुत्वप्ररूपणा समाप्ता।

अधुना प्रदेशबंधस्थानप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

जाणि चेव जोगट्ठाणाणि ताणि चेव पदेसबंधट्ठाणाणि। णवरि पदेसबंधट्ठाणाणि पयडिविसेसेण विसेसाहियाणि।।२१३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **यानि योगस्थानानि निरूपितानि तान्येव प्रदेशबंधस्थानानि ज्ञातव्यानि भवन्ति। विशेषेण तु प्रदेशबंधस्थानानि प्रकृतिविशेषेण विशेषाधिकानि सन्ति।**

कश्चिदाशंकते —

दशभिरनुयोगद्वारैर्योगस्थानप्ररूपणायां प्ररूपितायां पुनः किमर्थमिदं सूत्रमागतम् ?

आचार्यदेवेन उच्यते —

एतानि सविस्तरेण प्ररूपितयोगस्थानानि चैव प्रदेशबंधकारणानि भवन्ति न चान्यानीति ज्ञापयित्वा गुणितकर्मांशिक उत्कृष्टयोगेष्वेव क्षपितकर्मांशिको जघन्ययोगेषु चैव भ्रामितः। तस्य सफलत्वप्ररूपणद्वारेण बंधमाश्रित्य अजघन्यानुत्कृष्टद्रव्याणां स्थानप्ररूपणार्थमिदं सूत्रमागतमस्ति।

एतस्य सूत्रस्यार्थे भण्यमाने तावद् योगस्थानानां सर्वेषामपि रचना कर्तव्या। एवं कृत्वा एतस्यार्थ उच्यते। तद्यथा —

''जाणि चेव जोगट्ठाणाणि'' इति भणिते यावन्ति योगस्थानानि इत्युक्तं भवति। 'ताणि चेव

इस प्रकार ग्यारहवें अन्तर स्थल में अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार अल्पबहुत्व प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब प्रदेशबंध स्थान का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

जो योगस्थान हैं वे ही प्रदेशबंध स्थान हैं। विशेष इतना है कि प्रदेशबंधस्थान प्रकृतिविशेष से विशेष अधिक हैं।।२१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — श्री भूतबली आचार्य ने इस सूत्र के माध्यम से कहा है कि जो योगस्थान निरूपित किये गये हैं, वे ही प्रदेशबंधस्थान जानने योग्य हैं। विशेष बात यह है कि प्रदेशबंधस्थान प्रकृति विशेष से विशेष अधिक हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

दस अनुयोगद्वारों से योगस्थान प्ररूपणा के कर चुकने पर फिर यह सूत्र किसलिए आया है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

विस्तार से कहे गये ये योगस्थान ही प्रदेशबंध के कारण हैं, अन्य नहीं हैं, ऐसा बतलाकर गुणितकर्मांशिक को उत्कृष्ट योगों में ही और क्षपितकर्मांशिक को जघन्य योगों में ही जो घुमाया है, उसकी सफलता की प्ररूपणा द्वारा बंध का आश्रय करके अजघन्य-अनुत्कृष्ट द्रव्यों के स्थानों की प्ररूपणा के लिए उक्त सूत्र प्राप्त हुआ है।

इस सूत्र का अर्थ कहते समय प्रथमतः सभी योगस्थानों की रचना करना चाहिए। ऐसा करके इस सूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है —

'जाणि चेव जोगट्ठाणाणि' ऐसा कहने पर जितने योगस्थान हैं' ऐसा उसका अर्थ होता है। 'ताणि चेव

पदेसबंधट्ठाणाणि'' इति भणिते तावन्ति चैव प्रदेशबंधस्थानानि इति गृहीतव्यं भवति। तद्यथा—

जघन्ययोगेन अष्टकर्माणि बध्नतो जीवस्य तमेकं ज्ञानावरणीयस्य प्रदेशबंधस्थानं भवति। पुनः प्रक्षेपोत्तरयोगस्थानेन द्वितीयेन बध्यमानस्य द्वितीयं प्रदेशबंधस्थानं भवति। एतेन क्रमेण नेतव्यं, यावदुत्कृष्टयोगस्थानमिति। एवं नीते योगस्थानमात्राणि चैव ज्ञानावरणीयस्य प्रदेशबंधस्थानानि इति सिद्धम्। एवमायुवर्जितसर्वकर्मणां वक्तव्यम्। नवरि—विशेषेण आयुषः उपपाद-एकान्तानुवृद्धियोगस्थानानि मुक्त्वा शेषपरिणामयोगस्थानमात्राणि चैव प्रदेशबंधस्थानानि वक्तव्यानि।

'णवरि पयडिविसेसेण विसेसाहियाणि' इति एतस्यार्थ उच्यते। तद्यथा—अत्र तावत्संदृष्टौ जघन्ययोगद्रव्यमष्टषष्टिशतमात्रं भवति। (१६८)। सर्वयोगस्थानानां प्रमाणं संदृष्टौ षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतमात्रं भवति (३३६)। पूर्वं एतावन्मात्राणि प्रदेशबंधस्थानानि ज्ञानावरणीयेन लब्धानि।

संप्रति यथा एतेभ्यो विशेषाधिकानि ज्ञानावरणीयप्रदेशबंधस्थानानि भवन्ति तथा प्ररूपयन्त्याचार्यदेवाः—

जघन्ययोगेनाष्टप्रकृतीः बध्यमानस्य ज्ञानावरणभंगः। संदृष्टौ एकविंशतिः (२१)। सप्तबध्यमानस्य ज्ञानावरणभंगः। चतुर्विंशतिः(२४)। संप्रति अत्र द्वयोर्द्रव्ययोः सदृशत्वं नास्ति।

पुनः कथं सदृशत्वं भवति ?

जघन्ययोगस्थानात् सप्तमभागाभ्यधिकयोगस्थानेन अष्टकर्माणि बध्यमानस्य ज्ञानावरणद्रव्यं जघन्ययोगस्थानेन सप्त बध्यमानस्य ज्ञानावरणद्रव्यं च सदृशं भवति। एवं सदृशं कृत्वाष्टविधबंधकोऽष्टप्रक्षेपाधिकयोगस्थानेन सप्तविधबंधको जघन्ययोगस्थानात् सप्तप्रक्षेपाधिकयोगस्थानेन पुनः बंधापयितव्यः। एवं बंधे

पदेसबंधट्ठाणाणि' ऐसा कहने पर 'उतने ही प्रदेशबंध स्थान हैं' यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए। वह इस प्रकार है—

जघन्य योग से आठ कर्मों को बांधने वाले जीव के वह ज्ञानावरणीय का एक प्रदेश बंधस्थान होता है। पश्चात् प्रक्षेप अधिक द्वितीय योगस्थान से बांधने वाले जीव के द्वितीय प्रदेश बंधस्थान होता है। इस क्रम से उत्कृष्ट योगस्थान तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार ले जाने पर योगस्थानों के बराबर ही ज्ञानावरणीय के प्रदेशबंधस्थान प्राप्त होते हैं। अतएव जितने ही योगस्थान हैं, उतने ही प्रदेशबंध स्थान हैं, यह सिद्ध है। इसी प्रकार आयु को छोड़कर सब कर्मों के प्रदेशबंधस्थान कहना चाहिए। विशेषता यह है कि आयु कर्म के उपपाद और एकान्तानुवृद्धि योगस्थानों को छोड़कर शेष परिणामयोगस्थानों के बराबर ही प्रदेशबंध स्थानों को कहना चाहिए।

'णवरि पयडिविसेसेण विसेसाहियाणि' इस सूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—

यहाँ संदृष्टि में जघन्य योग के द्रव्य का प्रमाण एक सौ अड़सठ है (१६८)। सब योगस्थानों का प्रमाण संदृष्टि में तीन सौ छत्तीस (३३६) है। पहले ज्ञानावरणीय के द्वारा इतने मात्र प्रदेशबंधस्थान प्राप्त किये गये हैं।

अब जिस प्रकार इससे विशेष अधिक ज्ञानावरणीय के प्रदेशबंधस्थान होते हैं, उसे बतलाते हैं—

जघन्य योग से आठ प्रकृतियों को बांधने वाले की प्ररूपणा ज्ञानावरण के समान है। संदृष्टि में इनके लिए इक्कीस (२१) अंक हैं। सात प्रकृतियों को बांधने वाले जीव की प्ररूपणा ज्ञानावरण के समान है। इसके लिए संदृष्टि में चौबीस (२४) अंक हैं। यहाँ दोनों द्रव्यों में सदृशता नहीं है।

शंका—फिर कैसे सदृशता होती है ?

समाधान—जघन्य योगस्थान से सातवें भाग अधिक योगस्थान के द्वारा आठ को बांधने वाले जीव का ज्ञानावरणद्रव्य और जघन्य योगस्थान से सात प्रकृतियों को बांधने वाले जीव का ज्ञानावरण द्रव्य सदृश होता है। इस प्रकार सदृश करके आठ प्रक्षेप अधिक योगस्थान से आठ प्रकार के कर्म का बंधक है और

द्वयोर्ज्ञानावरणद्रव्यं सदृशं भवति। अत्र सप्तसु योगस्थानेषु षड्योगस्थानानि अपुनरुक्तानि लब्धानि। सप्तमयोगस्थानं पुनरुक्तं अष्टविधबंधकद्रव्येण समानत्वात्। तेन तदवनेतव्यम्।

पुनरपि अष्टविधबंधकोऽष्टप्रक्षेपाधिकयोगस्थानेन बध्यमानः, सप्तप्रक्षेपाधिकयोगस्थानेन बध्यमानः सप्तविधबंधकः, इमौ द्वौ च सदृशौ स्तः। अत्रापि षडपुनरुक्तप्रदेशबंधस्थानानि लभ्यन्ते। सप्तमं पुनरुक्तं भवति। एवं नेतव्यं यावदुत्कृष्टयोगस्थानेन बध्यमानाष्टविधबंधकज्ञानावरणद्रव्येण ततोऽष्टमभागहीनयोगस्थानेन बध्यमानसप्तविधबंधकज्ञानावरणद्रव्यं सदृशं जायेत इति। अत्रापुनरुक्तप्रदेशबंधस्थानेषु आनीयमानेषु अष्टमभागहीनसर्वयोगस्थानाध्वानमिच्छाराशिः कर्तव्यः।

कश्चिदाह — किमर्थमूनं क्रियते ?

आचार्यः प्राह — एतावन्मात्रयोगस्थानैः सप्तविधबंधक उत्कृष्टयोगस्थानं न प्राप्तः, अतएवाष्टमभागेन हीनं क्रियते।

अत्र विस्तरो धवलाटीकायां द्रष्टव्योऽस्ति।

''जाणि चेव जोगट्ठाणाणि ताणि चेव पदेसबंधट्ठाणाणि'' इति भण्यमाने योगस्थानेभ्यः सर्वकर्मप्रदेश-बंध-स्थानानामेकत्वं प्ररूपितम् , प्रदेशा बध्यन्ते एतेनेति योगस्थानस्यैव प्रदेशबंधस्थानव्यपदेशात्।

'बंधणं बंधो' इति किन्न गृह्यते ?

जघन्य योगस्थान से सात प्रक्षेप अधिक सात प्रकार के कर्म का बंधक है। इस प्रकार सप्तविध बंधक को फिर से बंधाना चाहिए। इस प्रकार बंध होने पर दोनों का ज्ञानावरण द्रव्य सदृश होता है। यहाँ सात योगस्थानों में छह योगस्थान अपुनरक्त पाये जाते हैं। सातवाँ योगस्थान पुनरुक्त है, क्योंकि वह अष्टविध बंधक द्रव्य से समान है। अतएव उसको कम करना चाहिए।

फिर से भी आठ प्रक्षेप अधिक योगस्थान से बांधने वाला अष्टविध बंधक और सात प्रक्षेप अधिक योगस्थान से बांधने वाला सप्तविध बंधक, ये दोनों सदृश हैं। यहाँ भी छह अपुनरुक्त प्रदेशबंधस्थान पाये जाते हैं। सातवाँ स्थान पुनरुक्त है इस प्रकार तब तक ले जाना चाहिए जब तक कि उत्कृष्ट योगस्थान से बांधने वाले अष्टविध बंधक ज्ञानावरणद्रव्य से उसकी अपेक्षा आठवें भाग से हीन योगस्थान द्वारा बांधने वाले सप्तविध बंधक का ज्ञानावरण द्रव्य समान न हो जावे। यहाँ अपुनरुक्त प्रदेशबंध स्थानों को लेते समय आठवें भाग से हीन योगस्थान द्वारा बांधने वाले सप्तविध बंधक का ज्ञानावरण द्रव्य समान न हो जावे। यहाँ अपुनरुक्त प्रदेशबंध स्थानों को लाते समय आठवें भाग से रहित समस्त योगस्थानाध्वान को इच्छा राशि करना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि — आठवें भाग से हीन किसलिए किया जाता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि — चूँकि इतने मात्र योगस्थानों से सप्तविध बंधक उत्कृष्ट योगस्थान को नहीं प्राप्त हुआ है, अतएव अष्टम भाग से हीन किया गया है।

यहाँ और विस्तृत वर्णन धवलाटीका में द्रष्टव्य है।

''जाणि चेव जोगट्ठाणाणि ताणि चेव पदेसबंधट्ठाणाणि'' ऐसा कहने पर योगस्थानों से सब कर्म प्रदेशबंध स्थानों की एकता बतलाई है, क्योंकि जिसके द्वारा प्रदेश बंधते हैं, वह प्रदेशबंध है, इस निरुक्ति के अनुसार योगस्थानों की ही प्रदेशबंधस्थान संज्ञा प्राप्त है।

शंका — ''बन्धणं बन्धो'' अर्थात् ''बंधना ही बंध है'' ऐसा अर्थ क्यों नहीं ग्रहण किया जाता है ?

न गृह्यते, प्रदेशबंधस्थानानामानंतिकत्वप्रसंगात्।

यदि योगात्प्रदेशबंधो भवति तर्हि सर्वकर्मणां प्रदेशपिंडस्य समानत्वं प्राप्नोति, एककारणत्वात्। न चैवं पूर्वोक्ताल्पबहुत्वेन विरोधादिति। एवं प्रत्यवस्थितशिष्यार्थमुत्तरसूत्रावयवः आगतः 'णवरि पयडिविसेसेण विसेसाहियाणि' इति। 'पयडी णाम सहावो' तस्य विशेषो भेदः, तेन प्रकृतिविशेषेण कर्मणां प्रदेशबंधस्थानानि समानकारणत्वेऽपि प्रदेशैः विशेषाधिकानि। तद्यथा—

एकयोगेनागतैकसमयप्रबद्धे सर्वस्तोक आयुर्भागः। नामगोत्रभागस्तुल्यो विशेषाधिकः। ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-अंतरायाणां भागस्तुल्यो विशेषाधिकः। मोहनीयभागो विशेषाधिकः। वेदनीयभागो विशेषाधिकः। सर्वत्र विशेषप्रमाणमावलिकाया असंख्यातभागेन अधस्तनाधस्तनभागे खण्डिते तत्रैकखण्डमात्रं भवति।

उक्तं च—

आउअभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो।
आवरणमंतराए भागो अहिओ दु मोहे वि।।१।।
सव्वुवरि सोहणीए[1] भागो अहिओ दु कारणं किंतु।
पयडिविसेसो कारण णो अण्णं तदणुलंभादो।।२।।

आयुर्भागः स्तोकोऽस्ति, ततो नामगोत्रयोर्भागो विशेषाधिको भवन् परस्परं समोऽस्ति, ततो ज्ञानावरण-दर्शनावरणान्तरायाणां भागोऽधिको ज्ञातव्यः, ततोऽधिको भागो मोहनीयस्यावबोद्धव्यः। सर्वस्योपरि वेदनीयस्य भागोऽधिकः, किन्तु अस्य कारणं प्रकृतिविशेष एव नाचान्यत् कारणं, तदनुपलंभात्।

समाधान—नहीं ग्रहण किया जाता है, क्योंकि इस प्रकार से प्रदेशबंधस्थानों के अनन्त होनेका प्रसंग आता है।

यदि योग से प्रदेशबंध होता है, तो सब कर्मों के प्रदेश समूह के समानता प्राप्त होती है, क्योंकि उन सबके प्रदेश बंध का एक ही कारण है। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा होने पर पूर्वोक्त अल्पबहुत्व के साथ विरोध आता है। इस प्रत्यवस्था युक्त अर्थात् पुनः पुनः प्रश्न करने वाले शिष्य के लिए उक्त सूत्र के 'णवरि पयडिविसेसेण विसेसाहियाणि' इस उत्तर अवयव वाले सूत्र का अवतार हुआ है। प्रकृति का अर्थ स्वभाव है, उसका विशेष अर्थात् भेद यह अर्थ है। उस प्रकृतिविशेष से कर्मों के प्रदेशबंधस्थान समान कारण के होने पर भी प्रदेशों से विशेष अधिक हैं। वह इस प्रकार है—

एक योग से आये हुए एक समयप्रबद्ध में सबसे स्तोकभाग आयु कर्म का है। नाम व गोत्र का भाग समान व आयु के भाग से विशेष अधिक है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अन्तराय का भाग तुल्य होकर उससे विशेष अधिक है। उससे मोहनीय का भाग विशेष अधिक है। उससे वेदनीय का भाग विशेष अधिक है। सब जगह विशेष का प्रमाण आवली के असंख्यातवें भाग से नीचे-नीचे के भाग को खण्डित करने पर उसमें से एक खण्डमात्र होता है। कहा भी है—

गाथार्थ—आयु का भाग स्तोक है। उससे नाम और गोत्र का भाग विशेष अधिक होता हुआपरस्पर में समान है। उससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का भाग अधिक है। उससे अधिक भाग मोहनीय का है। वेदनीय का भाग सबसे अधिक है। किन्तु इसका कारण प्रकृतिविशेष है, अन्य नहीं है, क्योंकि वह पाया नहीं जाता है।।१-२।।

अर्थात् आयु का भाग सबसे कम है। उससे नाम और गोत्रकर्म का भाग विशेष अधिक होता हुआ परस्पर में समान है। उससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का भाग अधिक जानना चाहिए। उससे अधिक भाग मोहनीय कर्म का जानना चाहिए। सबसे अधिक भाग वेदनीय कर्म का होता है, किन्तु इसका कारण प्रकृति विशेष-स्वभाव ही है, अन्य कोई कारण नहीं है, क्योंकि वह पाया नहीं जाता है।

---

१. अ-आ-काप्रतिषु 'मोहणीए' ताप्रतौ 'मोहणीए (वेदणीए)' इति पाठः।

तात्पर्यमत्र—यद्यपि आत्मप्रदेश-कर्मप्रदेशयोः परस्परं क्षीरनीरमिव संबंधोऽस्ति तथापि पृथक्कर्तुं शक्यते इति ज्ञात्वा ''प्रज्ञा छेनीशितेयं'' इति कथनानुसारेण भेदविज्ञानबलेन स्वात्मनः कर्मप्रदेशाः पृथक्कर्तव्याः। यावदीदृशीशक्तिर्न भवेत्तावत् ये सर्वकर्मप्रदेशैर्मुक्ताः सिद्धाः भगवन्तस्तेषां एव शरणं गृहीतव्यमिति।

एवं तृतीयस्थले प्रदेशबंधकथनपरत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना वेदनाद्रव्यविधानस्योपसंहारो विधीयते—

वेदनारूपद्रव्यस्य संबंधे उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट-जघन्यादिपदानां प्ररूपणा नाम वेदनाद्रव्यविधानमस्ति। एतेषु पदमीमांसा-स्वामित्व-अल्पबहुत्वनामानि त्रीणि अनुयोगद्वाराणि ज्ञातव्यानि भवन्ति।

प्रथमपदमीमांसायां ज्ञानावरणीयादिद्रव्यवेदनाया विषये उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट-जघन्य-अजघन्य-सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव-ओज-युग्म-ओम-विशिष्ट-नो ओमनोविशिष्टानि इमानि त्रयोदशपदानि यथासंभवं विचार्यन्ते। पुनश्च सामान्यं विशेषाविनाभावि, ततः पूर्वोक्तत्रयोदशपदेषु एकैकं पदं मुख्यं कृत्वा प्रत्येकपदविषयेऽपि शेषाणां द्वादशपदानां संभावना मीमांस्यते।

इत्थं ज्ञानावरणादिप्रत्येककर्मसंबंधि-एकोनसप्तति-अधिकशतप्रश्नान् कृत्वा पूर्वोक्तपदानां दिग्दर्शनं कार्यते।

उदाहरणरूपेण ज्ञानावरणं गृहीतव्यम्। तत्संबंधिनी विचारणा क्रियते—

ज्ञानावरणीयवेदनाद्रव्यं किमुत्कृष्टं किमनुत्कृष्टं किं जघन्यं किमजघन्यं किं सादि किमनादि किं ध्रुवं किमध्रुवं किमोजं किं युग्मं किमोमं किं विशिष्टं किं नोओम-नोविशिष्टमिति त्रयोदश प्रश्नान् कृत्वा तान्

तात्पर्य यह है कि—यद्यपि आत्म प्रदेश और कर्मप्रदेशों का परस्पर में दूध और पानी के समान संबंध है, फिर भी उन्हें अलग-अलग किया जा सकता है ऐसा जानकर ''यह प्रज्ञा छेनी पैनी है'' इस समयसार कलश के कथन के अनुसार भेद विज्ञान के बल से आत्मा और कर्मप्रदेश अलग-अलग करना चाहिए। जब तक ऐसी शक्ति नहीं प्राप्त नहीं हो, तब तक सम्पूर्ण कर्मप्रदेशों से मुक्त जो सिद्ध भगवान हैं, उनकी ही शरण ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में प्रदेश बंध के कथन की मुख्यता वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब वेदनाद्रव्यविधान का उपसंहार किया जा रहा है—

वेदनारूप द्रव्य के संबंध में उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट एवं जघन्य आदि पदों की प्ररूपणा का नाम वेदनाद्रव्य विधान है। इसमें पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, ये तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य बतलाये गये हैं।

प्रथम पदमीमांसा में ज्ञानावरणीय आदि की द्रव्यवेदना के विषय में उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, ओज, युग्म, ओम, विशिष्ट और नोओम नोविशिष्ट, इन १३ पदों का यथासंभव विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त सामान्य चूँकि विशेष का अविनाभावी है, अतएव उक्त १३ पदों में से एक-एक पद को मुख्य करके प्रत्येक पद के विषय में भी शेष १२ पदों में संभावित विचार किया गया है।

इस प्रकार ज्ञानावरणादि प्रत्येक कर्मसंबंधी १६९ प्रश्नों को करके पूर्वोक्त पदों का दिग्दर्शन कराते हैं।

उदाहरणरूप से ज्ञानावरणकर्म को ग्रहण करना चाहिए। तत्संबंधी विचारणा की जाती है—

ज्ञानावरणीय वेदना का द्रव्य क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है, क्या अजघन्य है, क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है, क्या ओज है, क्या युग्म है, क्या ओम है, क्या विशिष्ट

विचारयन् कथ्यते—

१. ज्ञानावरणीयवेदना द्रव्यरूपेण कथंचित् उत्कृष्टा, गुणितकर्मांशिकसप्तमपृथ्वीस्थितनारकजीवस्य तद्भवान्तिमसमये ज्ञानावरणीयस्योत्कृष्टवेदनालभ्यत्वात्।

२. कथंचित् सानुत्कृष्टा, गुणितकर्मांशिकं विहाय शेषसर्वजीवानां ज्ञानावरणीयद्रव्यानुत्कृष्टलभ्यत्वात्।

३. कथंचित् सा जघन्या, क्षपितकर्मांशिकक्षीणकषायगुणस्थानवर्तिजीवानामस्य गुणस्थानस्यान्तिमसमये ज्ञानावरणीयद्रव्यस्य जघन्योपलंभत्वात्।

४. कथंचित् साऽजघन्या, उक्तक्षपितकर्मांशिकं विहायान्यसर्वप्राणिषु ज्ञानावरणीयानां द्रव्यमजघन्यं दृश्यते।

५. कथंचित् सा ज्ञानावरणीयवेदना सादिरूपा, किं च उत्कृष्टादिपदानां परिवर्तनं भवन्नास्ते, न तत्परिवर्तनं शाश्वतिकम्।

६. कथंचित् सा वेदना अनादिरूपा, किं च जीवकर्मणोर्बंधसामान्यमनादिरूपमस्ति। तस्य सादित्वं न संभाव्यते।

७. कथंचित् सा ध्रुवरूपा, किं च—अभव्यानां अभव्यसदृशभव्यजीवानां चापि सामान्यरूपेण ज्ञानावरणस्य विनाशो न सम्भवति।

८. कथंचित् सा अध्रुवरूपा किं च—केवलज्ञानिभगवत्सु तस्य विनाशो दृश्यते। एतद्व्यतिरिक्त-पूर्वोक्तोत्कृष्टादिपदानां शाश्वतिकावस्थानासंभवात् तेषु परिवर्तनमपि भवत्येव।

९. कथंचित् सा युग्मरूपा, प्रदेशानां रूपे ज्ञानावरणीयस्य द्रव्यं समसंख्यात्मकं लभ्यते।

है, क्या नोओम नोविशिष्ट है ? इन तेरह प्रश्नों को करके उनका विचार करते हुए कहते हैं—

(१) उक्त ज्ञानावरणीय वेदना द्रव्य से कथंचित् उत्कृष्ट है, क्योंकि गुणित कर्मांशिक सप्तम पृथिवी में स्थित नारकी जीव के उस भव के अन्तिम समय में ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट वेदना पाई जाती है।

(२) कथंचित् वह अनुत्कृष्ट है, क्योंकि गुणितकर्मांशिक को छोड़कर शेष सभी जीवों के ज्ञानावरणीय का द्रव्य अनुत्कृष्ट पाया जाता है।

(३) कथंचित् वह जघन्य है, क्योंकि क्षपितकर्मांशिक क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीवों के इस गुणस्थान के अन्तिम समय में ज्ञानावरणीय का द्रव्य जघन्य पाया जाता है।

(४) कथंचित् वह अजघन्य है, क्योंकि उक्त क्षपितकर्मांशिक को छोड़कर अन्य सब प्राणियों में ज्ञानावरणीयों का द्रव्य अजघन्य देखा जाता है।

(५) कथंचित् वह ज्ञानावरणीय वेदना सादि है, क्योंकि उत्कृष्ट आदि पदों में परिवर्तन होता रहता है, वे परिवर्तन शाश्वतिक नहीं है।

(६) कथंचित् वह वेदना अनादि है, क्योंकि जीव व कर्म का बंध सामान्य से अनादि है। उसके सादित्व की संभावना नहीं है।

(७) कथंचित् वह ध्रुव रूप है, क्योंकि अभव्यों तथा अभव्य समान भव्य जीवों में भी सामान्यरूप से ज्ञानावरण का विनाश संभव नहीं होता है।

(८) कथंचित् वह अध्रुव रूप है, क्योंकि केवलज्ञानी भगवन्तों में उसका विनाश देखा जाता है। इसके अतिरिक्त उक्त उत्कृष्ट आदि पदों का शाश्वतिक अवस्थान संभव न होने से उनमें परिवर्तन भी होता ही रहता है।

(९) कथंचित् वह युग्म रूप है, क्योंकि प्रदेशों के रूप में ज्ञानावरणीय का द्रव्य समसंख्यात्मक पाया जाता है।

१०. कथंचित् सा ओजरूपा, तस्य द्रव्यं कदाचित् विषमसंख्यारूपेणापि लभ्यते।

११. कथंचित् सा ओमरूपा, तस्या प्रदेशेषु कदाचित् हानिरवलोक्यते।

१२. कथंचित् सा विशिष्टा, कदाचित् तस्य प्रदेशेषु व्ययापेक्षया आयाधिकत्वं दृश्यते।

१३. कथंचित् सा नोओम-नोविशिष्टा, किं च — प्रत्येकपदावयवविवक्षायां वृद्धिहान्योरुभयोः संभावना नास्ति।

इत्थं उत्कृष्टज्ञानावरणीयवेदनास्ति, एतद्वेदनाद्रव्यं किमनुत्कृष्टं किं जघन्यं इत्यादिस्वरूपेण एकैकपद-विवक्षायां तेषु विषयेष्वपि शेषद्वादशपदानां संभावनाया विचार्यते स्म।

पदमीमांसायां कथितं।

अस्मिन् स्वामित्वानुयोगद्वारे ज्ञानावरणीयादिकर्मणां उत्कृष्टानुत्कृष्टादिपदानि केषु केषु जीवेषु केन केन प्रकारेण संभवन्तीति तेषां स्वामिनां विस्तरेण विचारोऽक्रियत।

उदाहरणार्थं — ज्ञानावरणीयं गृहीत्वा तस्य उत्कृष्टवेदनायाः स्वामिनो विचारं कुर्वन् कथितमस्ति यत् — यः कश्चिद् जीवो बादरपृथिवीकायिकजीवेषु साधिकद्विसहस्रसागरोपमान्यूनं कर्मस्थितिप्रमाणं न्यवसत्। तेषु परिभ्रमणं कुर्वन् सन् यः पर्याप्तेषु बहुवारं अपर्याप्तेषु च स्तोकवारं उत्पन्नोऽभवत्। (भवावासोऽयं)।

पर्याप्तेषु उत्पन्नो भवन् दीर्घायुष्केषु अपर्याप्तेषु उत्पन्नो भवन् सन् अल्पायुष्केष्वेव उत्पन्नो भवति। (अद्धावासोऽयं कथितः)।

दीर्घायुष्केषु उत्पन्नो भूत्वा यः सर्वलघुकाले पर्याप्तीः पूरयति, यावत् स आयुर्बध्नाति तत्प्रायोग्यजघन्य-

---

(१०) कथंचित् वह ओज रूप है, क्योंकि उसका द्रव्य कदाचित् विषम संख्या के रूप में भी पाया जाता है।

(११) वह कथंचित् ओमरूप है, क्योंकि उसके प्रदेशों में कदाचित् हानि देखी जाती है।

(१२) कथंचित् वह विशिष्ट है, क्योंकि कदाचित् उसके प्रदेशों में व्यय की अपेक्षा आय की अधिकता देखी जाती है।

(१३) कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि प्रदेश पद के अवयव की विवक्षा में वृद्धि और हानि दोनों की संभावना नहीं है।

इसी प्रकार से उत्कृष्ट ज्ञानावरणीयवेदना है, यह वेदना क्या अनुत्कृष्ट है ? क्या जघन्य है, इत्यादि स्वरूप से एक-एक पद को विवक्षित करके उसके विषय में भी शेष १२ पदों की संभावना का विचार किया गया है।

पदमीमांसा में कहा है —

स्वामित्व अनुयोगद्वार में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट आदि पद किन-किन जीवों में किन-किन प्रकार से संभव हैं, इस प्रकार से उनके स्वामियों का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

उदाहरण के लिए जानें — ज्ञानावरणीय को लेकर उसकी उत्कृष्ट वेदना के स्वामी का विचार करते हुए कहा गया है कि जो कोई जीव बादर पृथिवीकायिक जीवों में कुछ अधिक २००० सागरोपमों से हीन कर्मस्थिति (६० कोड़ाकोड़ी सागरोपम) प्रमाण रहा है। उनमें परिभ्रमण करता हुआ जो पर्याप्तों में बहुत बार और अपर्याप्तों में थोड़े बार उत्पन्न होता है (यह भववास हुआ)।

पर्याप्तों में उत्पन्न होता हुआ दीर्घ आयु वालों में तथा अपर्याप्तों में उत्पन्न होता हुआ अल्प आयु वालों में ही जो उत्पन्न होता है (यह अद्धावास कहा गया है)

दीर्घ आयु वालों में उत्पन्न हो करके जो सर्वलघु काल में पर्याप्तियों को पूर्ण करता है, जब-जब वह

योगेनैव बध्नाति। (आयुरावासोऽयं ज्ञातव्यः)।

य उपरिमस्थितीनां निषेकस्योत्कृष्टपदं अधस्तनस्थितीनां च जघन्यपदं करोति। (अपकर्षणोत्कर्षणावासः प्रदेशविन्यासावासो वात्र ज्ञातव्यः)।

बहुबहुवारं य उत्कृष्टयोगस्थानानि प्राप्नोति (योगावासोऽयं)।

तथा च बहु-बहुवारं यो मंदसंक्लेशपरिणामान् प्राप्नोति (संक्लेशावासोऽयं)।

इत्थमुक्तजीवेषु परिभ्रम्य पश्चात् यो बादरत्रसपर्याप्तजीवेषु उत्पन्नोऽभवत्, तेषु परिभ्रमणं कारयन् तस्य विषये प्रागिव अत्रापि भवावास-अद्धावास-आयुरावास-अपकर्षणोत्कर्षणावास-योगावास-संक्लेशावासानां प्ररूपणा कृतास्ति।

पूर्वोक्तप्रकारेण परिभ्राम्यन् यः कश्चिद् जीवः अन्तिमभवग्रहणे सप्तमीपृथिव्या नारकेषूत्पन्नः, तत्रोत्पद्य प्रथमसमयवर्ति-आहारकः प्रथमसमयवर्तितद्भवस्थश्च भवन् उत्कृष्टयोगेन आहारो गृहीतः, उत्कृष्टवृद्ध्या वृद्धिंगतोऽभवत्, सर्वलघु-अन्तर्मुहूर्तेन कालेन सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तश्चाभवत्। तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपम-कालपर्यंतं स्थितः, बहु-बहुवारं उत्कृष्टयोगस्थानानि बहु-बहुवारं संक्लेशपरिणामांश्च यः प्राप्नोत्। उक्तप्रकारेण परिभ्राम्यन् जीवितकालस्य स्तोकावशिष्टे यो योगयवमध्यस्योपरि अन्तर्मुहूर्तकालं स्थितः अन्तिमजीवगुणहानि-स्थानान्तरे आवलिकाया असंख्यातभागः स्थितः। द्विचरमे त्रिचरमसमये उत्कृष्टसंक्लेशं प्राप्नोत् तथा चरमसमये द्विचरमे च उत्कृष्टयोगमवाप्नोत्। एतादृशस्य जीवस्य नारकभवस्यान्तिमसमये स्थिते सति ज्ञानावरणीयस्य वेदना द्रव्येणोत्कृष्टा भवति। एतदेव गुणितकर्मांशिकजीवस्य लक्षणं विद्यते।

आयु को बांधता है, तत्प्रायोग्य जघन्य योग के द्वारा ही बांधता है (यह आयु आवास जानना चाहिए।)

जो उपरिम स्थितियों के निषेक के उत्कृष्ट पद को तथा अधस्तन स्थितियों के निषेक के जघन्य पद को करता है (यहाँ यह अपकर्षण-उत्कर्षण आवास अथवा प्रदेश विन्यासवास जानना चाहिए।

बहुत-बहुत बार जो उत्कृष्ट योगस्थानों को प्राप्त होता है (यह योगावास हुआ)

तथा बहुत-बहुत बार जो मंद संक्लेश परिणामों को प्राप्त होता है (यह संक्लेशावास हुआ)

इस प्रकार उक्त जीवों में परिभ्रमण करके पश्चात् जो बादर त्रस पर्याप्त जीवों में उत्पन्न हुआ है, उनमें परिभ्रमण कराते हुए उसके विषय में पहले के ही समान यहाँ भी भवावास, अद्धावास, आयु आवास, अपकर्षण-उत्कर्षण आवास, योगावास और संक्लेशावास, इन आवासों की प्ररूपणा की गई है।

पूर्वोक्त प्रकार से परिभ्रमण करता हुआ जो अन्तिम भवग्रहण में सप्तम पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न हुआ है, उनमें उत्पन्न हो करके प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ होते हुए जिसने उत्कृष्ट योग से आहार वर्गणाओं को ग्रहण किया है, उत्कृष्ट वृद्धि से जो वृद्धिंगत हुआ है, सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल में जो सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ है, वहाँ ३३ सागरोपम काल तक जो रहा है, बहुत-बहुत बार जो उत्कृष्ट योगस्थानों को तथा बहुत-बहुत बार बहुत संक्लेश परिणामों को जो प्राप्त हुआ है, उक्त प्रकार से परिभ्रमण करते हुए जीवन के काल के थोड़े से काल के अवशिष्ट रहने पर जो योगयवमध्य के ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा है, अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तर में जो आवली के असंख्यातवें भाग रहा है। द्विचरम व त्रिचरम समय में उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त हुआ है तथा चरम व द्विचरम समय में जो उत्कृष्ट योग को प्राप्त हुआ है, ऐसे उपर्युक्त जीव के नारक भव के अन्तिम समय में स्थित होने पर ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना द्रव्य से उत्कृष्ट होती है। यही गुणित कर्मांशिक जीव का लक्षण जाना जाता है।

पूर्वकथितजीवस्य तावत्समये कियद् द्रव्यस्य संचयो भवति, एषः संचयोऽपि उत्तरोत्तरं केन क्रमेण वृद्धिंगतो भवति इति नानाविषयाणां वर्णनं श्रीवीरसेनस्वामिना गणितप्रक्रियाया अवलम्बनेन स्वधवलाटीकायां विस्तरेण कृतमस्ति।

पुनश्चायुस्त्यक्त्वा शेषषट्कर्मणां उत्कृष्टवेदनायाः स्वामिनां प्ररूपणा ज्ञानावरणसमानैव कथयित्वा पश्चादायुःकर्मणः उत्कृष्टवेदनायाः स्वामिनः प्ररूपणां कुर्वन् सन् प्ररूपितः, यत् पूर्वकोटिप्रमाणायुष्को यो जीवो जलचरजीवेषु पूर्वकोटिमात्रायुर्दीर्घायुर्बंधककालं तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन च बध्नाति। योगयवमध्यस्योपरि अंतर्मुहूर्तकालं स्थितः, अंतिमजीवगुणहानिस्थानान्तरे आवलिकाया असंख्यातभागं स्थितः, तत्र सर्वलघु-अंतर्मुहूर्ते सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तोऽभवत्, दीर्घायुर्बंधककाले, तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन पूर्वकोटिप्रमाणं जलचरायुर्द्वितीयवारं बध्नाति, योगयवमध्यस्योपरि अंतर्मुहूर्तकालं स्थितः, अंतिमगुणहानि-स्थानान्तरे आवलिकाया असंख्यातभागः स्थितः, तथा यो बहु-बहुवारं सातावेदनीयस्य बंधयोग्यकालेन सहितोऽभवत्।

एतादृशो जीवस्यानन्तरसमये यदा परभविकायुषो बन्धस्य परिसमाप्तिर्भवति तदैव समये तस्यायुःकर्मणो वेदनाद्रव्येणोत्कृष्टा भवति। सर्वकर्मणां उत्कृष्टवेदनाया व्यतिरिक्ता अनुत्कृष्टवेदना कथिता अस्ति।

ज्ञानावरणीयस्य जघन्यवेदनायाः स्वामिनः प्ररूपणां कथयन् अकथयत् यत् यो जीवः पल्योपमस्यासंख्यातभागेन हीनं कर्मस्थितिप्रमाणं सूक्ष्मनिगोदजीवेषु स्थितः, तेषु परिभ्रमणं कुर्वन् सन् योऽपर्याप्तेषु बहुवारं पर्याप्तेषु च स्तोकवारं एवोत्पन्नोऽभवत्। यस्यापर्याप्तकालं बहु पर्याप्तकालं स्तोकं स्थितोऽस्ति। यदा यदायुर्बध्नाति तदा तदा तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन बध्नाति। य उपरिमस्थितीनां निषेकस्य जघन्यपदं अधस्तनस्थितीनां च निषेकस्य उत्कृष्टपदं करोति।

पूर्वकथित जीव के उतने समय में कितने द्रव्य का संचय होता है तथा वह संचय भी उत्तरोत्तर किस क्रम से वृद्धिंगत होता है, इत्यादि अनेक विषयों का वर्णन श्री वीरसेन स्वामी ने गणित प्रक्रिया के अवलम्बन से अपनी धवला टीका के अन्तर्गत बहुत विस्तार से किया है।

आगे चलकर आयु को छोड़कर शेष छह कर्मों की उत्कृष्ट वेदना के स्वामियों की प्ररूपणा ज्ञानावरण कर्म के समान बतला करके फिर आयु कर्म की उत्कृष्ट वेदना के स्वामी की प्ररूपणा करते हुए बतलाया गया है कि वे पूर्वकोटि प्रमाण आयु वाला जो जीव जलचर जीवों में पूर्वकोटिमात्र आयु को दीर्घ आयु बंधक काल, तत्प्रायोग्य संक्लेश और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योग के द्वारा बांधता है। योगयवमध्य के ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल रहा है, अन्तिम जीवगुणहानिस्थानान्तर में आवली के असंख्यातवें भाग रहा है, वहाँ पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त में सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ है, दीर्घ आयु बंधक काल में तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योग के द्वारा पूर्वकोटिप्रमाण जलचर आयु को दुबारा बांधता है, योगयवमध्य के ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल रहा है, अन्तिम गुणहानिस्थानान्तर में आवली के असंख्यातवें भाग रहा है तथा जो बहुत-बहुत बार साता वेदनीय के बंध योग्य काल से सहित हुआ है।

ऐसे जीव के अनन्तर समय में जब परभविक आयु के बंध की परिसमाप्ति होती है, उसी समय उसके आयु कर्म की वेदना द्रव्य से उत्कृष्ट होती है और सभी कर्मों की उत्कृष्ट वेदना से भिन्न अनुत्कृष्ट वेदना कही गई है।

ज्ञानावरणीय की जघन्य वेदना के स्वामी की प्ररूपणा करते हुए कहा गया है कि जो जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग से ही कर्मस्थितिप्रमाण सूक्ष्म निगोद जीवों में रहा है, उसमें परिभ्रमण करता हुआ जो अपर्याप्तों में बहुत बार और पर्याप्तों में थोड़े ही बार उत्पन्न हुआ है, जिसका अपर्याप्तकाल बहुत और पर्याप्तकाल थोड़ा रहा है, जब-जब आयु को बांधता है, तब तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योग से बांधता है, जो उपरिम स्थितियों के निषेक के जघन्य पद को और अधस्तन स्थितियों के निषेक के उत्कृष्ट पद को करता है।

यो जीवो बहु-बहुवारं जघन्ययोगस्थानं प्राप्नोति, बहु-बहुवारं मंदसंक्लेशरूपपरिणामैः परिणमति, इत्थं निगोदजीवेषु परिभ्रम्य पश्चात् यो बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तेषु उत्पन्नो भूत्वा तत्र सर्वलघु-अंतर्मुहूर्तकाले सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तोऽभवत्, तत्पश्चात् अंतर्मुहूर्ते मृत्युं प्राप्य यः पूर्वकोटि-आयुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नोऽभवत्।

तत्र अष्टवर्षीयः संयमं प्रतिपद्य जीविते किंचित्कालेऽवशेषे मिथ्यात्वं प्राप्य मृत्वा दशसहस्रवर्षायुष्केषु देवेषु उत्पद्यते। इत्यादिप्रकारेण संसारपरिभ्रमणं कुर्वाणैः जीवैरनन्तकालं समापितमस्मिन्ननादिसंसारे।

एतत्सर्वं विज्ञाय संसारभीरुभिः भव्यपुंगवैः सन्ततमेवं भावयितव्यं—

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावत्, यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः।।

* * *

श्री जम्बूस्वामिस्तुतिः

विहित-विमल-सम्यक् खड्गधाराव्रतः प्राक्।
भव इह न हि कांतासक्तचेता निकामः।।
इह भरतधरायामंतिमः[१] केवली तम्।
त्रिभुवननुतजम्बूस्वामिनं स्तौमि भक्त्या।।१।।

जो जीव बहुत-बहुत बार जघन्य योगस्थान को प्राप्त होता है, बहुत-बहुत बार मंद संक्लेशरूप परिणामों से परिणमता है, इस प्रकार से निगोद जीवों में परिभ्रमण करके पश्चात् जो बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तों में उत्पन्न होकर वहाँ सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल में सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ है, तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में मरण को प्राप्त होकर जो पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्य में उत्पन्न हुआ है।

जिसने वहाँ पर गर्भ से निकलने के पश्चात् आठ वर्ष का होकर संयम को धारण किया है, जो जीवित काल के थोड़े से शेष रहने पर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ है, तत्पश्चात् मिथ्यात्व के साथ मरण को प्राप्त होकर जो दस हजार वर्ष की आयु वाले देवों में उत्पन्न हुआ है। इत्यादि प्रकार से संसार में परिभ्रमण करते हुए जीवों ने इस अनादि संसार में अनन्तकाल व्यतीत किया है।

इस प्रकार सब कुछ जानकर संसार से डरे हुए भव्यपुंगवों को सतत ही भावना भानी चाहिए कि—

श्लोकार्थ—हे जिनेन्द्र भगवन्! मुझे निर्वाण पद की प्राप्ति होने तक आपके चरणकमल मेरे हृदय में विराजमान रहें और मेरा हृदय आपके चरणकमलों में लीन रहे, यही मेरी उत्कट भावना है।।

श्री जम्बूस्वामी स्तुति

श्लोकार्थ—जिन्होंने पूर्व भव में निर्मल और समीचीन असिधारा व्रत का पालन किया, इस जन्म में अपनी विवाहिता पत्नियों में आसक्त न होकर निष्काम रहे और इस भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड की धरती पर अनुबद्ध केवलियों में जो अन्तिम केवली के रूप में प्रसिद्ध हुए, ऐसे उन तीन लोकों में पूज्य जम्बूस्वामी की मैं भक्तिपूर्वक स्तुति करता हूँ।।१।।

---

१. अनुबद्धकेवलिनामन्तिमः केवली बभूव।

रतिपतिविजयी त्वं प्रोल्लसज्ज्ञानतेजाः।
त्रिभुवनततमिथ्यात्वांधकारांशुमाली।।
जिनवरमतवार्धे-र्वर्धनायेन्दुपूर्णः ।
भविकुमुदविकासी च श्रये त्वां मुनीन्द्र!।।२।।

धवलशुभयशोवत्शुक्लयोगेन जातः।
परमविशदकेवलविस्फुरज्ज्ञानरश्मिः ।।
विलसितसितकीर्तिर्भानुतेजोऽतिक्रान्तः।
निरुपमसुखधाम प्राप्तवान् तं नमामि।।३।।

प्रविगत - भवमिथ्यामोहमायाविषादः।
कुगतिविविधदुःखक्षारनीराब्धिपारः ।।
जननमरणशून्यश्च स्तुवे संततं तं।
भवभयहरजम्बूस्वामिनं स्वात्मसिद्धयै।।४।।

स्वयमपि निजसम्यग्ज्ञानचर्या-बलेन।
हृदयसरसिजे स्वं स्वेन त्वं चिंतयित्वा।।
मुनिगणनुत! स्वस्मिन् स्वस्य हेतोश्च तिष्ठन्।
निजकृतिवशतोऽभूस्त्वं स्वयंभूः स्तुवे त्वाम्।।५।।

प्रविलसदचलार्चिर्भानुमाली चिदात्मा।
विगतकुमतरात्रिर्ध्वस्तकुज्ञानदोषः ।।

हे जम्बूस्वामी मुनीन्द्र! आपने कामदेव पर विजय प्राप्त किया है, आप ज्ञानपुंज से समन्वित महान् तेजस्वी हैं। तीनों लोकों में व्याप्त मिथ्यात्व अंधकार को हरने में आप भास्कर — सूर्य हैं। जिनेन्द्र भगवान के मतरूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने में आप पूर्ण चन्द्रमा हैं और भव्यजनरूपी कमलों को विकसित करने वाले हैं तथा जन-जन के आश्रय प्रदाता हैं।।२।।

जिन्होंने शुभ्र धवलकीर्ति के समान शुक्ल ध्यान के द्वारा घातिया कर्मों को नष्ट करके उत्कृष्ट, विशद केवलज्ञानरूपी सूर्य को प्राप्त कर लिया है। जिनकी शुभ्र शोभायमान कीर्ति भानु — सूर्य के तेज को भी तिरस्कृत करने वाली है, जिन्होंने निरुपम — उपमारहित मोक्षसुखधाम — सिद्धधाम को प्राप्त कर लिया है, ऐसे उन श्री जम्बूस्वामी सिद्ध भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।।३।।

जो सांसारिक मोह, माया, मिथ्यात्व और विषाद से रहित हो चुके हैं, जो कुगति में ले जाने वाले अनेक प्रकार के दुःखमयी क्षार जलधि को पार कर चुके हैं, जो जन्म और मरण का नाश कर चुके हैं, ऐसे संसार के भय को हरण करने वाले श्री जम्बू स्वामी की मैं स्वात्मसिद्धि के लिए सतत स्तुति करता हूँ।।४।।

हे मुनिगण से पूज्य भगवन्! आपने स्वयं ही अपने सम्यग्ज्ञान और आचरण के बल से अपने हृदयकमल में स्वयं के द्वारा स्वयं का चिंतन करके स्वयं में स्वयं के हेतु स्थित होकर निजकृति से — अपनी क्रियाओं से आप स्वयं स्वयंभू बन गये हैं, अतः मैं आपकी स्तुति करता हूँ।।५।।

हे जम्बूस्वामी! आप अचल किरणमयी सूर्य के रूप में सुशोभित चिच्चैतन्य चिदानंद स्वरूपी हैं,

अयमतुलविवस्वान् रक्तिमास्त्री-विरक्तः।
उदयति हृदयाद्रौ त्वां श्रितानां स्तुवेऽतः।।६।।

त्रितयजगति मोहस्त्वेकसाम्राज्यकर्ता।
विधृतकुनयगर्वः कुत्सितन्यायकारी।।
त्रिभुवनजनताः संत्रास्यमानाः सदैव।
तमपि विजितवान् यो मोहजयिनं स्तुवे तम्।।७।।

अनुपमनिजतत्त्वं चिच्चमत्कारमात्रम्।
स्वरस - विसरभारैः स्वोत्थसौख्यामृतं तत्।।
गणधरनुतवीराल्लब्धसम्यक्स्वभावः ।
अमृतमयपदं त्वं संश्रितोऽहं श्रये त्वाम्।।८।।

जम्बूवने शिवं प्राप्तौ, जम्बूस्वामी मुनीश्वरः।
मया प्रणम्यते भक्त्या, ज्ञानमत्या स्वसंपदे।।९।।

अद्य अष्टाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे फाल्गुनशुक्लाद्वितीयायां श्रीजम्बूस्वामिनिर्वाणक्षेत्रं मथुरापुरीनामसिद्धक्षेत्रं पुनः पुनः वन्दित्वा अनुबद्धकेवलिषु अंतिमकेवलिनं जम्बूस्वामिनमनन्तपदप्राप्त्यर्थं वन्दामहे। ततश्च षट्खण्डागमस्य दशमग्रन्थस्य सिद्धान्तचिन्तामणिटीकां पवित्रभूमौ लिखित्वा स्वलेखनीं

मिथ्यामतरूपी अंधकारमयी रात्रि से रहित महाकुज्ञान दोष से रहित हैं, तीनों लोकों के अलौकिक सूर्य हैं, फिर भी आपका मन लालिमारूपी भार्या से विरक्त है और आप अपने आश्रित जनों के हृदयरूपी पर्वत पर उदय को प्राप्त होते हैं अतः मैं आपकी वंदना करता हूँ।।६।।

तीनों लोकों में मोहराज का एकमात्र साम्राज्य फैला है, वह मिथ्यानय गर्व को धारण करके सदैव कुत्सित न्याय-अन्याय करता है, यहाँ तीनों लोकों के जीवों को मोहकर्म सदा त्रस्त करके अनन्तों दुःख दे रहा है। उस मोह को जीत कर आप मोहविजयी कहलाए हैं अतः मैं आपकी स्तुति करता हूँ।।७।।

हे जम्बूस्वामी जिनेन्द्र! इस संसार में चिच्चैतन्य चमत्कारिक अनुपम स्वात्मतत्त्व है, जो आत्मरसरूपी अमृत के भार से उत्पन्न सुखरूपी अमृत के समान है। ऐसे उन गणधर से स्तुत्य भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से प्राप्त सम्यक् स्वभावरूप अमृतमयी मोक्षपद को आपने सिद्ध कर लिया है, इसलिए अब मैं आपका आश्रय — शरण लेता हूँ।।८।।

जम्बूवन (मथुरा चौरासी में स्थित) से मोक्ष को प्राप्त हुए जम्बूस्वामी मुनीश्वर को सम्यग्ज्ञान की मति के द्वारा (पक्ष में ज्ञानमती गणिनी आर्यिका के द्वारा) स्वात्म सम्पत्ति की प्राप्ति हेतु भक्तिपूर्वक नमस्कार किया जाता है।।९।।

अथ वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ अट्ठाईस में (सन् २००२) में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को श्री जम्बूस्वामी के निर्वाण क्षेत्र मथुरापुरी नाम के सिद्धक्षेत्र की पुनः पुनः वंदना करके अनुबद्ध केवलियों में अंतिम केवली जम्बूस्वामी को अनन्तपद-मोक्षपद की प्राप्ति हेतु हम वंदना करते हैं और

धन्यां गणयामो वयम्[१]।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिविरचितषट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डे श्रीभूतबलिसूरिविरचित-वेदनाखण्डे दशमे ग्रंथे श्रीवीरसेनाचार्यकृत-धवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यश्चारित्रचक्रवर्तीश्रीशांति-सागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचनाप्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांत-चिंतामणिटीकायां द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतचतुर्थवेदनाद्रव्य-विधाननामायं द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः।

षट्खण्डागम के दशवें ग्रंथ की सिद्धांतचिंतामणि टीका को इस पवित्र भूमि पर लिखकर अपनी लेखनी को हम धन्य समझते हैं।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली द्वारा रचित षट्खण्डागम ग्रंथ के चतुर्थ खण्ड में श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित वेदनाखण्ड नाम के दशवें ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य कृत धवलाटीका को प्रमुख करके अनेक ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागर आचार्य हुए हैं, उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में द्वितीय वेदना अनुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत चतुर्थ वेदनाद्रव्यविधान नामक यह द्वितीय महाधिकार समाप्त हुआ।

卐卐卐

---

१. मथुरा तीर्थ पर मंदिर में बैठकर यह प्रकरण लिखा गया है।

अथ वेदनाक्षेत्रविधानानुयोगद्वारम्

(द्वितीयवेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-पंचमानुयोगद्वारम्)

तृतीयो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

शार्दूलविक्रीडितछन्दः—

श्रीमेरौ गजदंतरूप्यगिरिवक्षारे कुलाद्रौ तथा।
जम्ब्वादिद्रुममानुषोत्तरनगेष्विष्वाकृतौ पर्वते।।
श्रीनंदीश्वरकुण्डले च रुचके शैले हि चैत्यालयाः।
तान् सर्वान् प्रणमामि भक्तिभरतः सर्वार्थसंसिद्धये।।१।।

अत्र चैत्रकृष्णाप्रतिपदि वीराब्दे अष्टाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे मम क्षुल्लिकाव्रतदीक्षायास्तिथिर्वर्तते। षट्चत्वारिंशद्वर्षपूर्वं गृहीता दीक्षा ममोत्तरोत्तरवृद्ध्यै अजायत अतएव प्रसन्नतामनुभवामि। अत्रागरानाम-महानगरे[१] धर्मप्रभावनां कुर्वन्त्या मया तीर्थंकरऋषभदेवतपस्थलीतीर्थं प्रयागक्षेत्रं गमिष्यते। तेभ्यः ऋषभदेवेभ्यो मम कोटिशो नमोऽस्तु।

अथ वेदनाक्षेत्रविधान अनुयोगद्वार

(द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत-पंचम अनुयोगद्वार)

तृतीय महाधिकार

-मंगलाचरण-

श्लोकार्थ — श्री मेरु पर्वत पर — सुदर्शनमेरु पर्वत पर, गजदंत पर्वत पर, विजयार्ध पर्वत पर, वक्षार पर्वत पर, कुलाचल पर्वत पर तथा जम्बूवृक्ष-शाल्मलिवृक्ष पर, मानुषोत्तर पर्वत पर, इष्वाकार पर्वत पर, नंदीश्वरद्वीप में, कुण्डलवर द्वीप में एवं रुचकवर द्वीप के पर्वत पर जितने भी अकृत्रिम चैत्यालय स्थित हैं, उन समस्त जिनचैत्यालयों को मैं भक्तिभावपूर्वक सर्वार्थसिद्धि — सम्पूर्ण कार्य की सिद्धि हेतु नमस्कार करता हूँ।।१।।

वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ अट्ठाईस में आज चैत्र कृष्णा प्रतिपदा — एकम् को मेरी क्षुल्लिका दीक्षा तिथि है। आज से छियालीस वर्ष पूर्व मैंने (महावीर जी अतिशय क्षेत्र पर) दीक्षा ग्रहण की थी, उस दीक्षा के पश्चात् मेरी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है अतएव आज मैं प्रसन्नता का अनुभव करती हूँ। आज मैं यहाँ आगरा महानगर में हूँ यहाँ से धर्मप्रभावनापूर्वक विहार करते हुए मैं तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ प्रयाग क्षेत्र की ओर जाऊँगी। उन ऋषभदेव भगवान को मेरा कोटिशः नमस्कार होवे।

भावार्थ — ईसवी सन् २००२ में २१ फरवरी को राजधानी दिल्ली से पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार प्रदेश) तीर्थ के जीर्णोद्धार एवं विकास की भावना से संघ सहित मंगल विहार किया था। उसी के मध्य मथुरा और आगरा में संघ का पदार्पण हुआ। वहाँ पूज्य माताजी ने षट्खण्डागम के इस ग्रंथ में कतिपय प्रकरण लिखे हैं इसीलिए यथास्थान टीका में

---

१. आगरा शहर में चैत्र कृ. प्रतिपदा को यह प्रकरण लिखा है।

संप्रति षट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे दशमग्रंथे द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-वेदनाक्षेत्रविधाननाम्नि पंचमेऽनुयोगद्वारे तृतीयमहाधिकारस्य नवनवतिसूत्रैः पातनिकावतार्यते।

अस्मिन् महाधिकारे दशस्थलानि क्रियन्ते।

तत्र तावत्प्रथमस्थले त्रिभेदसूचनपरत्वेन ''वेयणखेत्त'' इत्यदिना सूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले पृच्छापरत्वेन 'पदमीमांसाए' इत्यादिना सूत्रत्रयं। तदनंतरं तृतीयस्थले स्वामित्वभेदसूचकत्वेन 'सामित्तं दुविहं' इत्याद्येकं सूत्रं। तदनु चतुर्थस्थले स्वामित्वेनोत्कृष्टपदापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदना क्षेत्रात्कस्येति प्रश्नोत्तररूपेण 'सामित्तेण' इत्यादिना सूत्र अष्टकं। ततः परं पंचमस्थले वेदनीयवेदना क्षेत्रापेक्षयोत्कृष्टकथनत्वेन ''सामित्तेण'' इत्यादिना सूत्र चतुष्टयं। ततश्च षष्ठस्थले जघन्यपदे ज्ञानावरणीयवेदना कथनत्वेन ''सामित्तेण'' इत्यादिना सूत्र-चतुष्टयं। पुनः सप्तमस्थले अल्पबहुत्वादि कथनत्वेन ''अप्पाबहुए त्ति'' इत्यादिना सूत्र सप्तकं। अनंतरं अष्टमस्थले जघन्या-अवगाहनादि कथनपरत्वेन ''एत्तो सव्वजीवेसु'' इत्यादिना सूत्राणि सप्तदश। तदनु नवमस्थले ''सुहुमणिगोद'' इत्यादिना जघन्यादि-अवगाहनाल्पबहुत्वकथनत्वेन अष्टचत्वारिंशत्सूत्राणि कथ्यन्ते। ततः परं दशमस्थले ''सुहुमादो'' इत्यादिना अवगाहनागुणकारप्रमाणकथनत्वेन सूत्रपंचकं कथयिष्यते इति नवनवतिभिः सूत्रैः दशस्थलैश्च इयं पातनिका सूचिता भवति।

उन्होंने उनका उल्लेख भी किया है। पिछले द्वितीय महाधिकार का समापन अंतिम अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी की निर्वाणभूमि मथुरा चौरासी में किया तो वहाँ प्रसंगोपात्त जम्बूस्वामी की सुन्दर स्तुति को निबद्ध किया है और इस तृतीय महाधिकार में द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत पंचम अनुयोगद्वार की टीका का शुभारंभ आगरा महानगर में अपने दीक्षा दिवस के दिन किया है अतः यहाँ उसका उल्लेख किया है। आगरा शहर के बेलनगंज की धर्मशाला में पूज्य गणिनी माताजी का उस दिन उत्साहपूर्वक ४७वाँ क्षुल्लिका दिवस मनाया गया था और अनेकानेक श्रद्धालु भक्तों ने अपनी शक्ति के अनुसार नियम-संयम को ग्रहण किया था।

टीका — अब षट्खण्डागम के वेदना नामक चतुर्थ खण्ड में दशवें ग्रंथ में द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत वेदनाक्षेत्र विधान नाम के पंचम अनुयोगद्वार में तृतीय महाधिकार के निन्यानवे सूत्रों के द्वारा पातनिका अवतरित की जाती है — कही जाती है।

इस महाधिकार में दस स्थल विभक्त किये गये हैं।

उनमें से प्रथम स्थल में तीन भेदों को सूचित करने वाले ''वेयणखेत्त'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में पृच्छा की मुख्यता से 'पदमीमांसाए' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनन्तर तृतीय स्थल में स्वामित्व के भेदों को सूचित करने हेतु 'सामित्तं दुविहं' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः चतुर्थ स्थल में स्वामित्व के उत्कृष्ट पद की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना क्षेत्र की अपेक्षा किसके है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से ''सामित्तेण'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। उसके बाद पंचम स्थल में वेदनीयकर्म की वेदना का क्षेत्र की अपेक्षा से उत्कृष्ट कथन करने वाले ''सामित्तेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। आगे छठे स्थल में जघन्यपद में ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना को बतलाने हेतु ''सामित्तेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः सातवें स्थल में अल्पबहुत्व आदि का कथन करने वाले ''अप्पाबहुएत्ति'' इत्यादि सात सूत्र हैं। अनंतर आठवें स्थल में जघन्य अवगाहना आदि का कथन करने वाले ''एत्तो सव्वजीवेसु'' इत्यादि सत्रह सूत्र हैं। उसके पश्चात् नवमें स्थल में ''सुहुमणिगोद'' इत्यादि के द्वारा जघन्य आदि अवगाहनाओं का अल्पबहुत्व कथन करने वाले अड़तालिस सूत्र कहेंगे। उसके बाद अंतिम दशवें स्थल में ''सुहुमादो'' इत्यादि के द्वारा अवगाहना का गुणकार प्रमाण बतलाने वाले पाँच सूत्र कहेंगे। यह निन्यानवे सूत्रों एवं दश स्थलों की पातनिका सूचित की गई है।

अधुना वेदनाक्षेत्रविधाने भेदप्रतिपादनार्थं श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण सूत्रमवतार्यते —

वेयणखेत्तविहाणे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुओगद्दाराणि णादव्वादि भवंति।।१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका —**वेदनाक्षेत्रविधानेऽत्र श्रीभूतबलिनामाचार्यवर्येण त्रीण्यनुयोगद्वाराणि कथितानि सन्ति। अस्यां वेदनायां निक्षिप्तक्षेत्रस्यात्र निक्षेपो विधातव्यः।**

किमर्थं क्षेत्रनिक्षेपः क्रियते ?

अप्रकृतक्षेत्रस्थानस्य प्रतिषेधं कृत्वा प्रकृतक्षेत्रस्यार्थप्ररूपणां कर्तुं क्षेत्रस्य निक्षेपः कर्तव्योऽस्ति।

उक्तं च — अवगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च।
संसयविणासणट्ठं तच्चत्थवहारणट्ठं च[१]।।

तत्र क्षेत्रं चतुर्विधं — नामक्षेत्रं स्थापनाक्षेत्रं द्रव्यक्षेत्रं भावक्षेत्रं चेति। अत्र नामस्थापनाक्षेत्रे सुगमे स्तः। द्रव्यक्षेत्रं द्विविधं — आगम-नोआगमद्रव्यक्षेत्रभेदेन। तत्रागमद्रव्यक्षेत्रं नाम क्षेत्रप्राभृतज्ञायकोऽनुपयुक्तः। नोआगमद्रव्यक्षेत्रं त्रिविधं — ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तभेदेन। तत्र ज्ञायकशरीरभाविनोआगमद्रव्यक्षेत्रे सुगमे स्तः। तद्व्यतिरिक्तनोआगमक्षेत्रमाकाशं। तद् द्विविधं लोकाकाशमलोकाकाशमिति।

तत्र — लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादयः पदार्थाः स लोकस्तद्विपरीतस्त्वलोकः।

अब वेदनाक्षेत्रविधान में भेदों के प्रतिपादन हेतु श्रीमान् भूतबली आचार्य सूत्र को अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदनाक्षेत्रविधान नामका यह जो अनुयोगद्वार है, उसमें ये तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य होते हैं।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — वेदनाक्षेत्रविधान में यहाँ श्रीभूतबली आचार्यवर्य ने तीन अनुयोगद्वार कहे हैं। इस वेदना में निक्षिप्त क्षेत्र का यहाँ निक्षेप जानना चाहिए।

शंका — क्षेत्र का निक्षेप किस कारण से किया है ?

समाधान — अप्रकृत क्षेत्रस्थान का प्रतिषेध करके प्रकृत क्षेत्र की अर्थप्ररूपणा करने के लिए क्षेत्र का निक्षेप किया है। कहा भी है —

गाथार्थ — अप्रकृत का निवारण करने के लिए प्रकृत की प्ररूपणा करने के लिए, संशय को नष्ट करने के लिए और तत्त्वार्थ का निश्चय करने के लिए निक्षेप किया जाता है।।

उनमें से क्षेत्र चार प्रकार का है — नामक्षेत्र, स्थापनाक्षेत्र, द्रव्यक्षेत्र और भावक्षेत्र। उनमें नामक्षेत्र और स्थापनाक्षेत्र सुगम हैं। द्रव्यक्षेत्र आगम और नोआगम द्रव्यक्षेत्र के भेद से दो प्रकार का है। उनमें क्षेत्रप्राभृत का जानकार उपयोगरहित जीव आगमद्रव्यक्षेत्र कहलाता है। नोआगमद्रव्यक्षेत्र ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार का है। उनमें ज्ञायकशरीर और भावि नोआगमद्रव्यक्षेत्र सुगम हैं। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र आकाश है। वह दो प्रकार का है — लोकाकाश और अलोकाकाश।

इनमें जहाँ जीवादिक पदार्थ देखे जाते हैं या जाने जाते हैं वह लोक है। उससे विपरीत अलोक है।

---

१. षट्खंडागम, धवलाटीकासमन्वित पु.११, पृ.१।

कश्चिदाह—

कथमाकाशस्य क्षेत्रव्यपदेशः ?

आचार्यः प्राह—

क्षीयन्ति निवसन्त्यस्मिन् जीवादय इति आकाशस्य क्षेत्रत्वोपपत्तेः।

भावक्षेत्रं द्विविधं—आगम-नोआगमभावक्षेत्रभेदेन। तत्र क्षेत्रप्राभृतज्ञायक उपयुक्त आगमभावक्षेत्रं। सर्वद्रव्याणां स्वस्वात्मनो भावो नोआगमभावक्षेत्रं।

कथं भावस्य क्षेत्रव्यपदेशः ?

तत्र सर्वद्रव्याणामवस्थानात् भावस्य क्षेत्रसंज्ञा भवितुमर्हति।

अत्र नोआगमद्रव्यक्षेत्रस्याधिकारो वर्तते। संप्रति सूत्रस्य पदखण्डनारूपेण व्याख्यानं क्रियते—

अष्टविधकर्मद्रव्यस्य वेयणा-वेदना इति संज्ञा। वेदनाया क्षेत्रं वेदनाक्षेत्रं, वेदनाक्षेत्रस्य विधानं वेदनाक्षेत्रविधानमिति पंचमस्यानुयोगद्वारस्य गुणनाम अस्ति। इतिशब्दो व्यवच्छेदफलोऽस्ति। तत्र वेदनाक्षेत्रविधाने इमानि त्रीणि अनुयोगद्वाराणि भवन्ति।

किमर्थमत्र त्रय एवाधिकाराः प्ररूप्यन्ते ?

नैतद् वक्तव्यं, अन्येषामत्र संभवाभावात्।

कुतः ?

संख्या-स्थान-जीवसमुदाहाराणामत्रासंभवोस्ति। उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यभेदभिन्नस्वामित्वानियोगद्वारे

यहाँ कोई शंका करता है कि—

आकाश की क्षेत्र संज्ञा कैसे है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—

'क्षीयन्ति-निवसन्ति अस्मिन् अर्थात् जिसमें जीवादिक रहते हैं वह आकाश है, इस निरुक्ति के अनुसार आकाश को क्षेत्र कहना उचित ही है।

भावक्षेत्र आगम और नोआगम भावक्षेत्र के भेद से दो प्रकार का माना है। उनमें क्षेत्रप्राभृत का जानकार उपयोगयुक्त आगमभाव क्षेत्र है। सब द्रव्यों का अपना-अपना भाव नोआगमभावक्षेत्र कहलाता है।

शंका— भाव की क्षेत्र संज्ञा कैसे हो सकती है ?

समाधान— उसमें सब द्रव्यों का अवस्थान होने से भाव की क्षेत्र संज्ञा बन जाती है। यहाँ इस ग्रंथ में नोआगम-द्रव्यक्षेत्र का अधिकार है।

अब यहाँ सूत्र का पदखण्डनारूप से व्याख्यान करते हैं—

आठ प्रकार के द्रव्यकर्म की वेदना संज्ञा है। वेदना का क्षेत्र वेदनाक्षेत्र, वेदनाक्षेत्र का विधान वेदनाक्षेत्रविधान। यह पाँचवें अनुयोगद्वार का गुणनाम—सार्थक नाम है। सूत्र में स्थित 'इति' शब्द व्यवच्छेद करने वाला है। उस वेदनाक्षेत्रविधान में ये तीन अनुयोगद्वार हैं।

शंका— यहाँ केवल तीन अधिकारों की प्ररूपणा किसलिए की जाती है ?

समाधान— ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि और दूसरे अधिकार यहाँ संभव नहीं है।

क्यों नही संभव है ?

कारण यह है कि संख्या, स्थान और जीवसमुदाहार तो यहाँ संभव नहीं हैं, क्योंकि उनका अन्तर्भाव

एतेषामन्तर्भावात्। ओज-युग्मानियोगद्वारस्यापि न संभवः, तस्य पदमीमांसायां प्रवेशात्। न गुणकारानियोगद्वारस्यापि संभवः, तस्याल्पबहुत्वे प्रवेशात्। तस्माच्च त्रीण्येवानुयोगद्वाराणि भवन्तीति सिद्धम्।

संप्रति वेदनाक्षेत्रप्रतिपादनपरं भेदत्रयं तेषां नामानि च कथयता सूरिवर्येण एकं सूत्रमवतार्यते —

पदमीमांसा सामित्तं अप्पाबहुए त्ति।।२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**पदमीमांसा-स्वामित्व-अल्पबहुत्वानीति त्रीण्यनुयोगद्वाराण्यत्र ज्ञातव्यानि भवन्ति।**

प्रथममेव पदमीमांसा किमर्थमुच्यते ?

नैतदस्ति, पदेष्वनवगतेषु स्वामित्वाल्पबहुत्वयोः प्ररूपणोपायाभावात्।

तदनन्तरं स्वामित्वानुयोगद्वारमेव किमर्थमुच्यते ?

नैतद् वक्तव्यं, पदप्रमाणेऽनवगते तदल्पबहुत्वानुपपत्तेः। तस्मात् एष एवाधिकारविन्यासक्रम एषितव्यो, निरवद्यत्वात्।

एवं प्रथमस्थले वेदनाक्षेत्रभेद-नामप्ररूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना ज्ञानावरणीयवेदना क्षेत्रापेक्षया उत्कृष्टानुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नरूपेण एकं सूत्रमवतार्यते —

उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य व अजघन्य के भेद से भिन्न स्वामित्व अनुयोगद्वार में होता है। ओज-युग्मानुयोगद्वार भी संभव नहीं है, क्योंकि उसका प्रवेश पदमीमांसा में होता है। गुणकार अनुयोगद्वार भी संभव नहीं है, क्योंकि उसका प्रवेश अल्पबहुत्व में होता है। इस कारण तीन ही अनुयोगद्वार होते हैं, यह सिद्ध है।

अब वेदनाक्षेत्र के प्रतिपादन में तीन भेद और उनके नामों को बतलाने हेतु सूरिवर्य एक सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ—

पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार यहाँ ज्ञातव्य हैं।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— श्री भूतबली आचार्यदेव ने यहाँ कहा है कि पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार जानना चाहिए।

शंका— इसमें सर्वप्रथम पदमीमांसा को ही क्यों कहा है ?

समाधान— ऐसा नहीं कहना, क्योंकि पदों का ज्ञान न होने पर स्वामित्व और अल्पबहुत्व की प्ररूपणा नहीं की जा सकती है अतएव पहले पदमीमांसा की प्ररूपणा की जा रही है।

शंका— उसके पश्चात् स्वामित्व अनुयोगद्वार को ही किसलिए कहते हैं ?

समाधान— ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि पदप्रमाण स्वामी का ज्ञान न होने पर उनका अल्पबहुत्व बन नहीं सकता। इस कारण उक्त अधिकारों के इसी विन्यासक्रम को स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि यही कथन निर्दोष है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में वेदनाक्षेत्र के भेद और नामों का प्ररूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट इत्यादि प्रश्नरूप से एक सूत्र अवतरित होता है —

पदमीमांसाए णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो किं उक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा ?।।३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् सूत्रे 'ज्ञानावरण' ग्रहणेन शेषकर्मणां प्रतिषेधः कृतः। द्रव्य-काल-भावादिप्रतिषेधार्थं क्षेत्रनिर्देशः कृतः। एतत्पृच्छासूत्रं देशामर्शकं, तेनान्या नव पृच्छा एतेन सूचिताः सन्ति। तस्मात्—**

ज्ञानावरणीयवेदना किमुत्कृष्टा ? किमनुत्कृष्टा ? किं जघन्या ? किमजघन्या ? किं सादिका ? किमनादिका? किं ध्रुवा ? किमध्रुवा ? किमोजा ? किं युग्मा ? किमोमा ? किं विशिष्टा ? किं नोओम-नोविशिष्टा ? इति वक्तव्यम्।

एवं ज्ञानावरणीयवेदनाया विशेषाभावेण सामान्यरूपायाः सामान्यं विशेषाविनाभावि इति कृत्वा त्रयोदश पृच्छाः प्ररूपयितव्याः सन्ति। एतेनैव सूत्रेण सूचिता अन्यास्त्रयोदशपदविषयपृच्छा वक्तव्याः। तद्यथा—

इयं उत्कृष्टा ज्ञानावरणीयवेदना किमनुत्कृष्टा, किं जघन्या, किमजघन्या, किं सादिका, किमनादिका, किं ध्रुवा, किमध्रुवा, किमोजा, किं युग्मा, किमोमा, किं विशिष्टा, किं नोओम-नोविशिष्टा इति द्वादश पृच्छा उत्कृष्टपदस्य भवन्ति। एवं शेषपदानामपि द्वादश पृच्छाः प्रत्येकं कर्तव्याः। अत्र सर्वपृच्छासमास एकोनसप्ततिशतमात्रः (१६९)। तस्मादेतस्मिन् देशामर्शकसूत्रेऽन्यानि त्रयोदश सूत्राणि द्रष्टव्यानीति।

सूत्रार्थ—

पदमीमांसा में ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट है, क्या जघन्य है और क्या अजघन्य है ?।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र में ज्ञानावरण पद का ग्रहण करके शेष कर्मों का प्रतिषेध किया है। द्रव्य, काल और भाव आदि का प्रतिषेध करने के लिए क्षेत्र का निर्देश किया है। यह पृच्छासूत्र देशामर्शक है इसलिए इसके द्वारा अन्य नौ पृच्छाएँ सूचित की गई हैं।

इस कारण ज्ञानावरण की वेदना क्या उत्कृष्ट है ? क्या अनुत्कृष्ट है ? क्या जघन्य है ? क्या अजघन्य है ? क्या सादिक है ? क्या अनादिक है ? क्या ध्रुव है ? क्या अध्रुव है ? क्या ओज है ? क्या युग्म है ? क्या ओम है ? क्या विशिष्ट है ? और क्या नोओम-नोविशिष्ट है ? ऐसा कहना चाहिए।

इस प्रकार सामान्य चूँकि विशेष का अविनाभावी है अतः विशेष का अभाव होने से सामान्य स्वरूप का ज्ञानावरणीय वेदना के विषय में इन तेरह पृच्छाओं की प्ररूपणा की गई है, इसी सूत्र से सूचित अन्य तेरह पद विषयक पृच्छाओं को कहना चाहिए, जो इस प्रकार है—

उत्कृष्ट ज्ञानावरणवेदना क्या अनुत्कृष्ट है ? क्या जघन्य है ? क्या अजघन्य है ? क्या सादिक है? क्या अनादिक है ? क्या ध्रुव है ? क्या अध्रुव है ? क्या ओज है ? क्या युग्म है ? क्या ओम है ? क्या विशिष्ट है ? और क्या नोओम-नोविशिष्ट है ? ये बारह पृच्छाएँ उत्कृष्ट पद के विषय में होती हैं। इसी प्रकार शेष पदों में से भी प्रत्येक पद के विषय में बारह पृच्छाएँ करना चाहिए। यहाँ सब पृच्छाओं का जोड़ एक सौ उनहत्तर (१६९) मात्र होता है। इसी कारण इस देशामर्शक सूत्र में अन्य तेरह सूत्रों को देखना चाहिए।

संप्रति उक्तवेदना-उत्कृष्टेत्यादिरूपेण उत्तरप्रदानपरेण सूत्रमवतार्यते —

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा वा अजहण्णा वा।।४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका —**एतदपि देशामर्शकसूत्रं। तेनात्र शेषनवपदानि वक्तव्यानि। देशामर्शकत्वाच्चैव शेषत्रयोदशसूत्राणामत्रान्तर्भावो वक्तव्यः।**

तत्र तावत्प्रथमसूत्रप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा —

ज्ञानावरणीयवेदना क्षेत्रतः स्यादुत्कृष्टा, अष्टरज्जूनां मारणान्तिकसमुद्घातं कुर्वन्महामत्स्ये उत्कृष्टक्षेत्रोपलंभात्। स्यादनुत्कृष्टा, महामत्स्यं मुक्त्वान्यत्रानुत्कृष्टक्षेत्रदर्शनात्। स्याद् जघन्या, त्रिसमयवर्त्याहारक-त्रिसमयवर्तितद्भवस्थसूक्ष्मनिगोदजीवे जघन्यक्षेत्रोपलंभात्। स्यादजघन्या, पूर्वोक्तसूक्ष्मनिगोदं मुक्त्वा अन्यत्राजघन्यक्षेत्रदर्शनात्। स्यात्सादिका, पर्यायार्थिकनयेऽवलम्ब्यमाने सर्वक्षेत्राणां सादित्वोपलंभात्। स्यादनादिका, द्रव्यार्थिकनयेऽवलम्ब्य-मानेऽनादित्वदर्शनात्। स्याद् ध्रुवा, द्रव्यार्थिकनयं प्रतीत्य ज्ञानावरणीयक्षेत्रस्य सर्वलोकस्य ध्रुवत्वोपलंभात्। स्यादध्रुवा, पर्यायार्थिकनयं प्रतीत्याध्रुवत्वोपलंभात्। स्यादोजा, क्वचिदपि क्षेत्रविशेषे कल्योज-तेजोजसंख्या-विशेषाणामुपलंभात्। स्याद् युग्मा, कुत्रापि क्षेत्रविशेषे कृतयुग्मबादरयुग्मसंख्याविशेषाणामुपलंभात्। स्यादोमा, कुत्रापि क्षेत्रविशेषे परिहाणिदर्शनात्। स्याद् विशिष्टा, क्वचिदपि वृद्धिदर्शनात्। स्याद् नोओम-नोविशिष्टा, कुत्रापि वृद्धि-हानिभ्यां विना

अब उक्त वेदना का उत्कृष्टआदिरूप से उत्तर प्रदान करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

उक्त वेदना उत्कृष्ट भी है, अनुत्कृष्ट भी है, जघन्य भी है और अजघन्य भी है।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह भी देशामर्शक सूत्र है। इसलिए यहाँ शेष नौ पदों को कहना चाहिए। देशामर्शक होने से ही इस सूत्र में शेष तेरह सूत्रों का अन्तर्भाव कहना चाहिए।

उसमें पहले सूत्र की प्ररूपणा करते हैं, वह इस प्रकार है —

ज्ञानावरणीय की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा कथंचित् उत्कृष्ट है, क्योंकि आठ राजुओं में मारणान्तिक समुद्घात को करने वाले महामत्स्य के उत्कृष्ट क्षेत्र पाया जाता है। कथंचित् वह अनुत्कृष्ट है, क्योंकि महामत्स्य को छोड़कर अन्यत्र अनुत्कृष्ट क्षेत्र देखा जाता है। कथंचित् वह जघन्य है, क्योंकि त्रिसमयवर्ती आहारक व त्रिसमयवर्ती तद्भवस्थ सूक्ष्म निगोद जीव के जघन्य क्षेत्र पाया जाता है। कथंचित् वह अजघन्य हैं क्योंकि उक्त सूक्ष्म निगोद जीव को छोड़कर अन्यत्र अजघन्य क्षेत्र देखा जाता है। कथंचित् वह सादिक है, क्योंकि पर्यायार्थिक नय का आश्रय करने पर सब क्षेत्रों के सादिता पाई जाती है। कथंचित् वह अनादिक है, क्योंकि द्रव्यार्थिक नय का आश्रय करने पर अनादिपना देखा जाता है। कथंचित् वह ध्रुव है, क्योंकि द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म का क्षेत्र जो सब लोक है, वह ध्रुव देखा जाता है। कथंचित् वह अध्रुव है, क्योंकि पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उक्त क्षेत्र के अध्रुवपना भी देखा जाता है। कथंचित् वह ओज है, क्योंकि किसी क्षेत्रविशेष में कलिओज और तेजोज संख्याविशेष पाई जाती हैं। कथंचित् वह युग्म है, क्योंकि किसी क्षेत्र विशेष में कृतयुग्म और बादरयुग्म ये विशेष संख्याएं पाई जाती हैं। कथंचित् वह ओम है, क्योंकि किसी क्षेत्र विशेष में हानि देखी जाती है। कथंचित् वह विशिष्ट है, क्योंकि कहीं पर वृद्धि देखी जाती है। कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि कहीं पर वृद्धि और हानि के बिना क्षेत्र का अवस्थान देखा जाता है।

क्षेत्रस्यावस्थानदर्शनात्। अत्रपर्यंत त्रयोदशपृच्छाणामुत्तराणि प्रदर्शितानि सन्ति। (१३)।

इति प्रथमसूत्रप्ररूपणा सूचिता जाता।

संप्रति द्वितीयसूत्रार्थ उच्यते। तद्यथा—

उत्कृष्टा ज्ञानावरणीयवेदना जघन्या अनुत्कृष्टा च न भवति, प्रतिपक्षत्वात्। कथंचिदजघन्या, जघन्यादुपरिमाशेषक्षेत्रविकल्पावस्थितेऽजघन्ये उत्कृष्टस्यापि संभवात्। स्यात्सादिका, अनुत्कृष्टात् क्षेत्रात् उत्कृष्टक्षेत्रोत्पत्तेः। स्यादध्रुवा, उत्कृष्टपदस्य सर्वकालमवस्थानाभावात्। स्यात्कृतयुग्मा, उत्कृष्टक्षेत्रे बादरयुग्म-कलि-ओज-तेजोजसंख्याविशेषाणामनुपलंभात्। स्याद् नोओम-नोविशिष्टा, वर्द्धिते हापिते च उत्कृष्टत्व-विरोधात्। एवमुत्कृष्टज्ञानावरणीयवेदना पंचपदात्मिका अस्ति। (५)।

एवं द्वितीयसूत्रप्ररूपणा कृता।

अनुत्कृष्टज्ञानावरणीयवेदना स्याद् जघन्या, उत्कृष्टं मुक्त्वा शेषाधस्तनविकल्पेऽनुत्कृष्टे जघन्यस्यापि संभवात्। स्यादजघन्या, अनुत्कृष्टस्याजघन्याविनाभावित्वात्। स्यात्सादिका, उत्कृष्टादनुत्कृष्टपदस्योत्पत्तेः अनुत्कृष्टादपि अनुत्कृष्टविशेषस्योत्पत्तिदर्शनाच्च। अनादिका न भवति, अनुत्कृष्टपदविशेषस्य विवक्षित्वात्। अनुत्कृष्टसामान्येऽर्पितेऽप्यनादिका न भवति, उत्कृष्टादनुत्कृष्टपदपतितं प्रति सादित्वदर्शनात्। न च नित्यनिगोदेषु अनादित्वं लभ्यते, तत्रानुत्कृष्टपदानां परिवर्तनेन सादित्वोपलंभात्। स्यादध्रुवा, अनुत्कृष्टैकपदविशेषस्य सर्वदावस्थानाभावात्। सामान्य आश्रितेऽपि ध्रुवत्वं नास्ति, अनुत्कृष्टादुत्कृष्टपदं प्रतिपद्यमानजीवदर्शनात्।

यहाँ तक तेरह पृच्छाओं—प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं। (१३)

इस प्रकार प्रथम सूत्र की प्ररूपणा सूचित की गई है।

अब द्वितीय सूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—

उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय वेदना जघन्य और अनुत्कृष्ट नहीं है, क्योंकि वे उसके प्रतिपक्षी हैं। कथंचित् वह अजघन्य है, क्योंकि जघन्य से ऊपर के समस्त विकल्पों में रहने वाले अजघन्यपद में उत्कृष्टपद भी संभव है। कथंचित् वह सादिक भी है, क्योंकि अनुत्कृष्ट क्षेत्र से उत्कृष्ट क्षेत्र की उत्पत्ति होती है। कथंचित् वह अध्रुव भी है, क्योंकि उत्कृष्ट पद सर्वदा नहीं रहता है। कथंचित् वह कृतयुग्म भी है, क्योंकि उत्कृष्ट क्षेत्र में बादरयुग्म, कलिओज और तेजोजरूप विशेष संख्याएँ नहीं पाई जाती है। कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट भी है, क्योंकि वृद्धि और हानि के होने पर उत्कृष्टपने का विरोध आता है। इस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञानावरणीयवेदना पाँच (पद) पदस्वरूप है।

इस प्रकार द्वितीय सूत्र की प्ररूपणा की गई है।

अनुत्कृष्ट ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् जघन्य है, क्योंकि उत्कृष्ट को छोड़कर शेष सब नीचे के विकल्परूप अनुत्कृष्टपद में जघन्य पद भी संभव है। कथंचित् वह अजघन्य भी है, क्योंकि अनुत्कृष्ट अजघन्य का अविनाभावी है। कथंचित् वह सादिक भी है, क्योंकि उत्कृष्ट पद से अनुत्कृष्ट पद की उत्पत्ति होती है तथा अनुत्कृष्ट से भी अनुत्कृष्ट विशेष की उत्पत्ति देखी जाती है। वह अनादिक नहीं है, क्योंकि यहाँ अनुत्कृष्ट पदविशेष की विवक्षा है। अनुत्कृष्ट सामान्य की विवक्षा करने पर भी वह अनादि नहीं हो सकती, क्योंकि उत्कृष्ट से अनुत्कृष्ट पद में गिरने की अपेक्षा सादिपना देखा जाता है। यदि कहा जाये कि नित्यनिगोद जीवों में उसका अनादिपना पाया जाता है, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि उनमें भी अनुत्कृष्ट पदों के पलटने से सादिपना पाया जाता है। कथंचित् वह अध्रुव भी है, क्योंकि सर्वदा एक अनुत्कृष्ट पद विशेष रह नहीं सकता।

स्यादोजा, क्वचिदपि पदविशेषेऽवस्थितद्विविधविषमसंख्योपलंभात्। स्याद् युग्मा, क्वचिदपि अनुत्कृष्टपदविशेषे द्विविधसमसंख्यादर्शनात्। स्यादोमा, कुत्रापि हानितः समुत्पन्नानुत्कृष्टपदोपलंभात्। स्याद् विशिष्टा, कुत्रापि वृद्धितोऽनुत्कृष्टपदोपलंभात्। स्यान्नोओम नोविशिष्टा, अनुत्कृष्टजघन्येऽनुत्कृष्टपदविशेषे वाऽर्पिते वृद्धिहान्योरभावात्। एवं ज्ञानावरणानुत्कृष्टवेदना नवपदात्मिका (९)।

एवं तृतीयसूत्रप्ररूपणा कृता भवति।

संप्रति चतुर्थसूत्रप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—

जघन्या ज्ञानावरणीयवेदना कथंचिदनुत्कृष्टा, अनुत्कृष्टजघन्यस्य ओघजघन्येन विशेषाभावात्। कथंचित्सादिका, अजघन्याद् जघन्यपदोत्पत्तेः। कथंचिदध्रुवा शाश्वतभावेनावस्थानाभावात्। अत्रानादिध्रुवपदे न स्तः, जघन्यक्षेत्रविशेषेऽनादिध्रुवत्वानुपलंभात्। कथंचित् युग्मा, चतुर्भिरपहृते क्रियमाणे शेषं किमपि नादृश्यत। कथंचित् नोओम-नोविशिष्टा, तत्र वृद्धिहान्योरभावात्। एवं जघन्यक्षेत्रवेदना पञ्चप्रकारा स्वरूपेण षट्प्रकारा वा (५-६)।

एवं चतुर्थसूत्रप्ररूपणा कृता।

संप्रति पंचमसूत्रप्ररूपणा विधीयते। तद्यथा—

अजघन्या ज्ञानावरणीयवेदना कथंचिदुत्कृष्टा, अजघन्योत्कृष्टस्य ओघोत्कृष्टात् पृथक्त्वानुपलंभात्।

सामान्य का आश्रय करने पर भी ध्रुवपना संभव नहीं है, क्योंकि अनुत्कृष्ट से उत्कृष्ट पद को प्राप्त होने वाले जीव देखे जाते हैं। कथंचित् वह ओज भी है, क्योंकि किसी पद विशेष में अवस्थित दोनों प्रकार की विषम संख्या पाई जाती है। कथंचित् वह युग्म भी है, क्योंकि किसी अनुत्कृष्ट पद विशेष में दोनों प्रकार की सम संख्या देखी जाती हैं। कथंचित् वह ओम भी है, क्योंकि कहीं पर हानि से भी उत्पन्न अनुत्कृष्ट पद पाया जाता हैं कथंचित् वह विशिष्ट भी है क्योंकि कहीं पर वृद्धि से भी अनुत्कृष्ट पद पाया जाता है, कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट भी है, क्योंकि अनुत्कृष्ट जघन्य में अथवा अनुत्कृष्ट पदविशेष की विवक्षा करने पर वृद्धि और हानि नहीं पाई जाती है। इस प्रकार ज्ञानावरण की विवक्षा करने पर वृद्धि और हानि नहीं पाई जाती है। इस प्रकार ज्ञानावरण की अनुत्कृष्ट वेदना नौ (९) पदात्मक है।

इस प्रकार तीसरे सूत्र की अर्थप्ररूपणा की गई है।

अब चतुर्थ सूत्र की प्ररूपणा की जा रही है। वह इस प्रकार है—

जघन्य ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट है, क्योंकि अनुत्कृष्ट जघन्य ओघ-जघन्य से भिन्न नहीं है। कथंचित् वह सादिक भी है, क्योंकि अजघन्य से जघन्य पद उत्पन्न होता है। कथंचित् वह अध्रुव भी है, क्योंकि उसका सर्वदा अवस्थान नहीं रहता। अनादि और ध्रुव पद उसके नहीं हैं, क्योंकि जघन्य क्षेत्र विशेष में अनादि एवं ध्रुवपना नहीं पाया जाता है। कथंचित् वह युग्म है, क्योंकि उसे चार से अपहृत करने पर शेष कुछ नहीं रहता है। कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट है, क्योंकि उसमें वृद्धि और हानि का अभाव पाया जाता है। इस प्रकार जघन्य क्षेत्रवेदना पाँच प्रकार (५) अथवा अपने रूप के साथ छह प्रकार की है।

इस प्रकार चतुर्थ सूत्र की प्ररूपणा की है।

अब पाँचवें सूत्र की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—

अजघन्य ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, क्योंकि अजघन्य उत्कृष्ट ओघ उत्कृष्ट से पृथक् नहीं पाया जाता है। कथंचित् वह अनुत्कृष्ट भी है, क्योंकि वह उसका अविनाभावी है। कथंचित् वह सादिक भी है,

कथंचिदनुत्कृष्टा, तदविनाभावात्। कथंचित्सादिका, परिवर्तनेन विना अजघन्यपदविशेषाणामवस्थानाभावात्। कथंचिदध्रुवा, कारणं सुगमं। कथंचिदोजा, कथंचिद् युग्मा, कथंचिदोमा, कथंचिद् विशिष्टा। सुगमं वर्तते। कथंचिद् नोओम-नोविशिष्टा, निरुद्धपदविशेषत्वात्। एवमजघन्या नवभंगा दशभंगा वा (९-१०)।

एषः पंचमसूत्रार्थः समाप्तः।

सादिका ज्ञानावरणवेदना कथंचिदुत्कृष्टा, कथंचिदनुत्कृष्टा, कथंचिद् जघन्या, कथंचिदजघन्या, कथंचिदध्रुवा। नानादिका न ध्रुवा, सादिकस्य अनादिध्रुवत्वविरोधात्। कथंचिदोजा, कथंचिद् युग्मा, कथंचिदोमा, कथंचिद् विशिष्टा, कथंचिन्नोओम-नोविशिष्टा। एवं सादिकवेदनाया दशभंगा एकादश भंगा वा। (१०-११)।

एषः षष्ठसूत्रार्थः कृतोऽभवत्।

अनादिका ज्ञानावरणीयवेदना कथंचिदुत्कृष्टा, कथंचिदनुत्कृष्टा, कथंचिद् जघन्या, कथंचिदजघन्या, कथंचित्सादिका।

कथमनादिकावेदनायाः सादित्वम् ?

नैतद् वक्तव्यं, सामान्यापेक्षया वेदनायां अनादिकायां सत्यामपि उत्कृष्टादिपदविशेषाणामपेक्षया सादित्व-विरोधाभावात्।

कथंचिद् ध्रुवा वेदना, सामान्यस्य विनाशाभावात्। कथंचिदध्रुवा, पदविशेषस्य विनाशदर्शनात्।

सामान्यविवक्षाया अनादित्वे समुत्पन्ने कथं पदविशेषसंभवः ?

क्योंकि पलटने के बिना अजघन्य पदविशेषों का अवस्थान नहीं है। कथंचित् वह अध्रुव भी है, इसका कारण सुगम है। कथंचित् वह ओज भी है, कथंचित् वह युग्म भी है और कथंचित् वह विशिष्ट भी है। इसका कारण सुगम है। कथंचित् वह नोओम-नोविशिष्ट भी है, क्योंकि यहाँ निरुद्ध पदविशेष की विवक्षा है। इस प्रकार अजघन्य वेदना के नौ या दस भंग (९-१०) होते हैं।

यह पाँचवें सूत्र का अर्थ समाप्त हुआ।

सादिक ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् उत्कृष्ट, कथंचित् अनुत्कृष्ट, कथंचित् जघन्य, कथंचित् अजघन्य और कथंचित् अध्रुव भी है। वह न अनादि है और न ध्रुव है, क्योंकि सादि पद के अनादि व ध्रुव होने का विरोध है। कथंचित् वह ओज है, कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट भी है। इस प्रकार सादि वेदना के दस अथवा ग्यारह भंग (१०-११) होते हैं।

यह छठे सूत्र का अर्थ किया है।

अनादि ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है और कथंचित् सादिक भी है।

शंका — अनादि वेदना सादिक कैसे हो सकती है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि सामान्य की अपेक्षा वेदना के अनादि होने पर भी उत्कृष्ट आदि पद विशेषों की अपेक्षा उसके सादि होने में कोई विरोध नहीं आता है।

कथंचित् वह वेदना ध्रुव है, क्योंकि सामान्य का कभी विनाश नहीं होता। कथंचित् वह अध्रुव भी है, क्योंकि पदविशेष का विनाश देखा जाता है।

शंका — सामान्य विवक्षा से अनादित्व के होने पर पदविशेष की संभावना ही कैसे हो सकती है ?

नैतद् वक्तव्यं, स्वकान्तोक्षिप्ताशेषविशेषे सामान्येऽर्पिते तदविरोधात्।

कथंचिदोजा, कथंचिद् युग्मा, कथंचिदोमा, कथंचिद् विशिष्टा, कथंचिद् नोओम-नोविशिष्टा। एवमनादिका वेदना द्वादशभंगा त्रयोदशभंगा वा (१२-१३)।

एषः सप्तमसूत्रार्थो गतः।

ध्रुवज्ञानावरणीयवेदना कथंचिदुत्कृष्टा, कथंचिदनुत्कृष्टा, कथंचित् जघन्या, कथंचिदजघन्या, कथंचित्सादिका, कथंचिदनादिका, कथंचिदध्रुवा, कथंचिदोजा, कथंचिद् युग्मा, कथंचिदोमा, कथंचिद् विशिष्टा, कथंचिन्नोओम-नोविशिष्टा। एवं ध्रुवपदस्य द्वादशभंगा त्रयोदशभंगा वा (१२-१३)।

एषोऽष्टमसूत्रार्थो गतः।

अध्रुवज्ञानावरणीयवेदना कथंचिदुत्कृष्टा, कथंचिदनुत्कृष्टा, कथंचिद् जघन्या, कथंचिद् अजघन्या, कथंचित् सादिका, कथंचिदोजा, कथंचिद् युग्मा, कथंचिदोमा, कथंचिद् विशिष्टा, कथंचिन्नोओम-नोविशिष्टा। एवमध्रुवपदस्य दश भंगा एकादशभंगा वा (१०-११)।

एषो नवमसूत्रार्थः समाप्तः।

ओजज्ञानावरणीयवेदना उत्कृष्टजघन्यपदयोर्नास्ति, कृतयुग्मे तेषामवस्थानात्। ततः कथंचिदनुत्कृष्टा, कथंचिदजघन्या, कथंचित्सादिका। कथंचिदनादिका।

कुतः ?

सामान्यविवक्षातः। कथंचिद् ध्रुवा, सामान्यविवक्षातश्चैव। कथंचिदध्रुवा, विशेषविवक्षायाः।

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि अपने भीतर समस्त विशेषों को रखने वाले सामान्य की विवक्षा होने पर उसमें कोई विरोध नहीं पाया जाता है।

कथंचित् वह ओज है, कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट भी है। इस प्रकार अनादिवेदना के बारह भंग अथवा तेरह भंग (१२-१३) होते हैं।

यह सातवें सूत्र का अर्थ हुआ।

ध्रुवज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् अनादि है, कथंचित् अध्रुव है, कथंचित् ओज है, कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट भी है। इस प्रकार ध्रुव पद के बारह अथवा तेरह भंग (१२-१३) होते हैं।

यह आठवें सूत्र का अर्थ हुआ।

अध्रुव ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् उत्कृष्ट है, कथंचित् अनुत्कृष्ट है, कथंचित् जघन्य है, कथंचित् अजघन्य है, कथंचित् सादि है, कथंचित् ओज है, कथंचित् युग्म है, कथंचित् ओम है, कथंचित् विशिष्ट है और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट भी है। इस प्रकार अध्रुव पद के दस अथवा ग्यारह भंग (१०-११) होते हैं।

यह नौवें सूत्र का अर्थ हुआ।

ओजज्ञानावरणीयवेदना उत्कृष्ट और जघन्य पदों में नहीं होती है, क्योंकि उनका अवस्थान कृतयुग्म राशि में है। इसलिए वह कथंचित् अनुत्कृष्ट, कथंचित् अजघन्य व कथंचित् सादि है। वह कथंचित् अनादि भी है। क्यों ? क्योंकि सामान्य की विवक्षा है। कथंचित् वह ध्रुव भी है, क्योंकि उसी सामान्य की ही विवक्षा है। कथंचित् वह विशेष की विवक्षा से अध्रुव भी है।

अस्मिन् द्रव्यविधाने अनादिध्रुवत्वं किन्न प्ररूपितम् ?

नैतत्कथयितव्यं, तत्र सामान्यविवक्षाया अभावात्। यदि सामान्यस्य विवक्षा अभीष्टा भवेत् तर्हि तत्रापि एतौ द्वौ भंगौ वक्तव्यौ।

कथंचिदोमा, कथंचिद् विशिष्टा, कथंचिन्नोओम-नोविशिष्टा। एवमोजस्य नव भंगा दश भंगा वा (९-१०)।

एषः दशमसूत्रार्थः समाप्तः।

युग्मज्ञानावरणीयवेदना कथंचिदुत्कृष्टा, कथंचिदनुत्कृष्टा, कथंचिद् जघन्या, कथंचिदजघन्या, कथंचित्सादिका, कथंचिदनादिका, कथंचिद् ध्रुवा, कथंचिदध्रुवा, कथंचिदोमा, कथंचिद् विशिष्टा, कथंचिद् नोओम-नोविशिष्टा। एवं युग्मस्य एकादश भंगा द्वादश भंगा वा (११-१२)।

एष एकादशमसूत्रार्थः समाप्तः।

ओमज्ञानावरणीयवेदना कथंचिदनुत्कृष्टा, कथंचिदजघन्या, कथंचित्सादिका, कथंचिदनादिका, ओमत्वसामान्यविवक्षायाः।

कथंचिद् ध्रुवा, ओमत्वसामान्यविवक्षितत्वात् एव हेतोः। स्यादध्रुवा। सामान्यविवक्षाया अभावेन द्रव्यविधाने ओमस्य अनादिध्रुवत्वे न प्ररूपिते।

कथंचिदोजा, कथंचिद् युग्मा। एवमोमपदस्य अष्ट नव भंगा वा (८-९)।

एषो द्वादशमसूत्रार्थः प्ररूपितः।

विशिष्टज्ञानावरणीयवेदना कथंचिदनुत्कृष्टा, कथंचिदजघन्या, कथंचित्सादिका, कथंचिदनादिका, कथंचिद्

शंका — इस द्रव्य विधान में अनादि और ध्रुव पदों की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वहाँ सामान्य की विवक्षा का अभाव है। यदि सामान्य की विवक्षा अभीष्ट हो तो वहाँ भी इन दो पदों को कहना चाहिए।

वह कथंचित् ओम, कथंचित् विशिष्ट और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट भी है। इस प्रकार ओज पद के नौ (९-१०) भंग अथवा दस भंग (९-१०) होते हैं।

यह दशवें सूत्र का अर्थ हुआ।

युग्मज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् उत्कृष्ट, कथंचित् अनुत्कृष्ट, कथंचित् जघन्य, कथंचित् अजघन्य, कथंचित् सादि, कथंचित् अनादि, कथंचित् ध्रुव, कथंचित् अध्रुव, कथंचित् ओम, कथंचित् विशिष्ट और कथंचित् नोओम-नोविशिष्ट भी है। इस प्रकार युग्म पद के ग्यारह (११-१२) अथवा बारह भंग होते हैं।

यह ग्यारहवें सूत्र का अर्थ है।

ओमज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट, कथंचित् अजघन्य व कथंचित् सादि भी है। वह कथंचित् अनादि भी है क्योंकि ओमत्व सामान्य की विवक्षा है। इसी कारण से-ओमत्व सामान्य की विवक्षा से वह कथंचित् ध्रुव भी है। कथंचित् वह अध्रुव भी है। सामान्य की विवक्षा न होने से द्रव्यविधान में ओम के अनादि और ध्रुवपद नहीं कहे गये हैं। वह कथंचित् ओज और कथंचित् युग्म भी है। इस प्रकार ओम के आठ पद के आठ अथवा नौ भंग (८-९) होते हैं।

यह बारहवें सूत्र का अर्थ है।

विशिष्टज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् अनुत्कृष्ट, कथंचित् अजघन्य, कथंचित् सादि, कथंचित् अनादि,

ध्रुवा, कथंचिदध्रुवा, कथंचिदोजा, कथंचिद् युग्मा। एवं विशिष्टपदस्य अष्टभंगा नव भंगा वा (८-९)।

एषः त्रयोदशमसूत्रार्थः समाप्तः।

नोओम-नोविशिष्टा ज्ञानावरणीयवेदना कथंचिदुत्कृष्टा, कथंचिदनुत्कृष्टा, कथंचिद् जघन्या, कथंचिदजघन्या, कथंचित्सादिका, कथंचिदनादिका।

कुतः अनादिका सिद्ध्यति ?

नोओम-नोविशिष्टत्वविवक्षायाः।

कथंचिद् ध्रुवा, तेनैव कारणेन। कथंचिदध्रुवा, कथंचिदोजा, कथंचिद् युग्मा। एवं दश भंगा एकादश भंगा वा (१०-११)।

एषः चतुर्दशमसूत्रार्थः समाप्तः।

एतेषां भंगानामंकविन्यासक्रमो ज्ञातव्यः।

।१३।५।९।५।९।१०।१२।१२।१०।९।११।८।८।१०।

तात्पर्यमेतत्—एतेषां संकलने सति (१३+५+९+५+ ९+१०+१२+१२+१०+९+११+८+८+१०=१३१) एकत्रिंशदुत्तरशतानि भवन्तीति ज्ञातव्यं।

अत्र पर्यंतं ज्ञानावरणीयकर्मणो पदमीमांसा सूचिता भवति।

संप्रति शेषकर्मणां पदमीमांसानिरूपणार्थं सूत्रमेकमवतार्यते —

एवं सत्तण्हं कम्माणं।।५।।

कथंचित् ध्रुव, कथंचित् अध्रुव, कथंचित् ओज और कथंचित् युग्म भी है। इस प्रकार विशिष्ट पद के आठ अथवा नौ भंग (८-९) होते हैं।

यह तेरहवें सूत्र का अर्थ है।

नोओम-नोविशिष्टज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् उत्कृष्ट, कथंचित् अनुत्कृष्ट, कथंचित् जघन्य, कथंचित् अजघन्य व कथंचित् सादि भी है। कथंचित् वह अनादि भी है।

प्रश्न—वह अनादिक कैसे सिद्ध होते हैं ?

उत्तर—नोओम-नोविशिष्ट सामान्य की विवक्षा से वह अनादिक सिद्ध है। इसी कारण से वह कथंचित् ध्रुव भी है। वह कथंचित् अध्रुव, कथंचित् ओज और कथंचित् युग्म भी है। इस प्रकार नोओम-नोविशिष्ट पद के दस अथवा ग्यारह भंग (१०-११) होते हैं।

यह चौदहवें सूत्र का अर्थ है।

इन भंगों का अंकविन्यास इस प्रकार जानना चाहिए।

।१३।५।९।५।९।१०।१२।१२।१०।९।११।८।८।१०।

तात्पर्य यह है कि—इन सबका संकलन करने पर (१३+५+९+५+९+१०+१२+१२+१०+९+११+८+८+१०=१३१) एक सौ इकतीस ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ तक ज्ञानावरणीय कर्म की मीमांसा सूचित की गई है।

अब शेष कर्मों की पदमीमांसा का निरूपण करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार सात कर्मों की पदमीमांसा संबंधी प्ररूपणा करना चाहिए।।५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा प्रथमकर्मणो ज्ञानावरणीयस्य पदमीमांसा कृतास्ति तथैव शेषसप्तानां कर्मणां पदमीमांसा कर्तव्या।**

अत्र पर्यंतं अन्तःक्षिप्तौजानुयोगद्वारपदमीमांसा समाप्ता।

एवं द्वितीयस्थले भेदप्रभेदसमन्वितपदमीमांसाप्रतिपादनपरत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना वेदनाक्षेत्रविधाने स्वामित्वनामद्वितीयस्य भेदप्रतिपादनार्थं सूत्रमेकमवतार्यते[1] —

सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे।।६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**जघन्यपदोत्कृष्टपदभेदेन एतत्स्वामित्वं द्विविधं कथ्यते। तत्र जघन्यपदं चतुर्विधं—नाम-स्थापना-द्रव्य-भावजघन्यमिति। नामजघन्यपदं स्थापनाजघन्यपदं च सुगमं वर्तते। द्रव्यजघन्यं द्विविधं—आगमद्रव्यजघन्यं नोआगमद्रव्यजघन्यं चेति। तत्र जघन्यप्राभृतज्ञायकोऽनुपयुक्त आगमद्रव्यजघन्यं। नोआगमद्रव्यजघन्यं त्रिविधं—ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यजघन्यभेदेन। ज्ञायकशरीरभाविभेदौ सुगमौ स्तः। तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यजघन्यं द्विविधं—ओघजघन्यमादेशेन जघन्यं चेति।**

तत्र ओघजघन्यं चतुर्विधं—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्चेति। अत्रापि द्रव्यजघन्यमेकः परमाणुः। क्षेत्रजघन्यं द्विविधं—कर्मनोकर्मक्षेत्रजघन्यभेदेन। तत्र सूक्ष्मनिगोदस्य जीवस्य जघन्या अवगाहना कर्मक्षेत्रजघन्यं भवति। नोकर्मक्षेत्रजघन्यमेक आकाशप्रदेशः। कालजघन्यमेकः समयः। परमाणौ स्निग्धत्वादिगुणः

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म की पदमीमांसा की गई है उसी प्रकार शेष सातों कर्मों की पदमीमांसा करना चाहिए।

यहाँ तक अन्तःक्षिप्त ओजानुयोगद्वार की पदमीमांसा समाप्त हुई।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में भेद-प्रभेदों से समन्वित पदमीमांसा का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र समाप्त हुए।

अब वेदनाक्षेत्रविधान में स्वामित्व नाम के द्वितीय भेद का प्रतिपादन करने हेतु एक सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व दो प्रकार का है—जघन्यपदरूप और उत्कृष्टपदरूप।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र के द्वारा जघन्यपद और उत्कृष्टपद के भेद से स्वामित्व के दो प्रकार बताए हैं। उनमें से जघन्यपद चार प्रकार का है—नामजघन्य, स्थापनाजघन्य, द्रव्यजघन्य और भावजघन्य। इनमें नामजघन्यपद और स्थापनाजघन्यपद सुगम हैं। द्रव्यजघन्यपद दो प्रकार का है—आगमद्रव्यजघन्यपद और नोआगमद्रव्यजघन्यपद। इनमें जघन्य प्राभृत का जानकार उपयोगरहित जीव आगमद्रव्यजघन्यपद कहा जाता है। नोआगमद्रव्यजघन्यपद तीन प्रकार का है—ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त। इनमें ज्ञायक शरीर और भावी सुगम हैं। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यजघन्य दो प्रकार का है। ओघजघन्य और आदेशजघन्य।

इनमें ओघजघन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार प्रकार का होता है। उनमें भी द्रव्यजघन्य एक परमाणु है। क्षेत्रजघन्य कर्मक्षेत्रजघन्य और नोकर्मक्षेत्रजघन्य के भेद से दो प्रकार का है। उनमें सूक्ष्म निगोद जीव की जघन्य अवगाहना कर्मक्षेत्र जघन्य है। नोकर्मक्षेत्रजघन्य एक आकाशप्रदेश है। एक समय

---

१. विशेषः - अद्य चैत्रकृष्णानवमी, श्रीऋषभदेवजन्मकल्याणकतिथिः श्रीऋषभजयन्ती सर्वत्र देशे राज्ये राष्ट्रे पुरे चास्माकमपि मंगलकारिणी भूयादिति भावयामहे।

भावजघन्यमिति ज्ञातव्यम्।

आदेशजघन्यमपि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावभेदैश्चतुर्विधं भवति। तत्र द्रव्यतः आदेशजघन्यमुच्यते। तदेवं ज्ञातव्यं—त्रिप्रदेशिस्कंधं दृष्ट्वा द्विप्रदेशिस्कंधः आदेशतो द्रव्यजघन्यं भवति। एवं शेषेष्वपि नेतव्यम्। त्रिप्रदेशावगाढद्रव्यं दृष्ट्वा द्विप्रदेशावगाढद्रव्यं क्षेत्रतः आदेशजघन्यं। एवं शेषेष्वपि नेतव्यं। त्रिसमयपरिणतं द्रव्यं दृष्ट्वा द्विसमयपरिणतं द्रव्यं आदेशतः कालजघन्यं। एवं शेषेष्वपि नेतव्यं। त्रिगुणपरिणतं द्रव्यं अपेक्ष्य द्विगुणपरिणतं द्रव्यं भावतः आदेशजघन्यं भवति।

भावजघन्यं द्विविधं—आगम-नोआगम भावजघन्यभेदेन। तत्र जघन्यप्राभृतज्ञायक उपयुक्त आगमभाव-जघन्यं। सूक्ष्मनिगोदजीवलब्ध्यपर्याप्तकस्य यत्सर्वजघन्यज्ञानं तन्नोआगमभावजघन्यं।

अत्र ओघजघन्यक्षेत्रेण प्रकृतं, ज्ञानावरणीयक्षेत्रेषु सर्वजघन्यक्षेत्रग्रहणात्। सर्वजघन्यक्षेत्रमेक आकाशप्रदेश इत्यत्र न गृहीतव्यं। ज्ञानावरणीयक्षेत्रेषु तदभावात्।

उत्कृष्टपदं स्वामित्वं चतुर्विधं—नाम-स्थापना-द्रव्य-भावोत्कृष्टभेदेन। तत्र नामोत्कृष्टं स्थापनोत्कृष्टं च सुगमं। द्रव्योत्कृष्टं द्विविधं—आगम-नोआगमद्रव्योत्कृष्टभेदेन। तत्रोत्कृष्टप्राभृतज्ञायकोऽनुपयुक्त आगमद्रव्योत्कृष्टं। नोआगमद्रव्योत्कृष्टं त्रिविधं—ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्योत्कृष्टभेदेन। ज्ञायकशरीर-भाविनोआगमद्रव्योत्कृष्टौ सुगमौ स्तः। तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्योत्कृष्टं द्विविधं—ओघोत्कृष्टं आदेशोत्कृष्टं चेति।

तत्र ओघोत्कृष्टं चतुर्विधं—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्चेति। तत्र द्रव्यत उत्कृष्टं महास्कंधः। क्षेत्रत

कालजघन्य है। परमाणु में रहने वाला स्निग्धत्व आदि गुण भावजघन्य है, ऐसा जानना चाहिए।

आदेशजघन्य भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चार प्रकार का है। उनमें द्रव्य से आदेशजघन्य को बतलाते हैं। वह इस प्रकार जानना चाहिए—तीन प्रदेश वाले स्कंध को देखकर दो प्रदेश वाला स्कंध आदेश से द्रव्यजघन्य होता है। इसी प्रकार शेष स्कंधों में भी ले जाना चाहिए। तीन प्रदेशों से व्याप्त द्रव्य को देखकर अवगाहना करने वाले द्रव्य की अपेक्षा दो प्रदेशों को अवगाहन करने वाला द्रव्य क्षेत्र की अपेक्षा आदेश जघन्य है। इसी प्रकार शेष प्रदेशों में भी ले जाना चाहिए—तीन समय परिणत द्रव्य को देखकर दो समय परिणत द्रव्य आदेश से कालजघन्य है। इसी प्रकार शेष समयों में भी ले जाना चाहिए। तीन गुण परिणत द्रव्य को देखकर दो गुण परिणत द्रव्य भाव से आदेशजघन्य होता है।

भावजघन्य आगमभाव जघन्य और नोआगमभावजघन्य के भेद से दो प्रकार का है। उनमें जघन्य प्राभृत का जानकार उपयोग युक्त जीव आगमभावजघन्य है। सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव का जो सबसे जघन्य ज्ञान है, वह नोआगमभावजघन्य है।

यहाँ ओघजघन्य क्षेत्र से प्रकृत है, क्योंकि ज्ञानावरणीय के क्षेत्रों में सर्वजघन्य क्षेत्र का ग्रहण है। यहाँ सर्वजघन्य क्षेत्ररूप एक आकाशप्रदेश को नहीं लेना चाहिए, क्योंकि ज्ञानावरणीय के क्षेत्रों में उसका (सर्वजघन्य क्षेत्र का) अभाव पाया जाता है।

उत्कृष्ट पदस्वामित्व नाम उत्कृष्ट, स्थापनाउत्कृष्ट, द्रव्यउत्कृष्ट और भावउत्कृष्ट के भेद से चार प्रकार का है। उनमें नाम उत्कृष्ट और स्थापनाउत्कृष्ट सुगम है। द्रव्य उत्कृष्ट आगमद्रव्यउत्कृष्ट और नोआगमद्रव्यउत्कृष्ट के भेद से दो प्रकार का है। उनमें उत्कृष्ट प्राभृत का जानकार उपयोग रहित जीव आगम द्रव्य उत्कृष्ट है। नो आगमद्रव्य उत्कृष्ट ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यउत्कृष्ट के भेद से तीन प्रकार का है। इनमें ज्ञायक शरीर और भावी नोआगमद्रव्यउत्कृष्ट सुगम हैं। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य-उत्कृष्ट दो प्रकार का है—ओघ उत्कृष्ट और आदेश उत्कृष्ट।

इनमें ओघउत्कृष्ट द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार प्रकार का है। उनमें द्रव्य से उत्कृष्ट

उत्कृष्टं द्विविधं—कर्मक्षेत्रं नोकर्मक्षेत्रमिति। कर्मक्षेत्रोत्कृष्टं लोकाकाशं। नोकर्मक्षेत्रोत्कृष्टं आकाशद्रव्यं। कालत उत्कृष्टमनन्ता लोकाः। भावत उत्कृष्टं सर्वोत्कृष्टवर्णगंधरसस्पर्शाः।

आदेशोत्कृष्टमपि चतुर्विधं—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावतश्चेति। तत्र द्रव्यत एकपरमाणुं दृष्ट्वा द्विप्रदेशिकस्कंध आदेशोत्कृष्टं। द्विप्रदेशिक स्कंधं दृष्ट्वा त्रिप्रदेशिकस्कंधोऽपि आदेशोत्कृष्टं। एवं शेषेषु अपि नेतव्यम्। क्षेत्रत एकक्षेत्रं दृष्ट्वा द्विक्षेत्रप्रदेशौ आदेशत उत्कृष्टं क्षेत्रम्। एवं शेषेष्वपि नेतव्यं। कालत एकसमयं दृष्ट्वा द्विसमयौ ओदेशोत्कृष्टं। एवं शेषेष्वपि नेतव्यं। भावापेक्षया एकगुणयुक्तं दृष्ट्वा द्विगुणयुक्तं द्रव्यमादेशोत्कृष्टं। एवं शेषेष्वपि नेतव्यम्।

भावोत्कृष्टं द्विविधं—आगम-नोआगमभावोत्कृष्टभेदेन। तत्रोत्कृष्टप्राभृतज्ञायक उपयुक्त आगमभावोत्कृष्टं। नोआगमभावोत्कृष्टं केवलज्ञानं।

अत्र ओघक्षेत्रोत्कृष्टेन अधिकारः, अर्पितकर्मक्षेत्रेषु उत्कृष्टक्षेत्रग्रहणात्। ओघोत्कृष्टमाकाशद्रव्यं।

तस्य ग्रहणमत्र किन्न कृतं ?

नैतत्, कर्मक्षेत्रेषु तदभावात्। एकं स्वामित्वं जघन्यपदेऽस्ति, अन्यैकमुत्कृष्टपदेऽस्ति, एवं द्विविधं चैव स्वामित्वं भवति, अन्यस्यासंभवात्।

अत्र तात्पर्यमेतत्—केवलज्ञानमत्र नोआगमभावोत्कृष्टमस्ति। अस्य केवलज्ञानस्य प्राप्त्यर्थमेव श्रुतज्ञानाभ्यासोऽयं अतो द्रव्यश्रुतरूपं शास्त्रं पठित्वा निजात्मनि स्वशुद्धपरमात्मानः श्रद्धानं विधाय प्रत्यहं

महास्कंध है। क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट दो प्रकार का है—कर्मक्षेत्र और नोकर्मक्षेत्र। लोकाकाश कर्मक्षेत्र उत्कृष्ट है। आकाश द्रव्य नोकर्मक्षेत्र-उत्कृष्ट है। अनन्त लोक काल की अपेक्षा उत्कृष्ट हैं। भाव से उत्कृष्ट सर्वोत्कृष्ट वर्ण, गंध, रस और स्पर्श हैं।

आदेश उत्कृष्ट भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार प्रकार का है। इनमें एक परमाणु को देखकर दो प्रदेश वाला स्कंध द्रव्य से आदेश उत्कृष्ट है। दो प्रदेश वाले स्कंध को देखकर तीन प्रदेश वाला स्कंध भी आदेश उत्कृष्ट है। इसी प्रकार शेष स्कंधों में भी ले जाना चाहिए। क्षेत्र की अपेक्षा एक क्षेत्रप्रदेश को देखकर दो क्षेत्र प्रदेश आदेश की अपेक्षा उत्कृष्ट क्षेत्र है। इसी प्रकार शेष प्रदेशों में भी ले जाना चाहिए। काल की अपेक्षा एक समय को देखकर दो समय आदेश उत्कृष्ट हैं। इसी प्रकार शेष समयों में भी ले जाना चाहिए। भाव की अपेक्षा एक गुणयुक्त द्रव्य को देखकर दो गुणयुक्त द्रव्य आदेश उत्कृष्ट हैं। इसी प्रकार शेष गुणों में भी ले जाना चाहिए।

भावउत्कृष्ट आगमभावउत्कृष्ट और नोआगमभावउत्कृष्ट के भेद से दो प्रकार का है। उनमें उत्कृष्ट प्राभृत का जानकार उपयोगयुक्त जीव आगमभाव उत्कृष्ट है। नोआगमभाव उत्कृष्ट केवलज्ञान है।

यहाँ ओघ क्षेत्र उत्कृष्ट का अधिकार है, क्योंकि विवक्षित कर्मक्षेत्रों में उत्कृष्ट क्षेत्र का ग्रहण किया गया है। ओघ उत्कृष्ट आकाश द्रव्य है।

शंका—ओघउत्कृष्ट आकाश द्रव्य है, तो उसका ग्रहण क्यों नहीं किया है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि कर्मक्षेत्रों में आकाश द्रव्य का अभाव है। एक स्वामित्व जघन्य पद में है और दूसरा एक उत्कृष्ट पद में, इस प्रकार से दो प्रकार का ही स्वामित्व है, क्योंकि इनके अतिरिक्त अन्य स्वामित्व की संभावना नहीं है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—केवलज्ञान यहाँ नोआगम भावोत्कृष्ट है। इस केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए ही यह श्रुतज्ञान का अभ्यास है, अतः द्रव्यश्रुतरूप शास्त्र को पढ़कर अपनी आत्मा में निजशुद्ध परमात्मतत्त्व

निजशुद्धबुद्धस्वस्वरूपः सदैव चिन्तनीयो भवति।

एवं तृतीयस्थले स्वामित्वभेदसूचकत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना स्वामित्वापेक्षया ज्ञानावरणीयोत्कृष्टवेदनायाः प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सिया कस्स ?।।७।।

जो मच्छो जोयणसहस्सिओ सयंभुरमणसमुद्दस्स बाहिरिल्लए तडे अच्छिदो।।८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् प्राश्निकसूत्रे जघन्यपदप्रतिषेधार्थं उत्कृष्टपदनिर्देशः कृतः। ज्ञानावरणग्रहणं शेषकर्म प्रतिषेधफलं। क्षेत्रग्रहणं द्रव्यादिप्रतिषेधफलं।**

पूर्वानुपूर्वीं मुक्त्वा पश्चादानुपूर्व्या उत्कृष्टक्षेत्रस्य प्ररूपणा किमर्थं क्रियते ?

नैतत्कथयितव्यं, अत्र महतीपरिपाट्या प्ररूपणार्थं पश्चादानुपूर्व्या प्ररूपणा क्रियते। अयमत्रार्थः — उद्देश्यमनुसृत्य यद्यपि प्राग् जघन्यपदप्ररूपणा कर्तव्यासीत् तथापि विस्तृते सति प्रागुत्कृष्टपदप्ररूपणा क्रियते।

यो मत्स्य एकसहस्रयोजनावगाहनाधारी स्वयंभूरमणसमुद्रस्य बाह्यतटे स्थितोऽस्ति, तस्य क्षेत्रस्यापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदना उत्कृष्टा भवति।

का श्रद्धान करते हुए प्रतिक्षण निजशुद्ध-बुद्ध स्वरूप का सदैव चिन्तवन करना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में स्वामित्व के भेदों को सूचित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब स्वामित्व की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म की उत्कृष्ट वेदना को प्रश्नोत्तररूप में बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

स्वामित्व से उत्कृष्ट पद में ज्ञानावरणीय वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ?।।७।।

जो मत्स्य एक हजार योजन की अवगाहना वाला स्वयंभूरमणसमुद्र के बाह्य तट पर स्थित है, उसके उत्कृष्ट वेदना होती है।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस प्रश्नरूप सूत्र में जघन्यपद का प्रतिषेध करने हेतु उत्कृष्ट पद का निर्देश किया है। ज्ञानावरण कर्म का ग्रहण शेष कर्मों का प्रतिषेध करता है। द्रव्यादि का प्रतिषेध करने हेतु पद का ग्रहण किया है।

शंका — पूर्वानुपूर्वी को छोड़कर पश्चादानुपूर्वी से उत्कृष्ट क्षेत्र की प्ररूपणा किसलिए की गई है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि यहाँ महान् परिपाटी से प्ररूपणा करने हेतु पश्चादानुपूर्वी से प्ररूपणा की जा रही है। यहाँ अभिप्राय यह है कि उद्देश्य के अनुसार यद्यपि पहले जघन्य पद की प्ररूपणा करना चाहिए था, फिर भी विस्तृत होने से पहले उत्कृष्ट पद की प्ररूपणा की जा रही है।

जो मत्स्य एक हजार योजन की अवगाहना वाला स्वयंभूरमण समुद्र के बाह्य तट पर स्थित है, उसके क्षेत्र की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म की उत्कृष्ट वेदना होती है।

अत्र सूत्रे 'जो मच्छो जोयणसहस्सओ' इति पदेन—सूत्रवचनेन अंगुलस्यासंख्यातभागमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन प्रदेशोनयोजनसहस्रः इति आयामेन ये स्थिता मत्स्यास्तेषां प्रतिषेधः कृतः एतज्ज्ञातव्यः।

उत्सेधविष्कम्भाभ्यां महामत्स्यसदृशलब्धमत्स्येषु गृहीतेषु अपि न कोऽपि दोषो नास्ति, ततस्तेषां ग्रहणं किन्न क्रियते ?

नैष दोषः, महामत्स्यायाम-विष्कंभोत्सेधेषु अनवगतेषु लब्धमत्स्य-आयामविष्कंभोत्सेधानां अवगमोपायाभावात्। न महामत्स्यायामोऽन्यतोऽवगम्यते, एतस्मात् सूत्रभूतस्य ज्येष्ठस्यान्यस्यासंभवात्।

महामत्स्यस्यायामो योजनसहस्रं १०००।

एतस्य महामत्स्यस्य विष्कंभोत्सेधौ कियन्तौ भवतः इति चेत् ?

उच्यते—एषो महामत्स्यः पंचशतयोजनविष्कंभः ५००, पंचाशदुत्तर द्विशतयोजनोत्सेधः २५०।

सूत्रेण विना कथमेतज्ज्ञायते ?

आचार्यपरंपरागतप्रवाह्यमानोपदेशात् ज्ञायते।

उक्तं च श्रीमद्वीरसेनाचार्येण—

''आइरियपरंपरागयपयवाइज्जंतुवदेसादो[१]।''

महामत्स्यविष्कंभोत्सेधयोः प्रतिपादकं सूत्रं नास्त्येव नैष नियमः। 'जोयणसहस्सिओ' इत्युक्तसूत्रेणैव देशामर्षकेन सूचिकत्वात्। एतौ विष्कंभोत्सेधौ महामत्स्यस्य सर्वत्र सदृशौ स्तः। मुख-पुच्छयोः विष्कंभोत्सेधयोः

यहाँ सूत्र में 'जो मत्स्य एक हजार योजन की अवगाहना वाला है' इस पद से अर्थात् इस सूत्र वचन से अंगुल के असंख्यातवें भाग को आदि लेकर उत्कर्ष से एक प्रदेश कम हजार योजन प्रमाण तक आयाम से जो मत्स्य स्थित हैं, उनका प्रतिषेध किया गया है, ऐसा जानना चाहिए।

शंका—उत्सेध और विष्कम्भ की अपेक्षा महामत्स्य से सदृश पाये जाने वाले मत्स्यों का ग्रहण करने पर भी कोई दोष नहीं है, अतः उनका ग्रहण क्यों नहीं किया है।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जब तक प्राप्त महामत्स्यों के आयाम, विष्कम्भ और उत्सेध का परिज्ञान होना किसी प्रकार से संभव नहीं है। महामत्स्य का आयाम किसी अन्य सूत्र से नहीं जाना जाता है, क्योंकि इस सूत्र से ज्येष्ठ प्राचीन सूत्रभूत कोई अन्य वाक्य संभव नहीं है।

महामत्स्य का आयाम एक हजार (१०००) योजन प्रमाण है।

प्रश्न—इस महामत्स्य के विष्कम्भ और उत्सेध का प्रमाण कितना है ?

उत्तर—ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं कि इस महामत्स्य का विष्कम्भ पाँच सौ (५००) योजन और उत्सेध दो सौ पचास (२५०) योजन मात्र है।

प्रश्न—यह सूत्र के बिना कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—वह आचार्य परम्परा के प्रवाह स्वरूप से आये हुए उपदेश से जाना जाता है। श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है—''आचार्यपरम्परा के प्रवाह से आये उपदेश से जाना जाता है'' महामत्स्य के विष्कम्भ व उत्सेध का ज्ञापक सूत्र है ही नहीं ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि, 'जोयणसहस्सिओ त्ति' अर्थात् एक हजार योजन वाला इस देशामर्शक सूत्रवचन से उनकी सूचना की गई है।

ये विष्कम्भ और उत्सेध महामत्स्य के सब जगह समान हैं। मुख और पूँछ में विष्कम्भ एवं उत्सेध का

---

१. षट्खंडागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. ११, पृ. १६।

प्रमाणमेतावद् मात्रमेवेति, एतेभ्यः पृथग्भूतविष्कंभोत्सेधयोः प्ररूपक-सूत्रव्याख्यानानामनुपलंभात् योजनसहस्रनिर्देशान्यथानुपपत्तेश्च।

कश्चिदाह — केऽपि आचार्या भणन्ति — महामत्स्यो मुखपुच्छयोः सुष्ठुतया सूक्ष्मोऽस्ति इति चेत् ?

आचार्यदेवः प्ररूपयति — अत्रतनमत्स्यान् दृष्ट्वा एतन्न घटते, कुत्रचित् क्वचित् मत्स्यांगेषु व्यभिचार-दर्शनात्। अथवा एते विष्कंभोत्सेधाः समकरणसिद्धा इति केचिदाचार्या ब्रुवन्ति।

अन्यच्च — न च सुष्ठु सूक्ष्ममुखो महामत्स्यः अन्यैकशतयोजनावगाहनासंयुक्तः तिमिंगिलादिनाममत्स्य-गिलनक्षमः, विरोधात्।

उक्तं च श्रीमद्वीरसेनाचार्येण — '' ण च सुट्ठु सण्णमुहो महामच्छो अण्णेगजोयणसदोगाहणतिमिंगिला-दिगिलणखमो, विरोहादो[१]।'' तस्माद् व्याख्याने उक्तविष्कंभोत्सेधाश्चैव महामत्स्यस्य गृहीतव्याः।

अथवा मध्यप्रदेशे चैव उक्तविष्कंभोत्सेधो मत्स्यो गृहीतव्यः, आदिमध्यावसानेषु एतस्मात् त्रिगुणं विस्फूर्यमाणस्य उत्कृष्टक्षेत्रोत्पत्तिं प्रति विरोधाभावात्।

''सयंभुरमणसमुद्दस्स'' इति सूत्रवचनेन सर्वद्वीपसमुद्रबाह्यस्थितसमुद्रस्य ग्रहणार्थं।

सर्वेषां द्वीपसमुद्राणां बाह्यः समुद्रः एवेति कथं ज्ञायते ?

अस्य समाधानं क्रियते श्रीवीरसेनाचार्येण — सयंभुरमणसमुद्दस्स बाहिरे दीवे अच्छिदो त्ति अभणिय ''सयंभुरमणसमुद्दस्स बाहिरिल्लए तडे अच्छिदो'' इति सूत्रादेव ज्ञायते। स्वकबाह्यवेदिकायाः पर्यंत इति

प्रमाण इतने मात्र ही है, क्योंकि उनसे भिन्न विष्कम्भ और उत्सेध की प्ररूपणा करने वाला सूत्र व व्याख्यान पाया नहीं जाता तथा इसके बिना हजार योजन का निर्देश बनता भी नहीं है।

यहाँ कोई शंका करता है — महामत्स्य मुख और पूँछ में अतिशय सूक्ष्म है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं।

आचार्यदेव उत्तर देते हैं — यहाँ के मत्स्यों को देखकर यह घटित नहीं होता तथा कहीं-कहीं मत्स्यों के अंगों में विषमता देखी जाती है। अथवा ये विष्कम्भ और उत्सेध समकरणसिद्ध हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं।

दूसरी बात यह है कि — अतिशय सूक्ष्म मुख से संयुक्त महामत्स्य अनेक योजन की अवगाहना वाले अन्य तिमिंगिल आदि मत्स्यों के निगलने में समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें विरोध आता है।

श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है — ''अत्यन्त सूक्ष्म मुँह से संयुक्त महामत्स्य अनेक योजन की अवगाहना वाले अन्य तिमिंगिल आदि मत्स्यों को निगलने में सक्षम नहीं हो सकता है, क्योंकि उसमें विरोध आता है। इसलिए व्याख्यान में महामत्स्य के उपर्युक्त विष्कम्भ और उत्सेध को ही ग्रहण करना चाहिए।

अथवा, उक्त विष्कम्भ और उत्सेध महामत्स्य के मध्य प्रदेश में ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि आदि, मध्य और अन्त में इससे तिगुणे फैलाने वाले के उत्कृष्ट क्षेत्र की उत्पत्ति के प्रति कोई विरोध नहीं है।

'सयंभूरमणसमुद्दस्स' इस सूत्रवचन के द्वारा द्वीप-समुद्रों में सबसे बाह्य समुद्र का ग्रहण किया गया है।

शंका — सर्वद्वीप समुद्रों के बाह्य समुद्र ही है, यह कैसे जाना जाता है ?

इसका समाधान श्री वीरसेनाचार्य करते हैं — स्वयंभूरमण समुद्र के बाह्य द्वीप में स्थित ऐसा न कहकर स्वयंभूरमण समुद्र के बाह्य तट पर स्थित ऐसा जो सूत्र है उसी से वह जाना जाता है। अपनी बाह्य वेदिका

---

१. षट्खंडागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. ११, पृ. १६।

स्वयंभूरमणसमुद्रः, तस्य बाह्यतटो नाम समुद्रपरभूभागदेशः। तत्र स्थितः इति गृहीतव्यः।

स्वयंभूरमणसमुद्रस्य बाह्यतटो नाम तदवयवभूतबाह्यवेदिका, तत्र महामत्स्यः स्थितः इति केचिदाचार्याः भणन्ति। तन्न घटते, 'कायलेस्सियाए लग्गो' इति उपरि भण्यमानेन सूत्रेण सह विरोधात्। न च स्वयंभूरमणसमुद्रस्य बाह्यवेदिकायाः संबद्धास्त्रयोऽपि वातवलयाः, तिर्यग्लोकविष्कंभस्य एकरज्जुप्रमाणात् ऊनत्वप्रसंगात्।

एतत्कथं ज्ञायते ?

जम्बूद्वीपयोजनलक्षविष्कंभात् द्विगुणद्विगुणक्रमेण गतसर्वद्वीपसागरविष्कंभेषु मेलापितेषु जगत् श्रेण्याः सप्तमभागानुपपत्तेः।

एतदपि कथं ज्ञायते ?

रूपाधिकद्वीप-सागररूपाणि विरलय्य द्विगुणीकृत्य अन्योन्याभ्यस्तं कृत्वा तत्र त्रीणि रूपाणि अपनीय योजनलक्षेण गुणिते द्वीपसमुद्ररुद्धतिर्यग्लोकक्षेत्रायामोत्पत्तेः। न चैतावान् एव तिर्यग्लोक विष्कंभो, जगच्छ्रेण्याः सप्तमभागे पंचशून्यानुपलंभात्। न च एतस्माद् रज्जुविष्कंभ ऊनो भवति, रज्ज्वभ्यंतरभूतस्य चतुर्विंशतियोजन-मात्रवायुरुद्धक्षेत्रस्य बाह्यमुपलंभात्।

अन्यच्च — न च तावन्मात्रं क्षेत्रं प्रक्षिप्ते पंचशून्याः स्फुटन्ति — नश्यन्ति, तथानुपलंभात्। तस्मात्सकल-

---

पर्यन्त स्वयंभूरमण समुद्र है, उसी के बाह्य तट से अभिप्राय समुद्र के परे — पश्चात् भूभागप्रदेश का है। वहाँ पर स्थित, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

स्वयंभूरमण समुद्र के बाह्य तट का अर्थ उसकी अंगभूत बाह्य वेदिका है, वहाँ स्थित महामत्स्य, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता है, क्योंकि वैसा स्वीकार करने पर आगे कहे जाने वाले 'तनुवातवलय से संलग्न हुआ' इस सूत्र के साथ विरोध आता है। कारण कि स्वयंभूरमण समुद्र की बाह्य वेदिका से तीनों ही वातवलय का संबंध नहीं है, क्योंकि वैसा होने पर तिर्यग्लोक संबंधी विस्तार प्रमाण के एक राजु से हीन होने का प्रसंग आता है।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — चूँकि जम्बूद्वीप संबंधी एक लाख योजन प्रमाण विस्तार की अपेक्षा दुगुणे-दुगुणे क्रम से प्राप्त हुए सब द्वीप-समुद्रों के विस्तारों को मिलाने पर जगश्रेणि का सातवाँ भाग उत्पन्न नहीं होता है, अतः इसी से जाना जाता है।

शंका — यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान — एक अधिक द्वीप-समुद्र संबंधी रूपों का विरलन कर उसको दुगना करके परस्पर गुणित करने पर जो प्राप्त हो, उसमें तीन रूपों को कम करके एक लाख योजन से गुणित करने पर द्वीप समुद्रों द्वारा रोके गये तिर्यग्लोक क्षेत्र का आयाम उत्पन्न होता है, अतः इसी से जाना जाता है कि उक्त प्रकार से जगश्रेणी का सातवाँ भाग नहीं उत्पन्न होता है। तिर्यग्लोक का विस्तार इतने मात्र ही हो, सो भी नहीं है, क्योंकि जगश्रेणी के सातवें भाग में पाँच शून्य नहीं पाये जाते हैं और इससे राजुविष्कम्भ हीन भी नहीं है, क्योंकि राजु के अन्तर्गत चौबीस योजन प्रमाण वायुरुद्ध क्षेत्र बाह्य में पाया जाता है।

दूसरी बात यह है कि — उतने मात्र क्षेत्र को मिलाने पर पाँच शून्य नष्ट भी नहीं होते, क्योंकि वैसा पाया

द्वीपसागरविष्कंभाद् बाह्यो कियतापि क्षेत्रेण भवितव्यं।

कश्चिदाह — स्वयंभूरमणसमुद्रस्याभ्यन्तरे स्थितो जलचरजीवो महामत्स्यः कथं तस्य बाह्यतटं प्राप्नोत्? आचार्यः प्राह — नैष दोषोऽस्ति, पूर्ववैरिदेवप्रयोगेण तस्य महामत्स्यस्य तत्र बाह्यतटे गमनसंभवात्।

तात्पर्यमेतत् — मध्यलोकेऽन्तिमसमुद्रस्य स्वयंभूरमणनामधेयस्य बहिर्भागेऽपि चतुर्विंशतियोजनप्रमाणं क्षेत्रं वातरुद्धमस्ति, अतएव तस्मिन् बाह्यक्षेत्रे समुद्रस्य तटे महामत्स्यस्य पूर्वजन्मसंबंधिवैरिदेवः पूर्वकृत-वैरनिमित्तेन तत्रागत्य महामत्स्यं समुद्राभ्यंतरादुत्थाप्य बहिः क्षिपति इत्येतेनैव सूत्रेण ज्ञायते। एतज्ज्ञात्वा तिर्यग्योनिकारणभूतेभ्य आस्रवेभ्यो विरज्य अनंतानुबंधिकषायनिमित्तभूतो वैरभावोऽपि त्यक्तव्यः। यदि कदाचित्केनचित् सह वैरभावो भवेत् तर्ह्यपि क्षमाभावजलेन शामयितव्यः।

संप्रति महामत्स्यस्य समुद्घातनामकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

वेयणसमुग्घादेण समुहदो।।९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **वेदनावशेन जीवप्रदेशानां विष्कंभोत्सेधापेक्षया त्रिगुणविस्फुरणं वेदनासमुद्-घातो नाम। न चैष नियमो यत्सर्वेषां जीवप्रदेशा वेदनाया वशेन त्रिगुणमेव विस्फुरन्तीति, किन्तु स्वकविष्कंभात् तरतमरूपेण स्थितवेदनावशेन एकद्विप्रदेशादिभिरपि वृद्धिर्भवति। ते वेदनासमुद्घाता अत्र न गृहीताः, उत्कृष्टेण क्षेत्रेणाधिकारात्।**

नहीं जाता। इसी कारण समस्त द्वीप-समुद्र संबंधी विस्तार के बाहिर भी कुछ क्षेत्र होना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि — स्वयंभूरमण समुद्र के भीतर स्थित महामत्स्य जलचर जीव उसके बाह्य तट को कैसे प्राप्त होता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि पूर्व के बैरी किसी देव के प्रयोग से उस महामत्स्य का वहाँ बाह्य तट पर गमन संभव है।

तात्पर्य यह है कि — मध्यलोक में स्वयंभूरमण नामक अंतिम समुद्र के बाह्य भाग में भी चौबीस योजन प्रमाण क्षेत्र वायु से अवरुद्ध है अतएव उस बाह्य क्षेत्र में समुद्र के तट पर स्थित महामत्स्य का कोई पूर्व जन्म संबंधी वैरी देव वहाँ आकर पूर्वकृत वैर के निमित्त से महामत्स्य को समुद्र के अंदर से उठाकर बाहर फेंक देता है, ऐसा अर्थ इसी सूत्र से जाना जाता है। ऐसा जानकर तिर्यंच योनि के कारणभूत आस्रवों से विरक्त होकर अनन्तानुबंधी कषाय के निमित्तभूत वैरभाव का भी त्याग कर देना चाहिए। यदि कदाचित् किसी के साथ वैर भाव होवे तो भी क्षमारूपी जल से उस वैर को शान्त करना चाहिए।

अब महामत्स्य के समुद्घात का नाम बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

वह महामत्स्य वेदना समुद्घात से समुद्घात को प्राप्त होता है।।९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — वेदना के कारण आत्मा के प्रदेशों का विस्तार और उत्सेध होता है, उसकी अपेक्षा तीनगुने प्रमाण में फैलने का नाम वेदनासमुद्घात है। परन्तु सबके जीवप्रदेश वेदना के वश से तिगुणे ही फैलते हों, ऐसा नियम नहीं है। किन्तु तरतमरूपसे स्थित वेदना के वश से अपने विष्कम्भ की अपेक्षा एक-दो प्रदेशादिकों से भी वृद्धि होती है। परन्तु उन वेदनासमुद्घातों का यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है, क्योंकि यहाँ उत्कृष्ट क्षेत्र का अधिकार है।

कश्चिदाशंकते — अत्र महामत्स्य एव किमिति वेदनासमुद्घातं नीतः ?

आचार्यदेवः समाधत्ते — प्रथमतस्तस्य महदवगाहनत्वात्, अन्यच्च — जलचरस्य स्थले क्षिप्तस्य उष्णेन दह्यमानांगस्य संचितबहुपापकर्मणो महावेदनोत्पत्तिदर्शनाच्च।

तात्पर्यमेतत् — अंतिमसमुद्रस्य बाह्यतटे महावेदनाग्रसितस्य महामत्स्यस्यैव वेदनासमुद्घातो जायते।

अधुना केन वातवलयेन स्पृष्टोऽयं पृष्टे सति सूत्रमवतार्यते उत्तररूपेण श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण —

कायलेस्सियाए लग्गो।।१०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **अत्र काकलेश्या नाम तृतीयो वातवलयः।**

तस्य वातवलयस्य कथं काकलेश्या इति संज्ञा भवति ?

काकवर्णत्वात् सः काकलेश्या नाम। अत्र अंधकाकलेश्या न गृहीतव्या, तत्र अंधत्ववर्णानुपलंभात्। अत्र अंधत्वेन कृष्णवर्णो गृह्यते।

कश्चिदाशंकते — लोकनाड्याः अभ्यंतरस्थितमहामत्स्यः लोकवृद्धिवशेन लोकनाड्याः परतः संख्यातयोजनानि गत्वा स्थिततृतीयवाते कथं लग्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते — सत्यमेतत्, महामत्स्यस्य तृतीयवातवलयेन संस्पर्शो नास्तीति। किन्तु एषा सप्तमी

यहाँ कोई शंका करता है कि —

महामत्स्य को ही वेदनासमुद्घात को क्यों प्राप्त कराया है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

क्योंकि एक तो उसकी अवगाहना बहुत अधिक है, दूसरे जलचर जीव को स्थल में रखने पर उष्णता के कारण अंगों के संतप्त होने से बहुत पापकर्मों के संचय को प्राप्त हुए उसके महावेदना की उत्पत्ति देखी जाती है।

तात्पर्य यह है कि — अंतिम समुद्र के बाह्य तट पर महावेदना से ग्रस्त महामत्स्य के ही वेदनासमुद्घात उत्पन्न होता है।

अब किस वातवलय से यह स्पृष्ट है ऐसा पूछने पर श्री भूतबली आचार्य उत्तररूप से सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

वह तनुवातवलय से स्पृष्ट है।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ काकलेश्या का अर्थ तीसरा वातवलय अर्थात् तनुवातवलय है।

शंका — उस वातवलय की काकलेश्या यह संज्ञा कैसे है ?

समाधान — तनुवातवलय का काक के समान वर्ण होने के कारण उसकी काकलेश्या संज्ञा है। यहाँ अंधकाक लेश्या अर्थात् काला स्याह काक वर्ण का ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसमें अंधत्व अर्थात् काला स्याह वर्ण नहीं पाया जाता है। यहाँ अंधत्व के कारण कृष्णवर्ण ग्रहण किया गया है।

यहाँ कोई शंका करता है कि — लोकनाड़ी के भीतर स्थित महामत्स्य लोक विस्तार के अनुसार लोकनाड़ी के आगे संख्यात योजन जाकर स्थित तृतीय वातवलय से कैसे संसक्त हो सकता है ?

इसका समाधान करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि — यह सत्य है कि महामत्स्य का तृतीय वातवलय

विभक्तिः सामीप्यार्थे वर्तते। न च सप्तमी विभक्तिः सामीप्यार्थेऽसिद्धा, ''गंगायां घोषः प्रतिवसती- त्यत्र'' सामीप्यार्थे सप्तमीविभक्त्युपलंभात्। तेन 'कापोतलेश्यायाः स्पृष्टदेशः कापोतलेश्या' इति गृहीतः। अतः तस्याः कापोतलेश्यायाः यावत्संसर्गो वर्तते तावत्पर्यंतं वेदनासमुद्घातेन समुद्घातं प्राप्त इत्युक्तं भवति।

भावार्थोऽयं — पूर्ववैरिदेवेन महामत्स्यः स्वयंभूरमणसमुद्रबाह्यवेदिकाया बहिर्भागे लोकनाड्याः समीपे पातितः। तत्र तीव्रवेदनावशेन वेदनासमुद्घातेन समुद्घातं प्राप्य यावद् लोकनाड्या बहिःपर्यंतं लग्नाः, इत्युक्तं भवति।

अधुना तस्यैव विशेषप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

पुणरवि मारणंतियसमुग्घादेण समुहदो तिण्णि विग्गहकंडयाणि कादूण।।११।।

से काले अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उप्पज्जिहिदि त्ति तस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा।।१२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **पुनरपि यस्त्रिविग्रहं कृत्वा मारणान्तिकनामसमुद्घातेन समुद्घातं प्राप्य अनन्तरसमये सः सप्तम्याः पृथिव्याः नारकेषु उत्पत्स्यते तस्य जीवस्य ज्ञानावरणीयवेदना क्षेत्रापेक्षया उत्कृष्टा भवतीति सूत्रद्वयस्यार्थो ज्ञातव्यः।**

महामत्स्यो लोकनाड्याः वायव्यदिशायां पूर्ववैरिदेवसंबंधेन दक्षिणोत्तरायामेन पतितः। तत्र

से स्पर्श नहीं होता है, किन्तु यह सप्तमी विभक्ति सामीप्य अर्थ में है। यदि कहा जाये कि सामीप्य अर्थ में सप्तमी विभक्ति असिद्ध है, सो भी ठीक नही है, क्योंकि 'गंगा में घोष (ग्वालवसति) वसता है' अर्थात् गंगा के किनारे ग्वाला रहता है। यहाँ सामीप्य अर्थ में सप्तमी विभक्ति पाई जाती है। इसलिए कापोतलेश्या से स्पष्ट प्रदेश भी कापोतलेश्या रूप से ग्रहण किया गया है। उस कापोतलेश्या से जहाँ तक संसर्गित होता है, वहाँ तक वेदनासमुद्घात से समुद्घात को प्राप्त हुआ यह उसका अभिप्राय है।

भावार्थ यह है कि — पूर्व के वैरी किसी देव के द्वारा महामत्स्य स्वयंभूरमण समुद्र की बाह्य वेदिका के बाहरी भाग में लोकनाड़ी के समीप डाल दिया गया। वहाँ तीव्र वेदना के वश वेदनासमुद्घात से समुद्घात को प्राप्त होकर लोकनाड़ी के बाह्य भाग पर्यन्त वह संयुक्त होता है, यह अभिप्राय है।

अब उसी का विशेष प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

फिर भी जो तीन विग्रह करके मारणान्तिक समुद्घात से समुद्घात को प्राप्त हुआ है।।११।।

अनन्तर समय में वह सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न होगा, अतः उसके ज्ञानावरणीयवेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पुनः भी जो तीन विग्रह करके मारणान्तिक नाम के समुद्घात से समुद्घात को प्राप्त करके अनन्तर समय में वह सप्तम नरकपृथिवी के नारकियों में उत्पन्न होगा, उस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है, यह दोनों सूत्रों का अर्थ जानना चाहिए।

महामत्स्य लोकनाड़ी की वायव्य दिशा में पूर्व के बैरी देव के संबंध से दक्षिण-उत्तर आयाम स्वरूप से

मारणान्तिकसमुद्घातेन समुद्घातं प्राप्तः। तेन महामत्स्येन वेदनासमुद्घातेन सह मारणान्तिकसमुद्घातं कुर्वता त्रीणि विग्रहकाण्डकानि कृतानि। विग्रहो नाम वक्रत्वं, तेन त्रीणि काण्डकानि कृतानि।

तद्यथा — लोकनाड्या वायव्यदिशाया वाणमिव ऋजुगत्या साधिकार्धरज्जुमात्रं दक्षिणदिशि आगतः। तदेकं काण्डकं। पुनस्ततो वलित्वा वाणमिव ऋजुगत्या एकरज्जुमात्रं पूर्वदिशमागतः, तद् द्वितीयं काण्डकं। पुनस्ततो वलित्वा अधः षड्रज्जुमात्रमार्गे ऋजुगत्या गतः, तत् तृतीयं काण्डकं। एवं त्रीणि काण्डकानि कृत्वा मारणान्तिकसमुद्घातं गतः।

चत्वारि काण्डकानि किन्न कारितः इति चेत् ?

न, त्रसेषु द्वौ विग्रहौ मुक्त्वा त्रयाणां विग्रहाणामभावात्।

एतत्कथं ज्ञायते ?

एतस्मादेव सूत्राद् ज्ञायते।

अयं महामत्स्यः सप्तम्याः पृथिव्या नारकी जातः।

कश्चिदाह — सप्तमपृथ्वीं मुक्त्वा अधः सप्तरज्जुमात्रमध्वानं गत्वा निगोदेषु किन्न उत्पादितः ?

नोत्पादितः, किं च — निगोदेषु उत्पद्यमानस्य अतितीव्रवेदनाया अभावेन विवक्षितशरीरात् त्रिगुणवेदना-समुद्घातस्याभावात्।

सत्कर्मप्राभृतग्रंथे पुनः निगोदेषु उत्पादितः तस्य प्रकरणस्यात्र निषेधः क्रियते। तथाहि —

''संतकम्मपाहुडे पुण णिगोदेसु उप्पाइदो, णेरइएसु उप्पज्जमाणमहामच्छो व्व सुहुमणिगोदेसु

गिरा। वहाँ वह मारणान्तिक समुद्घात से समुद्घात को प्राप्त हुआ। वेदनासमुद्घात के साथ मारणान्तिक समुद्घात को करने वाले उक्त महामत्स्य ने तीन विग्रहकाण्डक किये। विग्रह का अर्थ वक्रता है,उससे तीन काण्डक किये।

वे इस प्रकार से हैं — लोकनाड़ी की वायव्य दिशा से वाण के समान ऋजुगति से कुछ अधिक आधे राजु मात्र दक्षिण दिशा में आया। वह एक काण्डक हुआ। फिर वहाँ से मुड़कर बाण जैसी सीधी गति से एक राजू मात्र पूर्व दिशा में आया। वह द्वितीय काण्डक हुआ। फिर वहाँ से मुड़कर नीचे छह राजु मात्र मार्ग में ऋजुगति से गया। वह तृतीय काण्डक हुआ। इस प्रकार तीन काण्डकों को करके मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुआ।

शंका — चार काण्डकों को क्यों नहीं कराया है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि त्रसों में दो विग्रहों को छोड़कर तीन विग्रह नहीं होते हैं।

शंका — यह कैसे ज्ञात होता है ?

समाधान — यह इसी सूत्र से ज्ञात होता है।

यह महामत्स्य सातवीं पृथिवी का नारकी हो गया।

यहाँ कोई शंका करता है कि — सातवीं पृथिवी को छोड़कर नीचे सात राजु मात्र अध्वान जाकर निगोद जीवों में क्यों नहीं उत्पन्न कराया है ?

समाधान — नहीं उत्पन्न कराया है, क्योंकि निगोद जीवों में उत्पन्न होने वाले जीव के अतिशय तीव्र वेदना का अभाव होने से विवक्षित शरीर से तिगुणा वेदनासमुद्घात असंभव है।

सत्कर्मप्राभृतग्रंथ में पुनः निगोद में उत्पन्न कराया है, उस प्रकरण का यहाँ निषेध करते हैं। जो इस प्रकार है —

''सत्कर्म प्राभृत में उसे निगोद जीवों में उत्पन्न कराया हे, क्योंकि नारकियों में उत्पन्न होने वाले

उप्पज्जमाणमहामच्छो वि तिगुणसरीरबाहल्लेण मारणंतियसमुग्घादं गच्छदि त्ति। ण च एदं जुज्जदे, सत्तमपुढवी-णेरइएसु असादबहुलेसु उप्पज्जमाणमहामच्छवेयणा-कसाएहिंतो सुहुमणिगोदेसु उप्पज्जमाणमहामच्छवेयण-कसायाणं सरिसत्ताणुववत्तीदो। तदो एसो चेव अत्थो पहाणो त्ति घेत्तव्वो[1]।''

विस्तरेण धवलाटीकायां द्रष्टव्यः।

अत्र उपसंहारः क्रियते—एकरज्जुं स्थापयित्वा सातिरेकसार्धसप्तरूपैर्गुणयित्वा पुनः त्रिगुणितविष्कंभेण त्रिगुणितोत्सेधगुणितेन गुणिते (५००×३=१५००। २५०×३=७५०) ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टक्षेत्रं भवति इति ज्ञातव्यम्।

अधुना अनुत्कृष्टवेदनायाः स्वामित्वं निरूपयता सूत्रमवतार्यते श्रीभूतबलिभट्टारकेण —

तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा।।१३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**उत्कृष्टमहामत्स्यक्षेत्राद् व्यतिरिक्तं क्षेत्रं तद्व्यतिरिक्तं नाम। सा अनुत्कृष्टा क्षेत्रवेदना। सा चासंख्यातविकल्पा।**

तस्याः स्वामी किन्न प्ररूपितः ?

नैतत्कथयितव्यं, उत्कृष्टस्वामी चैवानुत्कृष्टस्यापि स्वामी भवतीति पृथक्स्वामित्वप्ररूपणा न कृतात्र, शेषविकल्पानामपि एतस्मादेव सिद्धेश्च। तद्यथा—

मुखे एकाकाशप्रदेशेन हीनोत्कृष्टावगाहनासंयुक्तमहामत्स्येन पूर्ववैरिदेवसंबंधेन लोकनाड्या वायव्यदिशि

महामत्स्य के समान सूक्ष्म निगोद जीवों में उत्पन्न होने वाला महामत्स्य भी विवक्षित शरीर की अपेक्षा तिगुणे बाहल्य से मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त होता है परन्तु यह योग्य नहीं है, क्योंकि अत्यधिक असाता का अनुभव करने वाले सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न होने वाले महामत्स्य की वेदना और कषाय की अपेक्षा सूक्ष्म निगोद जीवों में उत्पन्न होने वाले महामत्स्य की वेदना और कषाय सदृश नहीं हो सकती। इस कारण यही अर्थ प्रधान है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

विस्तार से इसका वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

यहाँ विषय का उपसंहार करते हैं—एक राजु को स्थापित करके कुछ अधिक साढ़े सात रूपों से गुणित करके पश्चात् तिगुणे विष्कम्भ (५००×३=१५००) से गुणित तिगुणे उत्सेध (२५०×३=७५०) के द्वारा गुणित करने पर ज्ञानावरणीय का उत्कृष्ट क्षेत्र होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब अनुत्कृष्ट वेदना का स्वामित्व निरूपण करते हुए श्री भूतबली भट्टारक सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

महामत्स्य के उपर्युक्त उत्कृष्ट क्षेत्र से भिन्न अनुत्कृष्ट वेदना है।।१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— उत्कृष्ट महामत्स्य क्षेत्र से भिन्न तद्व्यतिरिक्त है। वह अनुत्कृष्ट क्षेत्रवेदना है वह असंख्यात विकल्परूप है।

शंका— उसके स्वामी की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

समाधान— ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उत्कृष्ट का स्वामी ही चूँकि अनुत्कृष्ट का भीस्वामी होता है, अतः उसके स्वामित्व की पृथक् प्ररूपणा नहीं की गई है तथा शेष विकल्प भी इसी से सिद्ध होते हैं। वह इस प्रकार है—

मुख में एक आकाश प्रदेश से हीन उत्कृष्ट अवगाहना से संयुक्त, पूर्व जन्म के बैरी देव के संबंध से

---

१. षट्खंडागम-धवलाटीकासमन्वित, पु. ११, पृ. २२।

निपत्य वेदनासमुद्घातेन पूर्वविष्कंभोत्सेधापेक्षया त्रिगुणविष्कंभोत्सेधान् आपन्नेन मारणांतिकसमुद्घातेन त्रीणि काण्डकानि कृत्वा सप्तमपृथिवीं प्राप्तेन अनुत्कृष्टोत्कृष्टक्षेत्रं कृतम्। तेन एतस्य अनुत्कृष्ट-उत्कृष्टक्षेत्रस्य महामत्स्यश्चैव स्वामी भवति।

पुनः मुखप्रदेशे द्वाभ्यामाकाशप्रदेशाभ्यां हीनो महामत्स्यो वेदनासमुद्घातेन समुद्घातं प्राप्य त्रीणि विग्रह-काण्डकानि कृत्वा मारणांतिकसमुद्घातेन सप्तमपृथ्वीं गतो द्वितीयानुत्कृष्टक्षेत्रस्य स्वामी भवति। पुनः त्रिभिराकाशप्रदेशैः परिहीणमुखो महामत्स्यः पूर्वविधिना एव मारणान्तिकसमुद्घातेन सप्तमपृथ्वीं गतस्तृतीयक्षेत्रस्य स्वामी। मुखे चतुराकाशप्रदेशोन महामत्स्यः मारणान्तिकसमुद्घातेन सातिरेक-सार्धसप्तरज्जु-आयामात् चतुर्थक्षेत्रस्य स्वामी। एतेनैव क्रमेण महामत्स्यमुखप्रदेशान् हीनान् कृत्वा संख्यातप्रतरांगुलमात्रा अनुत्कृष्टक्षेत्रविकल्पा उत्पादयितव्याः।

विस्तरतो धवलाटीकायां पठितव्यो भवति।

संप्रति एतेषां क्षेत्रविकल्पानां ये जीवाः स्वामिनः भवन्ति तेषां प्ररूपणायां क्रियमाणायां तत्र षडनुयोग-द्वाराणि ज्ञातव्यानि भवन्ति — प्ररूपणा-प्रमाण-श्रेणि-अवहार-भागाभाग-अल्पबहुत्वानि चेति।

तत्र तावत्प्ररूपणा उच्यते — उत्कृष्टस्थाने जीवाः सन्ति। एवं नेतव्यं यावद् जघन्यस्थानमिति।

प्ररूपणा गता।

अधुना प्रमाणं निरूप्यते —

उत्कृष्टे स्थाने जीवाः कियन्तः ?

लोकनाली की वायव्य दिशा में गिरकर वेदनासमुद्घात से पूर्व विष्कम्भ व उत्सेध की अपेक्षा तिगुणे विष्कम्भ व उत्सेध को प्राप्त तथा मारणान्तिक समुद्घात से तीन काण्डकों को करके सातवीं पृथिवी को प्राप्त हुआ महामत्स्य अनुत्कृष्ट-उत्कृष्ट क्षेत्र को करता है। इस कारण इस अनुत्कृष्ट-उत्कृष्ट क्षेत्र का महामत्स्य ही स्वामी होता है।

पुनः मुखप्रदेश में दो आकाश प्रदेशों से हीन महामत्स्य वेदनासमुद्घात से समुद्घात को प्राप्त होकर तीन विग्रहकाण्डकों को करके मारणान्तिक समुद्घात से सातवीं पृथिवी को प्राप्त होता हुआ द्वितीय अनुत्कृष्ट क्षेत्र का स्वामी होता है। फिर तीन आकाश प्रदेशों से हीन मुख वाला महामत्स्य पूर्व विधि से ही मारणान्तिक समुद्घात से सातवीं पृथिवी को प्राप्त होकर तृतीय अनुत्कृष्ट क्षेत्र का स्वामी होता है। मुख में चार आकाश प्रदेशों से हीन महामत्स्य मारणान्तिक समुद्घात से कुछ अधिक साढ़े सात राजु मात्र आयाम से युक्त होता हुआ चतुर्थ अनुत्कृष्ट क्षेत्र का स्वामी होता है। इस प्रकार इस क्रम से महामत्स्य के मुख प्रदेशों को हीन करके संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण अनुत्कृष्ट क्षेत्र के विकल्पों को उत्पन्न कराना चाहिए।

इसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

अब इन क्षेत्र विकल्पों के जो जीव स्वामी हैं, उनकी प्ररूपणा करते समय वहाँ छह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं — प्ररूपणा, प्रमाण, श्रेणी, अवहार, भागाभाग और अल्पबहुत्व।

उनमें प्ररूपणा अनुयोगद्वार को कहते हैं। वह इस प्रकार है — उत्कृष्ट स्थान में जीव हैं। इसी प्रकार जघन्य स्थान तक ले जाना चाहिए।

प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब प्रमाण का निरूपण करते हैं —

उत्कृष्ट स्थान में जीव कितने हैं ?

असंख्याताः। एवं त्रसकायिकप्रायोग्यक्षेत्रविकल्पेषु असंख्यातजीवा इति वक्तव्यं। स्थावरकायिक-प्रायोग्येष्वपि असंख्यातलोकप्रमाणाः। विशेषेण तु वनस्पतिकायिकप्रायोग्येषु अनन्ताः।

एवं प्रमाणप्ररूपणा गता।

श्रेणिः अवहारश्च न शक्यते नेतुमुपदेशाभावात्। नवरि एकेन्द्रियेषु जघन्यस्थानजीवेभ्यः द्वितीयस्थानजीवा अंतर्मुहूर्तप्रतिभागेन विशेषाधिका विशेषहीना वा।

अधुना भागाभागः कथ्यते—

उत्कृष्टस्थानजीवाः सर्वस्थानसंबंधिजीवानां कियद् भागः ?

ते अनंतभागप्रमाणाः सन्ति।

जघन्ये स्थाने जीवाः सर्वस्थानजीवानां कियद् भागः ?

ते तेषां असंख्यातभागप्रमाणाः।

अजघन्यानुत्कृष्टकेषु स्थानेषु जीवाः सर्वजीवानां कियद् भागः ? ते जीवाः तेषां असंख्यातबहुभागप्रमाणाः सन्ति।

एवं भागाभागप्ररूपणा समाप्ता।

अल्पबहुत्वं निरूप्यते—

उत्कृष्टे स्थाने जीवाः सर्वस्तोकाः। जघन्ये स्थाने अनंतगुणाः। अजघन्यानुत्कृष्टस्थानेषु जीवा असंख्यातगुणाः।

वे वहाँ असंख्यात हैं। इस प्रकार त्रसकायिकों के योग्य क्षेत्रविकल्पों में असंख्यात जीव हैं ऐसा कहना चाहिए। स्थावरकायिकों के योग्य क्षेत्र विकल्पों में भी असंख्यातलोकप्रमाण जीव हैं। विशेष इतना है कि वनस्पतिकायिक योग्य क्षेत्र विकल्पों में अनन्त जीव हैं।

इस प्रकार प्रमाण प्ररूपणा समाप्त हुई।

श्रेणी और अवहार की प्ररूपणा नहीं की जा सकती है, क्योंकि उनका उपदेश प्राप्त नहीं है। विशेष इतना है कि एकेन्द्रिय जीवों में जघन्य स्थान संबंधी जीवों की अपेक्षा द्वितीय स्थान संबंधी जीव अन्तर्मुहूर्त प्रतिभाग से विशेष अधिक अथवा विशेष हीन हैं।

अब भागाभाग कहते हैं—

उत्कृष्ट स्थान के जीव सब स्थान संबंधी जीवों के कितनेवें भाग प्रमाण है ?

वे उनके अनन्तवें भाग प्रमाण है।

जघन्य स्थान में जीव सब स्थानों संबंधी जीवों के कितनेवें भाग प्रमाण है ?

वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थानों में जीव सब जीवों के कितनेवें भाग प्रमाण हैं ?

वे उनके असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं।

इस प्रकार भागाभागप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करते हैं—

उत्कृष्ट स्थान में जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे जघन्य स्थान में वे अनन्तगुणे हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थानों में जीव असंख्यातगुणे हैं।

अत्र को गुणकारः ?

अंगुलस्यासंख्यातभागः गुणकारः ज्ञातव्यः।

तेभ्यः अजघन्यस्थाने जीवा विशेषाधिकाः। अनुत्कृष्टे स्थाने जीवा विशेषाधिकाः सन्ति। सर्वेषु स्थानेषु विशेषाधिका ज्ञातव्याः।

अधुना दर्शनावरणादित्रिकर्मणां वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।।१४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका —**यथा ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टानुत्कृष्टक्षेत्रप्ररूपणा कृता तथैव दर्शनावरणीय-मोहनीय-अंतरायाणां त्रयाणामपि घातिकर्मणां उत्कृष्टानुत्कृष्टक्षेत्रप्ररूपणा कर्तव्या, विशेषाभावात्।**

तात्पर्यमत्र — मोहनीयकर्म एव सर्वकर्मबंधानां मूलकारणमिति निश्चित्य संसारशरीरभोगेभ्यो विरज्य स्वात्मतत्त्वमेवाभ्यसनीयमिति।

एवं चतुर्थस्थले उत्कृष्टानुत्कृष्टवेदनाकथनत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

स्वामित्वापेक्षया वेदनीयस्य उत्कृष्टवेदनानिरूपणार्थं प्रश्नरूपेण सूत्रमवतार्यते —

सामित्तेण उक्कस्सपदे वेदणीयवेदणा खेत्तदो उक्कस्सिया कस्स ?।।१५।।

शंका — यहाँ गुणकार क्या है ?

समाधान — गुणकार अंगुल का असंख्यातवाँ भाग है।

उनसे अजघन्य स्थान में जीव विशेष अधिक हैं। अनुत्कृष्ट स्थान में जीव उनसे विशेष अधिक हैं। उनसे सब स्थानों में जीव विशेष अधिक जानना चाहिए।

अब दर्शनावरणादि तीन कर्मों की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म के भी उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट वेदनाक्षेत्रों की प्ररूपणा करना चाहिए।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जैसे ज्ञानावरणीय कर्म के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट क्षेत्रों की प्ररूपणा की गई है, वैसे ही दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मों के भी उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट क्षेत्रों की प्ररूपणा करना चाहिए, क्योंकि उनमें कोई विशेषता नहीं है।

तात्पर्य यह है कि — मोहनीय कर्म ही सभी कर्मबंध का मूल कारण है, ऐसा निश्चय करके संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर अपने आत्मतत्त्व का ही अभ्यास करना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट वेदना का कथन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब स्वामित्व की अपेक्षा वेदनीय कर्म की उत्कृष्ट वेदना का निरूपण करने हेतु प्रश्नरूप से एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

स्वामित्व से उत्कृष्ट पद में वेदनीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट किसके होती है ?।।१५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूत्रे 'उक्कस्सपदे' इति निर्देशेन जघन्यपदनिर्देशः कृतः। 'वेदणीयवेदणा' इति पदेन शेषकर्मवेदनायाः प्रतिषेधः कृतः। 'खेत्तदो' इति निर्देशेन द्रव्यादिवेदनानां प्रतिषेधः कृतः। 'कस्स' इति पदेन वेदनीयस्य उत्कृष्टा वेदना किं देवस्य ? किं नारकस्य ? किं तिरश्चः ? किं मनुष्यस्य भवतीति पृच्छा कृतास्ति।**

संप्रत्यस्य प्रत्युत्तरं प्रयच्छता आचार्यवर्येण एकं सूत्रमवतार्यते —

अण्णदरस्स केवलिस्स केवलिसमुग्घादेण समुहदस्स सव्वलोगं गदस्स तस्स वेयणीयवेदणा खेत्तदो उक्कस्सा।।१६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूत्रे 'अण्णदरस्स' इति निर्देशेन अवगाहनाविशेषाणां भरतादिक्षेत्रविशेषाणां च प्रतिषेधाभावः प्ररूपितः। 'केवलिस्स' इति पदेन छद्मस्थजीवानां निषेधो विहितः। केवलिसमुग्घादेण समुहदस्स' इति निर्देशेन स्वस्थानकेवलिनां प्रतिषेधः कृतः। 'सव्वलोगं गदस्स' इति कथनेन दण्ड-कपाट-प्रतरगतानां केवलिनां प्रतिषेधः कृतः। एतेन सर्वलोकपूरणे समुद्घाते वर्तमानस्य केवलिनो भगवतः उत्कृष्टा वेदनीयकर्मणो वेदना भवतीत्युक्तं भवति। अत्रोपसंहारः सुगमोऽस्ति।**

अधुना वेदनीयस्यानुत्कृष्टवेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्र में "उत्कृष्ट पद में" इस निर्देश से जघन्य पद का निषेध किया गया है। "वेदनीय कर्म की वेदना" इस निर्देश से शेष कर्मों की वेदना का प्रतिषेध किया है। क्षेत्र का निर्देश करने से द्रव्यादि का प्रतिषेध किया गया है। 'किसके होती है ?' इससे उक्त वेदना क्या देव के, क्या नारकी के, क्या तिर्यंच के और क्या मनुष्य के होती है ? यह पृच्छा की गई है।

अब इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यदेव एक सूत्र का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ—

अन्यतर केवली के, जो केवली समुद्घात से समुद्घात को व उसमें ही सर्वलोक अर्थात् लोकपूरण अवस्था को प्राप्त हैं, उनके वेदनीयकर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है।।१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्र में "अन्यतर" इस पद के निर्देश से अवगाहना विशेषों के और भरतादिक क्षेत्र विशेषों के प्रतिषेध का अभाव प्ररूपित किया गया है। "केवली के" इस पद का निर्देश करके छद्मस्थों का प्रतिषेध किया गया है। 'केवलिसमुद्घात से समुद्घात को प्राप्त' इस निर्देश से स्वस्थान केवली का प्रतिषेध किया है। 'सर्वलोक को प्राप्त' इस निर्देश से दण्ड, कपाट और प्रतर समुद्घात को प्राप्त हुए केवलियों का प्रतिषेध किया है। सर्वलोकपूरण समुद्घात में रहने वाले केवली भगवान के वेदनीय कर्म की उत्कृष्ट वेदना होती है, यह उसका अभिप्राय है। यहाँ पर उपसंहार सुगम है।

अब वेदनीय कर्म की अनुत्कृष्ट वेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उत्कृष्ट क्षेत्रवेदना से भिन्न क्षेत्र वेदना अनुत्कृष्ट है।।१७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतस्या उत्कृष्टक्षेत्रवेदनाया व्यतिरिक्ता क्षेत्रवेदना अनुत्कृष्टा भवति। तत्रतनोत्कृष्टायाः क्षेत्रवेदनायाः प्रतरगतः केवली स्वामी, एतस्मात् अनुत्कृष्टक्षेत्रेषु महत् क्षेत्राभावात्। एतच्चोत्कृष्टक्षेत्राद् विशेषहीनं, वातवलयाभ्यन्तरे जीवप्रदेशानामभावात्। सर्वस्मात् महत्या लोकावगाहनया कपाटसमुद्घातं गतः केवली तदनन्तरानुत्कृष्टक्षेत्रस्वामी।**

विशेषेण तु पूर्वोक्तानुत्कृष्टक्षेत्रात् द्वितीयमनुत्कृष्टक्षेत्रमसंख्यातगुणहीनं, संख्यातसूच्यंगुलबाहल्यरूप-जगत्प्रतरप्रमाणकपाटक्षेत्रं अपेक्ष्य मंथक्षेत्रस्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्। प्रदेशोनोत्कृष्टविष्कंभावगाहनायाः कपाटं गतः केवली भगवान् तृतीयक्षेत्रस्वामी। विशेषण तु द्वितीयमनुत्कृष्टक्षेत्रं अपेक्ष्य तृतीयमनुत्कृष्टक्षेत्रं विशेषहीनं भवति, पूर्वोक्तक्षेत्रात् जगत्प्रतरमात्रक्षेत्रपरिहाणिदर्शनात्। द्विप्रदेशोनोत्कृष्टविष्कंभेन कपाटं गतश्चतुर्थक्षेत्रस्वामी। एदप्यनंतरपूर्वोक्तक्षेत्रं दृष्ट्वा विशेषहीनं द्विजगत्प्रतरमात्रेण। एवं सान्तरक्रमेण क्षेत्रस्वामित्वं प्ररूपयितव्यं यावत्सार्धत्रिरत्नि-उत्सेधयुक्तावगाहनाया विष्कंभेनोनपंचविंशत्यधिकपंचशतधनुरुत्सेधयुक्ता-वगाहनाया विष्कंभमात्रकपाटक्षेत्रविकल्पा इति।

पुनः एतेन सर्वजघन्यपश्चिमक्षेत्रेण सदृशमुत्तराभिमुखकपाटक्षेत्रं गृहीत्वा पुनस्तत एकैकप्रदेशं विष्कंभे ऊनं कृत्वा कपाटं नीत्वा क्षेत्रविकल्पानां स्वामित्वं प्ररूपयितव्यं यावदुत्तराभिमुखकेवलिजघन्यकपाटक्षेत्रं प्राप्त इति।

पुनस्तदनंतरमधस्तनमनुत्कृष्टक्षेत्रस्वामी महामत्स्यः त्रिविग्रहकाण्डकैः सप्तमपृथिवीमारणान्तिकसमुद्घातेन समुद्घातं प्राप्तः स्वामी, अन्यस्य कपाटजघन्यक्षेत्रादूनस्य अनुत्कृष्टक्षेत्रस्यानुपलंभात्। नवरि कपाटजघन्यक्षेत्रात्

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस उत्कृष्ट क्षेत्रवेदना से भिन्न क्षेत्रवेदना अनुत्कृष्ट होती है। अनुत्कृष्ट क्षेत्रवेदना के विकल्पों में उत्कृष्ट क्षेत्रवेदना के स्वामी प्रतरसमुद्घात को प्राप्त केवली भगवान हैं, क्योंकि अनुत्कृष्ट क्षेत्रों में इससे बड़ा और कोई क्षेत्र नहीं हैं। यह क्षेत्र उत्कृष्ट क्षेत्र की अपेक्षा विशेष हीन है, क्योंकि इस क्षेत्र में जीव के प्रदेश वातवलयों के भीतर नहीं रहते हैं। सबसे बड़ी अवगाहना के द्वारा कपाट समुद्घात को प्राप्त केवली भगवान तदनन्तर अनुत्कृष्ट क्षेत्र स्थान के स्वामी हैं।

विशेष इतना है कि पूर्व के अनुत्कृष्ट क्षेत्र से द्वितीय अनुत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यातगुणा हीन है, क्योंकि संख्यात सूच्यंगुल बाहल्यरूप जगप्रतर प्रमाण कपाटक्षेत्र की अपेक्षा मंथक्षेत्र असंख्यातगुणा पाया जाता है। एक प्रदेश कम उत्कृष्ट विष्कम्भ युक्त अवगाहना से कपाट समुद्घात को प्राप्त केवली भगवान तृतीय क्षेत्र के स्वामी हैं। विशेष इतना है कि द्वितीय अनुत्कृष्ट क्षेत्र की अपेक्षा तृतीय क्षेत्र विशेष हीन है। क्योंकि इसमें पूर्व के क्षेत्र की अपेक्षा दो जगत्प्रतरमात्र क्षेत्र की हानि देखी जाती है। दो प्रदेश कम उत्कृष्ट विष्कम्भ से कपाट को प्राप्त केवली भगवान चतुर्थ अनुत्कृष्ट क्षेत्र के स्वामी हैं। यह भी अव्यवहित पूर्व के क्षेत्र की अपेक्षा दो जगत्प्रतरमात्र से विशेष हीन हैं। इस प्रकार सान्तरक्रम से साढ़े तीन रत्नि उत्सेध युक्त अवगाहना के विष्कम्भ से हीन पाँच सौ पच्चीस धनुष उत्सेध युक्त अवगाहना के विष्कम्भ प्रमाण कपाटक्षेत्र के विकल्पों तक क्षेत्रस्वामित्व की प्ररूपणा करना चाहिए।

फिर इस सर्वजघन्य पश्चिमक्षेत्र—अन्तिम क्षेत्र के सदृश उत्तराभिमुख कपाटक्षेत्र को ग्रहण करके पश्चात् उससे विष्कम्भ में एक-एक प्रदेश कम करके कपाट समुद्घात को लेकर उत्तराभिमुख केवली भगवान के जघन्य कपाटक्षेत्र को प्राप्त होने तक क्षेत्र विकल्पों के स्वामित्व की प्ररूपणा करना चाहिए।

पुनः तीन विग्रहकाण्डकों के द्वारा सातवीं पृथ्वी में मारणान्तिक समुद्घात से समुद्घात को प्राप्त

महामत्स्यस्य उत्कृष्टमसंख्यातगुणहीनं।

एतस्मात् प्रभृति उपरिमक्षेत्रविकल्पानां घातिकर्मणां भणितविधानेन स्वामित्वप्ररूपणं कर्तव्यम्। दण्डगतकेवलिक्षेत्रस्थानानि संख्यातप्रतरांगुलमात्राणि महामत्स्यक्षेत्राभ्यन्तरे निपतन्ति इति। पृथग्न प्ररूपितानि। केवली भगवान् दण्डं क्रियमाणः सर्वः शरीरत्रिगुणबाहल्येन न करोति, वेदनाभावात्।

कश्चित् पृच्छति—

कः पुनः शरीरत्रिगुणबाहल्येन दण्डं करोति ?

आचार्यदेव उत्तरयति—

पल्यंकेन निषण्णः केवली भगवान् उक्तप्रकारेण दण्डकपाटं समुद्घातं करोति।

एतेषां क्षेत्राणां स्वामिजीवानां प्ररूपणायां क्रियमाणायां षडनुयोगद्वाराणि भवन्ति—प्ररूपणा-प्रमाण-श्रेणि-अवहार-भागाभाग-अल्पबहुत्वानि च।

तत्र प्ररूपणानुयोगद्वारापेक्षया वेदनीयसर्वक्षेत्रविकल्पेषु सन्ति जीवाः।

प्ररूपणा समाप्ता।

उत्कृष्टे स्थाने जीवाः कियन्तः ? संख्याताः। एवं नेतव्यं यावत् कपाटगतकेवलिजघन्यक्षेत्रविकल्पा इति। उपरि महामत्स्योत्कृष्टक्षेत्रप्रभृति त्रसप्रायोग्यक्षेत्रेषु असंख्याताः। वनस्पतिकायिकप्रायोग्येषु अनंताः।

एवं प्रमाणप्ररूपणा गता।

महामत्स्य तदनन्तर अधस्तन अनुत्कृष्ट क्षेत्र का स्वामी है, क्योंकि उक्त जघन्य कपाटक्षेत्र से हीन और दूसरा अनुत्कृष्ट क्षेत्र नहीं पाया जाता है। विशेष इतना है कि जघन्य कपाटक्षेत्र से महामत्स्य का उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यातगुणा हीन होता है।

यहाँ से आगे पूर्वोक्त घातियाकर्मों के कथित विधान से उपरिम क्षेत्रविकल्पों के स्वामित्व की प्ररूपणा करना चाहिए। दण्डगत केवली भगवान के संख्यात प्रतरांगुलमात्र क्षेत्रस्थान चूँकि महामत्स्य क्षेत्र के भीतर आ जाते हैं, अतः उनकी पृथक् प्ररूपणा नहीं की गई है। दण्ड समुद्घात को करने वाले सभी केवली भगवान शरीर से तिगुणे बाहल्य से युक्त समुद्घात को नहीं करते, क्योंकि उनके वेदना का अभाव पाया जाता है।

यहाँ कोई पूछता है कि—

तो फिर कौन से केवली भगवान शरीर से तिगुणे बाहल्य से दण्डसमुद्घात को करते हैं ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि—

पर्यंकासन से स्थित केवली भगवान उक्त प्रकार से दण्डसमुद्घात को करते हैं। इन क्षेत्रों के स्वामी जीवों की प्ररूपणा करने में छह अनुयोगद्वार होते हैं—प्ररूपणा, प्रमाण, श्रेणी, अवहार, भागाभाग और अल्पबहुत्व।

उनमें प्ररूपणा अनुयोगद्वार की अपेक्षा वेदनीय कर्म के सब क्षेत्र विकल्पों में जीव हैं।

यहाँ यह प्ररूपणा समाप्त हुई।

उत्कृष्ट स्थान में जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इस प्रकार कपाटसमुद्घातगत केवली भगवान के जघन्य क्षेत्रविकल्प तक ले जाना चाहिए। आगे महामत्स्य के उत्कृष्ट क्षेत्र से लेकर त्रस योग्य क्षेत्रों में असंख्यात जीव हैं। वनस्पतिकायिक योग्य क्षेत्रों में अनन्त जीव हैं।

इस प्रकार प्रमाण प्ररूपणा समाप्त हुई।

श्रेणिप्ररूपणा न शक्यते नेतुं, प्रवाह्यमानोपदेशाभावात्।

अवहार उच्यते — उत्कृष्टस्थानजीवप्रमाणेन सर्वस्थानजीवाः कियता कालेन अपह्रियन्ते ? अनन्तेन कालेन। एवं नेतव्यं यावत् त्रसकायिक-पृथ्वीकायिक-अप्कायिक-तेजस्कायिक-वायुकायिकयोग्यस्थानं पर्यन्तं इति।

सूक्ष्म-बादरवनस्पतिकायिकप्रायोग्यस्थानजीवप्रमाणेन सर्वजीवाः कियच्चिरेण कालेन अपह्रियन्ते ? असंख्यातेन कालेन अपह्रियन्ते।

अवहारो गतः।

भागाभाग उच्यते —

उत्कृष्टे स्थाने जीवाः सर्वस्थानजीवानां कियान् भागः ?

अनन्तिमो भागोऽस्ति।

जघन्ये स्थाने सर्वस्थानजीवानां कियान् भागः ?

असंख्यातभागप्रमाणमस्ति।

अजघन्योत्कृष्टस्थाने जीवाः सर्वस्थानजीवानां कियान् भागः ?

असंख्यातबहुभागप्रमाणाः सन्ति।

भागाभागप्ररूपणा गता।

अल्पबहुत्वं वक्ष्यते —

सर्वस्तोका उत्कृष्टे स्थाने जीवाः। जघन्ये स्थाने जीवा अनन्तगुणाः। अजघन्योत्कृष्टके स्थाने जीवा असंख्यातगुणाः। अजघन्ये स्थाने जीवा विशेषाधिकाः। अनुत्कृष्टे स्थाने जीवा विशेषाधिकाः। तेभ्यः सर्वस्थानेषु जीवाः विशेषाधिकाः इति ज्ञातव्याः।

श्रेणिप्ररूपणा बतलाना शक्य नहीं है, क्योंकि उसके विषय में प्रवाहस्वरूप से प्राप्त हुए परम्परागत उपदेश का अभाव है।

अब अवहार की प्ररूपणा करते हैं — उत्कृष्ट स्थान में रहने वाले जीवों के प्रमाण से सब जीव कितने काल से अपहृत होते हैं ? वे प्रमाण से अनन्त काल से अपहृत होते हैं। इस प्रकार त्रसकायिक, पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक योग्य स्थानों तक ले जाना चाहिए।

सूक्ष्म-बादर वनस्पतिकायिक योग्य स्थानों संबंधी जीवों के प्रमाण से सब जीव कितने काल से अपहृत होते हैं ? उक्त प्रमाण से वे असंख्यात काल में अपहृत होते हैं।

इस प्रकार अवहार प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब भागाभाग की प्ररूपणा करते हैं — उत्कृष्ट स्थान में रहने वाले जीव सब स्थानों संबंधी जीवों के कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? वे उनके अन्तिम भागप्रमाण हैं। जघन्य स्थान में रहने वाले जीव सब स्थानों संबंधी जीवों के कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अजघन्योत्कृष्ट स्थान में रहने वाले जीव सब स्थानों संबंधी जीवों के कितनेवें भाग प्रमाण हैं ? वे उनके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं।

भागाभाग प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब अल्पबहुत्व को कहते हैं — उत्कृष्ट स्थान में जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे जघन्य स्थान में जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थान में जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य स्थान में जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अनुत्कृष्ट स्थान में जीव विशेष अधिक हैं। उनसे सब स्थानों में जीव विशेष अधिक हैं, ऐसा जानना चाहिए।

शेषकर्मणामपि क्षेत्रप्ररूपणानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवमाउव-णामा-गोदाणं।।१८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा वेदनीयस्य कर्मण उत्कृष्टानुत्कृष्टक्षेत्रप्ररूपणा कृता, तथैवायुर्नाम-गोत्राणामपि क्षेत्रप्ररूपणा कर्तव्या, विशेषाभावात्।**

एवं पंचमस्थले दर्शनावरणादीनामुत्कृष्टानुत्कृष्टवेदनाकथनत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

एवं उत्कृष्टानुत्कृष्टक्षेत्रप्ररूपणा समाप्ता।

अधुना जघन्यपदे ज्ञानावरणीयवेदनानिरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेदणा खेत्तदो जहण्णिया कस्स ?।।१९।।

अण्णदरस्स सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स तिसमयआहारयस्स तिसम-यतब्भवत्थस्स जहण्णजोगिस्स सव्वजहण्णियाए सरीरोगाहणाए वट्टमाणस्स तस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा।।२०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्मिन् प्रश्नसूत्रे 'जहण्णपदे' इति निर्देशः शेषपदप्रतिषेधफलः। 'णाणावरणीय'**

अब शेष कर्मों की भी क्षेत्र प्ररूपणा के निरूपण हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार आयु, नाम व गोत्रकर्म की उत्कृष्ट एवं अनुत्कृष्ट वेदनाक्षेत्रों की प्ररूपणा करनी चाहिए।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार वेदनीय कर्म के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट क्षेत्र की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र कर्मों की भी क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिए, उसमें कोई विशेषता नहीं पाई जाती है।

इस प्रकार पंचम स्थल में दर्शनावरणादि कर्मों की उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट वेदना को कहने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट क्षेत्र प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब जघन्य पद में ज्ञानावरणीय की वेदना का निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

स्वामित्व से जघन्य पद में ज्ञानावरणीय की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य किसके होती है ?।।१९।।

अन्यतर सूक्ष्म निगोदिया जीव लब्ध्यपर्याप्तक जो कि त्रिसमयवर्ती आहारक है तद्भवस्थ होने के तृतीय समय में वर्तमान है, जघन्य योगवाला है और शरीर की सर्वजघन्य अवगाहना में वर्तमान है, उसके ज्ञानावरणीय की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य होती है।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ प्रथमतः प्रश्नसूत्र में "जघन्यपद में" यह निर्देश शेष पदों के

पदकथनेन शेषकर्मप्रतिषेधफलो दृश्यते। 'खेत्त' पदनिर्देशेन द्रव्यादिप्रतिषेधफलो लभ्यते। 'कस्स' इति प्रश्नसूचकपदेन देव-नारकादिविषयकपृच्छा ज्ञातव्या।

अधुना उत्तरसूत्रेणाचार्यदेवः स्पष्टीकरणं करोति—

सूक्ष्मनिगोदजीवा अनन्ताः सन्ति, तत्र एकस्य जीवस्य ग्रहणार्थमन्यतरस्य ''सुहुमणिगोदजीवस्स'' इत्युक्तं वर्तते। तत्र पर्याप्तनिराकरणार्थं ''अपज्जत्तयस्स'' इति कथितमस्ति।

पर्याप्तस्य निराकरणं किमर्थं क्रियते ?

अपर्याप्तस्य जघन्यावगाहनायाः पर्याप्तजघन्यावगाहनाया बहुत्वोपलंभात्।

विग्रहगतौ जघन्यावगाहनापि पूर्वोक्तावगाहनायाः सदृशीति तत्प्रतिषेधार्थं 'तिसमयआहारयस्स'' इति भणितमस्ति सूत्रे। ऋजुगत्या उत्पन्नः इति ज्ञापनार्थं ''तिसमयतब्भवत्थस्स'' इति कथितमत्र।

अत्र कश्चिदाशंकते—

एकं द्वे त्रीन् वा विग्रहान् अपि कृत्वा उत्पाद्य षष्ठसमयवर्तितद्भवस्थस्य निगोदजीवस्य जघन्यस्वामित्वं किन्न दीयते ?

आचार्यवर्यः समाधत्ते—

नैतद् वक्तव्यं, पञ्चसु समयेषु असंख्यातगुणितश्रेण्या वृद्धिंगतेन एकान्तानुवृद्धियोगेन वर्द्धमानस्य बह्वावगाहनायाः प्रसंगात्।

प्रतिषेध के लिए किया गया है। "ज्ञानावरणीय" पद के कथन से शेष कर्मों के प्रतिषेध का फल देखा जाता है। 'क्षेत्र' पद का निर्देश द्रव्यादि के प्रतिषेध का फल प्राप्त होता है। 'कस्य' अर्थात् 'किसके होती है' इस प्रश्नसूचक पद के द्वारा देव-नारकादि विषयक पृच्छा प्रगट की गई जानना चाहिए।

अब उत्तरसूत्र के द्वारा आचार्यदेव स्पष्टीकरण करते हैं—

सूक्ष्मनिगोदिया जीव अनन्त हैं, उनमें से एक का ग्रहण करने के लिए 'अन्यतर सूक्ष्म निगोदिया जीव के' ऐसा कहा है। उनमें पर्याप्त का निराकरण करने के लिए 'अपर्याप्त के' ऐसा निर्देश दिया है।

शंका—पर्याप्त का निराकरण किसलिए किया जा रहा है ?

समाधान—अपर्याप्त की जघन्य अवगाहना से चूँकि पर्याप्त की जघन्य अवगाहना बहुत पाई जाती है, अतः उसका निषेध किया गया है।

विग्रहगति में चूँकि जघन्य अवगाहना भी पूर्व अवगाहना के सदृश है, अतः उसका निषेध करने के लिए 'त्रिसमयवर्ती आहारक' ऐसा कहा है। ऋजुगति से उत्पन्न हुआ, इस बात के ज्ञापनार्थ 'तृतीयसमयवर्ती तद्भवस्थ' ऐसा कहा है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

एक, दो अथवा तीन भी विग्रह करके उत्पन्न कराकर षष्ठ समयवर्ती तद्भवस्थ निगोदिया जीव के जघन्य स्वामीपना क्यों नहीं कहते हैं ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हुए कहते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि पाँच समयों में असंख्यातगुणित श्रेणि से वृद्धि को प्राप्त हुए एकान्तानुवृद्धि योग से बढ़ने वाले उक्त जीव के बहुत अवगाहना का प्रसंग आता है।

प्रथमसमयाहारकस्य प्रथमसमयतद्भवस्थस्य जघन्यक्षेत्रस्वामित्वं किन्न दीयते ?

नैतत्, तत्र आयतचतुरस्राकारेण स्थिते पूर्वोक्तजीवे अवगाहनायाः स्तोकत्वानुपपत्तेः।

ऋजुगत्योत्पन्नप्रथमसमये आयतचतुरस्रस्वरूपेण जीवप्रदेशास्तिष्ठन्तीति कथं ज्ञायते ?

प्रवाह्यमानाचार्यपरंपरागतोपदेशादेव ज्ञायते।

द्वितीयसमयाहारक-द्वितीयसमयतद्भवस्थस्य जघन्यस्वामित्वं किन्न कथ्यते ?

नैतत्, तत्र समचतुरस्रस्वरूपेण जीवप्रदेशानामवस्थानात्।

द्वितीयसमये निष्कंभसमान-आयामः जीवप्रदेशानां भवतीति कुतो ज्ञायते ?

परमगुरूपदेशात् ज्ञायते।

तृतीय समयाहारकस्य तृतीयसमयतद्भवस्थस्य चैव जघन्यस्वामित्वं किमर्थं निगद्यते ?

नैष दोषः, तस्मिन् समये चतुरस्रक्षेत्रस्य चतुरोऽपि कोणान् संकोच्य वर्तुलाकारेण जीवप्रदेशानां तत्रावस्थान-दर्शनात्।

तत्समये जीवप्रदेशा वर्तुलाकारेणावस्थिता इति कथं ज्ञायते ?

एतस्माच्चैव सूत्राज्ज्ञायते।

उत्पन्नप्रथमसमयादारभ्य जघन्योपपादयोग-जघन्यैकान्तानुवृद्धिभ्यां एव त्रिष्वपिसमयेषु प्रवृत्तः इति ज्ञापनार्थं 'जहण्णजोगिस्स' इति सूत्रे भणितं वर्तते। तृतीयसमये अजघन्या अपि अवगाहनाः सन्तीति

शंका — प्रथम समयवर्ती आहारक और प्रथम समयवर्ती तद्भवस्थ हुए निगोदिया जीव के जघन्य क्षेत्र का स्वामीपना क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि उस समय आयतचतुरस्र क्षेत्र के आकार से स्थित उक्त जीव में अवगाहना का स्तोकपना बन नहीं सकता है।

शंका — ऋजुगति से उत्पन्न होने के प्रथम समय में आयतचतुरस्रस्वरूप से जीव प्रदेश स्थित रहते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — वह आचार्य परम्परागत उपदेश से ही जाना जाता है।

शंका — द्वितीय समयवर्ती आहारक और तद्भवस्थ होने के द्वितीय समय में वर्तमान जीव के जघन्य स्वामीपना क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि उस समय में भी जीव प्रदेश समचतुरस्रस्वरूप से अवस्थित रहते हैं।

शंका — द्वितीय समय में जीव प्रदेशों का विष्कम्भ से समान आयाम होता है, यह कहाँ से जाना जाता है ?

समाधान — वह परम गुरु के उपदेश से जाना जाता है।

शंका — तृतीय समयवर्ती आहारक और तृतीय समयवर्ती तद्भवस्थ निगोद जीव के ही जघन्य क्षेत्र का स्वामीपना किसलिए कहते हैं ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उस समय में चतुरस्र क्षेत्र के चारों ही कोनों को संकुचित करके जीव प्रदेशों का वर्तुल अर्थात् गोल आकार से अवस्थान देखा जाता है।

शंका — उस समय जीव प्रदेश वर्तुल आकार से अवस्थित होते हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — वह इसी सूत्र से जाना जाता है।

उत्पन्न होने के प्रथम समय से लेकर जघन्य उपपाद योग और जघन्य एकान्तानुवृद्धि योग से ही तीनों समयों में प्रवृत्त होता है, इस बात को बतलाने के लिए 'जघन्य योग वाले के' ऐसा सूत्र में निर्देश किया है।

तत्प्रतिषेधार्थं सर्वजघन्यायां शरीरावगाहनायां 'वट्टमाणस्स' इति कथितं। एवंविधविशेषणैः विशेषितस्य सूक्ष्मनिगोदजीवस्य ज्ञानावरणीयवेदना क्षेत्रतो जघन्या भवति।

अत्रोपसंहार उच्यते —

एकोत्सेधघनांगुलं स्थापयित्वा तत्प्रायोग्येन पल्योपमस्य असंख्यातभागेन भागे दीयमाने ज्ञानावरणीयस्य जघन्यक्षेत्रं भवति।

संप्रति ज्ञानावरणीयस्याजघन्यवेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

तव्वदिरित्तमजहण्णा।।२१।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका —**तस्माद् जघन्यक्षेत्राद् व्यतिरिक्ता क्षेत्रवेदना अजघन्या। सा च बहुप्रकारा। तासां स्वामित्वप्ररूपणं क्रियते। तद्यथा — पल्योपमस्य असंख्यातभागं विरलय्य घनांगुलं समखंडं कृत्वा दीयमाने एकैकस्य रूपस्य सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जघन्यावगाहनां प्राप्नोति। पुनः एतस्या उपरि प्रदेशाधिकावगाहनाया तत्रैव निगोदपर्याये स्थितजीवोऽजघन्य क्षेत्रवेदनाया जघन्यस्थानस्य स्वामी भवति।**

जघन्यक्षेत्रस्योपरि द्वयाकाशप्रदेशौ वर्धयित्वा स्थितो जीवो द्वितीयाजघन्यक्षेत्रस्य स्वामी भवति।

त्रिप्रदेशाधिकजघन्यावगाहनायां वर्तमानो जीवस्तृतीयक्षेत्रस्वामी।

विस्तरोऽत्र धवलाटीकायां पठितव्यः।

तदनंतरं प्रदेशोत्तरादिक्रमेण तिसृभिर्वृद्धिभिः इमा अवगाहना वर्धापयितव्या यावत्पंचेन्द्रियनिवृत्ति-

---

तृतीय समय में अजघन्य भी अवगाहनायें होती हैं, अतः उनका प्रतिषेध करने के लिए 'शरीर की सर्वजघन्य अवगाहना में वर्तमान' इस पद को कहा है। इन विशेषणों से विशेषता को प्राप्त हुए सूक्ष्म निगोदिया जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना क्षेत्र से जघन्य होती है।

अब इसका उपसंहार करते हुए कहते हैं —

एक उत्सेध घनांगुल को स्थापित करके तत्प्रायोग्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर ज्ञानावरणीय कर्म का जघन्य क्षेत्र होता है।

अब ज्ञानावरणीय कर्म की अजघन्य वेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

उससे भिन्न अजघन्य वेदना होती है।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उससे अर्थात् जघन्य क्षेत्र से भिन्न क्षेत्र वेदना अजघन्य है। वह अनेक प्रकार की है। उस बहुविध क्षेत्रवेदनाओं के स्वामित्व की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है —

पल्योपम के असंख्यातवें भाग का विरलन करके घनांगुल को समखण्ड करके देने पर एक-एक रूप के प्रति सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तक जीव की जघन्य अवगाहना प्राप्त होती है। पश्चात् इसके आगे एक प्रदेश अधिक अवगाहना से वहाँ (निगोद पर्याय में) ही स्थित जीव अजघन्य क्षेत्र वेदना के जघन्य स्थान का स्वामी होता है।

जघन्य क्षेत्र के ऊपर दो आकाशप्रदेशों को बढ़ाकर स्थित जीव द्वितीय अजघन्य क्षेत्र का स्वामी होता है।

तीन प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना में रहने वाला जीव तृतीय क्षेत्र का स्वामी होता है।

यहाँ विस्तृत वर्णन धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

तत्पश्चात् एक प्रदेश अधिक इत्यादि क्रम से तीन वृद्धियों के द्वारा इस अवगाहना को पंचेन्द्रिय

पर्याप्तकस्य उत्कृष्टावगाहनायाः सदृश्याः जाताः इति।

पुनः अन्यैकेन विष्कंभोत्सेधाभ्यां महामत्स्यसमानेन महामत्स्यायामात् संख्यातगुणहीनायामेन मुखप्रदेशे वर्द्धितैकाकाशप्रदेशेन लब्धमत्स्येन पूर्वोक्तायामेन सह योजनसहस्रस्य वेदनया विना मारणांतिकसमुद्घाते कृते महामत्स्यावगाहनाया एषा अवगाहना प्रदेशोत्तरा भवति, मुखे वर्द्धितैकाकाशप्रदेशेनाधिकत्वोपलंभात्।

पुनः एतेनैव लब्धमत्स्येन मुखे वर्द्धितद्व्याकाशप्रदेशेन योजनसहस्रमारणान्तिकसमुद्घाते कृते पूर्वोक्तक्षेत्रात् द्विप्रदेशोत्तरविकल्पो भवति। एवं एतेन क्रमेण संख्यातप्रतरांगुलमात्रा आकाशप्रदेशा वर्धापयितव्या। एवं वर्धयित्वा स्थितक्षेत्रेण प्रदेशोत्तरयोजनसहस्रस्य मारणांतिकसमुद्घाते कृते लब्धमत्स्यक्षेत्रं सदृशं भवति। पुनः प्रदेशोत्तरादिक्रमेण मुखे संख्यातप्रतरांगुलानि पूर्वमिव वर्धयित्वा स्थितक्षेत्रेण द्विप्रदेशोत्तरयोजनसहस्रस्य कृतमारणांतिकसमुद्घातक्षेत्रं सदृशं भवति। एवमेतेन क्रमेण नेतव्यं यावदायामः सातिरेकसार्धसप्तरज्जुमात्रो जातः इति। एतेन क्षेत्रेण लोकनाड्या वायव्यदिशः त्रीणि काण्डकानि कृत्वा मारणांतिकसमुद्घातेन सप्तमपृथ्वीनारकेषु तस्मिन् काले उत्पत्स्यते इति स्थितस्य क्षेत्रं सदृशं भवति।

एवं वर्धयित्वा स्थितश्चान्यैको वेदनासमुद्घातेन त्रिगुणविष्कंभोत्सेधौ कृत्वा मारणान्तिकसमुद्घातेन सार्धसप्तरज्जूनां नवमभागं गत्वा स्थितश्च अवगाहनायाः सदृशौ इमौ जीवौ स्तः। पुनरपि प्राक्तनं मुक्त्वा इमं गृहीत्वा निरन्तर-सान्तरक्रमेण पूर्वमिव वर्द्धापयितव्यं यावदायामः सार्धसप्तरज्जुमात्रं प्राप्त इति।

एवं वर्द्धापिते ज्ञानावरणीयस्य अजघन्यसर्वक्षेत्रविकल्पानां स्वामित्वप्ररूपणा कृता भवति।

निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना के सदृश हो जाने तक बढ़ाना चाहिए।

फिर विष्कम्भ व उत्सेध की अपेक्षा महामत्स्य के सदृश व महामत्स्य के आयाम से संख्यातगुणे हीन आयाम वाले तथा मुखप्रदेश में एक आकाशप्रदेश की वृद्धि को प्राप्त हुए अन्य एक प्राप्त मत्स्य के द्वारा पूर्व आयाम के साथ वेदना के बिना एक हजार योजन मारणान्तिक समुद्घात किये जाने पर महामत्स्य की अवगाहना से यह अवगाहना एक प्रदेश अधिक होती है, क्योंकि वह मुख में वृद्धि को प्राप्त हुए एक आकाशप्रदेश से अधिक पाई जाती है।

पश्चात् इसी प्राप्त मत्स्य के द्वारा मुख में दो आकाश प्रदेशों से वृद्धिंगत होकर एक हजार योजन मारणान्तिक समुद्घात किये जाने पर पूर्व के क्षेत्र की अपेक्षा दो प्रदेशों से अधिक विकल्प होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण आकाशप्रदेशों को बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार बढ़कर स्थित क्षेत्र से एक प्रदेश अधिक एक हजार योजन मारणान्तिक समुद्घात करने पर प्राप्त मत्स्य का क्षेत्र समान होता है। पश्चात् एक प्रदेश अधिक इत्यादि क्रम से मुख में पूर्व के समान संख्यात प्रतरांगुल बढ़कर स्थित क्षेत्र से दो प्रदेश अधिक एक हजार योजन मारणान्तिक समुद्घात करने वाला क्षेत्र समान होता है। इस प्रकार इस क्रम से आयाम के कुछ अधिक साढ़े सात राजु प्रमाण हो जाने तक ले जाना चाहिए। इस क्षेत्र से जो लोकनाली की वायव्य दिशा से तीन विग्रहकाण्डक करके मारणान्तिक समुद्घात से सातवीं पृथिवी के नारकियों में अनन्तर समय में उत्पन्न होने के सन्मुख स्थित है, उसका क्षेत्र समान होता है।

इस प्रकार बढ़कर स्थित तथा दूसरा एक वेदना समुद्घात से तिगुणे विष्कम्भ व उत्सेध को करके मारणान्तिक समुद्घात से साढ़े सात राजुओं के नौवें भाग को प्राप्त होकर स्थित हुआ, ये दोनों जीव अवगाहना की अपेक्षा समान हैं, फिर भी पहले को छोड़कर और इसे ग्रहणकर निरन्तर-सान्तर क्रम से आयाम के साढ़े सात राजु प्रमाण को प्राप्त होने तक पहले के ही समान बढ़ाना चाहिए।

इस प्रकार बढ़ाने पर ज्ञानावरणीय के सब अजघन्य क्षेत्र विकल्पों के स्वामित्व की प्ररूपणा की जाती है।

अथवा सिक्थमत्स्यश्चैव मारणान्तिकसमुद्घातेन त्रीणि विग्रहकाण्डकानि कृत्वा सातिरेकसार्धसप्त-रज्ज्वायामस्य नेतव्यः। पार्श्वक्षेत्रे वर्द्धाप्यमाणे एकसार्धेन पार्श्वे वर्द्धित सार्धसप्तरज्जून् प्रतरांगुलस्य संख्यातभागेन खण्डयित्वा तत्र एकखण्डमात्रमायामेऽपनीय सदृशं कृत्वा पुनः सान्तरनिरन्तरक्रमेण ऊनक्षेत्रं वर्द्धापयितव्यम्।

एवं पुनः पुनः पार्श्वक्षेत्रं वर्द्धापयित्वा पूर्वोक्तक्षेत्रेण सदृशं कृत्वा पुनः ऊनक्षेत्रं वर्द्धापयित्वा नेतव्यं यावत् महामत्स्योत्कृष्टसमुद्घातक्षेत्रेण सदृशं जातमिति।

एवं ज्ञानावरणीयस्य अजघन्यस्वामित्वप्ररूपणा कृता भवति।

अत्र क्षेत्रस्थानस्वामिजीवप्ररूपणायां प्ररूपणा प्रमाणं श्रेणी अवहारो भागाभागं अल्पबहुत्वमिति षडनुयोगद्वाराणि सन्ति। एतेषां षण्णामनुयोगद्वाराणामुत्कृष्टानुत्कृष्ट-स्थानेषु यथा प्ररूपणा कृता तथा कर्तव्यास्ति।

अधुना सप्तकर्मणां जघन्याजघन्यक्षेत्रप्ररूपणानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं सत्तण्हं कम्माणं।।२२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**यथा ज्ञानावरणीयस्य जघन्याजघन्यक्षेत्रप्ररूपणा कृता तथा सप्तानां कर्मणां कर्तव्यं विशेषाभावात्।**

एवं षष्ठस्थले स्वामित्वेन जघन्याजघन्यवेदना कथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

एवं स्वकान्तःक्षिप्तसंख्या-स्थान-जीवसमुदाहाराः समाप्ता।

अथवा सिक्थ मत्स्य को ही मारणान्तिक समुद्घात से तीन विग्रह काण्डकों को कराकर कुछ अधिक साढ़े सात राजु आयाम को प्राप्त कराना चाहिए। पार्श्वक्षेत्र के बढ़ाते समय एक साथ पार्श्वक्षेत्र में वृद्धि को प्राप्त साढ़े सात राजुओं को प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से खण्डित करके उसमें से एक खण्ड प्रमाण को आयाम में से कम करके सदृश कर फिर सान्तर-निरन्तर क्रम से कम किये गये क्षेत्र को बढ़ाना चाहिए।

इस प्रकार बार-बार पार्श्वक्षेत्र को बढ़ाकर पूर्व क्षेत्र के समान करके पश्चात् कम किये गये क्षेत्र को बढ़ाकर महामत्स्य के उत्कृष्ट समुद्घात संबंधी क्षेत्र के सदृश होने तक ले जाना चाहिए।

इस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म की अजघन्य स्वामित्व की प्ररूपणा की गई है।

यहाँ क्षेत्र स्थानों के स्वामिभूत जीवों की प्ररूपणा में, प्ररूपणा प्रमाण, श्रेणी, अवहार, भागाभाग और अल्पबहुत्व ये छह अनुयोगद्वार हैं। इन छह अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा जैसे उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट क्षेत्रों में की गई है। वैसे ही यहाँ भी करना चाहिए।

अब सात कर्मों की जघन्य-अजघन्य क्षेत्र प्ररूपणा के कथन हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के जघन्य व अजघन्य क्षेत्रों की प्ररूपणा करना चाहिए।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के जघन्य व अजघन्य क्षेत्रों की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार शेष सात कर्मों के उक्त क्षेत्रों की प्ररूपणा करना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार छठे स्थल में स्वामित्व की अपेक्षा जघन्य-अजघन्य वेदना को कहने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार अपने भीतर समाविष्ट संख्या, स्थान और जीवसमुदाहार की प्ररूपणा समाप्त हुई।

संप्रति अल्पबहुत्वभेदप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्येण —

अप्पाबहुए त्ति। तत्थ इमाणि तिण्णि अणुओगद्दाराणि—जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे।।२३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र त्रीण्येवानियोगद्वाराणि इति संख्यानियमो ज्ञातव्यः, अन्येषामत्रानियोगद्वाराणां संभवाभावात्।**

अधुना उद्देश्यानुसारेण जघन्यपदे कर्मणां वेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

जहण्णपदे अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणाओ तुल्लाओ।।२४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**तृतीयसमयाहारकतृतीयसमयतद्भवस्थसूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तके जघन्ययोगे सति अष्टानामपि कर्मणां जघन्यक्षेत्रोपलंभात्। तस्मात् जघन्यपदेऽल्पबहुत्वं नास्तीति भणितं भवति।**

उत्कृष्टपदे चतुष्कानां घातिकर्मणां वेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

उक्कस्सपदे णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं वेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ थोवाओ।।२५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**चतुष्कानां घातिकर्मणां क्षेत्रापेक्षया उत्कृष्टा वेदनाः सन्ति, चतस्रोऽपि वेदनाः तुल्याः स्तोकाश्च भवन्ति।**

अब अल्पबहुत्व के भेदों को प्ररूपित करने हेतु श्रीमान् भूतबली आचार्य सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

अल्पबहुत्व अधिकृत है। उसकी प्ररूपणा में ये तीन अनुयोगद्वार हैं—जघन्य पद में, उत्कृष्ट पद में और अजघन्योत्कृष्ट पद में।।२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ तीन ही अनुयोगद्वार हैं, ऐसा संख्या का नियम जानना चाहिए। क्योंकि और दूसरे अनुयोगद्वारों की यहाँ संभावना नहीं है।

अब उद्देश्य के अनुसार जघन्य पद में कर्मों की वेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

जघन्य पद में आठों ही कर्मों की वेदनाएँ समान हैं।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तृतीय समयवर्ती आहारक और तद्भवस्थ होने के तीसरे समय में वर्तमान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के जघन्य योग के होने पर आठों ही कर्मों का क्षेत्र जघन्य क्षेत्र पाया जाता है। इसीलिए जघन्य पद में अल्पबहुत्व नहीं है यह उक्त कथन का अभिप्राय है।

अब उत्कृष्ट पद में चार घातिया कर्मों की वेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

उत्कृष्ट पद में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन कर्मों की वेदनाएँ क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट चारों ही समान व स्तोक हैं।।२५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—श्री भूतबली आचार्य ने यहाँ बताया है कि चारों घातिया कर्मों की क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट वेदनाएँ हैं, चारों ही वेदनाएँ एक समान और स्तोक हैं।

कथमेतासां तुल्यत्वं ?

एकस्वामित्वात्। सातिरेकसार्धसप्तरज्जुभिः संख्यातप्रतरांगुलेषु गुणितेषु घातिकर्मणामुत्कृष्टक्षेत्रं भवति। एतत्स्तोकमुपरि भण्यमानक्षेत्रात् इत्युक्तं भवति।

चतुष्कानामघातिकर्मणां वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ।।२६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **अत्र गुणकारो जगत्प्रतरस्यासंख्यातभागः, संख्यातप्रतरांगुलगुणित-जगच्छ्रेणिमात्रेण घातिकर्मणां उत्कृष्टक्षेत्रेण घनलोके भागे हृते जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागोपलंभात्।**

अधुना तृतीयभेदापेक्षया कर्मणां वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

जहण्णुक्कस्सपदेण अट्ठण्णं पि कम्माणं वेदणाओ खेत्तदो जहण्णियाओ तुल्लाओ थोवाओ।।२७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — **जघन्योत्कृष्टपदापेक्षया अष्टानामपि कर्मणां वेदना क्षेत्राद् जघन्याः तुल्याः स्तोकाश्च।**

अधुना घातिकर्मणां अघातिकर्मणां चाल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

शंका — इन वेदनाओं में समानता कैसे हैं ?

समाधान — इसका कारण यह है कि उनका स्वामी एक है।

कुछ अधिक साढ़े सात राजुओं द्वारा संख्यात प्रतरांगुलों को गुणित करने पर घातिया कर्मों का उत्कृष्ट क्षेत्र होता है। यह आगे कहे जाने वाले क्षेत्र से स्तोक है, यह सूत्र का अभिप्राय है।

अब चारों अघातिया कर्मों की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म की वेदनाएँ क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट चारों ही तुल्य व पूर्वोक्त वेदनाओं से असंख्यातगुणी हैं।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग है, क्योंकि घातियाकर्मों का जो उत्कृष्ट क्षेत्र संख्यात प्रतरांगुलों से गुणित जगत्श्रेणी के बराबर है, उसका घनलोक में भाग देने पर जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग पाया जाता है।

अब तृतीय भेद की अपेक्षा कर्मों की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

जघन्योत्कृष्ट पद से आठों ही कर्मों की क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य वेदनाएँ तुल्य व स्तोक हैं।।२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ सूत्र का अभिप्राय यही है कि जघन्य और उत्कृष्ट पद की अपेक्षा आठों कर्मों की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य, एक समान और स्तोक होती हैं।

अब घातिया कर्म एवं अघातिया कर्मों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ-चत्तारि वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ।।२८।।

वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ।।२९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र गुणकारो जगच्छ्रेण्या असंख्यातभागः, अष्टानां कर्मणां जघन्यक्षेत्रेण अंगुलस्यासंख्यातभागेन घातिकर्मोत्कृष्टक्षेत्रे भागे हृतेऽपि अंगुलस्य असंख्यातभागेन जगच्छ्रेण्यां खण्डितायां तत्रैकखण्डोपलंभात्।**

वेदनीयादि-अघातिकर्मणां वेदनाः क्षेत्रापेक्षया उत्कृष्टाश्चतस्रोऽपि तुल्याः पूर्वोक्तवेदनाभ्योऽसंख्यातगुणाः सन्ति।

एतदल्पबहुत्वसूत्रं सर्वजीवसमासानाश्रित्य न प्ररूपितमिति कृत्वा संप्रति सर्वजीवसमासानाश्रित्य ज्ञानावरणादिकर्मणां जघन्योत्कृष्टक्षेत्रप्ररूपणार्थं अल्पबहुत्वदण्डकं भण्यते आचार्यदेवेन।

एवं सप्तमस्थले वेदनाल्पबहुत्वकथनत्वेन सप्तसूत्राणि गतानि।

अधुना सर्वजीवेषु अवगाहनामहादण्डककथनार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

एत्तो सव्वजीवेसु ओगाहणमहादंडओ कायव्वो भवदि।।३०।।

सव्वत्थोवा सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा।।३१।।

सूत्रार्थ—

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म की वेदनाएँ क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट चारों ही तुल्य व पूर्वोक्त वेदनाओं से असंख्यातगुणी हैं।।२८।।

वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म की वेदनाएँ क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट चारों ही तुल्य व पूर्वोक्त वेदनाओं से असंख्यातगुणी हैं।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार जगच्छ्रेणी का असंख्यातवाँ भाग है। क्योंकि, आठों कर्मों का जो जघन्य क्षेत्र अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, उसका घातिकर्मों के उत्कृष्ट क्षेत्र में भाग देने पर भी सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से जगत्श्रेणी को खण्डित करने पर उसमें एक खण्ड पाया जाता है।

वेदनीय आदि अघातिया कर्मों की वेदनाएँ क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट चारों ही तुल्य तथा पूर्वोक्त वेदनाओं से असंख्यातगुणी हैं।

यह अल्पबहुत्व सूत्र चूँकि सब जीवसमासों का आश्रय करके नहीं कहा गया है, अतएव अब सब जीवसमासों का आश्रय करके ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के जघन्य व उत्कृष्ट क्षेत्र की प्ररूपणा करने के लिए अल्पबहुत्वदण्डक आचार्य देव ने कहा है।

इस प्रकार सातवें स्थल में वेदना का अल्पबहुत्व कथन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब सभी जीवों में अवगाहना महादण्डक का कथन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

अब यहाँ सब जीवसमासों में अवगाहना महादण्डक किया जाता है।।३०।।

सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तक जीव की जघन्य अवगाहना सबसे स्तोक है।।३१।।

सुहुमवाउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।३२।।

सुहुमतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।३३।।

सुहुमआउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।३४।।

सुहुमपुढविकाइयलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।३५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**एतेषु सूत्रेषु 'अपर्याप्तकस्य' इति कथ्यमाने लब्ध्यपर्याप्तकानामेव ग्रहणं कर्तव्यं, निर्वृत्त्यपर्याप्तानां जघन्यावगाहनायाः अग्रे वक्ष्यमाणत्वात्। एकत्रिंशत्तमे सूत्रे यत्कथितं सूक्ष्मनिगोदजीवापर्याप्तकस्य जघन्या अवगाहना सर्वस्तोका भवति। अत्र एकमुत्सेधघनांगुलं पल्योपमस्य असंख्यातभागेन भागे कृते एतस्या जघन्यावगाहनायाः प्रमाणं भवति। सूक्ष्मवायुकायिकादिजीवानां लब्ध्यपर्याप्तकानां जघन्यावगाहनाः क्रमशः असंख्यातगुणाः सन्ति। अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागो ज्ञातव्यः।**

पुनः बादरवायुकादिपंचेन्द्रियपर्यंतानां लब्ध्यपर्याप्तानां अवगाहनानिरूपणार्थं एकादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

उससे सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्तक जीवों की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।३२।।

उससे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक जीवों की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।३३।।

उससे सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तक जीवों की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।३४।।

उससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवों की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त इन सूत्रों में 'अपर्याप्तक के' ऐसा कहने से लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का ही ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीवों की जघन्य अवगाहना का वर्णन आगे करेंगे। इकतीसवें सूत्र में जो कहा है कि सूक्ष्मनिगोदिया अपर्याप्तक जीवों की जघन्य अवगाहना सबसे छोटी होती है, सो यहाँ एक उत्सेधघनांगुल को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से भाग करने पर इनकी जघन्य अवगाहना का प्रमाण होता है। सूक्ष्मवायुकायिक आदि लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की जघन्य अवगाहना क्रम से असंख्यातगुणी-असंख्यातगुणी हैं। यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

पुनः बादर वायुकायिक से लेकर पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों तक की अवगाहना का निरूपण करने हेतु ग्यारह सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

बादरवाउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।३६।।

बादरतेउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।३७।।

बादरआउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।३८।।

बादरपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।३९।।

बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।४०।।

णिगोदपदिट्ठिदअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।४१।।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।४२।।

बीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।४३।।

तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।४४।।

चउरिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।४५।।

सूत्रार्थ—

बादर वायुकायिक अपर्याप्त की जघन्य अवगाहना सूक्ष्मपृथिवीकायिक अपर्याप्तकों से असंख्यातगुणी है।।३६।।

उससे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।३७।।

उससे बादर जलकायिक अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।३८।।

उससे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।३९।।

उससे बादर निगोदजीव अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।४०।।

उससे बादर निगोदप्रतिष्ठित अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।४१।।

उससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।४२।।

उससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।४३।।

उससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।४४।।

उससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।४५।।

पंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।४६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सर्वेषु सूत्रेषु यो गुणकारः कथितः, सः पल्योपमस्यासंख्यातभागो गृहीतव्यः। एताः पूर्वप्ररूपित सर्वजघन्यावगाहनाः लब्ध्यपर्याप्तकानामेव गृहीतव्याः। अग्रे निर्वृत्तिपर्याप्तकानां निर्वृत्यपर्याप्तकानां च वक्ष्यमाणाः सन्ति।**

एवं अष्टमस्थले सर्वजीवेषु बादरवायुकायिकादिजीवेषु च वेदनाल्पबहुत्वकथनत्वेन सप्तदश सूत्राणि गतानि।

अधुना सूक्ष्मनिगोदजीवादारभ्य बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरजीवपर्यंतजीवानां निर्वृत्तिपर्याप्तापर्याप्तानां जघन्योत्कृष्टावगाहनाप्रतिपादनार्थं चतुस्त्रिंशत्सूत्राण्यवतार्यन्ते[१] *—*

सुहुमणिगोदजीवणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।४७।।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।४८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र जघन्यावगाहनायां गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागप्रमाणम्। अग्रिमसूत्रे 'तस्सेव' इत्युक्ते निर्वृत्यपर्याप्तकस्य ग्रहणं, अन्येन सह प्रत्यासत्तेरभावात्। 'विसेसाहिया' इति कथनेन कियान्मात्रो विशेषः ? इति प्रश्ने सति अंगुलस्य असंख्यातभागमात्रः।**

तस्य कः प्रतिभागः ? आवलिकाया असंख्यातभागः तस्य प्रतिभाग इति मन्तव्यः।

उससे पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यहाँ सभी सूत्रों में जो गुणकार कहा गया है, वह पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग ग्रहण करना चाहिए। ये पूर्व में कही गई सभी जघन्य अवगाहनाएँ लब्ध्यपर्याप्तकों की ही ग्रहण करना चाहिए। आगे निर्वृत्तिपर्याप्तक जीवों का और निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीवों का कथन करेंगे।

इस प्रकार आठवें स्थल में सभी जीवों में और बादर वायुकायिकादि जीवों में वेदना का अल्पबहुत्व बतलाने वाले सत्रह सूत्र पूर्ण हुए।

अब सूक्ष्म निगोदिया जीव से लेकर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीव पर्यन्त सभी निर्वृत्ति पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना का प्रतिपादन करने हेतु चौंतिस सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म निगोदिया जीव निर्वृत्ति पर्याप्तक जीव की जघन्य अवगाहना पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना से असंख्यातगुणी है।।४७।।

उससे उसके ही अपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है।।४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यहाँ जघन्य अवगाहना में गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। आगे ४८वें सूत्र में 'तस्सेव' अर्थात् 'उसके ही' ऐसा कहने पर निर्वृत्यपर्याप्तक का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि और किसी दूसरे के साथ प्रत्यासत्ति नहीं है। 'विशेष अधिक' इस कथन से विशेष का प्रमाण कितना है ? ऐसा प्रश्न होने पर वह अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है।

उसका प्रतिभाग क्या है ? आवली का असंख्यातवाँ भाग उसका प्रतिभाग है ऐसा मानना चाहिए।

---

१. विशेषः—चैत्रशुक्लात्रयोदशी-श्रीमहावीरजयन्ती सर्वस्य मह्यमपि मंगलकारिणी भूयात्।

केषांचिदाचार्याणामभिप्रायेण पल्योपमस्य असंख्यातभागः।

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।४९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**'तस्सेव' इति वचनेन निर्वृत्तेः ग्रहणं, अतः सूक्ष्मनिगोदजीवनिर्वृत्तिपर्याप्तकस्य उत्कृष्टा अवगाहना विशेषाधिका, अत्र अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रो विशेषो गृहीतव्यः।**

सुहुमवाउक्काइयपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।५०।।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।५१।।

तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।५२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अत्र सर्वत्रापि सूत्रेषु पर्याप्तकस्य कथनेन निर्वृत्तिपर्याप्तकस्य ग्रहणं कर्तव्यं, अन्यस्यासंभवात्। अपर्याप्तकस्य कथनेन निर्वृत्यपर्याप्तकस्य ग्रहणं वर्तते।**

जघन्यावगाहनायां गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागः। उत्कृष्टावगाहनायां 'विशेषाधिका' इति कथनेन अंगुलस्य असंख्यातभागमात्र इति ज्ञातव्यः।

अधुना तेजस्कायिकाप्कायिकजीवानामपि सूचकानि सूत्राणि वर्तन्ते।

सुहुमतेउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।५३।।

किन्हीं आचार्यों के अभिप्राय से वह पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण है।

सूत्रार्थ—

उसके ही पर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— 'तस्सेव' अर्थात् 'उसके ही' इस वचन से निर्वृत्तिपर्याप्तक का ग्रहण हो जाता है। अतः सूक्ष्मनिगोदिया निर्वृत्तिपर्याप्तक जीव की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है, यहाँ अंगुल का असंख्यातवाँ भाग मात्र विशेष ग्रहण करना चाहिए।

सूत्रार्थ—

उससे सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।५०।।

उसी के अपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।५१।।

उसी के पर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यहाँ सभी जगह सूत्रों में पर्याप्तक के कथन से निर्वृत्तिपर्याप्तक का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अन्य की कोई संभावना नहीं है। अपर्याप्तक के कथन से निर्वृत्यपर्याप्तक का ग्रहण करना चाहिए।

जघन्य अवगाहना में गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। उत्कृष्ट अवगाहना में 'विशेष अधिक' ऐसा कथन करने से अंगुल का असंख्यातवाँ भागमात्र विशेष अधिक है, ऐसा जानना चाहिए।

अब तेजस्कायिक और जलकायिक जीवों के कथन सूचक सूत्र प्रस्तुत हैं—

सूत्रार्थ—

उससे सूक्ष्मतेजस्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।५३।।

तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।५४।।

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।५५।।

सुहुमआउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।५६।।

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।५७।।

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।५८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका[१] —**सूक्ष्मतेजस्कायिकनिर्वृत्तिपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहनाया गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागोऽस्ति। अस्यैवापर्याप्तकस्य उत्कृष्टावगाहना अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रः। अस्यैव निर्वृत्तिपर्याप्त-कस्य उत्कृष्टावगाहना आवलिकाया असंख्यातभागमात्रो ज्ञातव्यः।**

सूक्ष्माप्कायिकनिर्वृत्तिपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहनाया गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागः। अस्यैव निर्वृत्यपर्याप्तकस्य उत्कृष्टावगाहना अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रः। अस्यैव निर्वृत्तिपर्याप्तकस्य अंगुलस्या-संख्यातभागमात्रः।

सुहुमपुढविकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।५९।।

उसके ही अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।५४।।

उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।५५।।

उसमें सूक्ष्म जलकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।५६।।

उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।५७।।

उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूक्ष्म तेजस्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना का गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। उनके ही अपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र है। उनके ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना आवली के असंख्यातवें भागमात्र जानना चाहिए।

सूक्ष्म जलकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना का गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग मात्र है। उनके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र है। उनके ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र है।

सूत्रार्थ —

उससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।५९।।

---

१. विशेषः — वैशाखकृष्णाद्वितीया-भगवत्पार्श्वनाथगर्भतिथिः मम च द्विचत्वारिंशत्तमा आर्यिकादीक्षातिथिः मह्यं सर्वत्रापि सर्वसौख्यकारिणी भूयादिति भावयेऽहम्।

गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागः।

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।६०।।

अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रोऽत्र विशेषो ज्ञातव्यः।

तस्सेव णिव्वत्ति पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।६१।।

अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रो विशेषो मन्तव्यः।

अधुना बादरवायुकायिकादिजीवानां जघन्योत्कृष्टावगाहनाप्रतिपादनार्थं सूत्राण्यवतार्यन्ते —

बादरवाउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।६२।।

अत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागः।

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।६३।।

विशेषोंऽगुलस्यासंख्यातभागमात्रः।

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।६४।।

अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रो ज्ञातव्यः।

बादरतेउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।६५।।

यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।

उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।६०।।

अंगुल का असंख्यातवाँ भागमात्र यहाँ विशेष जानना चाहिए।

उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।६१।।

यहाँ अंगुल का असंख्यातवाँ भागमात्र विशेष मानना चाहिए।

अब बादरवायुकायिक आदि जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उससे बादर वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।६२।।

यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।६३।।

यहाँ अंगुल का असंख्यातवाँ भागमात्र विशेष है।

उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।६४।।

अंगुल का असंख्यातवाँ भाग विशेष जानना चाहिए।

उससे बादर तेजस्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।६५।।

पल्योपमस्यासंख्यातभागो गुणकारः ज्ञातव्यः।

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।६६।।

अत्र विशेषः, अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रः।

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।६७।।

अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रो विशेषः।

बादरआउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।६८।।

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।६९।।

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।७०।।

बादरपुढविकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।७१।।

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।७२।।

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।७३।।

बादरणिगोदणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्ज-गुणा।।७४।।

यहाँ गुणकार अंगुल का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

उसके ही निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।६६।।

यहाँ विशेष अंगुल का असंख्यातवाँ भागमात्र है।

उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।६७।।

अंगुल का असंख्यातवाँ भागमात्र विशेष है।

उससे बादर जलकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।६८।।

उसके ही निर्वृत्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।६९।।

उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।७०।।

उससे बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।७१।।

उसके ही निर्वृत्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।७२।।

उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना उससे विशेष अधिक है।।७३।।

उससे बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।७४।।

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।७५।।

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।७६।।

णिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।७७।।

तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।७८।।

तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।।७९।।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।८०।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**बादरवायुकायिकादिजीवानां निवृत्तिपर्याप्तकानां जघन्यावगाहनाः पल्योपमस्य असंख्यातभागा ज्ञातव्याः।**

निर्वृत्यपर्याप्तानां उत्कृष्टावगाहनाः निर्वृत्तिपर्याप्तानां चोत्कृष्टावगाहनाः अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रा ज्ञातव्या भवन्ति।

संप्रति द्वीन्द्रियादिजीवानां जघन्योत्कृष्टावगाहनाप्रतिपादनार्थं चतुर्दशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

वेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।।८१।।

अत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागो ज्ञातव्यः।

उससे उसके ही निर्वृत्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है।।७५।।

उससे ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है।।७६।।

उससे निगोद प्रतिष्ठित पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।७७।।

उससे उसके ही निर्वृत्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है।।७८।।

उससे उसके ही निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है।।७९।।

उससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर निवृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—बादरवायुकायिक आदि निर्वृत्तिपर्याप्तक जीवों की जघन्य अवगाहना पल्योपम के असंख्यातवें भाग जानना चाहिए।

निर्वृत्यपर्याप्तक जीवों की एवं निर्वृत्तिपर्याप्तक जीवों की उत्कृष्ट अवगाहनाएँ अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र सूत्र में कही गई हैं, ऐसा जानना चाहिए।

अब द्वीन्द्रिय आदि जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के प्रतिपादन हेतु चौदह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।।८१।।

यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।८२।।

चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।८३।।

पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।८४।।

तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।८५।।

चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।८६।।

बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।८७।।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।८८।।

पंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्ज-गुणा।।८९।।

तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।९०।।

चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्ज-गुणा।।९१।।

बेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।९२।।

उससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है।।८२।।

उससे चार इन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है।।८३।।

उससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है।।८४।।

उससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।।८५।।

उससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।।८६।।

उससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।।८७।।

उससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।।८८।।

उससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।।८९।।

उससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।।९०।।

उससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।।९१।।

उससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।।९२।।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।९३।।

पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।।९४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**अस्माद् द्व्यशीततमसूत्रादारभ्य चतुर्नवतिसूत्रपर्यंतेषु या जघन्या उत्कृष्टा वा अवगाहना कथितास्तासु सर्वासु गुणकारः संख्याताः समयाः ज्ञातव्याः भवन्ति क्रमेण उत्तरोत्तरेणेति।**

एवं नवमस्थले जघन्योत्कृष्टावगाहनाल्पबहुत्वेन अष्टचत्वारिंशत्सूत्राणि गतानि।

संप्रति पूर्वप्ररूपितालपबहुत्वे गुणकारप्रमाणप्ररूपणार्थमुपरिमपंचसूत्राणि अवतार्यन्ते —

सुहुमादो सुहुमस्स ओगाहणगुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो।।९५।।

सुहुमादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागो।।९६।।

बादरादो सुहुमस्स ओगाहणगुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो।।९७।।

बादरादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागो।।९८।।

उससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर निर्वृतिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।।९३।।

उससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।।९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ बयासीवें सूत्र से प्रारंभ करके चौरानबे सूत्र पर्यन्त जो जघन्य अथवा उत्कृष्ट अवगाहना कही गई हैं, उन सभी में गुणकार उत्तरोत्तर क्रम से संख्यात समय जानना चाहिए।

इस प्रकार नवमें स्थल में जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना का अल्पबहुत्व बतलाने वाले अड़तालिस सूत्र पूर्ण हुए।

अब पूर्व प्ररूपित अल्पबहुत्व में गुणकार का प्रमाण प्ररूपित करने हेतु आगे पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

एक सूक्ष्म जीव से दूसरे सूक्ष्म जीव की अवगाहना का गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।।९५।।

सूक्ष्म से बादर जीव की अवगाहना का गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।।९६।।

बादर से सूक्ष्म का अवगाहना गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।।९७।।

बादर से बादर का अवगाहना गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।।९८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**सूक्ष्मादन्यस्य सूक्ष्मस्य अवगाहनाः असंख्यातगुणा इति यत्र यत्र भणितं तत्र तत्रावलिकाया असंख्यातभागो गुणकार इति गृहीतव्यः। सूक्ष्मैकेन्द्रियावगाहनाया यत्र बादरावगाहनमसंख्यातगुणमिति भणितं तत्र पल्योपमस्यासंख्यातभागो गुणकारो भवतीति मन्तव्यम्।**

बादरावगाहनातो यत्र सूक्ष्मैकेन्द्रियावगाहना असंख्यातगुणा इति भणितं तत्रावलिकाया असंख्यातभागो गुणकार इति गृहीतव्यः।

अत्राष्टानवतितमे सूत्रे 'बादरा' इत्युक्ते येन बादरनामकर्मोदययुक्तजीवानां ग्रहणं तेन द्वीन्द्रियादीनामपि ग्रहणं भवति। बादरावगाहनाया अन्या बादरावगाहना यत्रासंख्यातगुणा इत्युक्तं भणितं तत्र पल्योपमस्य असंख्यातभागो गुणकार इति गृहीतव्योऽस्ति।

अधुना बादराद् बादरस्यावगाहनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

बादरादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो संखेज्जा समया।।९९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—**द्वीन्द्रियादिनिर्वृत्त्यपर्याप्तकेषु पर्याप्तकेषु चावगाहनागुणकारः संख्याताः समया इति गृहीतव्यः।**

पूर्वोक्तसूत्रेण पल्योपमस्यासंख्यातभागे गुणकारे प्राप्ते तत्प्रतिषेधार्थमिदं सूत्रं प्रारब्धं, तेन न द्वयोरपि सूत्रयोर्विरोधोऽस्ति।

एतेऽत्र गुणकारा भवन्तीति कथं ज्ञायते ?

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक सूक्ष्म जीव से दूसरे सूक्ष्म जीव की अवगाहना असंख्यातगुणी है, ऐसा जहाँ-जहाँ कहा गया है, वहाँ-वहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार ग्रहण करना चाहिए। सूक्ष्म एकेन्द्रिय की अवगाहना से जहाँ बादर जीव की अवगाहना असंख्यातगुणी कही है, वहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार होता है, ऐसा मानना चाहिए।

बादर की अवगाहना से जहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय की अवगाहना असंख्यातगुणी कही है, वहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए, ऐसा अभिप्राय है।

यहाँ अट्ठानवे नम्बर के सूत्र में 'बादर' ऐसा कहने पर चूँकि बादर नामकर्म के उदय युक्त जीवों का ग्रहण है, अतः उससे द्वीन्द्रियादिक जीवों का भी ग्रहण होता है। बादर की अवगाहना से जहाँ दूसरे बादर जीव की अवगाहना असंख्यातगुणी कही है, वहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार ग्रहण करना चाहिए। ऐसा अभिप्राय है।

अब बादर से बादर की अवगाहना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

एक बादर जीव से दूसरे बादर जीव की अवगाहना का गुणकार संख्यात समय है।।९९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—द्वीन्द्रिय आदिक निर्वृत्यपर्याप्तकों और उनके पर्याप्तकों में अवगाहना का गुणकार संख्यात समय है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

पूर्व में कहे गये सूत्र से पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र गुणकार के प्राप्त होने पर उसका प्रतिषेध करने के लिए यह सूत्र रचा गया है। इसीलिए उपर्युक्त दोनों सूत्रों में कोई विरोध नहीं आता है।

शंका—यहाँ ये गुणकार होते हैं, ऐसा कैसे जाना जाता है ?

एतस्मादेव सूत्राज्ज्ञायते। न च प्रमाणं प्रमाणान्तरमपेक्षते, अनवस्थाप्रसंगात्।

अत्र कश्चिदाशंकते—

ज्ञानावरणादीनामष्टानामपि कर्मणामवगाहनाप्ररूपणार्थं क्षेत्रानियोगद्वारे प्ररूप्यमाणे जीवसमासानामवगाहना-प्ररूपणा किमर्थमत्र प्ररूपिता ?

अत्र श्रीवीरसेनाचार्येण परिहार उच्यते—

एष अवगाहनाल्पबहुत्वदण्डको जीवसमासानां न प्ररूपितः, अल्पबहुत्वासंबद्धप्रसंगात्। किन्तु अष्टानामपि कर्मणां जीवसमासेभ्योऽभेदेन लब्धजीवसमासव्यपदेशानामवगाहनाल्पबहुत्वदण्डक एषः प्ररूपित इति।

किमर्थमेषा अल्पबहुत्वप्ररूपणा कृता ?

समुद्घातेन विना ज्ञानावरणादीनामष्टानामपि कर्मणां स्वस्थानावगाहनानां जीवसमासभेदेन भिन्नानां माहात्म्यप्ररूपणार्थं कृता, ज्ञानावरणादीनामजघन्यमनुत्कृष्टस्वस्थानक्षेत्रस्थानप्ररूपणार्थं वा।

एवं दशमस्थले सूक्ष्म-बादरजीवावगाहनागुणकारप्रमाणकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

एवमल्पबहुत्वं स्वकान्तःक्षिप्तगुणकाराधिकारं समाप्तम्।

एवं वेदनाक्षेत्रविधाने इति समाप्तनियोगद्वारं।

इतो विस्तरः—

एताः षोडश उपरिमा अवगाहनाः त्रिसमयाहारक-त्रिसमयतद्भवस्थलब्ध्यपर्याप्तकानां जघन्या

समाधान—यह इसी सूत्र से जाना जाता है। कारण कि एक प्रमाण दूसरे प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता है, क्योंकि वैसा होने पर अनवस्था का प्रसंग आता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

ज्ञानावरणादिक आठों कर्मों की अवगाहना के प्ररूपणार्थ क्षेत्रानुयोगद्वार की प्ररूपणा करते समय जीवसमासों की अवगाहना की प्ररूपणा यहाँ किसलिए की गई है ?

यहाँ श्री वीरसेनाचार्य इस शंका का उत्तर देते हैं—

यह अवगाहना संबंधी अल्पबहुत्वदण्डक जीवसमासों का नहीं कहा गया है, क्योंकि वैसा करने से उक्त अल्पबहुत्व के असंगत होने का प्रसंग आता है। किन्तु यह जीवसमासों से अभिन्न होने के कारण जीवसमास संज्ञा को प्राप्त हुए आठों कर्मों की ही अवगाहना का अल्पबहुत्वदण्डक कहा गया है।

शंका—यह अल्पबहुत्व की प्ररूपणा किसलिए की गई है ?

समाधान—जीव समास के भेद से भेद को प्राप्त हुए ज्ञानावरणादिक आठों कर्मों की समुद्घात रहित स्वस्थान अवगाहनाओं के माहात्म्य को बतलाने के लिए उक्त प्ररूपणा की गई है। अथवा ज्ञानावरणादिक कर्मों के अजघन्य और अनुत्कृष्ट स्वस्थान क्षेत्रस्थानों की प्ररूपणा करने के लिए उपर्युक्त प्ररूपणा की गई है।

इस प्रकार दशवें स्थल में सूक्ष्म एवं बादर जीवों की अवगाहना एवं गुणकार का प्रमाण बतलाने वाले एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस तरह से अपने भीतर गुणकार अधिकार को समाविष्ट करने वाला अल्पबहुत्व अधिकार समाप्त हुआ।

इस प्रकार वेदनाक्षेत्र विधान नाम का अनियोगद्वार प्रकरण समाप्त हुआ।

अब इसको विस्तार से कहते हैं—

ये उपरिम सोलह अवगाहनाएँ त्रिसमयवर्ती आहारक त्रिसमयवर्ती तद्भवस्थ लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की

गृहीतव्याः। आदिप्रभृति सप्तदश अवगाहनाः प्रदेशोत्तरक्रमेण निरंतरं वर्द्धापयितव्याः। पुनो यत्र यस्या अवगाहना समाप्यते तत्काले स्थापितावगाहनाशलाकासु रूपमपनेतव्यम्, अधस्तनावगाहनाभिः सह अधः निरंतरमागत्य उपरि गमनाभावात्। पुनः यत्र यत्र जघन्यावगाहनाः पतन्ति तत्र तत्र पूर्वस्थापितशलाकासु रूपं प्रक्षेपयितव्यम्। अधस्तनावगाहनाविकल्पशलाकासु अस्याः शलाका नास्ति। शेषं ज्ञात्वा वक्तव्यम्।

एता एकादश उत्कृष्टावगाहना उपरिमा निर्वृत्यपर्याप्तानामुत्कृष्टाः भवन्ति।

एताः कस्य भवन्ति ?

यो जीवः अनन्तरकाले पर्याप्तो भविष्यति तस्य ता अवगाहनाः भवन्ति।

लब्ध्यपर्याप्तकस्य उत्कृष्टावगाहनाः किन्न गृहीताः ?

न, लब्ध्यपर्याप्तकस्य उत्कृष्टावगाहनातः निर्वृत्यपर्याप्तकस्य उत्कृष्टावगाहना विशेषाधिकभावेन विना असंख्यातगुणत्वोपलंभात्। अधस्तनाः सूक्ष्मनिगोदा निर्वृत्तिपरंपरापर्याप्त्या पर्याप्तकानां गृहीतव्याः।

ता अवगाहनाः कस्य भवन्तीति चेत् ?

पर्याप्तगतप्रथमसमये वर्तमानस्य जघन्योपपाद-एकान्तानुवृद्धियोगाभ्यां आगत्य जघन्यपरिणामयोगे जघन्यावगाहनायां च वर्तमानस्य एकादश अपि भवन्ति। पुनो निर्वृत्तिपर्याप्तानां अधस्तनाः एकादश उत्कृष्टावगाहना उत्कृष्टयोगिनः उत्कृष्टावगाहनायां वर्तमानस्य परंपरापर्याप्त्या पर्याप्तगतस्य भवन्ति। एता

जघन्य ग्रहण करना चाहिए। आदि — प्रथम से लेकर सत्तरह अवगाहनाओं को प्रदेश अधिक क्रम से निरन्तर बढ़ाना चाहिए। फिर जहाँ जिसकी अवगाहना समाप्त होती है, उस काल में स्थापित अवगाहनाशलाकाओं में से एक रूप को कम करना चाहिए, क्योंकि अधस्तन अवगाहनाओं के साथ नीचे निरन्तर आकर ऊपर गमन का अभाव है। फिर जहाँ-जहाँ जघन्य अवगाहनाएँ पड़ती हैं, वहाँ-वहाँ पूर्व स्थापित शलाकाओं में एक रूप को मिलाना चाहिए, क्योंकि अधस्तन अवगाहना के विकल्पभूत शलाकाओं में इसकी शलाका नहीं है। शेष जानकर कहना चाहिए।

ये ग्यारह उत्कृष्ट अवगाहनाएँ निर्वृत्यपर्याप्तकों की उत्कृष्ट होती हैं।

शंका — ये किसके होती हैं ?

समाधान — जो जीव अनन्तर काल में पर्याप्त होने वाला है। उसके वे अवगाहनाएँ होती हैं।

शंका — लब्ध्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना को क्यों नहीं ग्रहण किया है ?

समाधान — नहीं ग्रहण किया है, क्योंकि लब्ध्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना से निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिकता के बिना असंख्यातगुणी पाई जाती है।

सूक्ष्म निगोद से लेकर अधस्तन (ग्यारह जघन्य अवगाहनाएँ) निर्वृत्तिपरम्परा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीवों के ग्रहण करना चाहिए।

शंका — वे अवगाहनाएँ किसके होती हैं ?

समाधान — जो पर्याप्त होने के प्रथम समय में वर्तमान है तथा जघन्य उपपाद योग और जघन्य एकान्तानुवृद्धियोग से आकर जघन्य परिणामयोग व जघन्य अवगाहना में रहने वाला है, उसके वे ग्यारह ही अवगाहनाएँ होती हैं। पुनः निर्वृत्तिपर्याप्तकों की अधस्तन ग्यारह उत्कृष्ट अवगाहना ये वर्तमान व परम्परा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए उत्कृष्ट योग वाले जीव के होती हैं। ये अवगाहनाएं अपने-अपने जघन्य से विशेष

अवगाहनाः स्वस्वात्मनो जघन्यात् उत्कृष्टा विशेषाधिका भवन्ति। सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तजघन्यावगाहनाप्रभृति सर्वजघन्योत्कृष्टावगाहना यावत् बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरपर्याप्तजघन्यावगाहनां प्राप्नुवन्ति। तावदंगुलस्य संख्यातभागमात्रा भवन्ति।

द्वीन्द्रियादिपर्याप्तानां जघन्यावगाहना अंगुलस्य संख्यातभागमात्राः।

द्वीन्द्रियपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहना अनुंधरीजीवस्य भवति।

त्रीन्द्रियपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहना कुन्थुजीवस्य भवति।

चतुरिन्द्रियपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहना काणमच्छिकाया भवति।

पंचेन्द्रियपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहना सिक्थमत्स्यजीवस्य भवति।

त्रीन्द्रियपर्याप्तकस्य उत्कृष्टावगाहना त्रिगव्यूतिप्रमाणा।

सा कस्य भवति ?

गोम्हीनाम जीवस्य भवति।

चतुरिन्द्रियपर्याप्तकस्य उत्कृष्टावगाहना चतुर्गव्यूतिप्रमाणा।

सा कस्य ?

भ्रमरजीवे भवति।

द्वीन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य उत्कृष्टावगाहना द्वादश योजनानि।

सा कस्य ?

शंखनाम जीवस्य।

अधिक उत्कृष्ट होती हैं। सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना से लेकर सब जघन्य व उत्कृष्ट अवगाहनाएँ जब तक बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव की जघन्य अवगाहना को प्राप्त होती हैं, तब तक अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र रहती हैं।

द्वीन्द्रियादिक पर्याप्त जीवों की जघन्य अवगाहनाएँ अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

द्वीन्द्रिय पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना अनुन्धरी नामक जीव के होती है।

त्रीन्द्रिय पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना कुंथु नामक जीव के होती है।

चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना कानमक्षिका जीव के होती है।

पंचेन्द्रिय पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना सिक्थमत्स्य — तन्दुल मत्स्य जीव के होती है।

त्रीन्द्रिय पर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना तीन गव्यूति प्रमाण है।

प्रश्न — वह किसके होती है ?

उत्तर — वह गोम्ही नामक जीव के होती है।

चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना चार गव्यूति प्रमाण है।

प्रश्न — वह किसके होती है ?

उत्तर — वह भ्रमर नामक जीव के होती है।

द्वीन्द्रिय पर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन प्रमाण है।

प्रश्न — वह किसके होती है ?

उत्तर — वह शंख नामक जीव के होती है।

एकेन्द्रियोत्कृष्टावगाहना संख्यातानि योजनानि।

सा कस्य ?

योजनसहस्त्रायाम-योजनविष्कंभकमलस्येति।

पंचेन्द्रियोत्कृष्टावगाहना संख्यातानि योजनानि सन्ति।

सा कस्य ?

पंचशतोत्सेधतदर्धविष्कंभ-सहस्त्रयोजनाययमहामत्स्यजीवस्येति।

एतासामपर्याप्तानां तत्प्रतिभागो भवतीति ज्ञातव्यम्।

तात्पर्यमत्र — वेदनाक्षेत्रविधानानुयोगद्वारमधीत्य मनुष्यशरीरं संप्राप्य स्वशरीरप्रमाणमात्मप्रदेशाः सन्ति। यद्यपि इमे प्रदेशाः संकोचविसर्पणापेक्षया स्वतनुप्रमाणा एव तथापि द्रव्यार्थिकनयादेशात् लोकाकाशप्रमाणा असंख्याताः सन्ति। केवलं केवलिसमुद्घाते काले एव ते प्रदेशा लोकमापूरयन्ति न च कदाचिदपि अन्यस्मिन् काले, एवं निश्चित्य स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया स्वात्मतत्त्वं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपमेव ध्यातव्यम्।

एवं एकादशमस्थले अवगाहनाप्रमाणनिरूपणत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

एकेन्द्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात योजन प्रमाण है।

प्रश्न — वह किसके होती है ?

उत्तर — वह एक हजार योजन आयाम और एक योजन विस्तार वाले कमल के होती है।

पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात योजन है।

प्रश्न — वह किसके होती है ?

उत्तर — वह पाँच सौ योजन प्रमाण उत्सेध इससे आधे विस्तार और एक हजार योजन आयाम से युक्त महामत्स्य जीव के होती है।

इनके अपर्याप्त की अवगाहनाएँ उक्त प्रमाण के प्रतिभागमात्र होती हैं, ऐसा जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि — वेदनाक्षेत्रविधान नामक अनुयोगद्वार का अध्ययन करके हमें चिन्तन करना चाहिए कि मनुष्य शरीर को प्राप्त करके अपने शरीरप्रमाण आत्मा के प्रदेश हैं। यद्यपि ये प्रदेश संकोच और विस्तार की अपेक्षा अपने-अपने शरीरप्रमाण ही होते हैं, फिर भी द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा लोकाकाशप्रमाण असंख्यात होते हैं। केवल केवलीसमुद्घात के काल में ही वे प्रदेश पूरे लोक में फैलते हैं — सम्पूर्ण लोक को आपूर्ण करते हैं, अन्य किसी काल में कदाचित् भी ऐसा नहीं होता है। ऐसा निश्चितरूप से जान करके स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की अपेक्षा शुद्ध चिन्मय चिन्तामणि स्वरूप निज आत्मतत्त्व को ध्याना चाहिए।

इस प्रकार ग्यारहवें स्थल में अवगाहना प्रमाण का निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अन्त्य वंदना

जंतून् विलोक्याशु दयां चकार, राजीमतीं सर्वपरिग्रहं च।
त्यक्त्वागृहीत् धर्मधुरं सुदीक्षां, तं नेमिनाथं शिरसा नमामि।।१।।

यावन्नो प्रभवेच्च नेमिभगवन्! तेंऽघ्रिप्रसादोदयः।
तावद्दुःखमुपैति जीवनिवहः, तावत्सुखं नाश्नुते।।२।।

यावद् भक्तिरतस्य मे नहि भवेद्, दृष्टिः प्रसन्ना प्रभो।
तावद् हि प्रभवेत् स तापजनको, दुर्वारकर्मोदयः।।३।।

तिलोयपण्णत्तिग्रंथेऽस्ति—

सउरीपुरम्मि जादो सिवदेवीए समुद्दविजयेण।
वइसाइतेरसीए सिदाए* चित्राए णेमिजिणो[१]।।५४७।।

शूरसेनस्य सुपुत्रो महाराजोंऽधकवृष्टिस्तस्य महाराज्ञी सुभद्रासीत्। तयोर्दशधर्मसदृशाः दशपुत्रा बभूवुः। समुद्रविजयः स्तिमितसागरो हिमवान् विजयोऽचलो धारणः पूरणः पूरितार्थीच्छोऽभिनन्दनः वसुदेवश्चेति।

महाराजसमुद्रविजयस्य महाराज्ञी शिवादेवी। तदानीं मध्यलोके सर्वनारीणां शिरोमणिः। वर्तमानकालात् वीर-

---

वंदना

श्लोकार्थ—जिन्होंने बंधन में बंधे पशुओं को देखकर उनके प्रति दयाभाव प्रदर्शित किया था, राजीमती—राजुल नाम की राजकुमारी का एवं सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करके धर्म की धुरारूप जैनेश्वरी दीक्षा को ग्रहण कर लिया था, ऐसे उन नेमिनाथ भगवान को मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।।१।।

हे नेमिनाथ भगवान्! जब तक हम सभी जीवों को आपके चरणकमलों का कृपाप्रसाद प्राप्त नहीं होता है, तब तक यह जीव दुःख को प्राप्त होता रहता है और सुख की अनुभूति नहीं कर पाता है।।२।।

हे प्रभो! जब तक मुझ भाक्तिक के ऊपर आपकी दृष्टि प्रसन्न नहीं होगी, तब तक संताप को उत्पन्न करने वाला मेरा दुर्निवार कर्मोदय चलता रहेगा अर्थात् तब तक मैं कर्मों को नष्ट करने में सक्षम नहीं हो सकता हूँ।।३।।

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में लिखा है कि—

गाथार्थ—शौरीपुर में माता शिवादेवी और पिता समुद्रविजय से वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को श्रीनेमिनाथ जिनेन्द्र ने चित्रा नक्षत्र में जन्म प्राप्त किया था।।५४७।।

शूरसेन राजा के सुपुत्र महाराज अंधकवृष्टि थे, उनकी महारानी का नाम सुभद्रा था। उन दोनों के दश धर्मों के समान दश पुत्र हुए। समुद्रविजय, स्तिमितसागर, हिमवान्, विजय, अचल, धारण, पूरण, पूरितार्थीच्छ, अभिनंदन और वसुदेव ये उन पुत्रों के नाम थे।

उनमें से महाराज समुद्रविजय की महारानी शिवादेवी थी। जो कि उस समय मध्यलोक में समस्त

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार ४। * तिलोयपण्णत्ति में वैशाख शु. १३ को नेमिनाथ का जन्म माना है, उत्तरपुराण में श्रावण शु. ६ को माना है। मैंने चौबीस तीर्थंकर विधान में उत्तरपुराण का आधार लिया है चूँकि ति.पण्णत्ति में गर्भकल्याणक तिथियां नहीं हैं।

नि.संवत्सरात् त्रयस्त्रिंशदधिकपंचविंशतिशततमात् सप्ताशीतिसहस्रपंचशत-त्रयस्त्रिंशद्वर्षाणि पूर्वं अत्र शौरीपुर्यां शिवादेवी जिनमाता द्वाविंशतितमं तीर्थंकरं भगवन्तं नेमिनाथं अजायत। तत्क्षण एव—

कल्पेषु घण्टा भवनेषु शंखो, ज्योतिर्विमानेषु च सिंहनादः।
दध्वान भेरी वनजालयेषु, यज्जन्मनि ख्यात स देव एषः[१]।।

अधुनात्र तीर्थंकरजन्मनः पवित्रां तीर्थभूमिमुपविश्य षट्खण्डागमग्रंथराजस्य दशमग्रंथस्य सिद्धांत- चिंतामणिटीका महद्हर्षोल्लासेण पूर्यते। इयं टीका मह्यं चतुर्विधस्य संघस्य सर्वभव्येभ्यश्च धर्मामृतैः पुष्यात्।

अस्मिन् हरिवंशकुले लघुभ्रातुः वसुदेवस्य पुत्रौ बलभद्रनारायणौ अग्रे तीर्थकरौ भविष्यतः[२], ताभ्यां भाविकालीनतीर्थंकराभ्यामपि नमो नमः।

उक्तं च—"**ततोऽपि नवमो बलोऽनु दिविजस्ततस्तीर्थकृत्**[३]।।।"२७९।।

पुनश्च—"**घर्मोद्भवादनुभवन् बहुदुःखमस्मान्निर्गत्य तीर्थकृदनर्थविघातकृत्सः**[४]।।२८१।।

श्री नेमिनाथा भगवन्तः पशूनां बंधनं विलोक्य प्रविरज्य उर्जयन्तगिरौ (तत्रस्थ सिरसावने) जैनेश्वरीं दीक्षां जगृहुः। बहुकालं विहृत्य तत्रैव पुनः केवलज्ञानार्हन्त्यलक्ष्मीं प्रापुः। अनन्तरं सहस्रवर्षाणि आयूंषि परिपूर्य ऊर्जयन्तगिरौ-गिरनारपर्वते योगं निरुध्य मोक्षसाम्राज्यं संप्रापुस्तेभ्यो नेमिनाथेभ्योऽनन्तशोऽस्माकं नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

नारियों की शिरोमणि मानी जाती थीं। वर्तमान वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेंतीस से सत्तासी हजार पाँच सौ तेंतीस वर्ष पूर्व यहाँ शौरीपुर में शिवादेवी जिनमाता ने बाइसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ को जन्म दिया था। उसी क्षण—

श्लोकार्थ—कल्पवासी देवों के भवनों में स्वयमेव घण्टे बजने लगे, भवनवासियों के गृहों में शंख ध्वनि होने लगी, ज्योतिषी देवों के विमानों में सिंहनाद होने लगा और व्यन्तरदेवों के यहाँ भेरी बजने लगी। जिनके जन्म में ये अतिशय प्रसिद्ध हुए थे, ये वही जिनेन्द्र भगवान हैं, ऐसा प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में कहा है।

आज यहाँ तीर्थंकर भगवान् के जन्म से पवित्र तीर्थ की भूमि पर बैठकर षट्खण्डागम ग्रंथराज के दशवें ग्रंथ की सिद्धान्तचिंतामणि टीका को हर्षोल्लास के साथ मैंने पूर्ण किया है। यह टीका मेरे लिए, चतुर्विध संघ के लिए तथा समस्त भव्यों के लिए धर्मामृत प्रदान करे।

इस हरिवंशकुल में छोटे भाई वसुदेव के बलभद्र और नारायण पदधारी दो पुत्र आगे तीर्थंकर होंगे, उन भविष्यत्कालीन दोनों तीर्थंकरों को भी मेरा पुनः पुनः नमस्कार होवे।

कहा भी है—".....जो नवमें बलभद्र हुए, उसके बाद देव हुए और फिर तीर्थंकर होंगे"।।२७९।।

आगे और भी कहा है—".....इसके बाद घर्मा पृथ्वी में उत्पन्न होने के कारण बहुत दुःखों का अनुभव करते हुए वहाँ से निकलकर समस्त अनर्थों का विघात करने वाले तीर्थंकर होंगे"।।२८१।।

भगवान श्री नेमिनाथ ने पशुबंधन को देखकर संसार से विरक्त होकर ऊर्जयन्त गिरि पर (वहाँ स्थित सिरसा वन में) जाकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली थी। अनंतर बहुत काल तक जगह-जगह विहार करके पुनः वहीं—गिरनारगिरि पर ही केवलज्ञानरूप आर्हन्त्य लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया था। अनन्तर एक हजार वर्ष की आयु पूर्ण करके ऊर्जयन्तगिरि—गिरिनार पर्वत पर योग का निरोध करके मोक्ष साम्राज्य को प्राप्त किया था, उन नेमिनाथ भगवान् को हमारा अनन्त-अनन्त बार नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु है।

---

१. प्रतिष्ठातिलक। २. उत्तरपुराण पर्व ७२, श्लोक २७९, २८१। ३-४. उत्तरपुराण पर्व ७२, पृ. ४२६।

शौरीपुर्यर्द्धचक्र्याद्यै-र्मान्या मे मंगलं क्रियात्।
इन्द्रादिभिः सदा वन्द्या नेमिनाथस्य जन्मभूः।।१।।

अष्टद्विपंचद्वयंकेऽस्मिन्[१], वीराब्देऽसितपक्षके।
वैशाखे तिथि सप्तम्यां टीकेयं पूर्यते मया।।२।।

मंगलं नेमिनाथोऽर्हन्, गणीन्द्रो मम मंगलं।
वंद्या राजीमती माता, गणिनी चापि मंगलम्।।३।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिसूरीन्द्रप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीभूतबल्याचार्य-विरचितवेदनाखंडनाम्नि चतुर्थखण्डे दशमे ग्रंथे श्रीवीरसेनाचार्यप्रणीतधवला-टीकाप्रमुखानेकग्रन्थाधारेण विरचिते विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यश्-चारित्रचक्रवर्ती-श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमः पट्टाधीशः श्रीवीरसागरा-चार्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचनाप्रेरिकागणिनीज्ञानमती-कृतसिद्धांतचिंतामणिटीकायां शौरीपुरीजन्मभूमि-तीर्थे द्वितीयवेदनानुयोगद्वारान्तर्गते पंचम-वेदनाक्षेत्रविधाननामायं तृतीयो महाधिकारः समाप्तः।

श्लोकार्थ—अर्द्धचक्री—नारायण श्री कृष्ण आदि से मान्य, इन्द्रादिकों से सदा वन्दनीय भगवान् नेमिनाथ की जन्मभूमि शौरीपुरी नगरी मेरा मंगल करे।।१।।

वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ अट्ठाइस (३ मई सन् २००२) वैशाख कृष्णा सप्तमी तिथि को मैंने यह टीका लिखकर पूर्ण की है।।२।।

तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ मेरा मंगल करें, उनके समवसरण में विराजमान गणधर देव (वरदत्त नामक गणधर देव) मेरा मंगल करें तथा सर्वजन से वंद्य गणिनी आर्यिका श्री राजीमती माता भी मेरा मंगल करें।।३।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदंत-भूतबली आचार्यदेव द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम में श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित वेदनाखण्ड नामक चतुर्थ खण्ड में दशवें ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य प्रणीत धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज, उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागर आचार्य, उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी कृत सिद्धांतचिंतामणिटीका में शौरीपुरी जन्मभूमि तीर्थ पर द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत पंचम वेदनाक्षेत्र विधान नाम का यह तृतीय महाधिकार समाप्त हुआ।

---

१. वीर निर्वाण संवत् २५२८।

उपसंहारः

संप्रति तीर्थमाहात्म्यं प्रदर्श्य अस्य ग्रन्थस्योपसंहारः क्रियते—

चतुर्विंशतितीर्थेशां, पंचकल्याणभूमयः।
तांस्ताश्च नौम्यहं भक्त्या, स्वात्मनस्तीर्थहेतवे।।१।।

तीर्थंकरपंचकल्याणकतीर्थं—

शाश्वततीर्थअयोध्या एव यद्यपि सर्वकालं तीर्थंकराणां जन्मभूमिस्तथापि वर्तमानकाले हुण्डावसर्पिणीनिमित्तेन अत्र श्रीऋषभदेव-श्रीअजितनाथ-श्रीअभिनंदननाथ-श्रीसुमतिनाथ-श्रीअनंतनाथपंचतीर्थंकरा एवास्यामयोध्यायां जन्म जगृहुः।

श्रीसंभवनाथस्य जन्मभूमिः श्रावस्ती, श्री पद्मप्रभदेवस्य कौशाम्बी, श्रीसुपार्श्व-पार्श्वनाथयोः वाराणसी, श्री चन्द्रप्रभदेवस्य चन्द्रपुरी, श्री पुष्पदंतनाथस्य काकंदी, श्री शीतलनाथस्य भद्रकावती-भद्दिलपुरी, श्री-श्रेयांसनाथस्य सिंहपुरी—सारनाथं, श्री वासुपूज्यनाथस्य चंपापुरी, श्री विमलनाथस्य कांपिल्यपुरी, श्री-धर्मनाथस्य रत्नपुरी (रौनाही), श्री शांतिनाथ-श्रीकुंथुनाथ-श्री अरनाथानां हस्तिनागपुरी, श्री मल्लिनाथ-श्री नमिनाथयोर्मिथिलापुरी, श्री मुनिसुव्रतनाथस्य राजगृही, श्री नेमिनाथस्य शौरीपुरी, श्री महावीरस्वामिनः कुण्डलपुरी, इति षोडशजन्मभूमयश्चतुर्विंशतितीर्थंकराणां सन्ति।

प्रथमतीर्थंकरश्री ऋषभदेवस्य दीक्षाकल्याणक-केवलज्ञानकल्याणके द्वे प्रयागतीर्थे बभूवतुः।

उक्तं च—''प्रकृष्टो वा कृतस्त्यागः प्रयागस्तेन कीर्तितः[१]।''

उपसंहार

अब तीर्थ के माहात्म्य को प्रदर्शित करके इस ग्रंथ का उपसंहार किया जा रहा है-

श्लोकार्थ—चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों को एवं उनकी पंचकल्याणक भूमियों को निजात्मा में तीर्थ की उत्पत्ति हेतु मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।।१।।

तीर्थंकर भगवन्तों के पंचकल्याणक तीर्थ—

शाश्वत तीर्थ अयोध्या ही यद्यपि सर्वकाल—शाश्वत तीर्थ के रूप में तीर्थंकरों की जन्मभूमि है, फिर भी वर्तमान काल में हुण्डावसर्पिणी के निमित्त से यहाँ (अयोध्या में) श्री ऋषभदेव-श्री अजितनाथ-श्री अभिनंदननाथ-श्री सुमतिनाथ और श्री अनंतनाथ इन पाँच तीर्थंकरों ने ही इस अयोध्या नगरी में जन्म लिया है।

श्री संभवनाथ की जन्मभूमि श्रावस्ती है, श्री पद्मप्रभ भगवान की कौशाम्बी, श्री सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की वाराणसी, श्री चन्द्रप्रभ भगवान की चन्द्रपुरी, श्री पुष्पदंतनाथ की काकंदी, श्री शीतलनाथ की भद्रकावती—भद्दिलपुरी, श्री श्रेयांसनाथ की सिंहपुरी—सारनाथ, श्री वासुपूज्यनाथ की चम्पापुरी, श्री विमलनाथ की कांपिल्यपुरी, श्री धर्मनाथ की रत्नपुरी (रौनाही), श्री शांतिनाथ-श्री कुंथुनाथ-श्री अरनाथ की हस्तिनापुरी, श्री मल्लिनाथ और श्री नमिनाथ की मिथिलापुरी, श्री मुनिसुव्रतनाथ की राजगृही, श्री नेमिनाथ की शौरीपुरी और श्री महावीर स्वामी की कुण्डलपुरी इस प्रकार चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों की सोलह जन्मभूमियाँ हैं।

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के दीक्षाकल्याणक और केवलज्ञानकल्याणक दोनों ही प्रयाग तीर्थ में हुए हैं।

कहा भी है—''जहाँ प्रकृष्ट त्याग किया गया है वह स्थान प्रयाग नाम से प्रसिद्ध हुआ है।''

---

१. पद्मपुराण।

तत्रैव वटवृक्षतले दीक्षां जग्राह। पुनश्च सहस्त्रवर्षानन्तरं तत्रैव प्रभोः केवलज्ञानं प्रादुर्बभूव।

श्रीनेमिनाथो भगवान् ऊर्जयन्तगिरौ दीक्षां, केवलज्ञानं, निर्वाणं चावाप।

श्री पार्श्वनाथेनाहिच्छत्रतीर्थे केवलज्ञानं संप्राप्तम्। यत्र स्थले वा उपसर्गं सोढ्वा केवलज्ञानमुत्पादितं तदेव स्थलं अहिच्छत्रमिदं बभूव।

श्री महावीरस्वामी जृंभिकाग्रामे केवलज्ञानं प्राप्नोत्।

शेषतीर्थंकराणां गर्भजन्मतपःकेवलज्ञानानि चतुश्चतुःकल्याणानि स्व-स्वजन्मभूमौ एव संजातानि।

निर्वाणभूमयः—

प्रथमतीर्थेशस्य कैलाशपर्वतं, वासुपूज्यस्य चंपापुरी (मंदारगिरिः), श्री नेमिनाथस्य ऊर्जयन्त-पर्वतं, श्री महावीरस्वामिनः पावापुरी, शेषविंशतितीर्थंकराणां सम्मेदशिखरपर्वतं। तथाहि—

अट्ठावयम्मि उसहो, चंपाए वासुपुज्ज-जिणणाहो।
उज्जंते णेमिजिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो।।१।।
वीसं तु जिणवरिंदा, अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा।
सम्मेदे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं।।२।।

तीर्थंकरजन्मभूमयो देवेन्द्रचक्रवर्तिबलदेवनारायणादिभिः पूज्याः सन्ति, महामुनिभिरपि वंद्याः सन्ति। तथाहि—

कुण्डलपुर्यां संजयविजयनामधेयौ चारणर्द्धिसमन्वितौ उभौ महामुनी समागत्य जिनबालकं अवलोकयन्तौ

वहीं पर वटवृक्ष के नीचे भगवान ने दीक्षा ली थी और वहीं पुनः एक हजार वर्ष की तपस्या के अनन्तर भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था।

श्री नेमिनाथ भगवान् को ऊर्जयन्त गिरि पर दीक्षा, केवलज्ञान एवं निर्वाणकल्याणक प्राप्त हुआ था।

श्री पार्श्वनाथ भगवान ने अहिच्छत्र तीर्थ पर केवलज्ञान प्राप्त किया। अथवा उन्होंने जिस स्थल पर उपसर्ग सहन करके केवलज्ञान को उत्पन्न किया था, वही स्थल अहिच्छत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

श्री महावीर स्वामी ने जृम्भिका ग्राम में केवलज्ञान को प्राप्त किया था।

शेष सभी तीर्थंकरों के गर्भ-जन्म-तप और केवलज्ञान ये चार-चार कल्याणक अपनी-अपनी जन्मभूमि पर ही हुए हैं।

निर्वाणभूमियाँ—

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि कैशालपर्वत है, वासुपूज्य भगवान की चम्पापुरी (मंदारगिरि), श्री नेमिनाथ भगवान की ऊर्जयन्त पर्वत, महावीर स्वामी की पावापुरी तथा शेष बीस तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर पर्वत है। जैसा कि निर्वाणभक्ति में श्री कुन्दकुन्दआचार्यदेव ने कहा है—

गाथार्थ— अष्टापद से भगवान् वृषभदेव ने, चंपापुर में भगवान् वासुपूज्य ने, ऊर्जयन्त—गिरनार में भगवान नेमिजिनेन्द्र ने तथा पावापुर में भगवान महावीर स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया है।।१।।

सुर-असुरों से वंद्य, क्लेश समूह के नाशक, शेष बीस जिनवरों ने सम्मेदगिरि के शिखर पर मोक्ष को प्राप्त किया है, उन सभी को मेरा नमस्कार होवे।।२।।

तीर्थंकर भगवन्तों की जन्मभूमियाँ देवेन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण आदिकों से पूज्य हैं, महामुनियों से भी वंद्य हैं। जैसे कि—

कुण्डलपुर नगरी में संजय-विजय नाम के दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों ने आकर जिनबालक (तीर्थंकर

शंकायाः, समाधानं संप्राप्य 'सन्मतिः' नाम्ना वर्धमानशिशुमलंचक्रतुः। तथा च-अन्येषां तीर्थंकराणां जन्मभूमौ एव दीक्षाकल्याणकं केवलज्ञानमपि संजातं, अतएव न इमा जन्मभूमयः उपेक्षणीया अपि तु महत्तीर्थमिति मत्वा वन्दनीया भवन्ति।

अस्माभिः स्वजीवने काकंदी-भद्रकावती-मिथिलापुरीः अन्तरेण सर्वा जन्मभूमयो वंदिताः। जृंभिकामन्तरेण प्रयाग-अहिच्छत्रतीर्थे अपि वंदिते। कैलाशपर्वतेन विना चतुर्निर्वाणक्षेत्राणि च वंदितानि। अद्यत्वे प्रत्येकं तीर्थंकरजन्मभूमिविकासार्थं मम प्रेरणा भव्येभ्यो भाक्तिकेभ्यो वर्तते।

संप्रति भगवतः श्रीऋषभदेवस्य दीक्षा-केवलज्ञानकल्याणकतीर्थनिर्माणार्थं मया प्रेरणा कृता। तत्र नवनिर्मित-''तीर्थंकरश्रीऋषभदेवतपःस्थलीतीर्थं'' गत्वा तत्र वर्षायोगं करिष्यन्ती भगवत्ऋषभदेवसमवसरणं तत्रैव स्थापयिष्यामि।[१]

श्री ऋषभदेवशासनप्रभावना —

वीराब्दे अष्टादशोत्तर पंचविंशतिशततमे कार्तिककृष्णात्रयोदश्यां (धनत्रयोदशी) ख्रिष्टाब्दे द्विनवत्यधिक-एकोनविंशतिशततमे त्रयोविंशति अक्टूबरमासे ब्रह्ममुहूर्ते अयोध्यायां विराजमानश्रीऋषभदेवप्रतिमा एकत्रिंशत्फुटउत्तुंगविशालाध्यानेऽवलोकिता। तदानीं प्रातरेवायोध्यायां विहारं कर्तुं भावना संजाता। पुनश्च एकमासाभ्यन्तरे (६ दिसम्बरे) राममंदिर-बाबरीमस्जिदविवादे संजाते श्रीरामभक्तयवनयोः मिथः संग्रामे संजाते जैनजनताया निरोधे सत्यपि — वीराब्दे एकोनविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे फाल्गुनकृष्णापंचम्याः

शिशु महावीर) का अवलोकन किया, तत्काल ही अपनी सूक्ष्म शंका का समाधान प्राप्त करके उन्होंने वर्धमान शिशु को 'सन्मति' नाम से अलंकृत किया। अन्य तीर्थंकरों की जन्मभूमियों में ही उनके दीक्षाकल्याणक और केवलज्ञानकल्याणक भी हुए हैं, इसलिए ये जन्मभूमियाँ उपेक्षित करने योग्य नहीं है, प्रत्युत महान तीर्थ मानकर इन्हें विशेष वन्दनीय मानना चाहिए।

हमने अपने जीवनकाल में काकन्दी, भद्रकावती और मिथिलापुरी को छोड़कर सभी जन्मभूमि तीर्थों की वंदना की है। जृंभिका के अलावा प्रयाग और अहिच्छत्र तीर्थ की भी वंदना कर ली है। कैलाशपर्वत के सिवाय चारों निर्वाण क्षेत्रों की वंदना की है। वर्तमान में प्रत्येक तीर्थंकर जन्मभूमि तीर्थ के विकास हेतु मैंने सभी भव्य श्रद्धालु भक्तों को प्रेरणा प्रदान की है।

वर्तमान में मैंने श्री ऋषभदेव भगवान के दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक तीर्थ के निर्माण हेतु प्रेरणा दी है। वहाँ नवनिर्मित ''तीर्थंकर श्री ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ पर जाकर वहीं वर्षायोग करके भगवान ऋषभदेव के समवसरण को वहीं स्थापित कराऊँगी।

श्री ऋषभदेव शासन की प्रभावना —

वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ अट्ठारह में कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी धनतेरस को ईसवी सन् १९९२ में २३ अक्टूबर के दिन ब्रह्म मुहूर्त में मैंने अयोध्या तीर्थ पर विराजमान इकतीस फुट उत्तुंग भगवान् ऋषभदेव की विशाल खड्गासन प्रतिमा को ध्यान में देखा। उसी दिन प्रातःकाल अयोध्या की ओर विहार करने के लिए मन में भावना उत्पन्न हो गई। पुनश्च लगभग एक-डेढ़ माह के अंदर ही ६ दिसम्बर १९९२ को अयोध्या में राम मंदिर और बाबरी मस्जिद के विवाद में श्री रामभक्तों और मुसलमानों के मध्य युद्ध छिड़ जाने पर (हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष होने के कारण) जैन जनता द्वारा मुझे अयोध्या विहार के लिए रोके जाने पर भी वीर निर्वाण संवत् २५१९, फाल्गुन कृष्णा पंचमी तिथि को (११ फरवरी १९९३) को मेरा हस्तिनापुर से ससंघ

---

१. यह प्रकरण प्रीतविहार-दिल्ली में सन् २००० में लिखा हुआ है।

तिथेः (११ फरवरी १९९३) मम ससंघस्य मंगलविहारोऽभवत्।

मार्गे अहिच्छत्रतीर्थे त्रिंशच्चतुर्विंशतितीर्थंकरप्रतिमाः स्थापनार्थं प्रेरणां दत्वा चैत्रकृष्णानवम्यां श्री ऋषभजयंती (१६-३-१९९३) तिथौ तीर्थं वंदित्वा विहरन्ती वैशाखकृष्णाद्वितीयायां स्वदीक्षातिथौ सीतापुरनगरे अयोध्यायां श्रीऋषभदेवमंदिरस्य पार्श्वयोः त्रिकालचतुर्विंशतितीर्थंकरमंदिर-समवसरणमंदिरयोः निर्माणार्थं घोषणा प्रभोः श्रीऋषभदेवस्य महामस्तकाभिषेकं कर्तुमपि रूपरेखां निर्माप्य स्वजन्मभूमिं प्रविश्य विशेषप्रभावनां कारं कारं ततो विहृत्य तीर्थंकराणां शाश्वतजन्मभूमौ अयोध्यायां अहं संघेन सह प्राविशम्।

जन्मभूमौ वर्षायोगस्य विशेषप्रार्थनयापि तीर्थंकरजन्मभूमिविकासकरणार्थं अयोध्यायामेव वर्षायोगमस्थापयम्।

अस्मिन् वर्षायोगे षट्खण्डागमधवलाटीकासमन्वितान् ग्रन्थान् स्वाध्यायं कारं कारं मम मनसि संजातं यत् अहं एषां ग्रन्थानां सारं सारं उद्धृत्योद्धृत्य लिखामि तर्हि मम ज्ञानस्य वृद्धिः भव्यानां धवलाग्रन्थसारस्य उपलब्धिरपि भविष्यति। सा भावना हस्तिनापुरतीर्थे सफलाभवत्।[१]

तत्र दिगम्बरजैनत्रिलोकशोधसंस्थान-अवधविश्वविद्यालयसंयुक्ततत्त्वावधानयोः ''भारतीय संस्कृतेः आद्यप्रणेता भगवान् ऋषभदेवः'' अस्मिन् विषये राष्ट्रीयसंगोष्ठीमध्ये कुलपति-प्रोफेसर-इत्यादयः षष्ठिविद्वान्सः आगच्छन्।

अग्रे विंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे माघशुक्लायां पंचकल्याणकप्रतिष्ठामहोत्सवः त्रयोदश्यां

मंगल विहार हो गया।

मार्ग में अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी तीर्थंकर प्रतिमाओं की स्थापना हेतु प्रेरणा देकर चैत्र कृष्णा नवमी को श्री ऋषभदेव जन्मजयंती (१६ मार्च १९९३ को) महोत्सव वहीं मनाकर अहिच्छत्र तीर्थ की वंदना करके वहाँ से विहार करती हुई अपनी आर्यिका दीक्षा तिथि वैशाख कृष्णा द्वितीया को सीतापुर नगर पहुँच गई। वहाँ अयोध्या में निर्मित भगवान ऋषभदेव मंदिर के आजू-बाजू त्रिकाल चौबीसी तीर्थंकर मंदिर एवं समवसरण मंदिर निर्माण हेतु घोषणा की तथा श्री ऋषभदेव प्रतिमा के महामस्तकाभिषेक करने की रूपरेखा बनाकर अपनी जन्मभूमि टिकैतनगर में प्रवेश करके वहाँ विशेष धर्मप्रभावना करके पुनः वहाँ से विहार करके तीर्थंकरों की शाश्वत जन्मभूमि अयोध्या में मैंने संघ सहित प्रवेश किया।

मेरी जन्मभूमि टिकैतनगर के निवासियों द्वारा वहाँ के वर्षायोग हेतु विशेष प्रार्थना किये जाने पर भी तीर्थंकर जन्मभूमि को विकसित करने हेतु मैंने अयोध्या में ही संघ सहित वर्षायोग स्थापित किया।

इस वर्षायोग में धवलाटीका समन्वित षट्खण्डागम ग्रंथों का स्वाध्याय कर-करके मेरे मन में भावना उत्पन्न हुई कि मैं इन ग्रंथों के सारभूत तथ्यों को उद्धृत कर-करके लेखन करूँ, तब मेरे ज्ञान की वृद्धि होगी एवं भव्यों को धवला ग्रंथ के सार की उपलब्धि भी होगी। मेरी वह भावना हस्तिनापुर तीर्थ पर सफल हुई।

अयोध्या में वर्षायोग के मध्य दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान (हस्तिनापुर) एवं अवध विश्वविद्यालय (फैजाबाद) के संयुक्त तत्त्वावधान में ''भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव'' इस विषय पर आयोजित की गई राष्ट्रीय संगोष्ठी में कुलपति, प्रोफेसर इत्यादि साठ विद्वान पधारे थे।

आगे वीर निर्वाण संवत् २५२० में माघ मास के शुक्ल पक्ष में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव एवं माघ शुक्ला त्रयोदशी (२४ फरवरी १९९४) को प्रभु आदिब्रह्मा ऋषभदेव की प्रतिमा का १००८

---

१. जो भावना १९९३ में अयोध्या में भायी थी, वह हस्तिनापुर में १९९५ में सफल हुई। मैंने संस्कृत टीका लिखना शुरू किया।

तिथौ (२४-२-१९९४) प्रभोरादिब्रह्मणः श्री ऋषभदेवस्य अभूतपूर्वं अष्टोत्तरसहस्रमहाकुंभैः महामस्तकाभिषेकोऽभवत्। तदानीमेव पंचतीर्थंकराणां जन्मस्थानानां टोंकनामभिः प्रसिद्धस्थानानां जीर्णोद्धारं इत्यादिकार्याणि संजातानि।

तदानीं पूर्वमंत्री (उ.प्र.) कल्याणसिंहनामधेयः, मुलायमसिंहमुख्यमंत्री-तत्कालीनः, महामहिमराज्यपाल-मोतीलालवोरा महानुभावोऽपि आगत्य इमे सहभागिनो बभूवुः। तत्काले श्रीमुलायमसिंह मुख्यमंत्री ब्रह्मचारि रवीन्द्रकुमार जैनेन प्रेरितः सन् अयोध्यायां ऋषभदेवनेत्रचिकित्सालयं, ऋषभदेवराजकीयोद्यानं, अवध-विश्वविद्यालये श्रीऋषभदेवजैनपीठं, च स्थापनार्थं घोषणां चकार।

अनंतरं अयोध्यातीर्थे महामहोत्सवं समाप्य तत्रत्याद् निर्गत्य विहरन्त्या लक्ष्मणपुर्यां बाराबंकी-त्रिलोकपुर-गणेशपुरादिस्थानेषु प्रभावनां कुर्वन्त्या वीराब्दे विंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे (ईसवी सन् १९९४) मम वर्षायोगः टिकैतनगरग्रामे स्व जन्मभूमौ बभूव।

पुनरपि अयोध्यामागत्य श्री ऋषभदेवसमवसरणजिनबिम्बानां पंचकल्याणकप्रतिष्ठां द्वयोर्मंदिरयोः शिखरयोः कलशारोहणं कारयित्वा ऋषभदेवोद्याने च एकविंशतिफुट-उत्तुंगपद्मासनश्रीऋषभदेवमूर्तेः अनावरणं कारयित्वा विश्वविद्यालये जैनपीठस्य शिलान्यासमपि अकारयम्।

ततो विहृत्य वीराब्दे-एकविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे[१] हस्तिनागपुरमागत्य तत्र वर्षायोगं पंचवर्षीय-जम्बूद्वीप-महामहोत्सवमपि कारयित्वा तदनन्तरं मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रे विंशतिफुटउत्तुंगश्रीमुनिसुव्रतनाथभगवतां

महाकुंभों से अभूतपूर्व महामस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न हुआ। उसी समय अयोध्या में जन्मे पाँच तीर्थंकरों के जन्मस्थलों (जो वहाँ टोंक के नाम से प्रसिद्ध स्थान हैं) का जीर्णोद्धार आदि कार्य भी सम्पन्न हुए।

उस महोत्सव में वहाँ अयोध्या में उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री कल्याणसिंह, तत्कालीन मुख्यमंत्री मुलायमसिंह, महामहिम राज्यपाल मोतीलाल वोरा आदि महानुभाव भी आए और महोत्सव में सहभागी बने। ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार जैन (महोत्सव के महामंत्री) की प्रेरणा प्राप्त करके मुख्यमंत्री मुलायमसिंह ने तत्काल ही अयोध्या में ऋषभदेव नेत्र चिकित्सालय, ऋषभदेव राजकीय उद्यान एवं अवध विश्वविद्यालय में श्री ऋषभदेव जैन पीठ की स्थापना के लिए घोषणा की थी।

अनन्तर अयोध्या तीर्थ में महामहोत्सव को सम्पन्न करके वहाँ से निकलकर विहार करते हुए लखनऊ, बाराबंकी, त्रिलोकपुर, गनेशपुर आदि स्थानों में प्रभावना करते हुए वीर निर्वाण संवत् २५२० में (सन् १९९४ में) मेरा ससंघ वर्षायोग अपनी जन्मभूमि टिकैतनगर में सम्पन्न हुआ।

वहाँ वर्षायोग समापन करके पुनः अयोध्या में आकर श्री ऋषभदेव समवसरण मंदिर में विराजमान होने वाले जिनबिम्बों की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं दोनों मंदिरों (त्रिकाल चौबीसी एवं समवसरण मंदिर) के शिखरों पर कलशारोहण करवाकर और ऋषभदेव उद्यान में २१ फुट ऊँची पद्मासन ऋषभदेव मूर्ति का अनावरण करवाकर विश्वविद्यालय में जैनपीठ के शिलान्यास में भी सान्निध्य प्रदान किया।

पुनः अयोध्या से विहार करके वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ इक्कीस (सन् १९९५) में हस्तिनापुर आकर वहाँ वर्षायोग किया एवं वहाँ पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव में अपने संघ का सान्निध्य प्रदान किया। अनंतर वर्षायोग के पश्चात् मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में २० फुट उत्तुंग श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान की प्रतिमा

---

१. सन् १९९५।

अन्यासामपि जिनप्रतिमानां पंचकल्याणकप्रतिष्ठासम्पन्नकारणार्थं मम विहारोऽभवत्।

तत्र सिद्धक्षेत्रं संप्राप्य वीराब्दे-द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे निर्विघ्नतया महतीधर्मप्रभावनया च प्रतिष्ठादिकार्याणि संपाद्य तत्रैव वर्षायोगे[1] तत्रैव पर्वतस्योपरि अष्टोत्तरशतफुट-उत्तुंगखड्गासन श्रीऋषभदेवजिनप्रतिमा-निर्माणार्थं प्रेरणां प्रायच्छम्। पुनः तत्रत्यादपि विहरन्ती महुआ-तारंगा-पावागढ़-सिद्धक्षेत्रादिवंदनां विदधाना अहमदाबादमहानगरे कल्पद्रुममहामण्डलविधानुष्ठानादिभिः धर्मप्रभावनां विदधामि स्म।

पुनश्च वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे[2] दिल्ली राजधान्यां मंगलप्रवेशसभायां दिल्लीप्रदेश-मुख्यमंत्री-साहबसिंहवर्मा-महानुभावेन दीपप्रज्ज्वलनं कारयित्वा श्रीऋषभदेवजयंतीवर्षस्योद्घाटनं कारितम्। ततः श्रीऋषभदेव जन्मकल्याणकतिथौ चैत्रकृष्णानवम्यां[3] श्री ऋषभदेवरथयात्रा-महाभिषेकादिभिः प्रभावनां संपाद्य तत्रैव राजधान्यां वर्षायोगे श्री ऋषभदेवादिमहावीरपर्यंत-चतुर्विंशतितीर्थंकराणां प्रचार-प्रसारकारणार्थं ''चतुर्विंशतिकल्पद्रुममहामण्डलविधानानुष्ठानं'' नाम महामहोत्सवं कारयाञ्चक्रे।

एतस्मिन् महामहोत्सवे पूर्वराष्ट्रपतिमहामहिमशंकरदयालशर्मा-मुख्यमंत्री दिग्विजयसिंह (मध्यप्रदेश) मुख्यमंत्री साहबसिंहवर्मा (दिल्ली) इत्यादयः समागत्य अहिंसाशासनस्य तथा 'जैनधर्मोऽयं अनादिनिधनः' न च महावीरस्वामी संस्थापकः किंचायं अंतिमतीर्थंकरः इत्यादि वाक्यैः प्रशंसां चक्रुः।

का तथा अन्य अनेक जिनप्रतिमाओं का पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न कराने हेतु मेरा मांगीतुंगी की ओर ससंघ मंगल विहार हो गया।

पाँच मास तक निरन्तर चलते हुए हम लोग २७ अप्रैल १९९६ को मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर पहुँच गये और वहाँ वीर निर्वाण संवत् २५२२ (सन् १९९६) में निर्विघ्न रूप से और महती धर्मप्रभावनापूर्वक प्रतिष्ठा आदि कार्यों को संपादित करके वहीं वर्षायोग करके पर्वत पर १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा को निर्मित करने हेतु प्रेरणा प्रदान की । पुनः मांगीतुंगी तीर्थ से भी विहार करके महुआ-तारंगा-पावागढ़ सिद्धक्षेत्र आदि की वंदना करते हुए अहमदाबाद महानगर में कल्पद्रुम महामण्डल विधान के अनुष्ठान आदि के द्वारा धर्मप्रभावना किया।

पुनश्च वीर निर्वाण संवत् २५२३ (सन् १९९७) में राजधानी दिल्ली में मेरे मंगल प्रवेश की सभा में दिल्ली के मुख्यमंत्री साहबसिंहवर्मा से दीप प्रज्ज्वलन करवाकर श्री ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष का उद्घाटन किया और उसी के बाद चैत्र कृष्णा नवमी को श्री ऋषभदेव जन्मकल्याणक तिथि के दिन श्री ऋषभदेव भगवान की रथयात्रा, महाअभिषेक आदि के द्वारा प्रभावना करके वहीं राजधानी में वर्षायोग करके श्री ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों का प्रचार-प्रसार करने हेतु ''चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान अनुष्ठान'' के नाम से महामहोत्सव करवाया।

इस महामहोत्सव में भारत देश के पूर्व राष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह, दिल्ली के मुख्यमंत्री साहिबसिंह वर्मा इत्यादि राजनेताओं ने पधारकर अहिंसामयी जिनशासन की तथा ''यह जैनधर्म अनादि निधन है'' भगवान महावीर इसके संस्थापक नहीं है, क्योंकि वे अंतिम तीर्थंकर हैं इत्यादि वाक्यों के द्वारा प्रशंसा की।

---

१. ईसवी सन् १९९६। २. सन् १९९७। ३. २ अप्रैल १९९७।

ततश्चाग्रिमवर्षायोगं हस्तिनापुरे कृत्वा पुनरपि राजधान्यां समागत्य श्री ऋषभदेवजयंतीदिवसे एव[१] भगवत् ऋषभदेवसमवसरणश्रीविहाररथस्य उद्घाटनं विधाय महावीरजयंतीतिथौ तत्कालीन प्रधानमंत्री-श्री अटलबिहारीवाजपेयी करकमलाभ्यां प्रवर्तनं कारयित्वा अस्य समवसरणरथस्य भारतवर्षे प्रवर्तनार्थं श्रीविहारः कारितः। सम्पूर्ण भारतदेशे अस्य ऋषभदेवसमवसरणश्रीविहारस्य निमित्तेन जैनधर्मस्य महती प्रभावना संजाता।

चतुर्विंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे (सन् १९९८) हस्तिनापुरे ''भगवत् ऋषभदेवराष्ट्रीयकुलपति-सम्मेलनं, तीर्थंकर- ऋषभदेवविद्वन्महासंघस्थापना, मार्गशीर्षमासे मेरठजनपदे, कमलानगरे चतुर्विंशतितीर्थंकर-विंशतितीर्थंकर-पंचकल्याणकप्रतिष्ठादयः सम्पन्ना जाताः।

वीराब्दे षट्द्विपंचद्वयंके[२] माघकृष्णाचतुर्दश्यां राजधान्यां ''भगवत्ऋषभदेवअन्तर्राष्ट्रीयनिर्वाण-महामहोत्सव'' नाम्नि बृहदायोजनकार्ये 'लालकिलामैदान' नाम्नि स्थले कैलाशपर्वतरचनायां द्वासप्तति-तीर्थंकराणां रत्नमयीजिनप्रतिमाः उपरिमभागे श्रीऋषभदेवप्रतिमाश्च स्थापयित्वा तत्रैव आदिब्रह्मणः श्री-ऋषभदेवस्य निर्वाणमहोत्सवे अष्टोत्तरसहस्रनिर्वाणलड्डुकान् समर्प्य महामहोत्सवो बभूव। अस्मिन् महोत्सवे तत्कालीन- प्रधानमंत्री अटलबिहारीवाजपेयी महानुभावः समागत्य श्रीधनंजयजैनस्य (वित्तराज्यमंत्री) अध्यक्षतायां बृहन्मोदकान् प्रभोः समक्षे समर्प्य महोत्सवं प्रारभत।

अस्मिन् महामहोत्सवे—पंचकल्याणकप्रतिष्ठा, श्रीऋषभदेवजैनमेला, शताधिकचलचित्राणि प्रदर्शनी-

---

उसके पश्चात् सन् १९९८ का अगला वर्षायोग हस्तिनापुर में व्यतीत करके पुनः राजधानी दिल्ली पहुँचकर श्री ऋषभदेव जन्मजयंती के दिन ही (२२ मार्च १९९८ को) भगवान ऋषभदेव समवसरण श्री विहार रथ को उद्घाटित करके महावीर जयंती के दिन (९ अप्रैल १९९८ को) तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के करकमलों से प्रवर्तन करवाकर इस समवसरण रथ का पूरे भारत वर्ष में प्रवर्तन हेतु श्री विहार कराया। सम्पूर्ण भारत देश में इस समवसरण श्रीविहार के निमित्त से जैनधर्म की महती प्रभावना हुई।

इसी वीर निर्वाण संवत् २५२४ में (ईसवी सन् १९९८) में हस्तिनापुर में "भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, तीर्थंकर ऋषभदेव विद्वन्महासंघ की स्थापना, मगसिर मास में मेरठ शहर की कमला-नगर कालोनी में चौबीस तीर्थंकर एवं विद्यमान बीस तीर्थंकर भगवन्तों की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आदि कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

वीर निर्वाण संवत् २५२६ में (सन् २००० में) माघ कृष्णा चतुर्दशी (४ फरवरी) को राजधानी दिल्ली में "भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव" नामक विशाल समारोह में "लाल किला मैदान" नाम के स्थल पर कैलाश पर्वत की रचना बनाकर उस रचना में त्रिकाल चौबीसी की ७२ रत्नमयी प्रतिमाएँ तथा पर्वत के ऊपरी भाग में श्री ऋषभदेव की प्रतिमा स्थापित करके उसी पर्वत के समक्ष आदिब्रह्मा श्री ऋषभदेव के निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में एक हजार आठ निर्वाणलाडू चढ़ाकर महामहोत्सव सम्पन्न किया गया। इस महोत्सव में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी महोदय ने पधारकर वित्त राज्यमंत्री श्री धनंजय कुमार जैन की अध्यक्षता में विशाल लाडू को प्रभु के सन्मुख समर्पित करके महोत्सव का शुभारंभ किया था।

इस महामहोत्सव में—पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, श्री ऋषभदेव जैन मेला, सौ से अधिक इलेक्ट्रॉनिक

---

१. ईसवी सन् (२२ मार्च १९९८)। २. वीर नि. सं. २५२६, ईसवी सन् २०००।

तीर्थप्रदर्शिनी-तीर्थंकर-संबंधिचित्राणि इत्यादीनि जैनजैनेतर-लक्षाधिक-जनानामाकर्षणकेन्द्राणि बभूवुः। ततश्च तस्मिन्नेव राजधान्यामुपनगरे प्रीतविहारस्थले नवनिर्मित-श्रीऋषभदेवकमलमंदिरे मम वर्षायोगे बृहन्मानसरोवर-कैलाशपर्वतरचनां कारयित्वा मानसरोवरयात्रा कारिता। अत्र यात्रायां लक्षाधिकजना पर्वतस्योपरि आरूह्य-आरूह्य जिनप्रतिमानां वंदनां कारं कारं महत्पुण्यसंपादनैः सह पुलकिता अभवन्।

पुनश्च श्रीऋषभदेवदीक्षाभूमिमाविर्भावयितुं केवलज्ञानभूमिं चापि प्रकटीकर्तुमिच्छया प्रयागस्थले (इलाहाबाद- महाकुंभनगरे) नूतनतीर्थनिमाणार्थं प्रयत्नः कारितः।

अस्मिन्मध्ये भाद्रपदमासे न्यूयार्कविदेशे (अमेरिका) सहस्राब्दिविश्वशांतिशिखरसम्मेलनं' नाम्नि बृहत्कार्यक्रमे जैनसमाजप्रतिनिधि-जैनधर्माचार्य-कर्मयोगीब्रह्मचारिरवीन्द्रकुमारस्तत्र गत्वा विश्वव्यापि-श्रीऋषभदेवनाम्न तस्य शासनप्रचारप्रसारं कारं कारं अन्तर्राष्ट्रीयऋषभदेवमहोत्सववर्षं सार्थकं चकार।

ततो राजधान्या अस्माकं मंगलविहारः भारतप्रसिद्धमहाकुंभस्यावसरे प्रयागं इति संजातः।

तत्र मत्प्रेरणया नवनिर्मित ''तीर्थंकर श्रीऋषभदेवतपःस्थली'' नामतीर्थे दीक्षाकल्याणकमुद्रांकिता पिच्छिका-कमण्डलुसमन्विता श्रीऋषभदेवप्रतिमा कृत्रिमवटवृक्षतले स्थापिता, मध्ये बृहत्कैलाशपर्वतरचनाया उपरि त्रैकालिक-चतुर्विंशतितीर्थंकरप्रतिमाः उपरिमभागे चतुर्दशफुटउत्तुंगपद्मासना प्रवालवर्णीया श्रीऋषभदेवप्रतिमा विराजिताः, पुनश्च समवसरणरचना संजाता।

वीराब्दे सप्तद्विपंचद्वयंके[१] माघशुक्लैकादश्या आरभ्य पूर्णिमापर्यंतं पंचकल्याणकप्रतिष्ठा, पूर्णिमायां

झाँकियाँ, तीर्थों की प्रदर्शनी और तीर्थंकरों से संबंधित चित्र इत्यादि जैन एवं जैनेतर लाखों लोगों के आकर्षण का केन्द्र बने थे। उसके पश्चात् उसी राजधानी के उपनगर — कॉलोनी-प्रीतविहार में नवनिर्मित श्री ऋषभदेव कमलमंदिर में मेरा वर्षायोग हुआ, वहाँ विशाल मानसरोवर कैलाशपर्वत की रचना बनवाकर मानसरोवर यात्रा करवाई। इस यात्रा में लाखों जनसमूह ने पर्वत के ऊपर चढ़-चढ़कर जिनप्रतिमाओं की वंदना कर-करके महान पुण्य का संपादन करके अत्यन्त हर्ष का अनुभव किया।

पुनश्च श्री ऋषभदेव की दीक्षाभूमि और केवलज्ञान भूमि को पुनः प्रगट — प्रतिष्ठापित करने की इच्छा से प्रयाग (इलाहाबाद-महाकुंभ नगर) में नूतन तीर्थ के निर्माण हेतु पुरुषार्थ किया गया।

इस मध्य भाद्रपद मास में अमेरिका के न्यूयार्क शहर में "सहस्राब्दि विश्वशांति शिखर सम्मेलन" नाम का वृहत् कार्यक्रम आयोजित हुआ, उसमें जैन समाज के प्रतिनिधि बनकर जैनधर्माचार्य के रूप में कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्रकुमार ने वहाँ जाकर भगवान् ऋषभदेव के शासन का प्रचार-प्रसार करके अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव वर्ष को सार्थक किया।

उसके बाद राजधानी से हमारा मंगल विहार भारत प्रसिद्ध महाकुंभ मेले के अवसर पर प्रयाग नगरी की ओर हो गया।

वहाँ मेरी प्रेरणा से निर्मित हो रहे "तीर्थंकर श्री ऋषभदेव तपःस्थली" नामक तीर्थ परिसर में दीक्षाकल्याणक की मुद्रा से चिन्हित पिच्छी-कमण्डलु समन्वित श्री ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा कृत्रिम वटवृक्ष (धातु निर्मित) के नीचे स्थापित हुईं, तीर्थ के मध्य भाग में विशाल कैलाशपर्वत की रचना के ऊपर त्रैकालिक चौबीसी की ७२ प्रतिमा एवं पर्वत के ऊपर चौदह फुट उत्तुंग पद्मासन प्रवालवर्णी (लालरंग की) श्री ऋषभदेव की प्रतिमा विराजमान हुई हैं एवं पर्वत के दूसरी ओर समवसरण की रचना बनी हुई है।

वीर निर्वाण संवत् २५२७ में (सन् २००१ में) माघ शुक्ला एकादशी से आरंभ करके पूर्णिमा पर्यन्त

---

१. वी. नि. सं. २५२७, सन् २००१।

प्रभोः ऋषभदेवस्य अष्टोत्तरसहस्रमहाकुंभैः महामस्तकाभिषेको बभूव। एषु महोत्सवेषु 'महाकुंभ' नाम्ना सर्वभारतीय- जनतानां महोत्सवोऽपि अन्वर्थं जातः। अस्मिन्मध्ये अस्माभिः महाकुंभनगरं गत्वा तत्रापि कोटि-कोटि-जनानां मध्ये श्रीऋषभदेवमंडपे श्री ऋषभदेवस्य समक्षे निर्वाणलड्डुकाः समर्पिता बभूवुः। तत्र विश्वहिन्दूपरिषदः नवमसंसदि-सभायां अस्माकं प्रवचनमपि भूत्वा श्री ऋषभदेवशासनस्य 'अहिंसापरमो-धर्मस्यातिशायिनी प्रभावना संजाता।

अनंतरं अंतिमतीर्थंकर श्री महावीरस्वामिनः षड्विंशतिशततमजन्मकल्याणकमहोत्सवनिमित्तेन वयं पुनरपि राजधानीमाजग्मुः।

अस्मिन्नेव वीराब्दे राजधान्यां अशोकविहारनामोपनगरे अस्माकं वर्षायोगः संजातः। तदानीं फिरोजशाह-कोटलानाम्नि बृहत्स्थले महामंडपं कारयित्वा युगपत् षड्विंशतिमंडलानामुपरि श्रीमहावीरस्वामिप्रतिमाः स्थापयित्वा मया विरचितनूतनविश्वशांतिमहावीरविधानानुष्ठानं संजातम् अभूतपूर्वप्रभावनापूर्वकम्।

पुनरपि श्रीमहावीरस्वामिजन्मकल्याणकमहामहोत्सवनिमित्तेन तेषां भगवतां जन्मभूमि-कुण्डलपुर-तीर्थविकास-करणार्थं अस्माकं विहारः कुण्डलपुरं (जिला-नालंदा, बिहार प्रदेश) प्रति अभवत्।

ततो राजधान्या विहृत्य मार्गे शौरीपुरीतीर्थं वंदित्वा प्रयागतीर्थे वर्षायोगार्थं अग्रे विहारोऽभवत्। अत्रैव त्रिवर्षपर्यंत-भारतदेशे प्रवर्तनं कारं कारं भगवतः श्री ऋषभदेवस्य समवसरणं आगतमस्ति, तस्य स्थापनामपि कारयिष्यामि।[१]

वहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई, पूर्णिमा को प्रभु ऋषभदेव का १००८ महाकुंभों से महामस्तकाभिषेक हुआ। इस महोत्सव में 'महाकुंभ' नाम से समस्त भारतीय जनता का महोत्सव भी नाम के अनुरूप सार्थक हो गया। इस महाकुंभ नामक वैदिक महोत्सव के मध्य हम लोग महाकुंभ नगर में गये, वहाँ भी करोड़ों लोगों के बीच में श्री ऋषभदेव मण्डप निर्मित हुआ, जहाँ भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा विराजमान करके उनके समक्ष निर्वाणलड्डू चढ़ाये गये। वहाँ विश्व हिन्दू परिषद की नवम धर्मसंसद की सभा में हमारे प्रवचन हुए, जिनसे श्री ऋषभदेव शासन की और अहिंसा परमो धर्म की खूब प्रभावना हुई।

इसके पश्चात् अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के २६००वें जन्मकल्याणक महोत्सव के निमित्त से हम लोग पुनः राजधानी दिल्ली आ गये।

इसी वीर संवत् २५२७ (सन् २००१) में दिल्ली की अशोकविहार कालोनी में हमारा ससंघ वर्षायोग हुआ। उस समय फिरोजशाहकोटला नामक बहुत बड़े मैदान में विशाल पाण्डाल बनवाकर उसमें एक साथ २६ मण्डलों के ऊपर श्री महावीर स्वामी की २६ प्रतिमाएँ स्थापित करके (सभी मण्डलों पर १-१ प्रतिमा विराजमान करके) मेरे द्वारा नूतन रचित विश्वशांति महावीर विधान का महान अनुष्ठान अभूतपूर्व धर्मप्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ।

पुनः श्री महावीर स्वामी के जन्मकल्याणक महामहोत्सव के निमित्त से उनकी जन्मभूमि कुण्डलपुर तीर्थ का विकास करने हेतु हमारा संघ सहित मंगल विहार कुण्डलपुर (जिला-नालंदा, बिहार प्रदेश) की ओर हो गया।

राजधानी से विहार करके मार्ग में शौरीपुर तीर्थ की वंदना करके प्रयाग तीर्थ में वर्षायोग करने हेतु आगे विहार हो गया। वहाँ भगवान ऋषभदेव का समवसरण तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करने के पश्चात् आने वाला है, उसकी स्थापना तपस्थली तीर्थ पर करवाऊँगी — उसकी स्थापना वहाँ होगी।

---

१. यह प्रकरण सन् २००१ में लिखा गया है।

प्रारंभे अष्टैकपंचद्वयंके[1] वीराब्दे (१९९२ में) मम मनसि अयोध्या गत्वा श्रीऋषभदेवमहामस्तकाभिषेकादिकं कर्तुं भावनोद्भूतासीत्। मध्ये दशवर्षेषु सर्वत्र महतीप्रभावनया सह अस्मिन् वर्तमाने वीराब्दे अष्टद्विपंचद्वयंके अयं दशाब्दिः ऋषभदेवमयोऽभवत्[2]। महत्प्रमोदेन एतत् लिखाम्यहम्।

या भावना अयोध्यायां वर्षायोगे[3] भावितासीत्। यदहं षट्खण्डागमग्रन्थानां स्वाध्यायं कारं कारं अचिन्तयम्। एषां ग्रन्थानां धवलाटीकाधारेण सारं गृहीत्वा अहं किमपि लिखामि। सा भावना वीराब्दे एकद्विपंचद्वयंके सफलाभवत् संस्कृत टीकां लिखितुमारभेऽहं।

अधुना दशमग्रन्थस्य टीकां पूर्णीकृत्य हर्षातिरेण पुलकितवदनाहं प्रभोः श्रीचरणयोः भावयामि। एषां पंचखण्डानामपि टीका पूर्णीभवेत् भवत्कृपाप्रसादेनेति।

श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरस्तुतिः

—अनुष्टुप्छंदः —

पुरुदेव! नमस्तुभ्यं, युगादिपुरुषाय ते।
इक्ष्वाकुवंशसूर्याय, वृषभाय नमो नमः।।१।।

नमस्तेऽजितनाथाय, कर्मशत्रुजयाय ते।
अजयेशक्ति-लाभार्थ-मजिताय नमो नमः।।२।।

पहले वीर निर्वाण संवत् २५१८ (सन् १९९२) में मेरे मन में अयोध्या जाकर श्री ऋषभदेव का महामस्तकाभिषेक आदि करने की भावना उत्पन्न हुई। पुनः दश वर्षों में सर्वत्र महती धर्मप्रभावना के साथ आज वीर नि. सं. २५२८ में यह दशाब्दि-दशक (दश वर्ष का काल) ऋषभदेवमय हो गया, यह लिखते हुए मुझे अत्यन्त प्रमोद—हर्ष का अनुभव हो रहा है।

जो भावना मैंने अयोध्या के वर्षायोग में संजोई थी कि मैं षट्खण्डागम ग्रंथों का स्वाध्याय कर-करके सोचा था कि इन ग्रंथों की धवला टीका के आधार से उसका सार ग्रहण करके मैं कुछ लिखूँ। वह भावना वीर सं. पच्चीस सौ इक्कीस (२५२१) सन् १९९५ में सफल हुई और मैंने इसकी संस्कृत टीका लिखना प्रारंभ किया।

आज इस दशवें ग्रंथ की टीका को पूरी करके हर्षातिरेक से पुलकित होकर जिनेन्द्रप्रभु के श्रीचरणों में मैं भावना भाती हूँ कि हे भगवन्! आपकी कृपाप्रसाद से पाँचों खण्डों की टीका भी शीघ्र पूर्ण होवे।

श्री चौबीस तीर्थंकर स्तुति

श्लोकार्थ—हे पुरुदेव! आपको मेरा नमस्कार है। आप युगादि पुरुष—कर्मयुग की आदि में जन्म लेकर प्रथम तीर्थंकर के रूप में प्रसिद्ध महापुरुष हुए हैं, आप इक्ष्वाकुवंश के सूर्य हैं, ऐसे आप वृषभनाथ भगवान को मेरा बारम्बार नमस्कार है।।१।।

कर्म शत्रुओं को जीतने वाले हे अजितनाथ भगवान्! आपको मेरा नमन है। अजेय शक्ति को प्राप्त करने हेतु अजितनाथ तीर्थंकर प्रभु के लिए मेरा पुनः पुनः नमस्कार है।।२।।

---

१. ईसवी सन् १९९२ से लेकर आज २००२ तक यह दशक श्री ऋषभदेवमय हो गया है। २. वी. नि. सं. २८१८, ईसवी सन् ११९३ में। ३. वी. नि. सं. २५२१।

भवसंभवदुःखार्त्ति-नाशिने परमेष्ठिने।
नमो संभवनाथाया-नंत विभवलब्धये।।३।।

गुणसमृद्धियुक्ताय, जिनचंद्राय ते नमः।
अभिनंदनदेवाय, नमः स्वगुणवृद्धये।।४।।

ध्वस्तकुमतिदेवाय, जन्ममृत्युप्रमाथिने।
नमो सुमतिनाथाय, सुष्ठुमतिप्रदायिने।।५।।

मुक्तिपद्मासुकांताय, पद्मवर्ण! नमोस्तु ते।
पद्मप्रभजिनेशाय, निजलक्ष्म्यै नमो नमः।।६।।

भवपाशच्छिदे तुभ्यं, श्रीसुपार्श्व! नमो नमः।
संसृतिपार्श्वदूराय, मुक्तिपार्श्वविधायिने।।७।।

वागमृतकरैर्भव्य-पोषिणे जिनचंद्र! ते।
नमो नमोऽस्तु चन्द्राय, सर्वसंतापहानये।।८।।

पुष्पदंतजिनेन्द्राय, पुष्पवाणच्छिदे नमः।
तुष्टिपुष्टिप्रदातस्ते, स्वात्मपुष्ट्यै नमो नमः।।९।।

शीतलेश! नमस्तुभ्यं, वचस्ते सर्वतापहृत्।
श्रीमत्शीतलनाथाय, शीतीभूताय देहिनाम्।।१०।।

संसार में उत्पन्न होने वाले दुःख और कष्टों को नष्ट करने वाले हे अर्हन्त परमेष्ठी संभवनाथ भगवान्! अनन्त वैभव को प्राप्त करने हेतु मेरा आपके लिए नमोऽस्तु है।।३।।

गुणों की समृद्धि से समृद्ध — युक्त, जिनवरों में चन्द्रमा के सदृश सुशोभित हे अभिनंदननाथ तीर्थंकर प्रभु! मैं निज आत्म गुणों की वृद्धि के लिए आपको नमन करता हूँ।।४।।

कुमति — मिथ्यामति को नष्ट कर देने वाले, अपने जन्म-मृत्यु को समाप्त करने वाले तथा सभी को सुष्ठु — सम्यक् मति-बुद्धि प्रदान करने वाले श्री सुमतिनाथ भगवान को मेरा नमन है।।५।।

मुक्तिपद्मा — मोक्षरूपी लक्ष्मी के कांत — पति, पद्म — कमल के समान लालवर्ण वाले हे पद्मप्रभ भगवान्! आपको मेरा नमस्कार है। अपने आत्मा की ज्ञानलक्ष्मी को प्राप्त करने हेतु श्री पद्मप्रभ जिनेश्वर के लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है।।६।।

हे श्री सुपार्श्वनाथ भगवान्! आपने भवपाश — संसारभ्रमण के जाल का छेदन कर दिया है, संसार के संसरण को दूर कर दिया है और आप भव्यों को मुक्तिधाम में पहुँचाने वाले हैं इसलिए आपको पुनः पुनः नमन है।।७।।

अपने दिव्य वचनरूपी अमृत के द्वारा भव्य प्राणियों का पोषण करने वाले हे जिनचन्द्रमा श्री चन्द्रप्रभ तीर्थंकर भगवान्! समस्त संताप — संसारताप के विनाशन हेतु मेरा आपको कोटि-कोटि वंदन है-वंदन है।।८।।

पुष्पबाणों का छेदन करने वाले, तुष्टि और पुष्टि को प्रदान करने वाले श्री पुष्पदंतनाथ जिनेन्द्र को निज आत्मगुणों की पुष्टि हेतु मेरा अनेकशः नमन है।।९।।

हे शीतलनाथ भगवान्! आपके वचन सभी प्राणियों के संताप को हरने वाले हैं और संसारी जीवों के हृदय को शीतलता प्रदान करने वाले हैं अतः आपके लिए मेरा नमस्कार है।।१०।।

श्रेयस्करो जगत्यस्मिन्, श्री श्रेयन्! ते नमो नमः।
अन्वर्थनामधृत् देव! श्रेयो मे कुरुतात् सदा।।११।।

वासुपूज्यो जगत्पूज्यः, पूज्यपूजातिदूरगः।
पूज्यो जनः प्रसादात्ते, भवेत्तुभ्यं नमो नमः।।१२।।

कर्ममलविनिर्मुक्तो, विमलाय नमो नमः।
तव नामस्मृतिर्लोकं, नैर्मल्यं कुरुते क्षणात्।।१३।।

अनंतनाथ! दृग्ज्ञान-वीर्यसौख्यैरनन्तगः।
अनंतसौख्यलाभाय, भक्त्या तुभ्यं नमो नमः।।१४।।

नमोऽस्तु धर्मनाथाय, धर्मतीर्थंकराय ते।
धर्मचक्रेश! मे नित्यं, धर्म्यध्यानं विधीयताम्।।१५।।

स्वकर्मक्षयतः शांतिं, लब्ध्वा शांतिकरोऽभवत्।
शांतिनाथ! नमस्तुभ्यं, मनःक्लेशप्रशांतये।।१६।।

अहिंसां कुंथुजीवेषु, कृत्वा कुंथुजिनोऽभवत्।
रक्षां विधेहि मे नित्यं, कुंथुनाथ! नमोऽस्तु ते।।१७।।

जगत्त्रयविभुर्सूर्यो, मोहान्धकारहृज्जिनः।
हंताप्यरेर्नमस्तुभ्य-मरनाथ! नमो नमः।।१८।।

श्री श्रेयांसनाथ तीर्थंकर प्रभो! आप इस संसार में सबके लिए श्रेयस्कर—कल्याणकारी हैं, अन्वर्थ नाम को धारण करने वाले हे देव! आपको बारम्बार नमस्कार है, आप मेरा सदैव कल्याण कीजिए।।११।।

हे वासुपूज्य भगवान्! आप पूज्य और पूजा से अति दूर होने से जगत्पूज्य बन गये हैं और आपके प्रसाद से जगत् के प्राणी भी पूज्य बन जाते हैं, इसलिए आपके श्रीचरणों में मेरा बारम्बार नमस्कार है।।१२।।

सम्पूर्ण कर्ममल से रहित हे विमलनाथ भगवान्! आप को मेरा बारम्बार नमस्कार है। क्योंकि आपका नामस्मरण मात्र भी लोक को—प्राणियों को क्षणमात्र में निर्मलता प्रदान कर देता है।।१३।।

हे अनन्तनाथ भगवान्! आप अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसुखरूप अनन्तचतुष्टय से समन्वित हैं। अनन्त सौख्य के लाभ हेतु मेरा आपको भक्तिपूर्वक पुनः पुनः नमस्कार है।।१४।।

धर्मतीर्थ के प्रवर्तक तीर्थंकर श्री धर्मनाथ भगवान को मेरा नमस्कार होवे। हेधर्मचक्र के ईश—स्वामी! मुझे आप नित्य ही धर्मध्यान प्रदान करें, अर्थात् आपकी कृपा से मेरा मन सदैव धर्मध्यान में लवलीन रहे यही प्रार्थना है।।१५।।

हे तीर्थंकर श्री शांतिनाथ! आपने अपने कर्मों के क्षय से परमशान्ति को प्राप्तकरके जगत् के लिए शान्तिकर—शांति के प्रदाता हो गये, अतः मन के क्लेश—दुःखों की शांति के लिए आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है।।१६।।

हे कुंथुनाथ प्रभो! कुंथु आदि अनेक क्षुद्र जीवों पर आपने अहिंसा-करुणा-दया करके कुंथुजिन सार्थकनामधारी हुए हैं, आपको मेरा नमस्कार होवे, अब आप नित्य ही रक्षा कीजिए।।१७।।

हे अरनाथ भगवान्! आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, मोहान्धकार को हरण करने वाले जिनसूर्य हैं और समस्त अरि—कर्मशत्रुओं को नष्ट करने वाले हैं आपके पदकमल में मेरा बारम्बार नमस्कार है।।१८।।

कर्ममल्लभिदे तुभ्यं, मल्लिनाथ! नमो नमः।
स्वमोहमल्लनाशाय, भववल्लिभिदे नमः।।१९।।

महाव्रतधरो धीरः, सुव्रतो मुनिसुव्रतः।
नमस्तुभ्यं ननुतान्मे, रत्नत्रयस्य पूर्णताम्।।२०।।

सर्वसंगविरक्तः सन्, मुक्तिश्रीरक्तमानसः।
नमिनाथ! नमस्तुभ्यं, मह्यं मुक्तिश्रियं दिश।।२१।।

राजीमतीं परित्यज्य, महादयार्द्रमानसः।
लेभे सिद्धिवधूं सिद्ध्यै, नेमिनाथ! नमोऽस्तु ते।।२२।।

सर्वंसहो जिनः पार्श्वो, दैत्यारिमदमर्दकः।
सहिष्णुतां प्रपुष्यान्मे, नित्यं तुभ्यं नमो नमः।।२३।।

वर्धमानो महावीरो-ऽतिवीरो सन्मतिर्जिनः।
वीरनाथो नमस्तुभ्यं, सन्मतिं वितनोतु मे।।२४।।

चतुर्विंशतितीर्थेशान्, त्रिसंध्यं स्तौति यो नरः।
प्राप्नोति स त्वरं लक्ष्मीं, ज्ञानमत्या समन्विताम्।।२५।।

हे मल्लिनाथ स्वामिन्! आप कर्मरूपी मल्लों को भेदन—विदीर्ण करने वाले हैं, आपने भववल्ली—संसारवल्लरी—लता को नष्ट कर दिया है अतः अपने मोहमल्ल के नाश करने हेतु मेरा आपको चरणों में कोटि-कोटि नमन है।।१९।।

जिन्होंने महाव्रतों को धारण किया, धीर-वीर बने, अच्छे-अच्छे व्रतों का पालन करने से सुव्रत कहलाये, ऐसे हे मुनिसुव्रत भगवान्! आप मेरे रत्नत्रय की पूर्णता करें, मेरा आपके लिए नमस्कार है।।२०।।

हे नमिनाथ भगवान्! आपने सम्पूर्ण परिग्रह से विरक्त होकर मुक्ति लक्ष्मी में अपने मन को अनुरक्त कर लिया है। हे प्रभो! आप मुझे भी मुक्ति लक्ष्मी प्रदान कीजिए, मेरा आपके चरणों में बारम्बार नमन है।।२१।।

हे नेमिनाथ तीर्थंकर देव! आप महान दयालु प्रकृति वाले हैं, आपने राजीमती (विवाह हेतु तोरण पर वरमाला लेकर खड़ी अपनी होने वाली पत्नी राजुल नामक राजकुमारी) को त्याग करके सिद्धिवधू को प्राप्त कर लिया। मैं भी अपनी सिद्धि के लिए आपको नमस्कार करता हूँ।।२२।।

हे पार्श्वनाथ भगवान्! समस्त उपसर्गों को सहन करने वाले होने से सर्वंसह कहलाते हैं, संवर दैत्य (कमठाचर का जीव दैत्य) के मान का आपने मर्दन कर दिया है अतः मुझमें भी सहिष्णुता प्राप्त हो इस अभिलाषा के साथ आपके श्रीचरणों में मेरा बारम्बार नमन स्वीकार होवे।।२३।।

हे वर्धमान-महावीर-अतिवीर-सन्मति-वीरनाथ जिनेन्द्र! आपको मेरा नमस्कार है, आप मुझे सन्मति—सद्बुद्धि प्रदान करें।।२४।।

जो मनुष्य इन चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों की तीनों संध्याओं में स्तुति करते हैं वे ज्ञानमती से—सम्यक्ज्ञान की मति से समन्वित—ज्ञानलक्ष्मी को शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं।।२५।।

मंगलं सिद्धशुद्धात्मा, मंगलं ऋषभेश्वरः।
मंगलं स्याद् दयाधर्मो, मंगलं जैनशासनम्।।२६।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीभूतबलिसूरिविरचितवेदनाखण्डे नाम्नि चतुर्थखण्डे दशमे ग्रन्थे श्रीवीरसेनाचार्यकृत-धवलाटीकाप्रमुखअनेकग्रन्थाधारेण विरचिते विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यचारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागराचार्यस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्री वीरसागराचार्यस्तस्य शिष्याजम्बूद्वीपरचनाप्रेरिकागणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां द्वितीयवेदनानुयोगद्वारांतर्गत-वेदनानयनिक्षेप-वेदनानयविभाषणता-वेदनानामविधान-वेदनाद्रव्यविधान-वेदनाक्षेत्रविधाननाम पंचानुयोगद्वार समन्वितोऽयं दशमो ग्रन्थः समाप्तः।

।।पूर्णोऽयं दशमो ग्रन्थः।।

शुद्धात्मा को प्राप्त सिद्ध भगवान मंगलकारी होवें, भगवान् ऋषभदेव मंगलकारी होवें, दयामयी धर्म मंगलकारी होवे एवं जिनेन्द्र भगवान् का जैनशासन हम सबके लिए मंगलकारी होवे।।२६।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम में श्री भूतबली आचार्य विरचित वेदनाखण्ड नाम के चतुर्थ खण्ड में दशवें ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य कृत धवला टीका को प्रमुख करके तथा अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज उनके प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर महाराज उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत वेदनानयनिक्षेप-वेदनानयविभाषणता-वेदनानामविधान-वेदनाद्रव्यविधान-वेदनाक्षेत्रविधान नाम के पाँच अनुयोगद्वारों से समन्वित यह दशवाँ ग्रंथ समाप्त हुआ।

।। इस प्रकार यह दशवाँ ग्रंथ परिपूर्ण हुआ।।

卐卐卐

दशमग्रंथस्य प्रशस्तिः

श्रीमान् ऋषभदेवोऽयं, कमलाकारमंदिरे।
विराजितो नमस्तस्मै, सर्वकार्यस्य सिद्धये।।१।।

वीराब्दे षड्विंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे शरत्पूर्णिमायां ख्रिष्टाब्दे त्रयोदशदिनाँके दशममासे द्विसहस्रतमे नवमग्रन्थस्य टीकां पूर्णीकृत्य मया तस्यामेव तिथौ दशमग्रन्थस्य वेदनाखण्डांतर्गतस्य सिद्धान्तचिंतामणि-टीकालेखनं प्रारब्धं।

ततश्च महावीरस्वामिनः राष्ट्रीयस्तरस्य षड्विंशतिशततमो जन्मकल्याणकमहोत्सवो भूयादिति प्रचारे संजाते कार्तिककृष्णामावस्यायां श्रीमहावीरस्वामिनिर्वाणमहोत्सवं कारयित्वा वर्षायोगं च निष्ठाप्य तस्यामेव पवित्रतिथौ मया विश्वशांतिमहावीरविधानं लिखितुमिच्छया मंगलाचरणं लिखित्वा प्रारब्धं।

वीराब्दे सप्तविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे कार्तिकशुक्लापंचम्यां तिथौ जयपुरात् विशेषचतुश्चक्रिकातः (ट्राला नाम्नः) आगतायाः प्रयागतीर्थे नूतनतीर्थे कैलाशपर्वतस्योपरिविराजयिष्यमाणा-प्रवालवर्णिप्रतिमायाः श्रीऋषभदेवस्य एकादशफुट-उत्तुंगपद्मासनस्थायाः विधिपूर्वकं प्रथमं मुखावलोकनं कृत्वा कारयित्वा च महद्हर्षोल्लासवातावरणे प्रीतविहारकालोनीस्थितकमलमन्दिरात् प्रयागतीर्थहेतोः संघसहितायाः मम मंगलविहारोऽभवत्।

पुनश्च गाजियाबाद-खुर्जा-अलीगढ़-इत्यादिनगरेषु प्रभावनां कुर्वन्त्या एटानगरे प्रवेशोऽभवत्। तत्र

दशवें ग्रंथ की प्रशस्ति

श्लोकार्थ — कमलाकार मंदिर (प्रीतविहार-दिल्ली में निर्मित) में श्रीमान् तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान् विराजमान हैं, उन्हें सर्वकार्य की सिद्धि हेतु मेरा नमस्कार होवे।।१।।

वीर निर्वाण संवत् २५२६ में शरदपूर्णिमा तिथि को तदनुसार ईसवी सन् १३-१०-२००० दिनाँक में नवमें ग्रंथ की टीका को पूर्ण करके मैंने उसी दिन वेदनाखण्ड के अन्तर्गत इस दशवें ग्रंथ की सिद्धान्तचिंतामणिटीका का लेखन प्रारंभ किया था।

उसके पश्चात् भगवान महावीर स्वामी का राष्ट्रीय स्तर पर २६००वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव हो, ऐसा प्रचार-प्रसार होने पर मैंने कार्तिक कृष्णा अमावस को श्री महावीर निर्वाण महोत्सव मनाकर एवं कमल मंदिर में स्थापित वर्षायोग का निष्ठापन करके उसी पवित्र तिथि में विश्वशांति महावीर विधान को लिखने की इच्छा से उसका मंगलाचरण लिखकर शुभारंभ किया।

वीर निर्वाण संवत् २५२७ में कार्तिक शुक्ला पंचमी तिथि को जयपुर से विशेष बड़े ट्रक में प्रयाग तीर्थ पर नूतन निर्माणाधीन तीर्थ परिसर में कैलाशपर्वत के ऊपर विराजमान होने वाली प्रतिमा दिल्ली आईं, उस प्रवालवर्णी — लाल पाषाण में निर्मित श्री ऋषभदेव की ग्यारह फुट उत्तुंग (कमल सहित १४ फुट है) पद्मासन प्रतिमा का प्रथम मुखावलोकन करके एवं सभी भक्तों को मुखावलोकन कराकर महान् हर्षोल्लासपूर्ण वातावरण में प्रीतविहार कालोनी (दिल्ली में देव-शास्त्र-गुरु भक्त श्रावक श्री अनिल कुमार जैन द्वारा अपनी कोठी के प्रांगण) में निर्मित किये गये कमल मंदिर से प्रयाग तीर्थ हेतु संघ सहित मेरा मंगल विहार हो गया।

पुनश्च गाजियाबाद-खुर्जा-अलीगढ़ आदि नगरों में धर्मप्रभावना करते हुए एटा नगर में प्रवेश हुआ। वहाँ

मुनिश्रीअमितसागरसंघस्य गणिनीश्रीविशुद्धमतीसंघस्य च ममापि सम्मेलनं बभूव। नानाविधधर्मचर्चापि वात्सल्यपूर्वकं बभूव। पुनश्च कानपुरनगरे कतिपयमंदिरेषु कार्यक्रमप्रवचनादिकं अभवत्।

मध्ये मार्गशीर्षशुक्लापूर्णिमायां प्रयागक्षेत्रे ब्रह्मचारिरवीन्द्रकुमारेण गत्वा नूतनमंदिराणां शिलान्यासाः कारिताः।

इतश्च कानपुरे पौषकृष्णासप्तम्यां रविवासरे जनरलगंजस्थले सभायां समवसरणस्य स्वागतोऽभवत्। ख्रिष्टाब्दे अष्टनवत्यधिकएकोनविंशतिशततमे दिल्लीमहानगरात् तत्कालीनप्रधानमंत्री श्री अटलबिहारीवाजपेयी-महानुभावेन यत् श्री ऋषभदेवस्य समवसरणश्रीविहाररथस्य प्रवर्तनं कृतमासीत्। सर्वत्र भारतदेशे धर्मप्रभावनां विदधानं तदेव समवसरणमत्र मया दृष्टमतीव हर्षातिरेण।

इलाहाबादनगरे पौषशुक्लाचतुर्थ्यां शुक्रवासरे विशेषशोभायात्रापूर्वकं मम प्रवेशोऽभवत्। तदानीं श्री के.पी. श्रीवास्तव-मेयर-विधानसभाध्यक्षादयोऽपि आगत्य स्वागतं अकुर्वन्।

अस्मिन् मध्ये मम महावीरविधानस्य लेखनकार्यं कतिपयवारं नूतनतीर्थनिर्माणस्य सभा अपि अभवत्।

पौषशुक्लाषष्ठ्यां सोमवासरे ख्रिष्टाब्दे एक जनवरी-एकाधिकद्विसहस्रतमेऽद्य मम निर्माणाधीननूतनतीर्थे ''श्री तीर्थंकरऋषभदेवतपःस्थलीप्रयागतीर्थे प्रवेशोऽभवत्''।

अद्यैव श्रीविश्वशांतिमहावीरविधानं पूर्णं कृत्वा संघस्थितचैत्यालये श्रीऋषभदेवप्रतिमासन्निधौ आदिब्रह्मणः प्रभोः चरणकमलयोः भक्तिभावेन समर्पितं मयातीव प्रसन्नमनसा।

मुनि श्री अमितसागर संघ का, गणिनी श्री विशुद्धमती माताजी का एवं मेरे संघ का मिलन हुआ। सभी की एक-दूसरे के साथ वात्सल्यपूर्वक अनेक प्रकार की धर्मचर्चा भी हुई। पुनः आगे जाकर कानपुर नगर में कुछ मंदिरों में प्रवचन आदि कार्यक्रम हुए।

इस मध्य कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार जी ने प्रयाग तीर्थ पर जाकर मगसिर शुक्ला पूर्णिमा को नूतन मंदिरों का शिलान्यास कराया।

इधर कानपुर शहर के जनरलगंज में पौष कृष्णा सप्तमी-रविवार को सभा में समवसरण रथ का (प्रधानमंत्री द्वारा सन् १९९८ में दिल्ली से प्रवर्तित इस रथ का) स्वागत हुआ। यहाँ ज्ञातव्य है कि ईसवी सन् १९९८ में दिल्ली महानगर से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी के द्वारा श्री ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार नाम से जिस रथ का प्रवर्तन किया गया था। सर्वत्र भारतदेश में धर्मप्रभावना करते हुए उसी समवसरण को यहाँ देखकर मुझे अति हर्ष का अनुभव हुआ।

पौष शुक्ला चतुर्थी शुक्रवार को इलाहाबाद शहर में विशेष गाजे-बाजे के साथ शोभायात्रापूर्वक मेरा मंगल प्रवेश हुआ। उस मंगल प्रवेश की सभा में श्री के.पी. श्रीवास्तव मेयर एवं विधानसभाध्यक्ष आदि ने भी आकर स्वागत किया।

इस मध्य मेरा महावीर विधान का लेखन कार्य एवं कई बार नूतन तीर्थ निर्माण की सभा भी हुई।

पौष शुक्ला षष्ठी सोमवार को १ जनवरी २००१ को ईसवी सन् के नये वर्ष के शुभारंभ दिवस पर निर्माणाधीन नूतन तीर्थ ''श्री तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ'' पर मेरा ससंघ प्रवेश हुआ।

उसी दिन श्री विश्वशांति महावीर विधान को पूर्ण करके संघ के चैत्यालय में विराजमान भगवान् श्री ऋषभदेव की प्रतिमा के सान्निध्य में आदिब्रह्मा प्रभु के चरणकमलों में मैंने भक्तिभावपूर्वक अतीव प्रसन्न मन से समर्पित किया।

अस्मिन् विधानानुष्ठाने नवपूजाः, षड्विंशतिशतकमंत्राः सन्ति। एकैकमंत्रस्यार्घ्ये रत्नमपि समर्पयितव्यमेतत् लिखितमस्ति।

षड्विंशतिशतानि रत्नानि अर्घ्यैः सह समर्घ्य एतदनुष्ठानं कर्तव्यमिति।

तत्र नवनिर्माणे कार्यमपि सन्नद्धेन चलितमासीत्।

नवनिर्मितपंचपंचाशत् फुट-उत्तुंगकैलाशपर्वतस्योपरि श्रीऋषभदेवप्रतिमा आरोहणकारणार्थं इफ.-को. कम्पनी कार्यकर्तृजनानां संपर्केण विशेषक्रेननाम्ना आरोहकयंत्रेण माघकृष्णाष्टम्यां-नवम्यां[१] कमलं आरोह्य जिनप्रतिमायाः अपि आरोहणं दृष्ट्वा हर्षातिरेकेण आनन्दाश्रव आगताः।

इतः के.एल.गोधा जैन-अशोकसिंघल (विश्वहिन्दूपरिषदकार्याध्यक्ष)-न्यायमूर्तिगुमानमललोढा-इत्यादि-जनानां निवेदनेन महाकुंभनगरं तत्र मेलापरिसरे मम गमनं बभूव। तत्र शताधिकजैनचित्रावलीप्रदर्शनी अपि प्रदर्शिता जाता।

तत्र विश्वहिन्दूपरिषद् नवमधर्मसंसद्नामसभायां बृहत्पांडाले पंचाशत्सहस्रजनतासु मध्ये ''भारतीयसंस्कृतेः-आद्यप्रणेता भगवान् ऋषभदेवः श्रीरामचंद्रस्य पूर्वजः। रामजन्मभूमिरक्षा-तीर्थंकरजन्मभूमिरक्षा-अहिंसाधर्मः एव परमोधर्मः इत्यादि विषये त्रिदिवसपर्यंतं मम आर्यिकाचंदनामत्याश्च प्रवचनं संजातं।

मध्ये पृथक्रूपेण ''भगवान् ऋषभदेव सनातनसंस्कृतिसंगम'' नाम श्रीऋषभदेवमंडपे मम प्रेरणया जिनप्रतिमासन्निधौ अभिषेक-शांतिधारा-नवग्रहशांतिविधान-अष्टोत्तरसहस्रनिर्वाणलाडुकानि अपि समर्पितानि बभूवुः। जैन-जैनेतरजनैः संत-महंतादिभिश्च तत्र पूजायां निर्वाणलड्डुकपूजायां सम्मिलिताः बभूवुः। जैन-

---

इस विधान में नव पूजाएँ हैं एवं २६०० मंत्र हैं। एक-एक मंत्र के अर्घ्य में १-१ रत्न भी समर्पित करना चाहिए, ऐसा इसमें लिखा है। अर्थात् २६०० अर्घ्य के साथ २६०० रत्न मण्डल के ऊपर चढ़ाकर यह अनुष्ठान करना चाहिए।

वहाँ नवनिर्माण का कार्य भी तीव्रता से चल रहा था।

नवनिर्मित ५५ फुट उत्तुंग कैलाशपर्वत के ऊपर श्री ऋषभदेव प्रतिमा को चढ़ाने के लिए इफ्को कम्पनी के कार्यकर्ताजनों के सम्पर्क से विशेष क्रेन नामक आरोहक यंत्र से माघ कृष्णा अष्टमी-नवमी (१७-१८ जनवरी २००१) को कमल और जिनप्रतिमा को भी चढ़ते हुए देखकर मेरे हर्षातिरेक से आनन्द अश्रु आ गये।

इधर विश्वहिन्दू परिषद के कार्यकर्ता के.एल. गोधा जैन एवं अशोक सिंघल (विश्व हिन्दू परिषद के कार्याध्यक्ष) तथा न्यायमूर्ति गुमानमललोढ़ा इत्यादि लोगों के निवेदन पर महाकुंभ नगर के मेला परिसर में मेरा जाना हुआ। वहाँ शताधिक जैन चित्रों की प्रदर्शनी भी लगाई गई।

वहाँ विश्व हिन्दू परिषद की नवम धर्मसंसद नाम की सभा में वृहद् पाण्डाल के अन्दर पचास हजार जनता के मध्य ''भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान् ऋषभदेव श्री रामचन्द्र जी के पूर्वज हैं'' तथा रामजन्मभूमि रक्षा, तीर्थंकर जन्मभूमि रक्षा, अहिंसा धर्म ही परमधर्म है, इत्यादि विषयों पर मेरा एवं आर्यिका चंदनामती का प्रवचन हुआ।

इसके मध्य मेला परिसर में ही पृथक्रूप से निर्मित किये गये ''भगवान ऋषभदेव सनातन संस्कृति संगम'' नामक श्री ऋषभदेव पाण्डाल में मेरी प्रेरणा से जिनेन्द्र प्रतिमा विराजमान करके उनका अभिषेक और शांतिधारा करके नवग्रह शांति विधान हुआ तथा भगवान् के सामने एक हजार आठ निर्वाणलाडू चढ़ाये गये।

---

१. १७-१८ जनवरी २००१।

तीर्थंकरस्य महोत्सवः दिगम्बरजैन-साध्वीनां सान्निध्ये तासां प्रवचनस्य एतन्महदाश्चर्यकरं ऐतिहासिक-कार्यमभवत्।

अस्मिन् श्रीऋषभदेवमहोत्सवकार्यक्रमे तत्र परिसरे श्रीमहावीरप्रसादजैन-श्री प्रेमचंदजैन-श्री सत्येन्द्रकुमारजैन दिल्ली-विश्वहिन्दूपरिषदः-अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकारि-अध्यक्ष-अशोकसिंघल-भारतीय-जीवजंतुकल्याणबोर्ड-राष्ट्रीयअध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री गुमानमललोढा-आचार्य श्रीधमेन्द्र-गोवंशरक्षा-मांसनिर्यातनिरोधपरिषदः राष्ट्रीयउपाध्यक्ष श्री के.एल. गोधाजैन-श्रीहुकुमचंदसावला-इंदौर इत्यादि प्रतिष्ठित महानुभावा सहभागिनो बभूवुः।

त्रिवेणी संगमे महाकुंभस्नाने प्रथमशाहीस्नानं दृष्टं मया दूरदर्शन (टी.वी. सीधाप्रसारण) निमित्तेन। तत्र सहस्राधिका नागा-नग्नसाधवोऽपि आसन्। पुनश्च मौनी अमावस्यायां स्नानमपि आस्थाचैनल-दूरदर्शनेन सीधाप्रसारणं विलोकितं।

महाकुंभमेलामध्ये समागताः कोटि-कोटिजना ऋषभदेवतीर्थं प्रभोर्नामस्मरणं च चक्रिरे।

अत्र जैनप्रयागतीर्थे पंचकल्याणकप्रतिष्ठामहाकुंभमहामस्तकाभिषेकमहोत्सवस्य ध्वजारोहणं माघशुक्लापंचम्यां वीराब्दे सप्तविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे सोमवासरे प्रभावनापूर्वकमभूत्।

माघशुक्लैकादश्याः प्रारंभ्य पूर्णिमापर्यंतं पंचकल्याणकप्रतिष्ठा संजाता। ततश्च पूर्णिमायामेव अष्टोत्तर-सहस्रमहाकुंभैः विशालप्रतिमायाः महामस्तकाभिषेकं कारं कारं महद्हर्षेण पुलकिता बभूवुः।

जैन धर्मावलंबिनः भगवतः श्री ऋषभदेवान् स्नापयित्वा महाकुंभस्नानपर्वनाम सार्थकं वयं मन्यामहे।

इस निर्वाणलाडू पूजा के कार्यक्रम में जैन-जैनेतर लोगों के साथ-साथ अनेक सन्त और महन्त भी सम्मिलित हुए। महाकुंभ मेले में दिगम्बर जैन साध्वियों के सान्निध्य में जैन तीर्थंकर का महोत्सव एवं उनका प्रवचन यह महान् आश्चर्यकारी ऐतिहासिक कार्य हुआ।

इस श्री ऋषभदेव महोत्सव कार्यक्रम के पाण्डाल में श्री महावीर प्रसाद जैन, श्री प्रेमचंद जैन, श्री सत्येन्द्र कुमार जैन-दिल्ली, विश्व हिन्दू परिषद के अंतर्राष्ट्रीय कार्यकारी अध्यक्ष अशोक सिंघल, भारतीय जीवजन्तु कल्याण बोर्ड के राष्ट्रीय अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री गुमानमललोढ़ा, आचार्य श्री धर्मेन्द्र जी, गोवंशरक्षा एवं मांस निर्यात निरोध परिषद के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री के.एल. गोधा जैन, श्री हुकमचंद जैन सावला-इंदौर इत्यादि प्रतिष्ठित महानुभाव सहभागी हुए।

त्रिवेणी के संगम में महाकुंभ स्नान का प्रथम शाही स्नान मैंने टी.वी. पर (आस्था चैनल पर) सीधा प्रसारण देखा। उसमें हजारों नागा—नग्न साधु भी थे। पुनश्च मौनी अमावस्या का स्नान भी मैंने आस्था चैनल-दूरदर्शन के द्वारा सीधा प्रसारण देखा।

महाकुंभ मेले में पधारे करोड़ों-करोड़ों लोगों ने ऋषभदेव तीर्थ को देखा और आदि प्रभु का नामस्मरण किया।

यहाँ प्रयाग में जैन तीर्थ पर वीर निर्वाण संवत् २५२७ में (सन् २००१ में) माघ शुक्ला पंचमी तिथि सोमवार को पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महाकुंभ महामस्तकाभिषेक महोत्सव का झण्डारोहण प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ।

माघ शुक्ला एकादशी से प्रारंभ करके पूर्णिमा तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई और पूर्णिमा को ही एक हजार आठ महाकुंभों से भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक कर-करके लोग अत्यन्त हर्षायमान हुए।

जैन धर्मावलम्बी महानुभावों ने भगवान् श्री ऋषभदेव को स्नान कराकर महाकुंभ स्नान पर्व नाम को सार्थक किया, ऐसा हम लोग मानते हैं।

अत्र तीर्थे मुख्यरूपेण सपादपंचफुटउत्तुंग-प्रतिमादीक्षाकल्याणकरूपेण स्थिता पिच्छी-कमण्डलु-सहिता धातुनिर्मितकृत्रिमवटवृक्षस्य तले विराजिता अतिशयकारिणी अस्ति।

मध्ये कैलाशपर्वतं द्वासप्ततिजिनप्रतिमासमन्वितं। उपरिविशालप्रतिमा अस्ति। गुहायामपि श्री ऋषभदेवो विराजते। उभयोः पार्श्वयोः कैलाशपर्वतस्य दीक्षाकल्याणकसूचकं तपोवनं दृश्यते केवलज्ञानकल्याणक-सूचकं समवसरणं चापि विराजते। अत्रैव प्रभोः ऋषभदेवस्य दीक्षाकल्याणकं केवलज्ञानं च संजातं वटवृक्षतले, स एव वृक्षः पुरातनात् प्रभृति अद्यावधि अक्षयवटवृक्षनाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति।

'तीर्थंकरऋषभदेवतपःस्थली' तीर्थेऽस्मिन् महाकुंभमहामस्तकाभिषेकमहोत्सवकाले माघशुक्लैकादश्यां गर्भकल्याणकदिवसे चतुःफरवरीदिनांके केन्द्रीयमानवसंसाधन विकासमंत्री (भारत सरकार) डॉ. श्री-मुरली- मनोहरजोशी-उत्तरप्रदेशलोकनिर्माण-राज्यमंत्री-श्रीराकेशदत्तत्रिपाठी-महानुभावौ आगच्छतां। द्वादश्यां तिथौ[१] श्रीमती रीटा बहुगुणा जोशी (पूर्वमेयर) मुख्यअतिथिरूपेण आगता। त्रयोदश्यां न्यायमूर्ति-श्री डी.पी. एस. चौहान (चेयरमैन मध्यप्रदेशलीगल सर्विस अथॉरिटी जबलपुर) डॉ. अरविंद कुमार जैन-स्वास्थ्यराज्यमंत्री (उ.प्र.)-श्री प्रेमशंकर दीक्षित (नार्दर्न इण्डिया पत्रिका समाचार सम्पादक)-श्री-नृत्यगोपालदास (अयोध्या के महंत) इत्यादयो महानुभावा आगताः। चतुर्दश्यां (७ फरवरी) महामहिम-श्री विष्णुकांत शास्त्री राज्यपालः (उ.प्र.)-आगत्य श्री ऋषभदेवदीक्षाकल्याणक तपोवनस्य उद्घाटनं कृतं श्रीअशोकसिंघल-अध्यक्षतायां। जयाकालिया- (राष्ट्रीय सदस्य समाजकल्याण बोर्ड) न्यायमंत्री, श्री-राधेश्यामगुप्ता (उ.प्र. सरकार) आदयोऽपि आगताः।

इस तीर्थ पर मुख्यरूप से धातु निर्मित वटवृक्ष के नीचे भगवान् ऋषभदेव की दीक्षाकल्याणक के रूप में पिच्छी-कमण्डलु सहित अतिशयकारी सवा पाँच फुट खड्गासन प्रतिमा विराजमान है।

तीर्थ के बीचों बीच में बहत्तर प्रतिमाओं से समन्वित कैलाशपर्वत निर्मित है, पर्वत के ऊपर विशाल पद्मासन प्रतिमा विराजमान हैं। पर्वत के अंदर नीचे गुफा में भी श्री ऋषभदेव की (धातु निर्मित सवा तीन फुट पद्मासन) प्रतिमा विराजमान हैं। पर्वत के एक ओर दीक्षाकल्याणक का सूचक तपोवन दूर से दिखाई देता है और दूसरी ओर केवलज्ञान कल्याणक का सूचक समवसरण बना है। यहीं — प्रयाग में ही वटवृक्ष के नीचे भगवान ऋषभदेव का दीक्षाकल्याणक एवं केवलज्ञान कल्याणक हुआ था, वही प्राचीन वृक्ष पुरातनकाल से आज तक अक्षयवटवृक्ष के नाम से (मिलिट्री एरिया में) प्रसिद्ध है।

इस 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली' तीर्थ पर महाकुंभ महामस्तकाभिषेक महोत्सव के समय माघ शुक्ला एकादशी को गर्भकल्याणक के दिन ४ फरवरी २००१ को केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री (भारत सरकार) डॉ. मुरली मनोहर जोशी एवं उत्तरप्रदेश के लोकनिर्माण राज्यमंत्री श्री राकेश दत्त त्रिपाठी ये दो राजनेता पधारे। द्वादशी तिथि (५ फरवरी) को पूर्व मेयर श्रीमती रीटा बहुगुणा जोशी मुख्य अतिथि के रूप में आईं। त्रयोदशी (६ फरवरी) को मध्यप्रदेश लीगल सर्विस अथॉरिटी के चेयरमैन श्री डी.पी.एस. चौहान, उत्तरप्रदेश के स्वास्थ्य राज्यमंत्री डॉ. अरविंद कुमार जैन, नार्दर्न इण्डिया समाचार पत्रिका के सम्पादक श्री प्रेमशंकर दीक्षित एवं अयोध्या के प्रभावी महंत श्री नृत्य गोपालदास आदि महानुभावों का पदार्पण हुआ। चतुर्दशी (७ फरवरी) को उत्तरप्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री विष्णुकांत शास्त्री ने पधारकर श्री अशोक सिंघल की अध्यक्षता में श्री ऋषभदेव दीक्षाकल्याणक तपोवन का उद्घाटन किया। इस अवसर पर समाज कल्याण बोर्ड के राष्ट्रीय सदस्य जयाकालिया, उ.प्र. के न्यायमंत्री श्री राधेश्याम गुप्ता आदि भी आए।

---

१. ५ फरवरी।

तपस्थलीकार्यकर्तृभिः जनैः राज्यपालं 'भारतगौरव' उपाधिना सम्मान्य प्रशस्तिपत्रादि प्रदत्तं। स्थानीय-श्री मुन्नीलाल पाण्डेय (एस.डी.एम.) आदयोऽपि सहयोगिनः संजाताः।

श्रीधनंजयकुमारजैन (वस्त्र राज्यमंत्री)-श्री एस.के. जैन (अमेरिका) इत्यादयः श्रावकाः सहस्त्राधिकाः, श्राविकाश्च भगवतां महामस्तकाभिषेकं कृत्वा स्व-स्वमानवजन्म सार्थकं चक्रुः। प्रतिष्ठाचार्य-संहितासूरि-श्री नरेशचंद्र शास्त्रीत्यादयः सर्वं विधिविधानं कारयित्वा यशस्विनो बभूवुः।

अनंतरं तत्रैव तपस्थलीतीर्थे भगवतः श्री ऋषभदेवस्य केवलज्ञानोत्पन्नतिथौ फाल्गुनकृष्णैकादश्यां तां भूमिं वन्दित्वा प्रसन्नमनसा आर्यिकाचन्दनामत्या केशलोचः कारिताः। पुनश्च भगवतः दीक्षाकल्याणकतिथौ चैत्रकृष्णानवम्यां मया प्रभोः प्रथम केशलोचभूमौ केशलोचं कृत्वा सकलसंयमप्राप्त्यर्थं भावना भाविता।

ततः इलाहाबादनगरे मत्सांनिध्ये तत्र चैत्रशुक्लाष्टम्याः प्रारभ्य महावीरजयंतीनिमित्तं ''विश्वशांति-महावीरविधानं'' प्रथमबारं अत्राभवत्। महावीरजयंतीतिथौ तत्रस्थ-विश्वविद्यालयकुलपतिः (प्रो. जी.वी. मेहता) सपरिवारं आगत्याशीर्वादो गृहीतः।

चतुर्दश्यां तिथौ अष्टोत्तरसहस्त्रकलशैः भगवतः महावीरप्रतिमायाः महाभिषेकोऽभवत्।

तदानीं दिल्लीराजधान्यां भगवतां महावीरस्वामिनां षड्विंशतिशततमस्य जन्मकल्याणकमहोत्स-वस्योद्घाटन-सभायां तत्कालीनप्रधानमंत्री अटलविहारीमहानुभावस्य समक्षे एव 'दिगम्बरमुनिः श्री-विद्यानंदाचार्यः प्रत्यागतः' इति निमित्तेन अशांतिसंजाते प्रतिष्ठितजनानां सूचना, दूरदर्शन (टी.वी.) प्रसारेणापि

तपस्थली तीर्थ के कार्यकर्त्ताओं ने राज्यपाल महोदय को "भारत गौरव" की उपाधि से सम्मानित करके उन्हें प्रशस्तिपत्र आदि प्रदान किया। स्थानीय एस.डी.एम. श्री मुन्नीलाल पाण्डेय आदि भी समस्त कार्यक्रमों में सहयोगी रहे।

श्री धनंजय कुमार जैन (वस्त्र राज्य मंत्री-केन्द्र सरकार), श्री एस.के. जैन-अमेरिका इत्यादि तथा हजारों श्रावक-श्राविकाओं ने भगवान का महामस्तकाभिषेक करके अपने-अपने मानव जन्म को सफल किया। प्रतिष्ठाचार्य संहितासूरि पण्डित नरेश कुमार शास्त्री इत्यादि भी समस्त विधि-विधान को सम्पन्न करवाकर यशस्वी बने।

इसके पश्चात् उसी तपस्थली तीर्थ पर भगवान् श्री ऋषभदेव के केवलज्ञान उत्पत्ति की तिथि फाल्गुन कृष्णा एकादशी को मेरी शिष्या आर्यिका चंदनामती ने उस भूमि की वंदना करके वहीं प्रसन्नतापूर्वक अपना केशलोंच किया। पुनश्च भगवान् की दीक्षाकल्याणक तिथि चैत्र कृष्णा नवमी को मैंने भगवान की इस प्रथम केशलोंच भूमि पर अपना केशलोंच करके सकल संयम की प्राप्ति हेतु भावना भाई।

उसके बाद इलाहाबाद नगर में मेरे संघ सान्निध्य में चैत्र शुक्ला अष्टमी से प्रारंभ करके महावीर जयंती तक (चैत्र शुक्ला त्रयोदशी तक) महावीर जयंती के निमित्त से वहाँ प्रथम बार "विश्वशांति महावीर विधान" का आयोजन हुआ। महावीर जयंती के दिन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. जी.वी. मेहता ने सपरिवार पधारकर आशीर्वाद ग्रहण किया।

चतुर्दशी तिथि को प्रातःकाल एक हजार आठ कलशों से भगवान् महावीर की प्रतिमा का महाभिषेक हुआ।

उस समय राजधानी दिल्ली में भगवान् महावीर स्वामी के २६००वें जन्मकल्याणक महोत्सव की उद्घाटन सभा में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के समक्ष ही सभा से दिगम्बर जैन मुनि श्री आचार्य विद्यानंद महाराज के वापस आ जाने के निमित्त से समाज में अशान्ति उत्पन्न हो गई, यह सूचना

ज्ञात्वा मनसि खेदोऽभवत्।

कौशाम्बीतीर्थे भगवतः पद्मप्रभस्य जन्मभूमौ गर्भजन्मतपःकेवलज्ञानभूमौ च तत्कार्यकर्तृभिः प्रार्थनया तत्र पंचकल्याणकप्रतिष्ठां कारयितुं मम मंगलविहारस्तपःस्थलीतीर्थात् वैशाखकृष्णाचतुर्दश्यां रविवासरे[1] ऽभवत्। इलाहाबादनगरं आगत्य कटरामंदिरादिदर्शनं प्रभावनाकार्यं च कुर्वन्त्या वैशाखशुक्लासप्तम्यां कौशाम्बीतीर्थे प्रवेशोऽभवत्। तत्र नूतनक्रीतभूमौ भगवतः चरणं स्थापयित्वा प्राचीनतीर्थवंदनां अकार्षम्। पुनश्च शास्त्रानुसारेण कौशाम्बी-अन्तर्गत प्रभासगिरिक्षेत्रमष्टम्यां एवागच्छम्।

तत्र सपादसप्तफुट-उत्तुंगपद्मासनप्रतिमा श्रीपद्मप्रभभगवतः प्रवालवर्णिमनोहारिणी, मानस्तंभस्य प्रतिमाः, पर्वतस्योपरि विराजमानकरणार्थं प्रतिमा, ततश्च आहारदानमुद्रांकिता श्रीमहावीरस्वामिप्रतिमा सती चन्दनायाः मूर्तिश्च। कौशाम्बी-मध्ये प्रभोः कृपाप्रसादेन चंदनायाः शृँखला त्रुटिता, सा आहारं दत्वा पंचाश्चर्यं लब्धं इति इतिहासं प्रकटीकर्तुं इच्छया मया कारिता।

वैशाखशुक्लादशम्याः प्रारभ्य पूर्णिमापर्यंतं[2] पंचकल्याणकप्रतिष्ठा, महामस्तकाभिषेकं चाभवत्।

दिल्लीराजधानीप्रतिष्ठितजनानामाग्रहेण श्रीमहावीरजन्मकल्याणकमहोत्सवे विशेषप्रभावनाकरणार्थं च मम ज्येष्ठकृष्णाप्रतिपत्तिथौ प्रभासगिरितीर्थादेव दिल्लीनगरे गमनार्थं विहारोऽभवत्।

दिल्ली के प्रतिष्ठित महानुभावों से एवं टी.वी. प्रसारण के माध्यम से भी जानकर मुझे मन में बहुत खेद हुआ।

तीर्थंकर श्री पद्मप्रभ भगवान की जन्मभूमि एवं गर्भ-जन्म-तप-केवलज्ञान कल्याणक तीर्थ कौशाम्बी में वहाँ के कार्यकर्ताओं की प्रार्थना पर मेरा वहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराने के निमित्त से वैशाख कृष्णा चतुर्दशी रविवार को तपस्थली तीर्थ से मंगल विहार हुआ। तपस्थली तीर्थ से चलकर इलाहाबाद नगर पहुँचकर वहाँ कटरा मंदिर आदि के दर्शन एवं प्रभावनाकार्य करते हुए वैशाख शुक्ला सप्तमी को कौशाम्बी तीर्थ पर मेरा ससंघ प्रवेश हुआ। वहाँ नई क्रय की गई भूमि पर भगवान् पद्मप्रभ के चरण स्थापित करके मैंने प्राचीन कौशाम्बी तीर्थ की वंदना की। पुनश्च शास्त्रानुसार कौशाम्बी के अन्तर्गत प्रभासगिरि तीर्थ पर अष्टमी को ही पहुँच गई।

वहाँ (प्रभासगिरि तीर्थ पर) श्री पद्मप्रभ भगवान् की प्रवालवर्णी — लालरंग की सवा सात फुट उत्तुंग मनोहारी पद्मासन प्रतिमा, नवनिर्मित मानस्तंभ की प्रतिमाएं, पर्वत के ऊपर विराजमान करने हेतु प्रतिमा की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई तथा आहारदान लेते हुए की मुद्रा में श्री महावीर स्वामी महामुनि की प्रतिमा और आहार देती मुद्रा में सती चन्दना की मूर्ति स्थापित करवाई। कौशाम्बी नगरी में तीर्थंकर महामुनि श्री महावीर प्रभु की कृपा प्रसाद से सती चन्दना कुमारिका की बेड़ियाँ टूटी थीं, उसने तब महावीर स्वामी को आहार देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये थे, इस इतिहास को वहाँ प्रदर्शित करने की इच्छा से मैंने ये मूर्तियाँ विराजमान करवाईं।

वैशाख शुक्ला दशमी से लेकर पूर्णिमा (२ मई से ७ मई २००१) तक वहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न हुआ।

दिल्ली राजधानी के प्रतिष्ठित लोगों के आग्रह से तथा श्री महावीर जन्मकल्याणक महोत्सव में विशेष प्रभावना करने हेतु मेरा ज्येष्ठ कृष्णा एकम् (८ मई २००१) को प्रभासगिरि तीर्थ से ही दिल्ली जाने के लिए मंगल विहार हो गया।

---

१. २२ अप्रैल २००१। २. २ मई से ७ मई २००१।

मार्गे ग्रीष्मकालनिमित्तेन कष्टं सहमाना अपि वयं आषाढ़कृष्णाद्वितीयायां कंपिलातीर्थमागच्छामः स्म। इयं श्री विमलनाथभगवतः गर्भजन्मतपोज्ञानभूमिरस्ति।

मध्ये-मध्ये मंदगत्या मम टीकालेखनं भवदासीत्। अत्रत्याद् विहृत्य एटा-अलीगढ़-खुर्जा-इत्यादि-ग्रामेषु धर्मप्रभावनां कुर्वन्त्या दिल्ली महानगरेऽन्तर्गताशोकविहारकालोनीस्थले मम वर्षायोगोऽभवत्। अत्र साहिबसिंहवर्मा (सांसद) दीपचंदबंधु (विधायक)-रमेशचंद जैन (साहू) इत्यादय आगत्य प्रसन्नाः बभूवुः।

इतश्च समवसरणश्रीविहारः प्रभोः ऋषभदेवस्य भारतवर्षे धर्मप्रभावनापूर्वकं विहरति स्म।[१]

अस्मिन् वर्षायोगे राजधान्यां बृहन्मण्डपे (फिरोजशाहकोटलामैदान-दिल्ली गेट) षड्विंशतिमण्डलानि कारयित्वा सहस्राधिकभाक्तिकाः श्रीविश्वशांतिमहावीरविधानानि चक्रिरे।

श्रीमहावीरविधानं वीराब्दे सप्तविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे आश्विनशुक्लापंचम्याः प्रारभ्य शुक्लाद्वादशीपर्यंतं बभूव। अस्मिन् महायज्ञे षड्विंशतिमण्डलेषु प्रत्येकं उपरि सर्वे भाक्तिकाः षड्विंशतिशतानि षड्विंशतिशतानि रत्नानि समर्पितानि अर्घ्यैः साकम्।

अस्मिन् भक्ति-महाकुंभमहोत्सवे श्री वी.धनंजयकुमार जैन (केन्द्रीयवस्त्रराज्यमंत्री)-श्रीमती इन्दू जैन (चेयरमैन टाइम्स ग्रुप) साहू रमेशचंद जैन-डॉ. जे.के. जैन (चेयरमैन-जैन टी.वी.) श्री पारसदास जैन-डॉ. डी.के. जैन महामंत्री-(भगवान महावीरजन्मकल्याणकमहोत्सव समिति) श्री रवीन्द्रजैन (संगीतकार)-श्रीपुनीतजैन-श्रीसतीशजैन (चेयरमैन) श्रीसतीशजैन (निगम पार्षद), चक्रेशजैन (जैन समाज- अध्यक्ष), श्रीजगजीवनजैन (राजौरी गार्डन) इत्यादयः समागताः।

भीषण गर्मी का समय होने के कारण रास्ते में अनेक कष्ट सहन करते हुए भी हम लोग आषाढ़ कृष्णा द्वितीया को एक माह में कम्पिला जी तीर्थ पहुँच गए। यह श्री विमलनाथ तीर्थंकर भगवान की गर्भ-जन्म-तप-ज्ञानकल्याणक की पवित्र भूमि है।

बीच-बीच में मंदगति से मेरा टीका लेखन चलता रहा। यहाँ कम्पिल तीर्थ से विहार करके एटा-अलीगढ़-खुर्जा इत्यादि नगरों में धर्मप्रभावना करते हुए दिल्ली महानगर की अशोक विहार नामक कालोनी में मेरा ससंघ वर्षायोग स्थापित हुआ। वहाँ वर्षायोग की सभा में श्री साहिब सिंह वर्मा (सांसद), दीपचंद बंधु (विधायक) एवं साहू श्री रमेशचंद जैन (तीर्थक्षेत्र कमेटी के राष्ट्रीय अध्यक्ष) पधारकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। और इधर भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ का प्रवर्तन भारतवर्ष में प्रभावनापूर्वक चल रहा था।

इस वर्षायोग के अंतर्गत राजधानी दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान के अंदर निर्मित किये गये विशाल पाण्डाल में विश्वशांति महावीर विधान के छब्बीस मण्डल एक साथ बनाकर हजारों भक्तों ने विधान सम्पन्न किया।

यह महावीर विधान वीर निर्वाण संवत् २५२७ (सन् २००१) में आश्विन शुक्ला पंचमी से प्रारंभ होकर आश्विन शुक्ला द्वादशी तक हुआ। इस महायज्ञ में छब्बिस मण्डलों पर प्रत्येक के ऊपर अर्घ्यों के साथ छब्बिस सौ-छब्बिस सौ रत्न समर्पित किये गये — चढ़ाये गये।

इस भक्ति महाकुंभ के महोत्सव में श्री वी. धनंजय कुमार जैन (केन्द्रीय वस्त्र राज्यमंत्री) श्रीमती इन्दू जैन (चेयरमैन टाइम्स ग्रुप), साहू रमेशचंद जैन, डॉ. जे.के. जैन (चेयरमैन-जैन टी.वी.), श्री पारसदास जैन, डॉ. डी.के. जैन (महामंत्री-भगवन महावीर जन्मकल्याणक महोत्सव समिति), श्री रवीन्द्र जैन (संगीत एवं गीतकार), श्री पुनीत जैन, श्री सतीश जैन (चेयरमैन-.....), श्री सतीश जैन (निगम पार्षद), श्री चक्रेश जैन (अध्यक्ष-जैन समाज दिल्ली), श्री जगजीवन जैन (राजौरी गार्डन) इत्यादि लोगों ने आकर भाग लिया।

---

१. जुलाई सन् २००१।

प्रो. रतनजैन-सलेकचंद जैन कागजी-श्री एल.एल. आच्छा-प्रसिद्ध विधिवेत्ता-प्रख्यात न्यायविद् श्री एल.एम. सिंघवी-श्री अंजलीराय (एम.एल.ए. पहाड़गंज) इत्यादयोऽपि आगत्य धर्मानुष्ठानेषु श्री-महावीरप्रभोः यशोगानं विदधुः।

अस्मिन् धर्मानुष्ठाने दिल्लीजैनसमाजेन मह्यं 'विश्वविभूतिः', अवध जैन समाजेन 'धर्ममूर्तिः' महाराष्ट्र-जैनेन 'राष्ट्रगौरवः', भारतीय दि. जैनमहिला संगठन (दिल्लीप्रदेश) महिलाभिः 'जिनशासनप्रभाविका', इत्युपाधिभिरलंचक्रुः।

अनंतरं शरत्पूर्णिमायां जन्मतिथौ कनाटप्लेसस्थिताग्रवालदिगम्बरजैनमंदिर परिसरे नवनिर्मित श्रीऋषभदेवकीर्तिस्तंभे जिनबिम्बप्रतिष्ठापनाः बभूवुः।

पुनश्च तत्रैव परिसरे मत्प्रेरणया नवनिर्मित लघु-पावापुरी-सिद्धक्षेत्रे षड्विंशतिशतश्रद्धालुजनैः षड्विंशतिशतानि निर्वाणलड्डुकानि समर्पितानि कार्तिककृष्णामावस्यायां भगवतो महावीरजिननिर्वाण-कल्याणकावसरे[1]। मम वर्षायोगोऽपि समाप्तो जातः।

तदनंतरं मार्गशीर्षकृष्णादशम्यां दशदिसम्बरदिनांके राजधान्यां 'तालकटोराइन्डोरस्टेडियमस्थले' सम्पूर्णजैनसमाजैः (चारों सम्प्रदाय) मिलित्वा भगवतो महावीरस्य दीक्षाकल्याणकतिथौ 'जपतपोमहाकुंभ' नाम्ना महोत्सवः कारिताः। तस्मिन्महोत्सवे डॉ. शिवमुनिः जैनाचार्यः (स्थानकवासी) दिगम्बरजैन-प्रतिनिधिरूपेण मम गणिनी ज्ञानमती (ससंघ) इत्यादिसाधु-साध्वीसानिध्ये विशेषधर्मप्रभानवाकार्यमभवत्।

प्रो. रतन जैन, सलेकचंद जैन कागजी, श्री एल.एल. आच्छा जैन, प्रसिद्ध विधिवेत्ता एवं प्रख्यात न्यायविद् श्री एल.-एम. सिंघवी, श्री अंजली रॉय (एम.एल.ए. पहाड़गंज-दिल्ली) इत्यादि ने भी पधारकर इस धार्मिक अनुष्ठान में भगवान महावीर स्वामी का यशोगान किया।

इस धर्म अनुष्ठान के मध्य दिल्ली जैन समाज ने मुझे "विश्वविभूति" अवध प्रान्त की जैन समाज ने "धर्ममूर्ति", महाराष्ट्र प्रान्त के जैन समूह ने "राष्ट्र गौरव" एवं अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन (दिल्ली प्रदेश) की महिलाओं ने मुझे "जिनशासन प्रभाविका" की उपाधि से अलंकृत किया।

अनंतर शरदपूर्णिमा को मेरी जन्मतिथि के दिन कनॉट प्लेस-दिल्ली में स्थित अग्रवाल दिगम्बर जैन मंदिर परिसर में नवनिर्मित श्री ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ में जिनप्रतिमाएँ विराजमान की गईं।

पुनश्च उसी परिसर में मेरी प्रेरणा से नवनिर्मित लघु पावापुरी सिद्धक्षेत्र की रचना में २६०० श्रद्धालु भक्तों द्वारा कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भगवान महावीर के निर्वाणकल्याणक के अवसर पर २६०० निर्वाणलाडू चढ़ाए गए और मेरा यह सन् २००१ का वर्षायोग भी समाप्त हुआ।

उसके पश्चात् मगसिर कृष्णा दशमी-१० दिसम्बर २००१ के दिन राजधानी के "तालकटोरा इंडोर स्टेडियम" नामक स्थल पर जैन समाज की वर्तमान प्रचलित चारों सम्प्रदाय (दिगम्बर-श्वेताम्बर-स्थानकवासी और तेरहपंथी) की जैन समाज ने मिलकर भगवान महावीर के दीक्षाकल्याणक तिथि के उपलक्ष्य में "जपतप महाकुंभ" के नाम से एक सार्वजनिक महोत्सव आयोजित किया। उस महोत्सव में जैनाचार्य (स्थानकवासी) डॉ. शिवमुनि जी एवं दिगम्बर जैन प्रतिनिधि के रूप में मेरे (गणिनी ज्ञानमती के) ससंघ इत्यादि अनेक साधु-साध्वियों के सान्निध्य में विशेष धर्मप्रभावना का कार्य सम्पन्न हुआ।

---

१. १५ नवम्बर २००१।

अस्मिन् महोत्सवे श्री दिलीपगांधी (सांसद) डॉ. कर्णसिंह (संसद एवं पूर्व केन्द्रीय मंत्री) श्रीजगमोहन-जी (संस्कृति मंत्री) श्री मांगेराम गर्ग (दिल्ली भाजपा अध्यक्ष) श्री एल.एम. सिंघवी-श्री प्रो. रतन जैन-श्री मांगीलाल सेठिया-श्री दीपचंद जैन गार्डी-श्री आर.डी. जैन-श्रीनेमिचंद जैन-इत्यादयः सम्मिलिता आसन्।

मम संघस्थाः श्री चंदनामत्यार्यिका, पीठाधीशक्षुल्लकरत्नमोतीसागर-ब्र.रवीन्द्रकुमारजैना ब्रह्मचारिणी-गणाश्च सर्वेषु कार्येषु उपस्थिता भवन्ति एव।

दिगम्बरजैनयुवापरिषद रजतजयंती महोत्सवो मत्सांनिध्ये राजधान्यां 'फिक्की आडिटोरियम'' नामस्थाने पौषकृष्णाष्टम्यां ख्रिष्टाब्दे षड्जनवरीद्वयधिकद्विसहस्रतमेऽभवत्। तत्र एल.एम. सिंघवी-डॉ. वाचस्पतिकुलपति-(लालबहादुर संस्कृत विद्यापीठ)-प्रो. रतन जैन (स्थानकवासी) साहू रमेश जैन-निर्मलकुमार सेठी (अध्यक्ष-महासभा) चक्रेश जैन (अध्यक्ष-दिल्ली) प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन (अध्यक्ष शास्त्रीपरिषद्)-डॉ. जयकुमार जैन (महामंत्री-शास्त्री परिषद्), पं. शिवचरण जैन (अध्यक्ष-अ.भा. तीर्थंकर ऋषभदेव-विद्वन्महासंघ), डॉ. अनुपम जैन (महामंत्री-विद्वन्महासंघ) इत्यादयः सम्मिलिताः। अस्मिन् महोत्सवे भगवन्महावीर स्वामिनः षड्विंशतिशततमो जन्मकल्याणकमहोत्सवो राष्ट्रीयस्तरेण भूयादिति इति योजना चलति स्म अतएव श्रीमहावीरस्वामिनो जन्मभूमिकुण्डलपुरस्य विकासः कर्तव्यः, इति भावनया तत्र कुण्डलपुरमयो वातावरणो बभूव।

वर्तमानकाले केचित् शोधार्थिनः वैशालीजन्मभूमिं मन्यंते। अधिकतमजना जैनग्रन्थानुसारेण वैशालीं महाराज्ञी त्रिशलायाः जन्मभूमिं कुण्डलपुरमेव महावीरस्वामिनो जन्मभूमिं कथयन्ति। अतएव तस्या जन्मभूमेः

इस महोत्सव में श्री दिलीप गांधी (सांसद), डॉ. कर्ण सिंह (सांसद एवं पूर्व केन्द्रीय मंत्री), श्री जगमोहन जी (संस्कृति मंत्री), श्री मांगेराम गर्ग (दिल्ली-भाजपा अध्यक्ष), श्री एल.एम. सिंघवी जैन, श्री प्रो. रतन जैन, श्री मांगीलाल सेठिया, श्री दीपचंद जैन गार्डी, श्री आर.डी. जैन, श्री नेमिचंद जैन इत्यादि सम्मिलित हुए।

मेरे संघस्थ आर्यिका चंदनामती, पीठाधीश क्षुल्लकरत्न मोतीसागर, ब्र. कर्मयोगी रवीन्द्र कुमार जैन एवं ब्रह्मचारिणी बहनें तो सभी कार्यों में उपस्थित रहते ही हैं।

ईसवी सन् २००२ के प्रारंभ में ६ जनवरी को पौष कृष्णा अष्टमी के दिन मेरे संघ सान्निध्य में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन युवा परिषद का रजत जयंती महोत्सव राजधानी के "फिक्की ऑडिटोरियम" में सम्पन्न हुआ। उस कार्यक्रम में एल.एम. सिंघवी, डॉ. वाचस्पति जी (कुलपति-डॉ. लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ), प्रो. रतन जैन (स्थानक वासी जैन), साहू रमेश जैन, निर्मल कुमार जैन सेठी (अध्यक्ष-भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा), चक्रेश जैन (अध्यक्ष-दिल्ली), प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन (अध्यक्ष-शास्त्री परिषद), डॉ. जयकुमार जैन (महामंत्री-शास्त्री परिषद), पं. शिवचरनलाल जैन (अध्यक्ष-अ.भा. तीर्थंकर ऋषभदेव विद्वन्महासंघ), डॉ. अनुपम जैन (महामंत्री-विद्वन्महासंघ) इत्यादि महानुभाव सम्मिलित हुए। भगवान महावीर स्वामी का २६००वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जावे, यह योजना तो चल ही रही थी, इसलिए इस महोत्सव में महावीर स्वामी की जन्मभूमि कुण्डलपुर का विकास करना चाहिए, इस भावना से वहाँ का वातावरण कुण्डलपुरमय हो गया।

वर्तमान में कुछ शोधार्थी लोग वैशाली को भगवान महावीर की जन्मभूमि मानते हैं। किन्तु अधिकतम (९५ प्रतिशत) जैन समाज के लोग जैन ग्रंथों के अनुसार वैशाली की महारानी त्रिशला की जन्मभूमि और

विकासकरणार्थं मया निश्चित्य आर्यिकाचंदनामत्याः महती भावनयापि संघसहितया माघशुक्लाष्टम्याः वीराब्देऽष्टाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे ख्रिष्टाब्दे विंशतिफरवरी द्व्यधिकद्विसहस्रतमे अग्रवालदिगम्बरजैन-मंदिर राजाबाजार (कनाट प्लेस) स्थानात् मंगलविहारो भूत्वा दिल्लीगेट इत्यादि मुख्यस्थलात् निर्मलकुमार-सेठी-चक्रेश जैन-महावीरप्रसाद-कमलचंद्र-प्रेमचंद इत्यादयः प्रमुखा जना ध्वजाः हस्ते गृहीत्वा प्रभोर्महावीरस्वामिनः जयजयारवेण हर्षोल्लासेन मया सार्धं चलन्तः लोदीरोडजैनमंदिरमागच्छम् अहम्।

मार्गे गच्छन्त्या फाल्गुनकृष्णात्रयोदश्यां मथुरासिद्धक्षेत्रं संप्राप्य श्रीजम्बूस्वामिनः श्रीनिर्वाणक्षेत्रस्य वन्दना कृता।

पुनश्च द्रुतगत्या विहरन्त्या आगरामहानगरे हरिपर्वतस्य जिनमंदिरे प्रवेशोऽभवत् फाल्गुनशुक्लाषष्ठ्यां[१]। ततः प्रभृति भिन्नभिन्नस्थानेषु जिनमंदिराणि वंदित्वा प्रवचनादिकार्येण प्रभावनां विदधाना पुनश्च हरिपर्वतनामस्थाने आगत्य श्रीऋषभजयंती महोत्सवः चैत्रकृष्णानवम्यामकारयम्।

ततो निर्गत्य एत्मादपुर-टूंडला इत्यादिनगरेषु प्रभावनां कुर्वन्ती फिरोजाबाद महानगरे प्रवेशमकार्षम्, चैत्रशुक्लातृतीयातिथौ। तत्रापि जिनमंदिरदर्शनप्रभावनाप्रवचनादिभिः चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां महावीरजयंती-महोत्सवे सांनिध्यं प्रायच्छम्।

अत्रैव फिरोजाबादनगरे वैशाखकृष्णाद्वितीयायां ममार्यिकादीक्षादिवसमपि अभवत्। तस्यामेव सभायां तत्रस्थभाक्तिकजनैः 'युगनायिका' इति उपाधिना मम सम्मानं कृतम्।

महावीर स्वामी की जन्मभूमि कुण्डलपुर को ही कहते हैं इसलिए उस जन्मभूमि का विकास करने हेतु मैंने निश्चय किया और आर्यिका चंदनामती की भी इस जन्मभूमि विकास के लिए महती-प्रबल भावना के निमित्त से मैंने वीर निर्वाण संवत् २५२८ में माघ शुक्ला अष्टमी को २० फरवरी २००२ ईसवी सन् में अग्रवाल दिगम्बर जैन मंदिर-राजाबाजार (कनॉट प्लेस-दिल्ली) से ससंघ मंगल विहार कर दिया। पुनः इण्डिया गेट नाम के प्रमुख स्थान से मेरे संघ के साथ निर्मल कुमार सेठी ,चक्रेश जैन, संघपति महावीर प्रसाद जैन, कमलचंद जैन, प्रेमचंद जैन इत्यादि प्रमुख श्रेष्ठीजन हाथ में ध्वज लेकर महावीर स्वामी की जय-जयकारों के साथ हर्षोल्लासपूर्वक चलते हुए लोदी रोड के दिगम्बर जैन मंदिर पहुँच गये।

मार्ग में चलते हुए फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को मथुरा सिद्धक्षेत्र पहुँचकर वहाँ जम्बूस्वामी के निर्वाण स्थल की वंदना की।

पुनश्च द्रुतगति से विहार करते हुए फाल्गुन कृष्णा षष्ठी के दिन (२० मार्च २००२ को) आगरा महानगर में हरिपर्वत के जिनमंदिर में संघ का प्रवेश हुआ। वहाँ से आगरा की भिन्न-भिन्न कॉलोनियों के जिनमंदिरों की वंदना-दर्शन करके प्रवचन आदि करके धर्मप्रभावना करते हुए पुनः हरिपर्वत नामक स्थान पर आकर चैत्र कृष्णा नवमी को भगवान श्री ऋषभदेव जन्मजयंती महोत्सव का आयोजन कराया।

आगरा से विहार करके एत्मादपुर-टूण्डला इत्यादि नगरों में प्रभावना करते हुए चैत्र शुक्ला तृतीया को फिरोजाबाद महानगर (सुहागनगरी) में प्रवेश किया। वहाँ भी जिनमंदिरों के दर्शन, धर्मप्रभावना एवं प्रवचन आदि के द्वारा चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को महावीर जयंती महोत्सव में मंगल सान्निध्य प्रदान किया।

पुनः वैशाख कृष्णा दूज को फिरोजाबाद में ही मेरा आर्यिका दीक्षा दिवस भी मनाया गया और उस सभा में मुझे वहाँ की जैन समाज द्वारा 'युगनायिका' की उपाधि प्रदान की गई।

---

१. २० मार्च २००२।

वैशाखकृष्णातृतीयायाः अत्रत्यात् विहृत्य वैशाकृष्णासप्तम्यां[1] श्रीनेमिनाथजन्मभूमौ शौरीपुरतीर्थे प्राविशम्। भगवतो नेमिनाथस्य वंदनां कृत्वात्रैव मयाऽस्य दशमग्रन्थस्य सिद्धान्तचिंतामणिटीका पूर्णीकृता। वीराब्देऽष्टाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे ख्रिष्टाब्दे त्रिमई-द्वयधिकद्विसहस्त्रतमे वैशाखकृष्णासप्तम्यां तीर्थंकरनेमिनाथगर्भजन्मकल्याणकपवित्रिततीर्थे इमां टीकां पूर्णां कुर्वन्त्या मया गणिनीज्ञानमती-आर्यिकया महान् हर्षोऽनुभूयते।

अस्याः टीकाया लेखनकाले विश्वशांतिमहावीरविधानरचना-प्रयागजैनतीर्थ-तीर्थंकरऋषभ-देवतपःस्थलीनाम-नवतीर्थनिर्माणं, महाकुंभनगरे श्री ऋषभदेवशासनोद्योतकारिधर्मप्रभावना-श्रीऋषभदेव-पंचकल्याणकप्रतिष्ठा-महाकुंभमहामस्तकाभिषेकः-कौशाम्बीतीर्थान्तर्गत-प्रभासगिरितीर्थे पंचकल्याणक-प्रतिष्ठामहाभिषेकः-कंपिलातीर्थदर्शनं-राजधान्यां प्रत्यागत्य वर्षायोगे षड्विंशतिविश्वशांतिमहावीर-विधानमहामहोत्सवः, पुनरपि कुण्डलतीर्थविकासहेतोः मंगलविहारः, मथुरासिद्धक्षेत्रवन्दना, शौरीपुरतीर्थदर्शनं इत्यादिषु तीर्थदर्शनप्रभावनादि कार्यकलापेषु प्रायेण प्रत्यहं विहारं कुर्वन्त्यापि मया टीकालेखनकार्यं कृतमेषा सरस्वतीमातुः कृपा एवाहं मन्ये।

अस्मिन् मूलसंघे श्रीकुन्दकुन्दाम्नाये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे विंशतितमेशताब्दौ चारित्रचक्रवर्ती-प्रथमाचार्यः श्री शांतिसागरमहामुनीन्द्रः तस्य प्रथमशिष्यः प्रथमपट्टाधीशोऽपि श्रीवीरसागराचार्यवर्यो ममार्यिका-

---

वैशाख कृष्णा तृतीया को फिरोजाबाद से विहार करके वैशाख कृष्णा सप्तमी (३ मई २००२) को भगवान श्री नेमिनाथ तीर्थंकर की जन्मभूमि शौरीपुर तीर्थ पर प्रवेश हुआ। भगवान नेमिनाथ की वंदना करके यहीं पर मैंने इस दशवें ग्रंथ की सिद्धान्तचिंतामणिटीका को लिखकर पूर्ण किया।

वीर निर्वाण संवत् २५२८, ईसवी सन् २००२ में ३ मई दिनाँक को वैशाख कृष्णा सप्तमी तिथि को तीर्थंकर नेमिनाथ के गर्भ-जन्मकल्याणक से पवित्र तीर्थ पर इस टीका को पूर्ण करते हुए मुझ गणिनी ज्ञानमती आर्यिका को महान् हर्ष की अनुभूति हो रही है।

इस टीका के लेखनकाल के मध्य में मेरे द्वारा विश्वशांति महावीर विधान की रचना हुई, इसके साथ ही प्रयाग जैन तीर्थ के रूप में वहाँ तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली नामक नूतन तीर्थ का निर्माण, महाकुंभ नगर में श्री ऋषभदेव शासन का उद्योत करने वाली धर्मप्रभावना, श्री ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महाकुंभ महामस्तकाभिषेक, कौशाम्बी तीर्थ के अन्तर्गत प्रभासगिरि तीर्थ पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, महाभिषेक, कम्पिला जी तीर्थ के दर्शन, राजधानी दिल्ली में आकर वर्षायोग स्थापना एवं वर्षायोग के अन्तर्गत छब्बीस विश्वशांति महावीर विधान का महामहोत्सव, पुनः दिल्ली से सन् २००२ में कुण्डलपुर तीर्थ विकास के निमित्त से मंगल विहार, मथुरा सिद्धक्षेत्र की वंदना, शौरीपुर तीर्थ के दर्शन इत्यादि तीर्थ दर्शन-धर्मप्रभावना आदि कार्यकलापों के मध्य प्रायः प्रतिदिन विहार करते हुए भी मेरे द्वारा टीका लेखन का कार्य चलता रहा, इसे मैं सरस्वती माता की विशेष कृपा ही मानती हूँ।

इस मूलसंघ में श्री कुन्दकुन्दाम्नाय में सरस्वती गच्छ और बलात्कारगण में बीसवीं शताब्दी में चारित्रचक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर महामुनीन्द्र हुए हैं। उनके प्रथम शिष्य और प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर मुनीश्वर मेरे आर्यिका दीक्षा प्रदाता गुरुदेव हैं, उन दोनों गुरुवर्य की मैं शतशः वंदना करती हूँ। इस पंचमकाल के अंत में होने वाले अंतिम वीरांगज मुनिराज तक इनकी आचार्य परम्परा सदैव अक्षुण्णरूप

---

१. ३ मई २००२।

दीक्षागुरुः, उभौ गुरुवर्यौ शतशः वंदनां करोम्यहं। अस्याचार्यपरम्परा सदैवाक्षुण्णा भूयात् यावदन्तिमवीरांगज-मुनिपर्यंतं। मम गणिनीज्ञानमती-आर्यिकापरम्परापि सदाकालं प्रवाहमाना भवेत् यावदन्तिमार्यिकासर्व-श्रीपर्यंतमिति भावयाम्यहम्।

मम संघस्थ-प्रज्ञाश्रमणी-आर्यिकाचन्दनामती-जम्बूद्वीपपीठाधीश-क्षुल्लकमोतीसागर-कर्मयोगीब्रह्मचारी- रवीन्द्रकुमारजैन (जम्बूद्वीप अध्यक्ष)-ब्रह्मचारिणी कुमारी बीना-कु. आस्था-सारिका-इंदु-चंद्रिका-अलका-प्रीति-स्वाति-इत्यादि-संघस्थव्रतिगणानामनुकूलत्वमपि मम टीकालेखनकार्ये निमित्तमस्ति।

अस्मिन् टीकाग्रन्थे षट्खण्डागम-धवलाटीका, पुस्तक दशम-समयसार-प्रवचनसार-गोम्मटसार-जीवकाण्ड-टीका-जीवतत्त्वप्रदीपिका-तिलोयपण्णत्ति-प्रतिष्ठातिलक-उत्तरपुराणदयः एतेषां ग्रन्थानामुद्धरणानि गृहीतानि सन्ति।

संप्रति भारतदेशस्य राष्ट्रपति-महामहिम-के. आर. नारायनन-प्रधानमंत्री श्रीअटलबिहारीवाजपेयी-उत्तरप्रदेशराज्यपाल-महामहिमश्रीविष्णुकांतशास्त्रीतिनामधेया गणतंत्रशासनं रक्षन्ति, इमे धर्मनीतिमनुपालयन्तु इति भाववेऽहम्।

तीर्थनिर्माण-समवसरणश्रीविहार-विधानानुष्ठानादिकार्येषु ये ये जैनश्रद्धालुभाक्तिकाः कार्यकर्तारः दातारश्च स्वतनुमनो-धनैः सहयोगिनोऽभवन् ते-ते सातिशायिपुण्योपार्जका आसन्। तेभ्यस्ताभ्यः श्रावकेभ्यः श्राविकाभ्यश्चाहं मंगलशुभाशीर्वादं प्रयच्छामि। ते ताश्च सदैव एवमेव स्वधनादिसदुपयोगं क्रियमाणाः चिरकालं यशस्विनो भूयासुः इति भाव्यते।

में चलती रहे तथा मुझ गणिनी ज्ञानमती की आर्यिका परम्परा भी अन्तिम आर्यिका सर्वश्री पर्यन्त सदाकाल प्रवाहित होती रहे, ऐसी मैं भावना भाती हूँ।

मेरे संघ में स्थित प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती, जम्बूद्वीप के पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर, कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार जैन (दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के अध्यक्ष), बालब्रह्मचारिणी कुमारी बीना, कु. आस्था, कु. सारिका, कु. इन्दू, कु. चन्द्रिका, कु. अलका, कु. प्रीति, कु. स्वाति इत्यादि संघस्थ व्रतीगण की अनुकूलता भी मेरे टीका लेखन कार्य में निमित्त बनी है।

इस टीका ग्रंथ में षट्खण्डागम की धवला टीका की दशवीं पुस्तक, समयसार, प्रवचनसार, गोम्मटसार जीवकाण्ड की जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका, तिलोयपण्णत्ति, प्रतिष्ठातिलक, उत्तरपुराण आदि ग्रंथों के उद्धरण ग्रहण किये गये हैं।

इस समय भारत देश के राष्ट्रपति महामहिम के.आर. नारायणन हैं, प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी हैं, उत्तरप्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री विष्णुकांत शास्त्री गणतंत्र शासन की रक्षा कर रहे हैं, ये सभी राजनेतागण धर्मनीति का भी अनुपालन करें, यही मेरी हार्दिक भावना है।

तीर्थ निर्माण, समवसरण श्रीविहार, विधान-अनुष्ठान आदि कार्यों में जो-जो जैन श्रद्धालु भक्तजन, कार्यकर्तागण और दातार अपने तन-मन-धन से सहयोगी बने हैं, वे सभी सातिशय पुण्य के उपार्जक हुए हैं। उन सभी श्रावक और श्राविकाओं के लिए मेरा मंगल शुभाशीर्वाद है। वे सभी सदैव इसी प्रकार अपने धन आदि का सदुपयोग करते हुए चिरकाल तक यशस्वी होवें, यही भावना है।

नमस्तस्मै जिनेन्द्राय, दयाधर्मविधायिने।
सरस्वत्यै नमस्तस्यै, सर्वस्मै मुनये नमः।।१।।
षट्खण्डागमग्रन्था ये, द्वादशांगांशवाङ्मयाः।
भव्यानां मोक्षहेतोः स्युः, स्थेयासुः भूतले चिरम्।।२।।

गणिनीज्ञानमत्येयं, कृता टीका चिरं भुवि।
स्थेयात् तावत् श्रियं कुर्यात्, यावत् श्रीजिनशासनम्।।३।।

श्लोकार्थ—दया धर्म के विधाता श्री जिनेन्द्र भगवान को मेरा नमस्कार होवे, सरस्वती माता को मेरा नमन है तथा सभी मुनियों को मेरा नमस्कार है।।१।।

ये षट्खण्डागम ग्रंथ द्वादशांग के अंशरूप वाङ्मय—जिनवाणी हैं, ये भव्यों को मोक्ष प्रदान करने में हेतु हैं, ये चिरकाल तक इस धरती पर विद्यमान रहें।।२।।

गणिनी आर्यिका ज्ञानमती के द्वारा रचित यह षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणिटीका इस धरातल पर चिरकाल तक जीवंत रहे। जब तक इस संसार में जिनशासन का अस्तित्व रहे, तब तक यह टीका ग्रंथ सभी का कल्याण करे, यही मेरी मंगल भावना है।।३।।

卐卐卐

दशम ग्रंथ की हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

शान्ति-कुंथु-अर तीर्थंकरत्रय के चरणों में करूँ नमन।
उनकी पावन जन्मभूमि हस्तिनापुरी को शत वंदन।।
[१]यहाँ विराजित तीनों प्रभु की खड्गासन प्रतिमा को नमन।
नवनिधि की उपलब्धि हेतु तीनों के त्रय-त्रय[२] पद को नमन।।१।।

जम्बूद्वीप-सुमेरुगिरि के जिनबिम्बों को करूँ नमन।
हस्तिनापुर की वसुन्धरा पर बनी कृति जो सर्वप्रथम।।
गणिनीप्रमुख ज्ञानमति माताजी की प्रेरणा का प्रतिफल।
इन्द्र देवता भी आकर करते हैं जिनबिम्बों को नमन।।२।।

इसी तीर्थ परिसर में तेरहद्वीप की रचना अद्भुत है।
तीनलोक भी बना जहाँ पर प्रथम बार सुन्दरतम है।।
अन्य अनेक जिनालय से पावन तीरथ का कण कण है।
इस इतिहास प्रसिद्ध तीर्थ को करें सभी शत वन्दन हैं।।३।।

तीनों तीर्थंकर के चउ-चउ कल्याणक से पावन है।
ज्ञानमती माताजी की यह कर्मभूमि मनभावन है।।
यहाँ न जाने कितने ग्रंथों को उनने रच डाला है।
चलती रहती सदा जहाँ पर सम्यग्ज्ञान की शाला है।।४।।

सदी बीसवीं में श्रीशांतिसिंधु प्रथम आचार्य हुए।
मुनिचर्या के जीर्णोद्धारक सन्तशिरोमणि मान्य हुए।।
उनके प्रथम हि शिष्य वीरसागर जी पट्टाचार्य प्रथम।
जिनसे दीक्षा पाकर आर्यिका ज्ञानमती जी बनीं प्रथम।।५।।

वर्तमान में जो सबसे प्राचीन आर्यिका माता हैं।
शांति सिंधु से अब तक जिनका सब सन्तों से नाता है।।
बाल ब्रह्मचारिणी आर्यिकाओं की प्रेरणास्रोत यही।
वीरप्रभू के शासन में यह प्रथम ग्रंथ लेखिका हुईं।।६।।

उनकी शिष्या कहलाने का मुझे परम सौभाग्य मिला।
छोटी सी ही आयु में मेरे जीवन का सुप्रभात खिला।।

---

१. हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर तीनों भगवान की ३१-३१ फुट उत्तुंग प्रतिमा विराजमान हैं। २. तीर्थंकर-चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदों से समन्वित तीनों भगवान हैं।

यद्यपि इनकी लघु भगिनी बनने का पुण्य भी पाया है।
लेकिन केवल गुरूरूप में आशिष इनका पाया है।।७।।

सन् उन्निस बावन में जब इनने घर को त्यागा था।
नहीं हुआ था जन्म भि मेरा तब इनसे क्या नाता था।।
सन् उन्निस सौ अट्ठावन में ज्येष्ठ कृष्ण मावस तिथि को।
जन्म हुआ था पुनः माधुरी नाम दिया माँ ने मुझको।।८।।

ग्यारह वर्ष की उम्र में पहली बार दर्श पाया मैंने।
मिला ज्ञान दो वर्षों का व्रत ब्रह्मचर्य[१] ले लिया इनसे।।
उन्हीं संस्कारों के अंकुर आगे भी प्रस्फुटित हुए।
सन् उन्निस सौ इकहत्तर में आजन्म व्रती बनने के लिए।।९।।

सुगंधदशमी को अजमेर में ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया।
सदा गुरू के संग रहने का भाव हृदय में प्रगट हुआ।।
उसी समय मेरी माँ मोहिनि ने मगसिर वदि तृतिया को।
अति कठोर बन दीक्षा[२] ले ली बनीं रत्नमति माता वो।।१०।।

मेरे पितु को मोह बहुत था अपनी सब सन्तानों से।
चार पुत्र नौ कन्याओं को पाला बड़े दुलारों से।।
सबसे पहली कन्या उनकी बनी ज्ञानमती माताजी।
दूजी कन्या मनोवती भी बनीं अभयमति माताजी।।११।।

फिर रवीन्द्र जी एवं मैंने भी गृहबंधन त्याग किया।
लेकिन उनके जीवित रहने तक उनको नहिं ज्ञात हुआ।।
हम सबने उनकी सुन्दर समाधि आँखों से देखी है।
मात मोहिनी की कर्तव्य परायणता भी देखी है।।१२।।

ज्ञानमती माताजी का स्मरण किया पितु चले गये।
घर में रखी पिच्छिका उनकी लगा शीश पर मौन हुए।।
आज मुझे उन छोटेलाल पिता का सुमिरन हो आया।
उनके रत्नाकर होने का गौरव मन में हो आया।।१३।।

मेरे जननी जनक सरीखे माता-पिता मिलें सबको।
कलियुग में सतयुग आएगा इस धरती पर तुम समझो।।
मेरी गुरु माँ ज्ञानमती सम जिसको गुरु मिल जाएंगे।
निष्कलंक चारित्र धार वे ज्ञान निधी को पाएंगे।।१४।।

---

१. २५ अक्टूबर १९६९, शरदपूर्णिमा को जयपुर-राज. में दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत लिया था। २. आचार्य श्री धर्मसागर महाराज से अजमेर में दीक्षा ग्रहण कर माँ मोहिनी आर्यिका रत्नमती बनीं।

मुझे नहीं है ज्ञान जिनागम के सैद्धान्तिक विषयों का।
जो कुछ भी है जीवन में आशीर्वाद गुरु चरणों का।।
इसीलिए इस षट्खण्डागम का मैंने कुछ स्वाद लिया।
ज्ञानमती कृत संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद किया।।१५।।

षट्खण्डागम का चतुर्थ है खण्ड ग्रंथ यह दशवाँ है।
कहा वेदना खण्ड इसे यह चार ग्रंथ में वरणा है।।
नौ-दस-ग्यारह-बारह ऐसे चार ग्रंथ में टीका है।
दो का कार्य हुआ है पूरण दो की बाकी टीका है।।१६।।

श्री जिनेन्द्र प्रभु सरस्वती माँ ज्ञानमती आशीष मिले।
शीघ्र पूर्ण हो उनकी हिन्दी टीका ज्ञान की कली खिले।।
आगे पंचम खण्ड के चारों ग्रंथ का भी अनुवाद करूँ।
इस प्रकार सोलह ग्रंथों का अमृतमय स्वाध्याय करूँ।।१७।।

अब तक मैंने प्रथम खण्ड में पाँच ग्रंथ अनवाद किया।
छठे ग्रंथ का स्वयं ज्ञानमति माता ने अनुवाद किया।।
दुतिय खण्ड में केवल सप्तम ग्रंथ एक ही आया है।
उसका कर अनुवाद भी मैंने ज्ञानामृत को पाया है।।१८।।

तृतिय खण्ड में अष्टम पुस्तक पूरी मानी जाती है।
संस्कृत टीकाकर्त्री उसकी अनुवादिका कहाती हैं।।
इस प्रकार दश ग्रंथों का अब तक हिन्दी अनुवाद हुआ।
उनमें से मेरे द्वारा बस आठ ग्रंथ पर कार्य हुआ।।१९।।

आज तिथी आषाढ़ सुदी सप्तमि का पावन दिन आया।
तीर्थंकर श्री नेमिनाथ के मोक्षकल्याणक को पाया।।
वीर संवत् पच्चिस सौ सैंतिस गुरूवार का दिन आया।
गुरुचरणों में इसे समापन करके मन अति हरषाया।।२०।।

ऐसा ही सौभाग्य मुझे ज्ञानार्जन का मिलता जावे।
गणिनी ज्ञानमती माता से ज्ञानामृत मिलता जावे।।
इनसे प्राप्त आर्यिका व्रत में सदा गुणों की वृद्धी हो।
यही "चंदनामती" भावना करे निजातम शुद्धी हो।।२१।।

कल से आष्टान्हिका पर्व का शुभारंभ हो जाएगा।
[१]कल्पद्रुम मण्डल विधान आरंभ यहाँ हो जाएगा।।

---

१. छोटीशाह अमरचंद जैन-टिकैतनगर (जि.-बाराबंकी-उ.प्र.) सपरिवार यह विधान करने हेतु ५० श्रद्धालु भक्तों सहित पधार चुके हैं।

इसी मध्य चौदश को वर्षायोग का स्थापन होगा।
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में अध्ययन अध्यापन होगा।।२२।।

आज से बाइस वर्ष पूर्व श्रावण शुक्ला ग्यारस तिथि को।
सन् उन्निस सौ नवासी में तेरह अगस्त रविवासर को।।
गणिनी ज्ञानमती माता से दीक्षा ली आर्यिका बनी।
बालब्रह्मचारिणी माधुरी मैं बन गई चन्दनामती।।२३।।

भगवन्! मेरा श्रुतज्ञान कैवल्यज्ञान में परिणत हो।
कब ऐसा दिन आवे, जब आत्मा आत्मा में ही रत हो।।
यह सिद्धान्तसुचिन्तामणिटीका इस जग में अमर रहे।
ज्ञानपिपासू इसको पढ़कर सैद्धान्तिक शुभ ज्ञान लहें।।२४।।

卐卐卐

षट्खण्डागम पुस्तक-10—संस्कृत टीका लेखन की तिथि, स्थान एवं दिनाँक

क्र.	तिथि	वीर संवत्	ग्राम (स्थान)	दिनाँक
प्रारंभ—				
1.	आश्विन शु. पूर्णिमा	2526	श्री ऋषभदेव कमलमंदिर, प्रीतविहार, दिल्ली (अनिल जी की कोठी)	13-10-2000 (प्रातः 9.20 बजे)
2.	कार्तिक कृ. एकम्	2526	श्री ऋषभदेव कमलमंदिर प्रीतविहार, दिल्ली	14-10-2000
3.	चैत्र कृ. 11 से चैत्र शु. 2 तक	2527	ऋषभदेव तपस्थली-प्रयाग (इलाहाबाद)	20-3-2001 से 26-3-2001 तक
4.	चैत्र शु. 3	2527	बाई का बाग-हेमचंद जी की कोठी (इलाहाबाद)	27-3-2001
5.	चैत्र शु. 4 से वैशाख कृ. 2 तक	2527	इलाहाबाद-प्रयाग धर्मशाला (विश्वशांति महावीर विधान के मध्य)	28-3-2001 से 9-4-2001 तक
6.	वैशाख कृ. 4 से वैशाख कृ. 13 तक	2527	ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ	11-4-2001 से 21-4-2001 तक
7.	वैशाख शु. 1	2527	कटरा मंदिर	24-4-2001
8.	वैशाख शु. 2	2527	प्रदीप कुमार जैन एडवो. की कोठी	25-4-2001
9.	वैशाख शु. 3 (अक्षयतृतीया)	2527	मंदर-आयल स्कूल	26-4-2001
10.	वैशाख शु. 7	2527	कौशाम्बी तीर्थ	30-4-2001
11.	वैशाख शु. 11	2527	प्रभासगिरि तीर्थ (पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के मध्य)	3-5-2011
12.	ज्येष्ठ कृ. 12	2527	सरसोल कॉलेज	20-5-2001
13.	ज्येष्ठ कृ. 13	2527	कानपुर पब्लिक स्कूल, चकोरी मोड़	21-5-2001
14.	ज्येष्ठ शु. 3	2527	बिसाइतपुर (कानपुर)	25-5-2001
15.	ज्येष्ठ शु. 6	2527	आदर्श इं. का., कानपुर निकट तानियागंज	28-5-2001
16.	ज्येष्ठ शु. 7	2527	बैरीशिवराजपुर, रामसहाय इं. का.	29-5-2001
17.	ज्येष्ठ शु. 9	2527	अरोल विद्याभवन इंटर कॉलेज	31-5-2001
18.	ज्येष्ठ शु. 10	2527	कोल्डस्टोरेज, कन्नौज (सवाईलाल जैन का)	1-6-2001
19.	ज्येष्ठ शु. 11	2527	जसौदा स्कूल	2-6-2001

क्र.	तिथि	वीर संवत्	ग्राम (स्थान)	दिनाँक
20.	ज्येष्ठ शु. 12-13	2527	रामाश्रम-श्यामनगर	3-6-2001
21.	आषाढ़ कृ. 1	2527	शुकरुल्लाहपुर स्कूल-फर्रुखाबाद	6-6-2001
22.	आषाढ़ कृ. 2	2527	कायमगंज-अग्रवाल धर्मशाला	7-6-2001
23.	आषाढ़ कृ. 3	2527	कंपिल जी तीर्थ	9-6-2001
24.	आषाढ़ कृ. 4	2527	अलीगंज – एटा	10-6-2001
25.	आषाढ़ कृ. 5	2527	जैथरा इंटर कॉलेज	11-6-2001
26.	आषाढ़ कृ. 6	2527	नगला इंटर कॉलेज	12-6-2001
27.	आषाढ़ कृ. 7	2527	नशिया जी, एटा	13-6-2001
28.	आषाढ़ कृ. 9	2527	उमरायपुर (कायमसिंह का घर)	15-6-2001
29.	आषाढ़ कृ. 12	2527	अलीगढ़ (उ.प्र.)	18-6-2001
30.	आषाढ़ शु. 1	2527	मराठवाड़ा-इंजीनियरिंग कॉलेज जिला-बुलंदशहर	22-6-2001
31.	आषाढ़ शु. 2	2527	सिकन्द्राबाद मंदिर	23-6-2001
32.	आषाढ़ शु. 6	2527	नोएडा जैन मंदिर	26-6-2001
33.	आषाढ़ शु. 7	2527	नोएडा जैन मंदिर	27-6-2001
34.	श्रावण कृ. 1	2527	अशोक विहार दि. जैन मंदिर, दिल्ली	6-7-2001
35.	श्रावण शु. 2	2527	अशोक विहार दि. जैन मंदिर, दिल्ली	22-7-2001
36.	श्रावण शु. 11 से श्रावण शु. 13 तक	2527	शालीमारबाग, दिल्ली (श्रीपाल जैन की कोठी)	30-7-2001 से 1-8-2001 तक
37.	भादो कृ. 2 से भादो कृ. 7 तक	2527	मॉडल टाउन मंदिर, दिल्ली	6-8-2001 से 11-8-2001 तक
38.	भादो कृ. 10	2527	स्टेटबैंक कालोनी, जैनमंदिर, दिल्ली	14-8-2001
39.	भादो कृ. 12	2527	सी.सी. कालोनी (कमलचंद जैन की कोठी)	16-8-2001
40.	भादो कृ. 13	2527	न्यू रोहतक रोड (विजय जैन की कोठी)	17-8-2001
41.	भादों शु. 4 से माघ शु. 5 तक	2527	राजाबाजार, दिल्ली (अग्रवाल दि. जैन मंदिर)	22-8-2001 से 17-2-2002 तक
42.	फाल्गुन शु. 2	2528	मथुरा तीर्थ	16-3-2002
43.	फाल्गुन कृ. 3	2528	पेट्रोलपम्प-मथुरा से बाहर	17-3-2002
44.	फाल्गुन कृ. 4	2528	फरह	18-3-2002

क्र.	तिथि	वीर संवत्	ग्राम (स्थान)	दिनाँक
45.	फाल्गुन शु. 9	2528	कमलानगर-आगरा	23-3-2002
46.	चैत्र कृ. 2	2528	बेलनगंज-आगरा	30-3-2002
47.	चैत्र कृ. 3	2528	छीपीटोला-आगरा	31-3-2002
48.	चैत्र कृ. 4	2528	छीपीटोला-आगरा	1-4-2002
49.	चैत्र कृ. 5	2528	ताजगंज-आगरा	2-4-2002
50.	चैत्र कृ. 7	2528	जयपुर हाउस-आगरा	4-4-2002
51.	चैत्र कृ. 9	2528	हरिपर्वत-आगरा	6-4-2002
52.	चैत्र कृ. 10	2528	हरिपर्वत-आगरा	7-4-2002
53.	चैत्र कृ. 13	2528	एत्मादपुर-आगरा	10-4-2002
54.	चैत्र शु. 1	2528	टूण्डला-दि. जैन मंदिर	13-4-2002
55.	चैत्र शु. 2	2528	राजा का ताल-दि. जैन मंदिर	14-4-2002
56.	चैत्र शु. 3 से	2528	फिरोजाबाद-जैननगर	15-4-2002 से
	चैत्र शु. 11 तक	2528	(भगवान बाहुबली प्रांगण)	23-4-2002 तक
57.	चैत्र शु. 12	2528	विभवनगर-फिरोजाबाद	24-4-2002
58.	चैत्र शु. 13	2528	घेर खोखल-फिरोजाबाद	25-4-2002
59.	वैशाख कृ. 2	2528	फिरोजाबाद (सभा में)	28-4-2002
60.	वैशाख कृ. 4	2528	शिकोहाबाद	30-4-2002
61.	वैशाख कृ. 5	2528	शिकोहाबाद	1-5-2002
62.	वैशाख कृ. 6	2528	लाछपुर	2-5-2002
समापन–				
63.	वैशाख कृ. 7	2528	शौरीपुर-बटेश्वर	3-5-2002

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.

चतुर्थो वेदनाखण्डान्तर्गतं
द्वितीय वेदनानुयोगद्वारम्
(वेदनाखण्डनाम्नि चतुर्थखण्डे षोडशानुयोगद्वारान्तर्गतपंचानुयोगद्वारसमन्वितः)

अथ वेदनानिक्षेपानुयोगद्वारम्
(वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत प्रथमानुयोगद्वारम्)

अथ प्रथमो महाधिकारः
(अन्तर्गत-प्रथमोऽधिकारः)

१.	वेदणा त्ति। तत्थ इमाणि वेयणाए सोलस अणुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति — वेदणाणिक्खेवे वेदणाणयविभासणदाए वेदणाणामविहाणे वेदणादव्वविहाणे वेदणाखेत्तविहाणे वेदणाकालविहाणे वेदणाभावविहाणे वेदणापच्चयविहाणे वेदणासामित्तविहाणे वेदणा-वेदणविहाणे वेदणागइ-विहाणे वेदणाअणंतरविहाणे वेदणासण्णियासविहाणे वेदणापरिमाणविहाणे वेदणाभागाभागविहाणे वेदणाअप्पाबहुगे त्ति।	१
२.	वेयणाणिक्खेवे त्ति। चउव्विहे वेयणाणिक्खेवे।	१०
३.	णामवेयणा ट्ठवणवेयणा दव्ववेयणा भाववेयणा चेदि।	१०

अथ वेदनानयविभाषणतानुयोगद्वारम्
(द्वितीय वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-द्वितीयानुयोगद्वारम्)
द्वितीयोऽधिकारः

१.	वेयणा-णयविभासणदाए को णओ काओ वेयणाओ इच्छदि ?।	१५
२.	णेगम-ववहार-संगहा सव्वाओ।	१६
३.	उजुमदो ट्ठवणं णेच्छदि।	१७
४.	सद्दणओ णामवेयणां भाववेयणां च इच्छदि।	१७

अथ वेदनानाम विधानानुयोगद्वारम्
(द्वितीय वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-तृतीयानुयोगद्वारम्)
तृतीयोऽधिकारः

१.	वेयणाणामविहाणे त्ति। णेगम-ववहाराणां णाणावरणीयवेयणा दंसणावरणीयवेयणा वेयणीयवेयणा मोहणीयवेयणा आउववेयणा णामवेयणा गोदवेयणा अंतराइयवेयणा।	२०
२.	संगहस्स अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणा।	२२
३.	उजुसुदस्स णो णाणावरणीयवेयणा णोदंसणावरणीयवेयणा णोमोहणीयवेयणा णोआउअवेयणा णोणामवेयणा णोगोदवेयणा णोअंतराइयवेयणा वेयणीयं चेव वेयणा।	२३
४.	सद्दणयस्स वेयणा चेव वेयणा।	२४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.

अथ वेदनाद्रव्यविधानानुयोगद्वारम्

(द्वितीयवेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-चतुर्थानुयोगद्वारम्)

द्वितीयो महाधिकारः

(अन्तर्गत-प्रथमाधिकारः)

१.	वेयणादव्वविहाणे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति — पदमीमांसा सामित्त-मप्पाबहुए त्ति।	३६
२.	पदमीमांसाए णाणावरणीयवेदणा दव्वदो किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किम-जहण्णा?।	३८
३.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा वा अजहण्णा वा।	३९
४.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	४७
५.	सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे।	४८
६.	सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया कस्स ?।	४९
७.	जो जीवो बादरपुढवीजीवेसु बेसागरोवमसहस्सेहिं सादिरेगेहि ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो।	४९
८.	तत्थ य संसरमाणस्स बहुवा पज्जत्तभवा थोवा अपज्जत्तभवा भवंति।	५२
९.	दीहाओ पज्जत्तद्धाओ रहस्साओ अपज्जत्तद्धाओ।	५३
१०.	जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गेण जहण्णएण जोगेण बंधदि।	५४
११.	उवरिल्लीणं ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे।	५५
१२.	बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि।	५७
१३.	बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणामो भवदि।	५८
१४.	एवं संसरिदूण बादरतसपज्जत्तऐसुववण्णो।	५८
१५.	तत्थ य संसरमाणस्स बहुआ पज्जत्तभवा, थोवा अपज्जत्तभवा।	६१
१६.	दीहाओ पज्जत्तद्धाओ रहस्साओ अपज्जत्तद्धाओ।	६१
१७.	जदा जदा आउगं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गजहण्णएण जोगेण बंधदि।	६२
१८.	उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे।	६२
१९.	बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि।	६२
२०.	बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणामो भवदि।	६२
२१.	एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो।	६३
२२.	तेणेव पढमसमयआहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण उक्कस्सेण जोगेण आहारिदो।	६३
२३.	उक्कस्सियाए वड्ढिए वड्ढिदो।	६३
२४.	अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।	६३
२५.	तत्थ भवट्ठिदी तेत्तीससागरोवमाणि।	६३
२६.	आउअमणुपालेंतो बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि।	६३
२७.	बहुसो बहुसो बहुसंकिलेसपरिणामो भवदि।	६४
२८.	एवं संसरिदूण त्थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति जोगजवमज्झस्सुवरिमंतो-मुहुत्तद्ध-मच्छिदो।	६६
२९.	चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो।	६६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३०.	दुचरिम-तिचरिमसमए उक्कस्ससंकिलेसं गदो।	६६
३१.	चरिम-दुचरिमसमए उक्कस्सजोगं गदो।	६६
३२.	चरिमसमयतब्भवत्थो जादो। तस्स चरिमसमयतब्भवत्थस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा।	६६
३३.	तव्वदिरित्तमणुक्कस्सा।	६७
३४.	एवं छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं।	६७
३५.	सामित्तेण उक्कस्सपदे आउववेदणा दव्वदो उक्कस्सिया कस्स ?।	६८
३६.	जो जीवो पुव्वकोडाउओ परभवियं पुव्वकोडाउअं बंधदि जलचरेसु दीहाए आउवबंधगद्धाए तप्पाओग्गसंकिलेसेण उक्कस्सजोगेण बंधदि।	६८
३७.	जोगजवमज्झस्सुवरिमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो।	७२
३८.	चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो।	७३
३९.	कमेण कालगदसमाणो पुव्वकोडाउएसु जलचेरसु उववण्णो।	७३
४०.	अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।	७५
४१.	अंतोमुहुत्तेण पुणरवि परभवियं पुव्वकोडाउअं बंधदि जलचरेसु।	७५
४२.	दीहाए आउअबंधगद्धाए तप्पाओग्ग उक्कस्सजोगेण बंधदि।	७५
४३.	जोगजवमज्झस्स उवरि अंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो।	७५
४४.	चरिमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदि भागमच्छिदो।	७५
४५.	बहुसो बहुसो सादद्धाए जुत्तो।	७५
४६.	से काले परभवियमाउअं णिल्लेविहिदि त्ति तस्स आउअवेयणा दव्वदो उक्कस्सा।	७५
४७.	तव्वदिरित्तमणुक्कस्सं।	७७
४८.	सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया कस्स ?।	७७
४९.	जो जीवो सुहुमणिगोदजीवेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो।	७८
५०.	तत्थ य संसरमाणस्स बहवा अपज्जत्तभवा थोवा पज्जत्तभवा।	७८
५१.	दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ रहस्साओ पज्जत्तद्धाओ।	७८
५२.	जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गुक्कस्सजोगेण बंधदि।	८२
५३.	उवरिल्लीणं ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे हेट्ठिल्लीणं ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे।	८२
५४.	बहुसो बहुसो जहण्णाणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि।	८२
५५.	बहुसो बहुसो मंदसंकिलेसपरिणामो भवदि।	८२
५६.	एवं संसरिदूण बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।	८५
५७.	अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।	८५
५८.	अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो।	८६
५९.	सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ।	८६
६०.	संजमं पडिवण्णो।	८६
६१.	तत्थ य भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालयित्ता थोवावसेसे जीविदव्वएत्ति मिच्छत्तं गदो।	८६
६२.	सव्वत्थोवाए मिच्छत्तस्स असंजमद्धाए अच्छिदो।	९१
६३.	मिच्छत्तेण कालगदसमाणो दसवाससहस्साउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो।	९१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
६४.	अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।	९१
६५.	अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो।	९१
६६.	तत्थ य भवट्ठिदिं दसवाससहस्साणि देसूणाणि सम्मत्तमणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो।	९२
६७.	मिच्छत्तेण कालगदसमाणो बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।	९२
६८.	अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।	९२
६९.	अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।	९२
७०.	पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ठिदिखण्डय घादेहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेण कम्मं हदसमुत्तियं कादूण पुणरवि बादरपुढ-विजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।	९७
७१.	एवं णाणाभवग्गहणेहि अट्ठ संजमकंडयाणि अणुपालइत्ता चदुक्खुत्तो कसाए उवसामयित्ता पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि संजमासंजम-कंडयाणि संजमकंडयाणि च अणुपालयित्ता एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे पुणरवि पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो।	९७
७२.	सव्वलहुं जोणिणिक्कमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ।	९८
७३.	संजमं पडिवण्णो।	९८
७४.	तत्थ भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति य खवणाए अब्भुट्ठिदो।	९८
७५.	चरिमसमयछदुमत्थो जादो। तस्स चरिमसमयछदुमत्थस्स णाणावरणीयवेदणा दव्वदो जहण्णा।	१००
७६.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	१०२
७७.	एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं। णवरि विसेसो मोहणीयस्स खवणाए अब्भुट्ठिदो चरिमसमयसकसाई जादो। तस्स चरिमसमयसकसाइस्स मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा।	१०३
७८.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	१०४
७९.	सामित्तेण जहण्णपदे वेदणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया कस्स ?।	१०४
८०.	जो जीवो सुहुमणिगोदेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणियं कम्मट्ठिदिमच्छिदो।	१०५
८१.	तत्थ य संसरमाणस्स बहुआ अपज्जत्तभवा, थोवा पज्जत्तभवा।	१०५
८२.	दीहाओ अपज्जत्तद्धाओ, रहस्साओ पज्जत्तद्धाओ।	१०५
८३.	जदा जदा आउअं बंधदि तदा तदा तप्पाओग्गउक्कस्सएण जोगेण बंधदि।	१०५
८४.	उवरिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स जहण्णपदे हेट्ठिल्लीणं ट्ठिदीणं णिसेयस्स उक्कस्सपदे।	१०५
८५.	बहुसो बहुसो जहण्णाणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि।	१०५
८६.	बहुसो बहुसो मंदसंकिलेसपरिणामो भवदि।	१०५
८७.	एवं संसरिदूण बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।	१०५
८८.	अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।	१०५
८९.	अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो।	१०५
९०.	सव्वलहुं जोणिणिक्कमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ।	१०६
९१.	संजमं पडिवण्णो।	१०६
९२.	तत्थ य भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं संजममणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो।	१०६
९३.	सव्वत्थोवाए मिच्छत्तस्स असंजमद्धाए अच्छिदो।	१०६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
९४.	मिच्छत्तेण कालगदसमाणो दसवाससहस्साउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो।	१०६
९५.	अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।	१०६
९६.	अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो।	१०६
९७.	तत्थ य भवट्ठिदिं दसवाससहस्साणि देसूणाणि सम्मत्तमणुपालइत्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति मिच्छत्तं गदो।	१०६ १०६
९८.	मिच्छत्तेण कालगदसमाणो बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।	१०६
९९.	अंतोमुहुत्तेण सव्वलहुं सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।	१०६
१००.	अंतोमुहुत्तेण कालगदसमाणो सुहुमणिगोदजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।	१०६
१०१.	पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ट्ठिदिखंडयघादेहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागमेत्तेण कालेण कम्मं हदसमुप्पत्तियं कादूण पुणरवि बादरपुढविजीवपज्जत्तएसु उववण्णो।	१०७
१०२.	एवं णाणाभवग्गहणेहि अट्ठ संजमकंडयाणि अणुपालइत्ता चदुक्खुत्तो कसाए उवसामइत्ता पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि संजमासंजम-कंडयाणि सम्मत्तकंडयाणि च अणुपालइत्ता, एवं संसरिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे पुणरवि पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो।	१०७
१०३.	सव्वलहुं जोणिणिक्कमणजम्मणेण जादो अट्ठवस्सीओ।	१०७
१०४.	संजमं पडिवण्णो।	१०७
१०५.	अंतोमुहुत्तेण खवणाए अब्भुट्ठिदो।	१०७
१०६.	अंतोमुहुत्तेण केवलणाणं केवलदंसणं च समुप्पादयित्ता केवली जादो।	१०७
१०७.	तत्थ य भवट्ठिदिं पुव्वकोडिं देसूणं केवलिविहारेण विहरित्ता थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति चरिमसमयभवसिद्धियो जादो।	१०७
१०८.	तस्स चरिमसमयभवसिद्धियस्स वेदणीयवेदणा दव्वदो जहण्णा।	१११
१०९.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	१११
११०.	एवं णामा-गोदाणं।	१११
१११.	सामित्तेण जहण्णपदे आउगवेदणा दव्वदो जहण्णिया कस्स ?।	११२
११२.	जो जीवो पुव्वकोडाउओ अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु आउअं बंधदि रहस्साए आउअबंधगद्धाए।	११२
११३.	तप्पाओग्गजहण्णएण जोगेण बंधदि।	११२
११४.	जोगजवमज्झस्स हेट्ठदो अंतोमुहुत्तद्धमच्छिदो।	११२
११५.	पढमे जीवगुणहाणिट्ठाणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदो।	११२
११६.	कमेण कालगदसमाणो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो।	११२
११७.	तेणेव पढमसमयआहारएण पढमसमयतब्भवत्थेण जहण्णजोगेण आहारिदो।	११२
११८.	जहण्णियाए वड्ढीए वड्ढिदो।	११३
११९.	अंतोमुहुत्तेण सव्वचिरेण कालेण सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो।	११३
१२०.	तत्थ य भवट्ठिदिं तेत्तीसं सागरोवमाणि आउअमणुपालयंतो बहुसो असादद्धाए जुत्तो।	११३
१२१.	थोवावसेसे जीविदव्वए त्ति से काले परभवियमाउअं बंधहिदि त्ति तस्स आउववेदणा दव्वदो जहण्णा।	११३
१२२.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	११६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१२३.	अप्पाबहुए त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्दाराणि जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्कस्सपदे।	११७
१२४.	जहण्णपदेण सव्वत्थोवा आयुगवेदणा दव्वदो जहण्णिया।	११७
१२५.	णामा-गोदवेदणाओ दव्वदो जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ।	११८
१२६.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणाओ दव्वदो जहण्णियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।	११९
१२७.	मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया।	१२०
१२८.	वेयणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया।	१२१
१२९.	उक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा आउववेयणा दव्वदो उक्कस्सिया।	१२२
१३०.	णामागोदवेदणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ।	१२२
१३१.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।	१२२
१३२.	मोहणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया।	१२२
१३३.	वेदणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया।	१२२
१३४.	जहण्णुक्कस्सपदेण सव्वत्थोवा आउववेयणा दव्वदो जहण्णिया।	१२४
१३५.	सा चेव उक्कस्सिया असंखेज्जगुणा।	१२४
१३६.	णामा-गोदवेदणाओ दव्वदो जहण्णियाओ (दो वि तुल्लाओ) असंखेज्जगुणाओ।	१२४
१३७.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेदणाओ दव्वदो जहण्णियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।	१२४
१३८.	मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया।	१२५
१३९.	वेदणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया विसेसाहिया।	१२५
१४०.	णामा-गोदवेदणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ।	१२६
१४१.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय अंतराइयवेदणाओ दव्वदो उक्कस्सियाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।	१२६
		१२६
१४२.	मोहणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया।	१२६
१४३.	वेयणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सिया विसेसाहिया।	१२६

अथ चूलिकानाम

(चतुर्थवेदनाद्रव्यविधानानुयोगद्वारस्य चूलिका)

(द्वितीयोऽधिकारः)

१४४.	एत्तो जं भणिदं 'बहुसो बहुसो उक्कस्साणि जोगट्ठाणाणि गच्छदि जहण्णाणि च' एत्थ अप्पाबहुगं दुविहं जोगप्पाबहुगं पदेसअप्पाबहुगं चेव।	१२९
१४५.	सव्वत्थोवो सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो।	१३०
१४६.	बादरेइंदिय अपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३०
१४७.	बीइंदिय अपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३०
१४८.	तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३०
१४९.	चउरिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१५०.	असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३०
१५१.	सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३०
१५२.	सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३२
१५३.	बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३२
१५४.	सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३३
१५५.	बादरेइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३३
१५६.	सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३३
१५७.	बादरेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३३
१५८.	बीइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३३
१५९.	तीइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो।	१३३
१६०.	चदुरिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो।	१३३
१६१.	असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सजोगो असंखेज्जगुणो।	१३३
१६२.	सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३३
१६३.	बीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३४
१६४.	तीइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३४
१६५.	चउरिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३४
१६६.	असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३४
१६७.	सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३४
१६८.	बीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३४
१६९.	तीइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३५
१७०.	चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३५
१७१.	असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३५
१७२.	सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ जोगो असंखेज्जगुणो।	१३५
१७३.	एवमेक्केक्कस्स जोगगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	१३५
१७४.	पदेसअप्पाबहुए त्ति जहा जोगअप्पाबहुगं णीदं तधा णेदव्वं। णवरि पदेसा अप्पाए त्ति भाणिदव्वं।	१३७
१७५.	जोगट्ठाणपरूवणदाए तत्थ इमाणि दस अणुयोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति।	१३९
१७६.	अविभागपडिच्छेदपरूपणा वग्गणपरूवणा फद्दयपरूवणा अंतरपरूवणा ठाणपरूवणा अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा समयपरूवणा वड्डिपरूवणा अप्पाबहुए त्ति।	१४४
१७७.	अविभागपडिच्छेदपरूवणाए एक्केक्कम्हि जीवपदेसे केवडिया जोगाविभागपडिच्छेदा ?।	१४५
१७८.	असंखेज्जा लोगा जोगाविभागपडिच्छेदा।	१४५
१७९.	एवदिया जोगाविभागपडिच्छेदा।	१४७
१८०.	वग्गणपरूवणदाए असंखेज्जलोगजोगाविभागपडिच्छेदाणमेया वग्गणा भवदि।	१४७
१८१.	एवमसंखेज्जाओ वग्गणाओ सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ।	१४८
१८२.	फद्दयपरूवणाए असंखेज्जाओ वग्गणाओ सेडीए असंखेज्जदि भागमेत्तीयो तमेगं फद्दयं होदि।	१४९
१८३.	एवमसंखेज्जाणि फद्दयाणि सेडीए असंखेज्जदि भागमेत्ताणि।	१४९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१८४.	अंतरपरूवणदाए एक्केक्कस्स फद्दयस्स केवडियमंतरं ? असंखेज्जा लोगा अंतरं।	१५०
१८५.	एवदियमंतरं।	१५१
१८६.	ठाणपरूवणादाए असंखेज्जाणि असंखेज्जाणि फद्दयाणि सेडीए असंखेज्जदि भागमेत्ताणि, तमेगं जहण्णय जोगट्ठाणं भवदि।	१५१
१८७.	एवमसंखेज्जाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदि भागमेत्ताणि।	१५३
१८८.	अणंतरोवणिधाए जहण्णए जोगट्ठाणे फद्दयाणि थोवाणि।	१५३
१८९.	बिदिए जोगट्ठाणे फद्दयाणि विसेसाहियाणि।	१५४
१९०.	तदिये जोगट्ठाणे फद्दयाणि विसेसाहियाणि।	१५४
१९१.	एवं विसेसाहियाणि विसेसाहियाणि जाव उक्कस्सट्ठाणेत्ति।	१५५
१९२.	विसेसो पुण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि फद्दयाणि।	१५५
१९३.	परंपरोवणिधाए जहण्णजोगट्ठाणफद्दएहिंतो तदो सेडीए असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा।	१५५
१९४.	एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव उक्कस्सजोगट्ठाणेत्ति।	१५६
१९५.	एगजोगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं सेडीए असंखेज्जदिभागो, णाणाजोग-दुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	१५६
१९६.	णाणाजोगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि। एगजोगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतर-मसंखेज्जगुणं।	१५६
१९७.	समयपरूवणदाए चदुसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदि भागमेत्ताणि।	१५७
१९८.	पंचसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि।	१५८
१९९.	एवं छसमइयाणि सत्तसमइयाणि अट्ठसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि।	१५८
२००.	पुणरवि सत्तसमइयाणि छसमइयाणि पंचसमइयाणि चदुसमइयाणि उवरि तिसमइयाणि विसमइयाणि जोगट्ठाणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि।	१५८
२०१.	वड्ढिपरूवणदाए अत्थि असंखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जभागवड्ढि-हाणी संखेज्जगुणवड्ढि-हाणी असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी।	१६०
२०२.	तिण्णिवड्ढि-तिण्णिहाणीओ केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण एगसमयं।	१६१
२०३.	उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।	१६१
२०४.	असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणी केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण एगसमओ।	१६२
२०५.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१६२
२०६.	अप्पाबहुएत्ति सव्वत्थोवाणि अट्ठसमइयाणि जोगट्ठाणाणि।	१६३
२०७.	दोसु वि पासेसु सत्तसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि।	१६३
२०८.	दोसु वि पासेसु छसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि।	१६३
२०९.	दोसु वि पासेसु पंचसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि।	१६३
२१०.	दोसु वि पासेसु चदुसमइयाणि जोगट्ठाणाणि दो वि तुल्लाणि असंखेज्जगुणाणि।	१६३
२११.	उवरि तिसमइयाणि जोगट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।	१६३
२१२.	बिसमइयाणि जोगट्ठाणाणि असंखेज्जाणि।	१६३
२१३.	जाणि चेव जोगट्ठाणाणि ताणि चेव पदेसबंधट्ठाणाणि। णवरि पदेसबंधट्ठाणाणि पयडिविसेसेण विसेसाहियाणि।	१६५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.

अथवेदनाक्षेत्रविधानानुयोगद्वारम्

(द्वितीयवेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-पंचमानुयोगद्वारम्)

तृतीयो महाधिकारः

१.	वेयणखेत्तविहाणे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणुओगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति।	१८०
२.	पदमीमांसा सामित्तं अप्पाबहुए त्ति।	१८२
३.	पदमीमांसाए णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो किं उक्कस्सा किमणुक्कस्सा किं जहण्णा किमजहण्णा ?।	१८३
४.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा जहण्णा वा अजहण्णा वा।	१८४
५.	एवं सत्तण्हं कम्माणं।	१९०
६.	सामित्तं दुविहं जहण्णपदे उक्कस्सपदे।	१९१
७.	सामित्तेण उक्कस्सपदे णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सिया कस्स ?।	१९४
८.	जो मच्छो जोयणसहस्सिओ सयंभुरमणसमुद्दस्स बाहिरिल्लए तडे अच्छिदो।	१९४
९.	वेयणसमुग्घादेण समुहदो।	१९८
१०.	कायलेस्सियाए लग्गो।	१९९
११.	पुणरवि मारणंतियसमुग्घादेण समुहदो तिण्णि विग्गहकंडयाणि कादूण।	२००
१२.	से काले अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उप्पज्जिहिदि त्ति तस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा।	२००
१३.	तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा।	२०२
१४.	एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।	२०५
१५.	सामित्तेण उक्कस्सपदे वेदणीयवेदणा खेत्तदो उक्कस्सिया कस्स ?।	२०५
१६.	अण्णदरस्स केवलिस्स केवलिसमुग्घादेण समुहदस्स सव्वलोगं गदस्स तस्स वेयणीयवेदणा खेत्तदो उक्कस्सा।	२०६
१७.	तव्वदिरित्ता अणुक्कस्सा।	२१०
१८.	एवमाउव-णामा-गोदाणं।	२१०
१९.	सामित्तेण जहण्णपदे णाणावरणीयवेदणा खेत्तदो जहण्णिया कस्स ?।	२१०
२०.	अण्णदरस्स सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स तिसमयआहारयस्स तिसमयतब्भवत्थस्स जहण्ण-जोगिस्स सव्वजहण्णियाए सरीरोगाहणाए वट्टमाणस्स तस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा।	२१०
२१.	तव्वदिरित्तमजहण्णा।	२१३
२२.	एवं सत्तण्हं कम्माणं।	२१५
२३.	अप्पाबहुए त्ति। तत्थ इमाणि तिण्णि अणुओगद्दाराणि— जहण्णपदे उक्कस्सपदे जहण्णुक्क-स्सपदे।	२१६
२४.	जहण्णपदे अट्ठण्णं पि कम्माणं वेयणाओ तुल्लाओ।	२१६
२५.	उक्कस्सपदे णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं वेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ थोवाओ।	२१६
२६.	वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ असंखेज्ज-गुणाओ।	२१७
२७.	जहण्णुक्कस्सपदेण अट्ठण्णं पि कम्माणं वेदणाओ खेत्तदो जहण्णियाओ तुल्लाओ थोवाओ।	२१७
२८.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओचत्तारि वि तुल्लाओ असंखेज्जगुणाओ।	२१८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२९.	वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणाओ खेत्तदो उक्कस्सियाओ चत्तारि वि तुल्लाओ असंखेज्ज-गुणाओ।	२१८
३०.	एत्तो सव्वजीवेसु ओगाहणमहादंडओ कायव्वो भवदि।	२१८
३१.	सव्वत्थोवा सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा।	२१८
३२.	सुहुमवाउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२१९
३३.	सुहुमतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२१९
३४.	सुहुमआउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२१९
३५.	सुहुमपुढविकाइयलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२१९
३६.	बादरवाउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२०
३७.	बादरतेउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२०
३८.	बादरआउक्काइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२०
३९.	बादरपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२०
४०.	बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२०
४१.	णिगोदपदिट्ठिदअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२०
४२.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२०
४३.	बीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२०
४४.	तीइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२०
४५.	चउरिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२०
४६.	पंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२१
४७.	सुहुमणिगोदजीवणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२१
४८.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२१
४९.	तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२२
५०.	सुहुमवाउक्काइयपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२२
५१.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२२
५२.	तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२२
५३.	सुहुमतेउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२२
५४.	तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२३
५५.	तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२३
५६.	सुहुमआउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२३
५७.	तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२३
५८.	तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२३
५९.	सुहुमपुढविकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२३
६०.	तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२४
६१.	तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२४
६२.	बादरवाउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२४
६३.	तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२४
६४.	तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
६५.	बादरतेउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२४
६६.	तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२५
६७.	तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२५
६८.	बादरआउक्काइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२५
६९.	तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२५
७०.	तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२५
७१.	बादरपुढविकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२५
७२.	तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२५
७३.	तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२५
७४.	बादरणिगोदणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२५
७५.	तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२६
७६.	तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२६
७७.	णिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२६
७८.	तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२६
७९.	तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया।	२२६
८०.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२६
८१.	बेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।	२२६
८२.	तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
८३.	चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
८४.	पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
८५.	तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
८६.	चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
८७.	बेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
८८.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
८९.	पंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
९०.	तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
९१.	चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
९२.	बेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२७
९३.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२८
९४.	पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा।	२२८
९५.	सुहुमादो सुहुमस्स ओगाहणगुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो।	२२८
९६.	सुहुमादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	२२८
९७.	बादरादो सुहुमस्स ओगाहणगुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो।	२२८
९८.	बादरादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	२२८
९९.	बादरादो बादरस्स ओगाहणगुणगारो संखेज्जा समया।	२२९

दशमग्रन्थे सूत्र संख्याः-३२३

षट्खण्डागम ग्रंथ पूजा

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

–स्थापना (शंभु छंद) –

जिनशासन का प्राचीन ग्रंथ, षट्खंडागम माना जाता।
प्रभु महावीर की दिव्यध्वनि से, है इसका सीधा नाता।।
जब द्वादशांग का ज्ञान धरा पर, विस्मृत होने वाला था।
तब पुष्पदंत अरु भूतबली ने, आगम यह रच डाला था।।1।।

–दोहा–

षट्खंडागम ग्रंथ की, पूजन करूँ महान।
मन में श्रुत को धार कर, पा जाऊँ श्रुतज्ञान।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्सन्निधीकरणं स्थापनं ।

–अष्टक –

(तर्ज –मैं चंदन बनकर.....)

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
ज्ञानामृत पीने से, भव बाधा नशती है।
हम जल की झारी लाए, त्रयधारा करने को।।हम.।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
चन्दन की शीतलता तो, कुछ क्षण ही रहती है।
शाश्वत शीतलता हेतु, श्रुतपूजन कर लूँ मैं।।हम.।।2।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
श्रुतवारिधि में रमने से, अक्षय पद मिलता है।
हम अक्षत लेकर आए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।3।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
स्वाध्याय परमतप द्वारा, विषयाशा नशती है।
हम पुष्पों को ले आए, पुष्पांजलि करने को।।हम.।।4।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
ज्ञानामृत का आस्वादन, ही सच्चा भोजन है।
नैवेद्य थाल ले आए, श्रुत अर्चन करने को।।हम.।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
सम्यग्दर्शन का दीपक, मन का मिथ्यात्व भगाता।
इक दीप जलाकर लाए, श्रुत अर्चन करने को।।हम.।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धांतिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
कर्मों की धूप जलाऊँ, निज ध्यान की अग्नि में।
हम धूप सुगंधित लाए, श्रुत अर्चन करने को।।हम.।।7।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
फल के स्वादों में फँसकर, नहिं मुक्ति सुफल को पाया।
अब थाल फलों का लाए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
कोमल मृदु वस्त्रों द्वारा, निज तन को सदा ढका है।
अब वस्त्र बनाकर लाए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।9।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की।।टेक.।।
जिनवाणी के अध्ययन से, इक दिन अनर्घ्य पद मिलता।
''चंदना'' अर्घ्य ले आए, श्रुत पूजन करने को।।हम.।।10।।

ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

–दोहा–

षट्खंडागम ग्रंथ के, सम्मुख कर जलधार।
ज्ञान और चारित्र से, करूँ भवाम्बुधि पार।।10।।

शान्तये शांतिधारा।

विविध पुष्प की वाटिका, से पुष्पों को लाय।
पुष्पांजलि अर्पण करूँ, श्रुत समुद्र के मांहि।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

–शंभु छंद –

पहला है जीवस्थान खण्ड, छह पुस्तक की टीका इसमें।
दो सहस तीन सौ पिचहत्तर, सूत्रों का सार भरा इसमें।।
अनुयोग आठ नव चूलिकाओं, में सत्प्ररूपणा आदि कथन।
यह ज्ञान मुझे भी मिल जावे, इस हेतु करूँ श्रुत का अर्चन।।1।।

ॐ ह्रीं अष्टअनुयोगनवचूलिकासमन्वितजीवस्थाननाम-प्रथमखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम का दुतिय खण्ड, है क्षुद्रकबंध कहा जाता।
पन्द्रह सौ चौरानवे सूत्र से, सहित ग्रंथ यह कहलाता।।
सप्तम पुस्तक में है निबद्ध, यह बंध का प्रकरण बतलाता।
इस श्रुत का अर्चन करूँ कर्म, ज्ञानावरणी तब नश जाता।।2।।

ॐ ह्रीं कर्मबंधप्रकरणसमन्वितक्षुद्रकबंधनामद्वितीय-खण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है तृतियबंधस्वामित्वविचय, का खण्ड आठवीं पुस्तक में।
त्रय शतक व चौबिस सूत्रों के, द्वारा सिद्धान्त कथन इसमें।।
जो मन वच तन की शुद्धि सहित, इस आगम का अध्ययन करें।
वे कर्मबंध से छुट जाते, हम अर्घ्य चढ़ाकर नमन करें।।3।।

ॐ ह्रीं कर्मबंधादिसिद्धान्तकथनसमन्वितबंधस्वामित्व-विचयनामतृतीयखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वेदनाखण्ड नामक चतुर्थ है, खण्ड चार पुस्तक निबद्ध।
नौ से बारह तक चारों में, पन्द्रह सौ चौदह सूत्र बद्ध।।
इन शास्त्रों की पूजन से मन का, कर्म असाता नश जाता।
गौतमगणधर विरचित मंगल-सूत्रों की है इसमें गाथा।।4।।

ॐ ह्रीं ऋद्ध्यादिवर्णनसमन्वितवेदनाखण्डनामचतुर्थ-खण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम का पंचम है, वर्गणा खण्ड आचार्य ग्रथित।
हैं एक सहस तेईस सूत्र, तेरह से सोलह तक पुस्तक।।
धरसेनसूरि सम गिरि से गिरती, गंगा मानो प्रगट हुई।
श्री पुष्पदंत अरु भूतबली के, अन्तस्तल से उदित हुई।।5।।

ॐ ह्रीं गणितादिनानाविषयसमन्वितवर्गणाखण्डनाम-पंचमखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम के छठे खण्ड में, महाबंध का नाम सुना।
है महाधवल टीका उस पर, श्रीवीरसेनस्वामी ने रचा।।
इस तरह बना षट्खण्डागम, महावीर दिव्यध्वनि अंश कहा।
ये सूत्र ग्रंथ कहलाते हैं, इनकी पूजन से सौख्य महा।।6।।

ॐ ह्रीं महाधवल टीकासमन्वितमहाबंधनामषष्ठखण्ड-जिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पुष्पदंत अरु भूतबली, गुरु की कृति षट्खण्डागम है।
नौ हजार सूत्रों से युत, इस युग का यह श्रुत अनुपम है।।
बानवे सहस्र श्लोकों प्रमाण, टीका भी इसकी लिखी गई।
श्रीवीरसेन स्वामी कृत धवला, टीका को मैं जजूँ यहीं।।7।।

ॐ ह्रीं धवलामहाधवलाटीकासमन्वित षट्खंडागम जिनागमाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीगुणधर भट्टारक विरचित, है कषायप्राभृत ग्रंथ कहा।
जयधवला टीका संयुत सोलह, पुस्तक में उपलब्ध यहाँ।।
है द्वादशांग का पूर्ण सार, इन सब ग्रंथों में भरा हुआ।
इनके अतिरिक्त न सार कोई, अर्चन का मन इसलिए हुआ।।8।।

ॐ ह्रीं जयधवला टीकासमन्वितकषायप्राभृत जिनागमाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम के सूत्रों पर, गणिनी श्री ज्ञानमती जी ने।
संस्कृत टीका सिद्धान्तसुचिन्तामणि रचकर दी इस युग में।।
श्रीवीरसेन आचार्य सदृश यह, टीका भी निधि इस युग की।
चिन्तामणि सम फल दात्री उस, टीकायुत ग्रंथ को करूँ नती।।9।।

ॐ ह्रीं सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वितषट्खण्डागम जिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य मंत्र –**ॐ ह्रीं सिद्धान्तज्ञानप्राप्तये षट्खण्डागम जिनागमाय नमः।**

जयमाला

शेर छंद –

जैवन्त हो महावीर दिव्यध्वनि जगत में। जैवन्त हो गौतम गणीश ज्ञान जगत में।।
जैवन्त हो उन रचित द्वादशांग जगत में। जैवन्त हो उपलब्ध शास्त्र अंश जगत में।।1।।

गौतम ने अपना ज्ञान फिर लोहार्य को दिया। लोहार्य स्वामी से वो जम्बूस्वामीने लिया।।
क्रमबद्ध ये त्रय केवली निर्वाण को गये। फिर पाँच मुनी चौदह पूर्व धारी हो गये।।2।।

नंतर विशाखाचार्य आदि ग्यारह मुनि हुए। एकादशांग पूर्व दश के पूर्ण ज्ञानी थे।।
अरु शेष चार पूर्व का इक देश ज्ञान पा। परिपाटी क्रम से उसको जगत में भी दिय था।।3।।

नक्षत्राचार्य आदि पाँच मुनियों ने क्रम से। पाया था वही ज्ञान एक देश अंश में।।
नंतर सुभद्र आदि चार मुनियों ने पाया। इक अंग ज्ञान देश अंश ज्ञान भी पाया।।4।।

यह ज्ञान पुनः क्रम से श्रीधरसेन को मिला। अतएव वर्तमान में श्रुत का कमल खिला।।
इस श्रुत की कहानी सुन रोमांच होता है। शिष्यों के समर्पण का परिज्ञान होता है।।5।।

निज आयु अल्प जान दो मुनियों को बुलाया। निज ज्ञान उन्हें सौंप मन में हर्ष न्नाया।।
मुनिराज नर वाहन तथा सुबुद्धि ने सोचा। गुरु ज्ञानवाटिका की मैं समृद्धि करूँगा।।6।।

अध्ययन पूर्ण होने पर गुरुवंदना करी। देवों ने पुष्प आदि से गुरु अर्चना करी।।
मुनिवर सुबुद्धि जी की दंतपंक्ति बनाई। कह पुष्पदंत गुरु ने उनकी कीर्ति बढ़ाई।।7।।

मुनिराज नरवाहन को पूजा भूत सुरों ने। फिर भूतबली नाम दिया उन्हें गुरु ने।।
वे इस प्रकार पुष्पदंत भूतबलि बने। षट्खंड जिनागम को जीत चक्रपति बने।।8।।

गुजरात अंकलेश्वर में चौमासा रचाया। फिर ज्ञान को लिपिबद्ध करना मन में आया।
श्री पुष्पदंतमुनि ने सत्प्ररूपणा रची। मुनिराज भूतबलि के पास उसे भेज दी।।9।।

आगे उन्होंने द्रव्यप्रमाणानुगम आदी। षट्खण्डों में हजारों सूत्रों की भी रचना की।।
फिर ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी की तिथि आ गई। आगम की रचना पूर्ण कर संतुष्छिा गई।।10।।

सिद्धांतचक्रवर्ती थे धरसेन जी सचमुच। श्री पुष्पदंत भूतबली में भी थे ये गुण।।
पश्चात्वर्ति मुनि भी उनके अंशरूप हैं। जिनको मिला सिद्धान्त ज्ञान साररूप है।।11।।

त्रयखण्ड पे परिकर्म टीका कुन्दकुन्द की। थी पद्धति द्वितीय टीका शामकुण्ड की।।
श्रीतुम्बुलूर सूरि ने टीका की पंचिका। स्वामी समन्तभद्र ने चौथी रची टीका।।12।।

श्री बप्पदेव गुरु ने लिखी व्याख्याप्रज्ञप्ती। धवलादि टीकाओं के कर्ता वीरसेन जी।।
इन छह में मात्र धवला उपलब्ध आज है। पाँचों ही शेष टीका के नाम मात्र हैं।।13।।

सदि बीसवीं में भी मिले सिद्धान्त ग्रंथ ये। चारित्रचक्रवर्ति शांतिसिंधु कृपा से।।
इन सबको ताम्रपत्र पे उत्कीर्ण कराया। विद्वानों से टीकाओं का अनुवाद कराया।।14।।

संस्कृत तथा प्राकृत में मिश्र है धवल टीका। अतएव मणिप्रवालन्याय युक्त है टीका।।
इसका ही ले आधार ज्ञानमती मात ने। टीका रची सिद्धान्तचिन्तामणि नाम से।।15।।

इन सबकी टीकाओं को बार-बार मैं नमूँ। षट्खण्ड जिनागम में मूलग्रंथ को प्रणमूँ।।
मुझको भी इन्हें पढ़ने की शक्ति प्राप्त हो। माता सरस्वती मुझे तव भक्ति प्राप्त हो।।16।।

षट्खण्ड धरा जीत चक्रवर्ति ज्यों बनें। षट्खंडजिनागम को भी त्यों ही जो पढ़ें।।
सिद्धान्तचक्रवर्ति वे हों 'चन्दनामती'। पूर्णार्घ्य चढ़ाऊँ करूँ मैं वंदना-भक्ती।।17।।

-दोहा-

षट्खण्डागम ग्रंथ को, वंदन बारम्बार।
अर्घ्य समर्पण कर लहूँ, जिनवाणी का सार।।18।।

ॐ ह्रीं षट्खण्डागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

-सोरठा-

जो पूजें चितलाय, षट्खंडागम शास्त्र को।
निज अज्ञान नशाय, वे पावें श्रुतसार को।।

।। इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः ।।

श्री षट्खण्डागम ग्रंथराज की
मंगल आरती

रचयित्री-ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

तर्ज –चाँद मेरे आ जा रे.....

आज हम आरति करते हैं–2
षट्खण्डागम ग्रंथराज की, आरति करते हैं।।
महावीर प्रभू के शासन का, ग्रंथ प्रथम कहलाया।
उनकी वाणी सुन गौतम, गणधर ने सबको बताया।।
आज हम आरति करते हैं–2
वीरप्रभू के परम शिष्य की, आरति करते हैं।।1।।

क्रम परम्परा से यह श्रुत, धरसेनाचार्य ने पाया।
निज आयु अल्प समझी तब, दो शिष्यों को बुलवाया।।
आज हम आरति करते हैं–2
श्री धरसेनाचार्य प्रवर की, आरति करते हैं।।2।।

मुनि नरवाहन व सुबुद्धी, ने गुरु का मन जीता था।
देवों ने आ पूजा कर, उन नामकरण भी किया था।।
आज हम आरति करते हैं–2
पुष्पदंत अरु भूतबली की, आरति करते हैं।।3।।

श्री वीरसेन सूरी ने, इस ग्रंथराज के ऊपर।
धवला टीका रच करके, उपकार कर दिया जग पर।।
आज हम आरति करते हैं–2
वीरसेन आचार्य प्रवर की, आरति करते हैं।।4।।

गणिनी माँ ज्ञानमती ने, इस ग्रंथ की संस्कृत टीका।
लिखकर सिद्धान्तसुचिन्तामणि नाम दिया है उसका।।
आज हम आरति करते हैं–2
श्री सिद्धान्तसुचिन्तामणि की, आरति करते हैं।।5।।

चन्दनामती माताजी, माँ ज्ञानमती की शिष्या।
हिन्दी अनुवाद किया है, इस चिन्तामणि टीका का।।
आज हम आरति करते हैं–2
सरल-सरस टीका की ''सारिका'' आरति करते हैं।।6।।